निगमागमीयं संस्कृतिदर्शनम्

पण्डितव्रजवल्लभद्विवेदः
शैवभारती-शोधप्रतिष्ठान-निदेशकः



प्रकाशकः
शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्
जंगमवाडीमठ, वाराणसी-२२१००१

शोधप्रकाशन-ग्रन्थमाला–७

निगमागमीयं संस्कृतिदर्शनम्

[दर्शन-साहित्यसंस्कृति-समालोचनात्मकानां निबन्धानां संग्रहः]

पण्डितव्रजवल्लभद्विवेदः

शैवभारती-शोधप्रतिष्ठान-निदेशकः

प्रकाशकः

शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्

जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी–२२१००१

प्रकाशक :
शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्
डी० ३५/७७ जंगमवाड़ी मठ
वाराणसी–२२१००१

प्रथमं संस्करणम्—सन् १९९५ ई०

मूल्यम्—सबन्धस्य ३००.००
अबन्धस्य २००.००

मुद्रक :
शिवम् प्रिन्टर्स
सी० २७/२७३ इण्डियन प्रेस कालोनी
मलदहिया, वाराणसी–२२१००२

Research Publications Series—7

NIGAMĀGAMĪYAM SAṀSKṚTIDARŚANAM

Pt. VRAJAVALLABHA DWIVEDI
Director, Shaiva Bharati Shodha Pratishthanam

SHAIVA BHARATI SHODHA PRATISHTHANAM
D. 35/77, Jangamawadimath, Varanasi-221001

Published by :

SHAIVA BHARATI SHODHA PRATISHTHANAM
D. 35/77, Jangamawadimath
Varanasi–221001

First Published 1995
Price : Rs. 300 (Hb)
Rs. 200 (Pb)

Printed at :

Shivam Printers
C. 27/273 Indian Press Colony
Maldahia, Varanasi-221002

छात्रावस्थायाः परमसुहृदे
श्रीछेलशङ्करनर्मदाशङ्करशुक्लमहोदयाय
सेवाकाले सर्वविधरक्षणप्रदात्रे
श्रीजगन्नाथ-उपाध्यायमहोदयाय च
सस्नेहं सादरं समर्प्यते

शैवभारती-शोधप्रतिष्ठान-संस्थापकानां



श्रीकाशीविश्वाराध्यज्ञानसिंहासनाधीश्वराणां श्री १००८ जगद्गुरु-
डॉ० चन्द्रशेखरशिवाचार्यमहास्वामिनां शुभाशीर्वचनम्

आगमशास्त्रतल्लजानां लेखनसम्पादनादिकार्येषु दक्षाणां निरन्तर-संशोधनरतानां नैकशोधच्छात्राणां मार्गदर्शकानां शैवभारतीशोधप्रतिष्ठानस्य निदेशकानां 'राष्ट्रिय पण्डित' इत्युपाधिभाजां पण्डितप्रवराणां प्रो० व्रजवल्लभ-द्विवेदमहोदयानां "निगमागमीयं संस्कृतिदर्शनम्" नामकं ग्रन्थरत्नमस्माभि-रामूलचूलमवलोकितम्। एतद्ग्रन्थगर्भे निगमागमदर्शनसम्बन्धिन अष्टादश निबन्धाः, संस्कृति-साहित्यसम्बन्धिनः सप्तदश निबन्धाः, तथा "विचारविप्रुषः" इति शीर्षकगर्भे द्विचत्वारिंशत्संख्याकाष्टिप्पण्यो राजन्तेतराम्। इतः प्रागेतेषा-मेव संस्कृतनिबन्धसंग्रहात्मकः "तन्त्रयात्रा"नामको ग्रन्थः प्रकाशित आसीत्। तत्रापि तन्त्रागमदर्शनसम्बन्धिनस्त्रयोदश लेखाः, संस्कृति-साहित्यसम्बन्धिन एकादश लेखाः, यात्रासम्बन्धिनः पञ्च लेखाः, तथा "विचारविप्रुषः" इति शीर्षण्याः सप्तचत्वारिंशत्संख्याकाष्टिप्पण्यो विलसन्ति। एवमेवैतेषां "निगमागम संस्कृति" नामको हिन्दीनिबन्धसंग्रहात्मको ग्रन्थः शिवधर्मग्रन्थमालायां जङ्गम-वाडीमठादेव १९९२ तमे खीस्ताब्दे प्रकाशित आसीदिति तु जानन्त्येव भवन्तः। तस्मिन्नपि ग्रन्थे निगमागमदर्शन-इतिहास-साहित्य-व्यक्तित्वकृतित्व-संस्कृत-संस्कृति-यात्रासम्बन्धिनः सप्तत्रिंशत्संख्याका उत्कृष्टलेखाः प्रविराजन्ते।

पण्डितद्विवेदिनो निरन्तरपरिश्रमशीलाः। पठन-पाठनेन साकं लेखन-सम्पादनादिकं कार्यमनवरतमेते कृतवन्तः, कुर्वन्ति च। सम्पूर्णानन्दसंस्कृत-

विश्वविद्यालयस्य संस्कृतत्रैमासिकपत्रिकायाः "सारस्वती सुषमा" इत्याख्यायाः सहसम्पादकत्वेनाष्टादशवर्षम्, अत्रैव योगतन्त्रविभागप्राध्यापकपदे दशवर्षम्, सांख्ययोगतन्त्रागमविभागाध्यक्षपदे च सप्तवर्षम्, सारनाथस्थितायाः केन्द्रीय-तिब्बती-उच्च-शिक्षासंस्थाया दुर्लभबौद्धग्रन्थशोधयोजनाया उपनिदेशकपदेऽष्टवर्षं यावत् सुमहत् कार्यं कृत्वा साम्प्रतमस्मन्मठीये शैवभारतीशोधप्रतिष्ठाने निदेशकरूपेण कार्यं निर्वहन्तः सन्ति श्रीमन्तो द्विवेदिनः। अस्मिन् शैक्षणिकसत्रे प्रायः शतसंख्याका उत्कृष्टग्रन्था एभिः सम्पादिताः। न केवलं भारतीयाः, पाश्चात्त्या अपि विद्वांस एतेषां सम्पादनशैलीं प्रशंसन्ति। यदा एते कार्यनिमग्ना भवन्ति, तदा सर्वमपि विस्मृत्य तत्रैव रममाणा परिदृश्यन्ते। ग्रन्थस्थग्रन्थ-ग्रन्थकार-विशिष्टवचनानां स्थाननिर्देशनम्, श्लोकार्धसूचीनिर्माणमित्यादि दुष्करमपि कार्यमेते लीलाजालया निर्वहन्ति। एतत्सर्वं गुरुवर्याणां श्रीगोपीनाथ-कविराजमहाभागानामाशीर्वादप्रभावेण संभवतीति कथयन्तः प्रहृष्टान्तरङ्गा द्विवेदिनः सहजतयाऽहङ्कारनिरसनं कुर्वन्ति। स्वनामधन्यगोपीनाथकविराज-महाभागानां सम्पादनपद्धतिमनुसृत्यैवैते ग्रन्थस्य शास्त्रीयपक्षस्य तथैतिहासिक-पक्षस्य च समालोचनं समानरूपेण कुर्वन्ति। भारतीया संस्कृतिरेतेषामत्यन्त-प्रियो विषयः। भारतीयसंस्कृतिविषयकेषु लेखेष्वेतेषां शैली निष्पक्षा निर्भीका च परिदृश्यते। साम्प्रतं भारते देशे गणतन्त्रं प्रवर्तते। तदर्थं च शैवशासनेषु पापठ्यमानमिदं वचनं विशेषतोऽवधानार्हम्—

बहवो यत्र नेतारः सर्वे पण्डितमानिनः।
सर्वे महत्त्वमिच्छन्ति तद् व्यक्तमवसीदति ॥ इति।

तेन हि राजनेतृष्वपि कौटिल्यप्रतिपादितं संभूय समुत्थानमपेक्षितमित्यत्रावदधतु नाम साम्प्रतिका राजनीतिज्ञाः।

प्रकृतेऽस्मिन् ग्रन्थे संगृहीता निबन्धाः सरसाः सरला बोधप्रदाश्च सन्ति। अत्रैकत्र संगृहीता अनेके विषयाः संस्कृतानुरागिणां छात्राणां विदुषां च कृते बहूपयोगिनो भविष्यन्तीत्यत्र न सन्देहः। एतादृशप्रगल्भपाण्डित्यवन्तो द्विवेद-महाभागाः शैवभारतीशोधप्रतिष्ठानस्य निदेशकपदमलङ्कृत्य कार्यं निर्वहन्तीत्यहो-भाग्यं शोधप्रतिष्ठानस्यास्येति वयं मन्यामहे। श्रीजगद्गुरोर्विश्वाराध्यस्य, अन्न-पूर्णासहितस्य भगवतो विश्वनाथस्य च कृपया आयुरारोग्यभाग्यं सम्पाद्य इतोऽप्यतिशायिनीं साहित्यिकीं सेवां यावदायुरेते कुर्वन्तु—इति भगवच्चरणार-विन्देषु प्रार्थयामहे ॥

इत्याशिषः

प्रकाशकीय वक्तव्य

काशी जंगमवाड़ी मठ के "शैवभारतीभवनम्" के द्वारा संचालित "शिवधर्म ग्रन्थमाला" के ३७ वें पुष्प के रूप में "निगमागम संस्कृति" नामक ग्रन्थ का प्रकाशन सन् १९९२ ई० में हुआ था। इसमें इस मठ के संमानित प्राध्यापक राष्ट्रिय पंडित प्रो० व्रजवल्लभ द्विवेदी के द्वारा समय समय पर हिन्दी भाषा में लिखे गये निगमागम दर्शन, इतिहास-साहित्य, व्यक्तित्व-कृतित्व, संस्कृत-संस्कृति और यात्रा संबन्धी ३७ निबन्ध संगृहीत थे। श्री द्विवेदी जी के तन्त्रागम दर्शन और संस्कृति से संबद्ध २६ हिन्दी निबन्धों का संग्रह इसके पूर्व "आगम और तन्त्रशास्त्र" के नाम से प्रकाशित हो चुका है। आज हमें इन्हीं के संस्कृत निबन्धों के नूतन संग्रह को "निगमागमीयं संस्कृतिदर्शनम्" के नाम से प्रकाशित करते हुए परम प्रसन्नता हो रही है। इसमें निगमागम दर्शन संबन्धी १८, संस्कृति-साहित्य संबन्धी १७ निबन्ध तथा ४२ सामयिक टिप्पणियाँ "विचारविप्रुषः" शीर्षक से प्रकाशित हुई हैं। इसके पूर्व आपके संस्कृत निबन्धों का प्रथम संग्रह "तन्त्रयात्रा" के नाम से प्रकाशित हो चुका है, जिसमें कि तन्त्रागम दर्शन संबन्धी १३, संस्कृति-साहित्य संबन्धी ११, यात्रा संबन्धी पाँच और ४७ सामयिक टिप्पणियाँ "विचार-विप्रुषः" शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित हुई थीं।

काशी का जंगमवाड़ी मठ वीरशैव धर्म-दर्शन के प्रवर्तक पांच आचार्यों में अन्यतम काशी विश्वेश्वर ज्योतिर्लिंग से प्रादुर्भूत श्री १००८ जगद्गुरु विश्वाराध्य की लीलास्थली के रूप में प्रख्यात है। यहाँ इन्होंने ज्ञानसिंहासन की स्थापना की। इस पीठ के वर्तमान ८६वें जगद्गुरु श्री १००८ डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी जी हैं। इन्होंने सन् १९९३ में जगद्गुरु विश्वाराध्य जनकल्याण प्रतिष्ठान की और उसके तत्त्वावधान में संचालित शैवभारती शोध प्रतिष्ठान की स्थापना की है। इस शोध प्रतिष्ठान के प्रथम निदेशक के रूप में महास्वामी जी ने प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक राष्ट्रिय पण्डित प्रो० व्रजवल्लभ द्विवेदी जी को चुना है। श्री द्विवेदी जी इससे पहले सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के सांख्ययोगतन्त्रागम विभाग के अध्यक्ष एवं आचार्य तथा केन्द्रीय तिब्बती उच्च शिक्षा संस्थान के द्वारा संचालित दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना के उपनिदेशक पद पर कार्य कर चुके हैं। इन्होंने पूरे

भारतवर्ष की अनेक बार यात्रा की है और अभी महाशिवरात्रि के शुभ अवसर पर द्वादश ज्योतिर्लिंगों की पावन यात्रा सम्पन्न करने के उपलक्ष्य में डॉ० एस० एस० हिरेमठ बेल्लेट्टी, श्री बी० आर० पाटील बेलगाँव, श्री आर० जी० रामापुरे नागपुर, सौ० लीला बाई रा० रामापुरे नागपुर, श्रीमती सरस्वती बाई माम्परपुर नागपुर के साथ इनका भी जंगमवाड़ी मठ में स्वागत हुआ है। विश्व संस्कृत परिषद् के सातवें अधिवेशन के अवसर पर हालैण्ड में सम्पन्न हुई भारतीय तन्त्रशास्त्र संबन्धी कार्याशाला में इन्होंने भारत का प्रतिनिधित्व किया था और उस अवसर का लाभ उठाकर हालैण्ड और इंग्लैण्ड के अनेक विशिष्ट स्थलों की यात्रा की थी। इनमें से अधिकांश यात्राओं का विवरण ऊपर प्रदर्शित ग्रन्थों में प्रकाशित हिन्दी और संस्कृत निवन्धों में देखा जा सकता है।

प्रो० द्विवेदी जी ने आगम और तन्त्रशास्त्र की शैव, शाक्त, वैष्णव और बौद्ध शाखाओं के विशिष्ट ग्रन्थों के अतिरिक्त परमादरणीय स्वामी करपात्री जी महाराज के द्वारा निबद्ध वेदार्थपारिजात-भाष्यभूमिका का हिन्दी अनुवाद के साथ दो जिल्दों (लगभग २३०० पृष्ठ) में तथा उन्हीं के द्वारा निबद्ध शुक्ल यजुर्वेद माध्यन्दिन संहिता के वेदार्थपारिजात नामक सम्पूर्ण भाष्य का आठ जिल्दों में संपादन किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ के अन्त में इनके द्वारा संपादित, अनूदित और लिखित ग्रन्थों की पूरी सूची दी जा रही है, जिससे इनकी बहुमुखी प्रतिभा के दर्शन होते हैं। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय की संस्कृत की त्रैमासिक शोधपत्रिका "सारस्वती सुषमा" की इन्होंने सहायक सम्पादक के रूप में १८ वर्ष तक सेवा की है। संस्कृत साप्ताहिक 'गाण्डीवम्' से भी ये लगभग २० वर्षों तक संबद्ध रहे हैं। सन् १९८६ ई० से १९९३ तक इन्होंने दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना की शोधपत्रिका 'धी:' का योग्यतापूर्वक सम्पादन किया है और आजकल ये वीरशैव धर्म-दर्शन से संबद्ध शैवागमों का भाषानुवाद के साथ सम्पादन कर रहे हैं। संस्कृत भाषा में इनके द्वारा लिखे गये अनेक विशिष्ट ग्रन्थों के उपोद्घात विश्वविश्रुत और चर्चित हो चुके हैं और इसके कारण इनको प्राप्त पुरस्कारों की एक और कड़ी राष्ट्रपति संमान के रूप में अभी हाल में जुड़ गई है।

इनके संपादन और लेखन कला की यह विशेषता है कि अथक परिश्रम करके ग्रन्थों में उद्धृत वचनों का स्थाननिर्देश करने का भी ये प्रयत्न करते हैं और अपने गुरुदेव श्रद्धेय गोपीनाथ कविराज जी के द्वारा निर्धारित पद्धति के अनुसार ये संबद्ध विषय के अन्तरंग (शास्त्रीय पक्ष) और बहिरंग

(ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक) उभय पक्षों पर समान रूप से प्रकाश डालने का प्रयास करते हैं। भारतीय संस्कृति इनका अत्यन्त प्रिय विषय है। पूरे निगमागम साहित्य के आधार पर एक अखण्ड भारतीय संस्कृति का और अन्ततः विश्वसंस्कृति का निर्माण कैसे हो सकता है ? जिससे कि मानव-जाति योगी अरविन्द द्वारा प्रदर्शित देवभाव से तादात्म्य स्थापित कर सके। इसके लिये विद्वान् लेखक का निष्कर्ष यह है कि श्रद्धेय गोपीनाथ कविराज जी के द्वारा प्रतिष्ठापित अखण्ड महायोग की साधना से यह संभव हो सकता है।

इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक को शैवभारती शोधप्रतिष्ठान की शोध ग्रन्थमाला के ७वें पुष्प के रूप में प्रकाशित करने की अनुमति देकर जगद्गुरु श्री १००८ डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी जी ने तन्त्रागम दर्शन और भारतीय संस्कृति के प्रेमियों का महान् उपकार किया है। ग्रन्थ को शुद्ध और परिष्कृत रूप में प्रकाशित करने में काशी के प्रसिद्ध लिपिविशेषज्ञ एवं संस्कृत के निष्णात विद्वान् पण्डित जनार्दन शास्त्री पाण्डेय जी का तथा काशी जंगमवाड़ी मठ के शोधकार्य में निरत श्री मरुलसिद्ध शिवाचार्य स्वामी जी का विशेष योगदान रहा है। हम इन सबके प्रति नतमस्तक हैं। शिवम् प्रिन्टर्स के प्रबन्धक श्री हरिप्रसाद निगम और उनके प्रेस के वरिष्ठ कार्यकर्ता श्री राम अवतार वैद्य को भी हम ग्रन्थ के सुन्दर, शुद्ध और स्वच्छ मुद्रण के लिये मठ की ओर से धन्यवाद देते हैं।

विनीत
पंचाक्षरी लिगाडे
प्रबन्धक

महाशिवरात्रि, संवत् २०५१
शैवभारती शोध प्रतिष्ठान
जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी।

प्रस्तावना

प्रायस्त्रयोदशवर्षेभ्यः पूर्वं १९८२ ई० वर्षे १९७२ ई० वर्षं यावल्लिखितानां संस्कृतनिबन्धानामस्मदीयानां संग्रहस्तन्त्रयात्राख्यः प्रकाशित आसीदुत्तरप्रदेश-संस्कृत-अकादमीसंस्थाया आर्थिकेन साहाय्येन। ततः परं १९९४ ई० वर्षान्तं यावल्लिखितानां संस्कृतनिबन्धानां संग्रहोऽयं साम्प्रतं "निगमागमीयं संस्कृति-दर्शनम्" इति नाम्ना काशीस्थजङ्गमवाड़ीमठस्थेन शैवभारतीशोधप्रतिष्ठानेन प्रकाश्यते। १९७२ ई० वर्षानन्तरं लिखित एक एव निबन्धस्तन्त्रयात्रायां संनिवेशित आसीत् "किमर्थमध्येयं संस्कृतम्" इति शीर्षकः। कारणमस्य तत्रैव निर्दिष्टमस्माभिः। सोऽयं निबन्धो यथाक्रमं पुनरत्र संनिवेशित इति जानन्तु सहृदया अस्मद्दृष्टौ वैशिष्ट्यमस्य। हिन्दीभाषानिबद्धानां संस्कृतभाषानिबद्धानां च निबन्धानां संग्रहचतुष्टयविषये प्रकाशकीये वक्तव्ये किमप्युक्तमास्ते।

संस्कृतनिबन्धानां प्रथमे संग्रहे तन्त्रयात्राख्ये प्रायो नानाविषयका निबन्धाः संगृहीताः सन्ति, "विचारविप्रुषः" इति खण्डे च सारस्वत्यां सुषमायां प्रकाशिताष्टिप्पण्यः संगृहीताः। द्वितीये चास्मिन् प्रस्तुते संग्रहे प्रायस्तन्त्रागम-दर्शनसंस्कृतिविषयका निबन्धा एव प्राधान्येन विराजन्ते, "विचारविप्रुषः" इति खण्डे च "गाण्डीवम्" इत्याख्ये साप्ताहिकसंस्कृतपत्रे प्रकाशिताष्टिप्पण्यः संगृहीता इति द्वयोः संग्रहयोर्वैशिष्ट्यमेतन्मदीयायायां विद्याध्ययनयात्रायामायातं परिवर्तनं सूचयति। द्वितीयस्यास्य संग्रहस्य प्रथमे खण्डे ग्रन्थप्रस्तावनात्मकाः, सारस्वती सुषमा, अजस्रा, अरुणभारती, नवोन्मेषः, पुराणम्, स्मारिका, संस्कृतविमर्शः— इत्यादिषु पत्रपत्रिकादिषु पूर्वं प्रकाशिता वा निबन्धाः सन्ति।

अस्माभिः सम्पादितानामनूदितानां लिखितानां च ग्रन्थानां सविवरणा सूची ग्रन्थान्ते समावेशिता अत्र। तत्रैव तत्तद्ग्रन्थविषये प्रकटीकृतानां विदुषां सम्मतयोऽपि काश्चन संगृहीताः सन्ति। सम्मतीभिराभिस्तत्तद्ग्रन्थारम्भे संनि-वेशितानां संस्कृतभाषानिबद्धानामुपोद्घातानां ग्रन्थसम्पादनविषयेऽङ्गीकृतानां सिद्धान्तानां च वैशिष्ट्यं ख्याप्यते। उपोद्घातेष्वेषु, ग्रन्थेऽस्मिन् संनिवेशितेषु निबन्धेषु टिप्पणीषु च शैव-शाक्त-वैष्णव-बौद्धतन्त्राणामैतिहासिकं दार्शनिकं सांस्कृतिकं च स्वरूपं तौलानिकपद्धत्योन्मीलितमास्ते।

वैदिकाः, जैनाः, बौद्धाः, आगमिकाः, तान्त्रिकाः, पौराणिकाः, स्मार्ताः— सर्व एते भारतीया इति सर्वेषामेषां वाङ्मयस्य सामूहिकं देशकालानुरोधि

अनुशीलनमपेक्षितम्, तदेव भारते भावात्मकस्यैक्यस्य अखण्डाया भारतीय-संस्कृतेस्तदनु च विश्वसंस्कृतेः प्रतिष्ठा, वैदेशिकैरारोपितानां मिथ्याप्रवादानां परिष्कारश्च संजायेत, वैदिक-बौद्ध-जैन-सिक्ख-इस्लाम-ख्रीष्टादिधर्मेषु परस्परं समुत्पादितानि वैमनस्यबीजानि च सौमनस्यभ्राष्टभर्जितानि स्युः। लक्ष्यस्यास्यावाप्तये संग्रहेऽस्मिन् निम्नाङ्किताः सिद्धान्ताः प्रतिपादिताः सन्ति—

१. वैदिक-जैन-बौद्ध-आगमिक-तान्त्रिक-पौराणिक-स्मार्तादिधाराणां पावनं जीवनमादायाजस्रं प्रवर्तते भारतीया संस्कृतिरिति सर्वत्र समाना समादर-दृष्टिरपेक्षिता।

२. अत्राभिनवगुप्तपद्धत्या जेन्दावेस्ता-ओल्ट टेस्टामेन्ट-न्यू टेस्टामेन्ट-(बाइबिल)-कुरानसदृशान् ग्रन्थानागमेष्वन्तर्भाव्य तत्प्रवर्तकांश्च राम-कृष्ण-महावीर-बुद्धस्थानीयानभिप्रेत्य तत्तद्धाराजलमादायाजस्रं प्रवहमाना भारतीया संस्कृतिगङ्गा केनापि नूतनेनौज्ज्वल्येन प्रसाधनीया।

३. त्यागः, तपस्या, सहिष्णुता, समन्वयश्चेति चतुःस्तम्भः शोभतेऽयं भारतीयसंस्कृतिप्रासादः। नात्र कोऽपि विकारः प्रवेशं लभेतेति सावहितैरस्माभिर्भाव्यम्। अपि च, चत्वारो वर्णा आश्रमाः पुरुषार्थाश्चतुःसोपानं शास्त्रं चेति चत्वार इमेऽपि सन्ति भारतीयायाः संस्कृतेराधारभूताः सिद्धान्ताः। अत्र वर्णेष्वाश्रमेषु च प्रसूत औत्तराधर्यभावः परिहरणीयः साम्प्रतम्। एतदर्थं च वर्णाश्रमवित्तविद्याद्यपेक्षया चारित्र्यस्य वैशिष्ट्यमङ्गीकर्तव्यम्, यथा हि दृश्यते आगम-तन्त्र-भक्ति-पुराणवाङ्मयेषु।

४. वैदिकं कर्मकाण्डं साम्प्रतं विरलप्रचारमास्ते। तान्त्रिकं कर्मकाण्डं तदीयं रहस्यवादं चापोह्य, तन्त्रशास्त्रापनोदितान् जात्यादिदुराग्रहांश्च दूरीकृत्य, सर्वेषु धर्मेषु सौमनस्यमाधातुं तथैव प्रयतितुं शक्यते, यथाहि भारते वर्षे पञ्चायतनपूजाप्रवर्तकस्य स्मार्तधर्मस्य प्रतिष्ठापनेनात्र पूर्वं साधितम्। आगम-तन्त्रशास्त्राण्यत्रास्माकं साहाय्यमाचरिष्यन्ति, येन हि सर्वान् धर्मान् प्रति प्रति समानः समादरभावः समुदयमियात्।

५. वेदान्तदर्शनापेक्षया प्रत्यभिज्ञादर्शनमाधृत्य नूतनानां दर्शनानां समुन्मेषोऽद्यापेक्षितः। वैष्णवशैवादिभक्तानां सिद्धानां नाथानां सिक्खगुरूणां सूफीमतस्य चागमतन्त्राधारितमनुशीलनमेव जगतः कल्याणाय कल्पेत।

६. 'सेक्युलर'पदस्य 'धर्मनिरपेक्ष' इत्यनुवादो भारतीयसंस्कृति-विपरीतः। प्रशासकैः सुव्यवस्थायै राज्यस्य, लोकानुरञ्जनाय च लोकायत-

दृष्टिराश्रयणीया भवति। तेन हि 'सेक्युलर स्टेट' इत्यस्य 'लोकराज्यम्' इति शोभनः पर्यायः प्रतिभाति नः।

७. केचन राजनेतारः स्वार्थसाधनाय ब्राह्मणवाद-मनुवाद-सदृशान् विकल्पप्रायान् शब्दान् प्रचारयन्ति। भारतीयायाः संस्कृतेरस्माभिर्मकुटसंहिता-प्रस्तावनायां प्रस्ताविता परिभाषाऽपसंस्कृतेरस्याः सर्वानीदृशानाक्षेपान् परिहरिष्यति।

अत्र प्रकाशितानामेतादृशां विचाराणां सम्यक् समालोचनं विधाय भारतीतायाः संस्कृतेः परिनिष्ठितस्य स्वरूपस्योन्मीलनाय बद्धपरिकरा भवन्तु नाम सुरभारतीसमुपासका इति तेभ्यो निवेद्यते सादरम्।

संग्रहेऽस्मिन् प्रथमतो ज्ञानगभीरा दार्शनिकनिबन्धाः सन्ति संनिवेशिताः। ततः परं भारतीयायां संस्कृतौ समापन्नानां दोषाणां परिहाराय निबद्धानां निबन्धानां कृतः समावेशः, केषाञ्चन उदारचरितानां चरितानि च चर्चितानि। मयूरमरालाख्यः स्तम्भोऽत्रत्यो व्यङ्ग्योक्तिप्रधानस्तामेव सरणिमनुसरति, या हि स्वनामधन्यानां गाण्डीवम्-सम्पादकानां पण्डितप्रवराणां निर्भीकचेतसां श्रीमतां रामबालकशास्त्रिणां जामात्रा श्रीमता चन्द्रमौलिदत्तशर्मणा इदम्प्रथमतया व्यवस्थापिता। अन्तिमे च भागे सामयिकसमस्यानां समालोचनाय सम्पादक-प्रतिनिधित्वेन 'गाण्डीवम्' इत्यत्र व्यक्तीकृता विचारात्मिकाष्टिप्पण्यः समा-कलिताः। ग्रन्थस्थानां विशिष्टवाक्यानां केषाञ्चन सुभाषितानां च संग्रहोऽपि यथास्थानमत्र कृतः।

निबन्धेष्वेषु यत्रकुत्रचित् कालपर्ययादन्यथा वा परिवर्धनानि संशोधनानि चापेक्षितान्यासन्, तानि ततः परं सावधानं संयोजितानि। पाठकानां सौविध्याय ग्रन्थानां ग्रन्थकाराणां मतमतान्तराणां च नामोल्लेखिनी केषाञ्चन प्रधान-विषयाणां निर्दशिका विषयानुक्रमणी चात्र सहैव संयोजिता।

काठियावाड़स्थ(गुजरात)ध्रांगध्रा-राज्यतोऽध्ययनार्थं काशीं समागतः श्रीमान् स्व० छेलशङ्कर-नर्मदाशङ्करशुक्लमहोदयश्छात्रावस्थायां मदीयं सर्वविधं साहाय्यमुपपादयति स्म। तस्य सुहृद्वरस्य तदानीन्तनं स्नेहं स्मारं स्मारमभि-भूतोऽस्म्यहम्। एवमेव काशिकराजकीयसंस्कृतमहाविद्यालयस्य सम्पूर्णानन्द-संस्कृतविश्वविद्यालयस्य च सेवाकाले साम्प्रतं सर्वत्र प्रसृतया संकीर्णतापिशाच्या यदा यदाऽहं परिगृहीतस्तदा तदा प्रथितयशसा बौद्धवाङ्मयपरिशीलनगृहीत-

व्रतेन करुणामूर्तिना स्व० जगन्नाथ-उपाध्यायमहोदयेन स्वबुद्धिवैभवेनोपाय-कौशल्येन च संरक्षितोऽहं वाराणस्यामेव निवसन् सुरभारतीसेवामकरवमित्यनयोः स्मरणं समादरं विधातुं ताभ्यां ग्रन्थ एव समर्प्यते ।

निबन्धसंग्रहस्यास्य:प्रकाशनाय काशीज्ञानसिंहासनाधीश्वराः श्री १००८ डॉ० चन्द्रशेखरशिवाचार्यमहास्वामिनः सन्नद्धा अभवन् । इमे हि सामान्य-जनतायाः शिक्षास्वास्थ्यलाभाय विश्वाराध्यजनकल्याणसमितिम्, विदुषां च आध्यात्मिकस्वास्थ्याय शैवभारतीशोधप्रतिष्ठानं प्रतिष्ठाप्य स्वकीयं वैशिष्ट्यं ख्यापितवन्त इति सर्वप्रथमं तेभ्यो वर्धापनवाचो व्याह्रियन्ते । अस्मत्सुहृत्प्रवरा विविधभारतीयलिपिविशेषज्ञाः श्रीमन्तो जनार्दनशास्त्रिपाण्डेयमहोदया अत्रत्येषु विचारेषु भाषायां च संशोधनं विधाय बहूपकृतवन्त इति तेऽपि सादरमत्र स्मर्यन्ते । ग्रन्थमुद्रणावसरे सर्वविधं साहाय्यमुपपादयतः काशीवीरशैवविद्वत्संघस्य कार्यदर्शिनः श्री ष. ब्र. मरुलसिद्धशिवाचार्यस्य सर्वविधामाध्यात्मिकीमुन्नतिं कामये । मुद्रणालयसौकर्याय सर्वानत्रत्यान् निबन्धान् टङ्कणादिना सुसज्जीकृतवन्तं श्रीसुनीलकुमारमित्तलम्, विषयानु-क्रमणीं सज्जीकृतवन्तौ पुत्रपुत्रवधू श्रीतरुणकुमारद्विवेदि (एम. ए., पीएच. डी.)-सौ. सुस्मिताद्विवेदिनौ (बी. ए.) च शुभाशीर्वादशतैः सभाजयामि । ग्रन्थस्य परिशुद्धे शोभने मुद्रणे प्रवृत्तौ शिवम्-मुद्रणालयस्य व्यवस्थापकः श्रीहरिप्रसाद-निगमः, वरिष्ठः कार्यकारी श्री राम-अवतारवैद्यश्च धन्यवादार्हौ ।

काशीजङ्गमवाडीमठस्थं
शैवभारतीशोधप्रतिष्ठानम्

विदुषां वशंवदः
व्रजवल्लभद्विवेदः

•

अवधानार्हा वाक्यावली

ब्राह्मण-बौद्ध-जैनादयो विभागा भगवतो महाकालस्य कलनात्मिकां वृत्तिमेव सूचयन्ति (पृ० ११२)।

तन्त्रागमीयं हि दर्शनं न शुष्कं तर्कमाश्रयते (पृ० १२७)।

किं वर्तते कश्चन चाणक्यः, यो हि भारते वर्षे प्रकटं च प्रच्छन्नं च प्ररूढं भ्रष्टाचारपादपमूलं तक्रेण सिञ्चेत् (पृ० २०८–२०९)।

तान्त्रिकं दर्शनं व्यवहारं नातिक्रामति (पृ० २४०)।

प्रकाशकमत्कुणैराक्रान्ता लेखकाः कुत्र नु नाम विश्वस्तं विश्रमेरन्नित्यभिनवेन केनचित् कविनोत्प्रेक्ष्यम् (पृ० २४९)।

प्रकृते रम्यतरेषु स्थलेषु तीर्थभावनां प्रचारयति प्राच्या संस्कृतिः, प्रतीच्या च तत्र होटल-निर्माणं भावयति (पृ० २७६)।

आम्रेडितमुच्चरितमसत्यं सत्यं भवतीति नैषा सत्यस्य भारतीया परिभाषा

(पृ० ३०१)।

वित्तेन हि पूतो पूतो भवति (पृ० २७९)।

बहुधार्मिकेऽस्मिन् राष्ट्रे सहिष्णुतैव स महान् गुणः, यो हि सर्वासां समस्यानां समाधानाय कल्पेत (पृ० ३०३)।

इतिहासतुला वंशावलीगायकैरान्दोलिता सती कालहस्तमालम्ब्य स्थिरीभवत्येव (पृ० ३०८)।

भ्रष्टाचारोऽयमुपरितो नीचैरागच्छतीति वदन्ति केचन विचारकाः, अन्ये च अधस्त उपरि गच्छतीति विवदन्ते (पृ० ३०८)।

निष्कलुषे सामूहिके नेतृत्वे जागरूके सत्येव गणतन्त्रस्य सुचारु संचालनं भवेत्, नान्यथा (पृ० ३११)।

भारते बहूनि वर्षाणि यावत् कृताधिकारस्य राजतन्त्रस्यायं प्रभावो यदधुनातना जनतन्त्रपोषका अपि गणतन्त्रे नृपतिसदृशस्य कस्यचन नेतुः शरणमन्वेषयन्ति (पृ० ३११)।

एतदर्थं च सहस्रवर्षेभ्यः पूर्वमेधमाना भारतीया दृष्टिरालम्बनीया।.... अन्यथाऽखण्डाया भारतीयसंस्कृतेः राष्ट्रे भावात्मकस्यैकस्य स्थापना दिवास्वप्नायितैव भविष्यति (पृ० ३४५)।

विषय-सूची

तन्त्रागमदर्शनम्

संस्कृति-साहित्यम्

विचारविप्रुषः

परिशिष्टानि

निगमागमीयं संस्कृतिदर्शनम्

तन्त्रागमदर्शनम्

- उपोद्घातः (परिमलसहिताया महार्थमञ्जर्याः)
- सात्वतीयं दर्शनम्
- शक्तिसंगमतन्त्रविषये किञ्चित्
- शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति
- महामाया कुण्डलिनी
- सात्वतीयो योगः
- तान्त्रिकी वरिवस्या तस्या भेदाश्च
- शाक्तेषु तन्त्रेषु शक्तितत्त्वम्
- शक्तिसंगमतन्त्रे शाङ्करदशनामिसम्प्रदायः
- पुराणवर्णिताः पाशुपता योगाचार्याः
- पुराणानां नूनमागममूलकत्वम्
- क्रमदर्शनस्यैव नूनं मुख्यं शाक्तत्वम्
- आगमीयं दर्शनम्
- तन्त्रशास्त्राणां सामयिक उपयोगः
- देवो भूत्वा यजेद् देवान्
- प्रायश्च सिद्धान्तप्रियो लोकः
- आचार्यशङ्करीयः प्रपञ्चसारः
- प्रास्ताविकम् (षड्दर्शनसूत्रसंग्रहस्य)

उपोद्घातः

[परिमलसहिताया महार्थमञ्जर्याः]

वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालये योगतन्त्रविभागस्थापनानुकालं १९६४–६५ ई० वर्षतः प्रवृत्तमनुसन्धानप्रकाशनादिकार्यम्। स्वनामधन्यानामागमाब्धिपारेदृश्वनां प्रातःस्मरणीयानां श्रद्धेयचरणानां श्रीमतां म० म० पण्डितगोपीनाथकविराजमहोदयानामाध्यक्ष्ये प्रवृत्तेन योगतन्त्रविभागेन कार्यक्रमः कोऽपि सुविचारितः प्राचाल्यत तदर्थम्। षट्खण्डात्मक आसीत् स कार्यक्रमः। तदित्थम्—

(१) लुप्तप्रायाणामप्रकाशितानामथ च दुर्लभानां योगतन्त्रग्रन्थानां प्रकाशनम्। अत्र वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य सरस्वतीभवनाख्यः पुस्तकालयः प्रधानमवलम्बनम्। तत्र संगृहीताभिस्तन्त्रागमवाङ्मयस्य मातृकाभिः पाठसंशोधनादिपुरस्सरं सज्जीक्रियन्ते ग्रन्था मुद्रणाय, प्रकाश्यन्ते च ते तन्त्रसंग्रहनाम्ना। अधुनावधि तन्त्रसंग्रहस्य प्रत्येकं षड्ग्रन्थात्मकं भागद्वयं मुद्रितं प्रकाशितं च, यत्र हि प्रथमे भागे सटीका विरूपाक्षपञ्चाशिका, क्षेमराजव्याख्योपेता साम्बपञ्चाशिका, नित्यानन्दविरचितव्याख्योपेतं त्रिपुरामहिम्नस्तोत्रम्, उत्पलवैष्णवविरचिता स्पन्दप्रदीपिका, अनुभवसूत्रम्, वातुलशुद्धाख्यतन्त्रं च प्रकाशितानि। द्वितीये च भागे समावेशितानि निर्वाण-तोडल-कामधेनु-फेत्कारिणी-ज्ञानसंकलिनीतन्त्राणि पूर्वं बंगलिपिमुद्रितानि, कन्नडलिपिमुद्रितो देवीकालोत्तरागमश्च निरञ्जनसिद्धविरचितया वृत्त्या ग्रन्थलिप्यां मुद्रितपूर्वया समलङ्कृतः। ख्यातिमाप च नित्याषोडशिकार्णवनामा ग्रन्थः शिवानन्दविरचितया ऋजुविमर्शिन्या विद्यानन्दविरचितयाऽर्थरत्नावल्या च व्याख्यया समलङ्कृत उत्तरप्रदेशीयेन प्रशासनेन साम्प्रतमेव कालिदासपुरस्कारेण संमानितः। अत्र च परिशिष्टे दीपकनाथविरचितं त्रिपुरसुन्दरीदण्डकम्, शिवानन्दमुनिविरचितानि सुभगोदय-सुभगोदयवासना-सौभाग्यहृदयस्तोत्राणि अमृतानन्दयोगिविरचितौ सौभाग्यसुधोदय-चिद्विलासस्तवौ च समावेशितानि।

(२) ऐतिहासिक्या आध्यात्मिक्या च दृष्ट्या योगतन्त्रविषयाणां समालोचनम्। एतदर्थं प्रवृत्ता योगतन्त्रविमर्शिनीनाम्नी विभागस्यास्यानुसन्धानपत्रिकाऽनियतकालिकी। अस्याः प्रथमोऽङ्कः साम्प्रतं प्रकाशितः, यत्र हि एकादश

निबन्धाः सन्निवेशिताः। १९६५ ई० वर्षे वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालये सम्पन्ने तन्त्रसम्मेलने विभिन्नासु गोष्ठीषु पठितेषु निबन्धेषु कतिपये संस्कृतभाषामया हिन्दीभाषामयाश्च निबन्धा अद्याप्यप्रकाशिता अवशिष्यन्ते। तन्त्रसम्मेलनावसरेऽत्रैव समायोजितायां तन्त्रप्रदर्शिन्यां भूयांसि विशिष्टानि दर्शनार्हाणि वस्तूनि तान्त्रिकसंस्कृतिसम्बद्धानि चित्राणि च प्रदर्शितानि। तेषामपि परिचय ऐतिहासिक्या सांस्कृतिक्या च दृष्टया तन्त्रशास्त्रानुशीलनरुचीनां विदुषां परोपकारकर इति कृत्वा योगतन्त्रविमर्शिन्या विशेषाङ्कः प्रकाशयिषितः सत्यार्थिके सौविध्ये।

(३) समुपलभ्यन्ते भूयांसि वचांसि ग्रन्थग्रन्थकारनामोल्लेखपुरस्सरमुद्धृतानि तन्त्रागममूलग्रन्थेषु टीकाग्रन्थेषु च, येषां मूलग्रन्था न दृश्यन्ते केषुचिदपि पुस्तकालयेषु। एतादृशानां वचनानां संग्रहः क्रियते लुप्तागमसंग्रहनाम्ना। अस्य प्रथमो भागः प्रकाशितः, यत्र प्रायः २२१ संख्यापरिमितानां ग्रन्थानां ग्रन्थकाराणां च वचनानि संकलितानि। सज्जीक्रियते द्वितीयो भाग मुद्रणाय। अचिरादेव प्रकाशयिष्यते सोऽपि, यत्रोभयोरपि भागयोः सन्निवेशिता ग्रन्था ग्रन्थकाराश्च तान्त्रिकवाङ्मयस्यावान्तरविभागवर्गीकरणमुखेन ऐतिहासिक्या दार्शनिक्या च दृष्टया पर्यालोचयिष्यन्ते।

(४) तान्त्रिकं दर्शनं वर्तते साम्प्रतं विरलप्रचारम्। अस्यापि वर्तते स्वकीया पारिभाषिकी शब्दावली। अपरिज्ञाय तदर्थं प्रवेशो दुर्लभस्तत्रेति तान्त्रिकदर्शनदुर्गमकान्तारे निर्भयं प्रवेशाय जिज्ञासूनां तान्त्रिकग्रन्थानां विशेषतष्टीकाग्रन्थानां साहाय्येन संगृह्यते पारिभाषिकशब्दानामर्थः, तन्त्रकोशनाम्ना च प्रकाशयिषितः संग्रहोऽयम्। अस्यापि प्रथमो भागोऽचिरादेव प्रकाशितः स्यादित्याशास्यते।

(५) तान्त्रिके वाङ्मये समुपलभ्यते सकामानां प्रयोगाणां निरूपको भागस्तत्र तत्र प्रासङ्गिकेन रूपेण प्रामुख्येन वा प्रदर्शितः। यद्यपि नास्ति तेषामाध्यात्मिक उपयोगस्तद्दृष्टया हेयाश्च ते समुद्घोष्यन्ते, तथापि वर्तते लोककल्याणाय तेषामुपयोग इति प्रयोगप्रतिपादकानामीदृशानामंशानां संग्रहोऽपि कर्तव्यताकोटिमाटीकतेऽस्य विभागस्य।

(६) विभिन्नासु तान्त्रिकीषूपासनापद्धतिषु विभिन्नानां देवतानां च ध्यानोपासनारहस्यसूचका अंशा यथायथं समुपलभ्यन्ते। अत्र ध्यानमुखेन तासां तासां देवतानां सकलं स्वरूपमुन्मील्यते। आधुनिकमूर्तिविद्यायां नूतनदृगुन्मेषाय वर्तते कोऽपि तस्यांशस्योपयोग इति तदर्थमपि प्रयत्यते विभागेनानेन।

समेषामेषां कार्यकलापानां विशेषतो दुर्लभानामप्रकाशितानामथ च लिप्यन्तरेषु मुद्रितानाम्, मुद्रितपूर्वाणामपि साम्प्रतं सुदुर्लभानां च तन्त्रशास्त्र-ग्रन्थानां प्रकाशनाय प्रक्रान्ता नाम योगतन्त्रग्रन्थमाला। अस्याः पञ्चमपुष्परूपेण महार्थमञ्जर्याः परिमलोपेताया महेश्वरानन्दकृतेः १९१९ ई० वर्षे त्रिवेन्द्रं-संस्कृतग्रन्थमालायां प्रकाशितपूर्वाया अपि साम्प्रतं सुदुर्लभाया अभिनवं परिष्कृतमिदं संस्करणं तन्त्रशास्त्ररसिकानां विदुषां समक्षमुपस्थापितवतामस्माकं मोमुद्यते चेतः।

किं नाम योगतन्त्रम् ?

योगतन्त्रविभागः, योगतन्त्रग्रन्थमाला, योगतन्त्रविमर्शिनीत्यादिषु प्रयुक्तो योगतन्त्रशब्दः काञ्चन व्याख्यामपेक्षते। साम्प्रतं शिक्षणसंस्थासु पाठ्यक्रमे सन्निवेशितं योगशास्त्रं केवलं पातञ्जलयोगस्यैव बोधकम्। एतदतिरिक्तं विभिन्ना यौगिकाः सम्प्रदायाः प्रवृत्ता आसन् भारते वर्षे। साम्प्रतमपि च केचनानुवृत्ताः, अपरे च हन्त ! नामशेषतां गताः। मोहेंजोदड़ो-हडप्पास्थानयोः समुपलब्धेषु सिन्धुसभ्यतावशेषेषु भारते प्राचीनतमे काले वर्तमानाया विशिष्टाया यौगिकपद्धतेश्चिह्नानि समवलोक्यन्ते। श्वेतादिलकुलीशान्तानामष्टाविंशति-संख्याकानां योगाचार्याणां प्रत्येकं चत्वारः शिष्या इति कृत्वा चत्वारिंशदुत्तरशतं पाशुपता योगिनो पुराणेषु गीयन्ते। त्रिपिटकान्तर्गते पालिवाङ्मये विशेषतः परवर्तिषु विशुद्धिमार्ग-अभिधमर्थिसंग्रहप्रभृतिपालिग्रन्थेषु यौगिकानि विशिष्टानि रहस्यानि वर्ण्यन्ते। दृश्यते तान्त्रिकः षडङ्गो योगः शैवेषु वैष्णवेषु बौद्धेषु च तन्त्रेषु समानतन्त्रत्वेन व्याख्यातः। वर्तते मत्स्येन्द्रनाथावतारितः कौलिको योगविधिः पिण्ड-पद-रूप-रूपातीतपदैर्जैनयोगाचार्यैरपि समं व्याख्यातः, कुण्ड-लिनीयोगश्च बौद्धवज्रयानविद्वद्भिरपि शून्यवादविज्ञानवादमुखेनोपन्यस्तः। प्रचलिता च विद्यते नेतिधौतिप्रभृतिषट्कर्मप्रतिपादनपरा गोरक्षप्रभृतीनां नाथयोगिनां विशिष्टा योगपद्धतिः। एतासामेव यौगिकदृष्टीनां शाखाप्रशाखा भारते वर्षे विभिन्नेषु स्थानेषु सहज-अवधूत-बाउल-पञ्चसखि-सन्त-सिक्ख-दरवेश-प्रभृतिनामभिः प्रचलिता विद्यन्ते। सर्वास्ता दृष्टीः क्रोडीकृत्य प्रवर्ततेऽत्रत्यो योगशब्दः।

आगमशास्त्रमिति तन्त्रशास्त्रमिति वा नाम्ना प्रथितं वर्तते भारतीयं विशालं वाङ्मयम्, साम्प्रतमपि प्रायो विद्वद्गोष्ठीषु नातिसत्कृतम्। रहस्या-म्नायपदेन प्रख्यापितं तत्। शैवानां वैष्णवानां च तदीयं वाङ्मयमागमपदेन, शाक्तानां बौद्धानां जैनानां च तन्त्रपदेन प्रायोऽभिधीयते। तिष्ठत्स्वपि साधक-

वर्येषु तत्र तत्र साधनानिरतेषु लुप्तप्रायमेवासीदेतच्छास्त्रं पठनपाठनविधिषु सर्वथा बहिष्कृतम्। विस्मृतप्राया एवासन्नत्रत्या विशिष्टा ग्रन्था अपि। कश्मीर-महाराजश्रीप्रतापसिंहदेवप्रतिष्ठापितया काश्मीरग्रन्थमालया, दक्षिणभारतीय-संस्थाभिर्नैकाभिः, पाण्डिचेरीस्थफ्रेंचशोधसंस्थानेन, तिरुपतिस्थवेङ्कटेश्वरशोध-संस्थानेन, बड़ोदानगरस्थगायकवाड़शोधसंस्थानेन, कलिकातास्थितयाऽऽगमा-नुसन्धानसमित्या च काश्मीरशैवागमस्य, सिद्धान्तवीरशैवागमयोः, पाञ्चरात्र-वैखानसवैष्णवागमयोः, बौद्धानां शाक्तानां च तन्त्राणां विशिष्टा ग्रन्थाः प्राका-श्यन्त। कलिकाता-उच्चन्यायालयस्य विचारपतिना मनीषिणा सरजानवुडरफ-महानुभावेन शिवचन्द्रविद्यार्णवस्य शिष्येण 'आर्थर एवेलन' इति कल्पितेन नाम्ना विशिष्टान् तन्त्रग्रन्थान् प्रकाश्य आङ्गलभाषया व्याख्याय च पुनः प्रतिष्ठा-मापादितमेतच्छास्त्रम्। डॉ० विनयतोषभट्टाचार्य-डॉ० प्रबोधचन्द्रबागची-डॉ० कान्तिचन्द्रपाण्डेय-डॉ० चिन्ताहरणचक्रवर्ति-डॉ० गोविन्दगोपालमुखोपाध्याय-डॉ० उपेन्द्रनाथदासप्रभृतयो भारतीयाः, प्राध्यापकसिलवांलेवो-डॉ० ओटोश्राडर-प्रा० बर्नेट-टुची-न्योली-गुन्थर-प्रभृतयो वैदेशिकाश्च विद्वांसः प्रायतन् प्रवृत्ताश्च सन्ति शास्त्रस्यास्य गौरववर्धनाय। तदेतच्छाखाप्रशाखासहितं विशालं वाङ्मयं तन्त्रपदाभिधेयम्।

एवं च योगतन्त्रपदेनानेन योगशास्त्रस्य तन्त्रशास्त्रस्य च सर्वाः शाखा-प्रशाखास्तदीयं विशालं वाङ्मयं प्रकाशितमप्रकाशितं विस्मृतं लुप्तं च बोध्यते। उपर्युल्लिखितानां संस्थानां विदुषां च प्रयत्नेन तदेतस्य शास्त्रस्य कियानेवांशः प्राकाश्यत। नेपाल–कश्मीर–दक्षिणभारतादिषु स्थितं विशालं तान्त्रिकं वाङ्मय-मधुनापि प्रकाशनानुशीलनसापेक्षमिति कृत्वा तदेतस्य पुण्यकर्मणः साधनायो-त्तरप्रदेशस्य भूतपूर्वराज्यपालमहोदयेन महामहिमश्रीविश्वनाथदासमहानुभावेन संस्कृतविश्वविद्यालयस्य कुलपतिना, उपकुलपतिना च भूतपूर्वेण श्रीमता सुरतिनारायणमणित्रिपाठिमहाभागेन विश्वविद्यालयानुदानायोगस्यार्थिकेन साहाय्येन तन्त्रशास्त्रोद्धारैकजीवनव्रतानां म० म० पण्डितगोपीनाथकविराज-महोदयानामाध्यक्ष्ये प्रवर्तित एष योगतन्त्रविभागोऽधुनावधि किमकरोदिति पूर्वमेवावर्णयाम।

परिमलोपेता महार्थमञ्जरी

स्वोपज्ञपरिमलाख्यव्याख्योपेताया महार्थमञ्जर्या महेश्वरानन्दकृतेः साम्प्रतं दृश्यते संस्करणद्वयम्। एकं विस्तृतं त्रिवेन्द्रंसंस्कृतग्रन्थमालायां प्रकाशितम्, अपरं च संक्षिप्तं काश्मीरग्रन्थमालायां कृतपदम्। बाहुल्येन

समुपलभ्यन्ते संक्षिप्तस्यैव संस्करणस्य मातृकाः। भाण्डारकरशोधसंस्थाने स्थितास्तिस्रोऽपि मातृकाः संक्षिप्तस्यैव संस्करणस्य विद्यन्ते। उपलब्धा अप्येता मातृका नातीवोपयोगिन्य आसन् संस्करणेऽस्मिन्। सन्ति तिस्रो मातृका विस्तृतस्य संस्करणस्य अड्यारपुस्तकालये, एका च वर्तते होशियारपुरस्थिते विश्वेश्वरानन्दवैदिकशोधसंस्थानपुस्तकालये। मलयालमलिपिलिखिताः सर्वा एता मातृका नहि मूलरूपेण नैव च प्रतिलिपिरूपेणोपलब्धा अद्यावधि योगतन्त्रविभागेन। दक्षिणभारतयात्राप्रसङ्गे, राजस्थानपंजाबयात्राप्रसङ्गे च गत्वाऽपि तत्र तत्र लिप्यनभिज्ञानवशादसुलभतया च वाचकस्यान्यस्य नैतासामुपयोगः कर्तुमपार्यत। सुदुर्लभं चासीद् विस्तृतं संस्करणमेतदिति श्रद्धेयचरणानां योगतन्त्रविभागस्य पूर्वाध्यक्षाणां म० म० श्रीगोपीनाथकविराजमहोदयानामाज्ञया प्रक्रान्तं मुद्रणकार्यमेतस्य ग्रन्थस्य। कविराजमहोदयैरधीतस्य ग्रन्थस्य, कैश्चिद्विपश्चिद्वरैः कृतसंशोधनस्य वाराणसीस्थगोयनकापुस्तकालयग्रन्थस्य च साहाय्येन संशोधिताऽस्य ग्रन्थस्य पाण्डुलिपिरुद्धृतानां ग्रन्थानां स्थलनिर्देशप्रसङ्गेन पुनरपि कृतसंशोधना साम्प्रतमभिनवेन रूपेण परिशिष्टभूमिकादिभिः संयोज्य समुपस्थाप्यते। समुपलब्धेषु क्रमदर्शनग्रन्थेषु सर्वश्रेष्ठः सर्वाङ्गपूर्णश्चायं ग्रन्थः सर्वानित्र क्रमदर्शनविषयान् क्रोडीकरोति। विषयोपस्थापनप्रसङ्गेन प्रमाणरूपेणोपन्यस्ताः शताधिका विशिष्टा ग्रन्था अत्र। एतादृशा अन्ये चोत्पलवैष्णवकृतस्पन्दप्रदीपिका-जयरथकृततन्त्रालोकविवेकप्रभृतयोऽल्पीयांस एव ग्रन्थाः सन्ति तान्त्रिके वाङ्मये, यत्र समुद्धृता भूयांसो ग्रन्थाः साम्प्रतं नामशेषतां गताः। एतद्विधानां ग्रन्थानां साहाय्येन लुप्तानामागमग्रन्थानां तत्कर्तॄणां च वचनानि संगृह्य गुरुचरणैः प्रकाशितो लुप्तागमसंग्रहस्य प्रथमो भागः। तत्पथानुवर्तिनस्तदाज्ञानुवर्तिनो वयमपि तस्य द्वितीयं भागं प्रचिकाशयिषामः। द्वितीयभागोपोद्घाते वयमुद्धृतानां ग्रन्थग्रन्थकाराणां तत्प्रतिपादितविषयाणां चैतिहासिकं सांस्कृतिकं दार्शनिकं च महत्त्वं चिख्यापयिषाम इति साम्प्रतं विरमामस्तद्व्यापारात्। ग्रन्थकारस्य तु परिचय उन्मीलितपूर्वोऽन्यत्र पुनरत्रोन्मील्यते भङ्ग्यन्तरेण।

महेश्वरानन्दस्तत्कृतयश्च

महेश्वरानन्दमधिकृत्य वयं नित्याषोडशिकार्णवोपोद्घाते ऋजुविमर्शिनीकारशिवानन्दपरिचयप्रसङ्गेन (पृ० १७-१९) किमप्यवोचाम। तेनेदं सिद्ध्यति यदृजुविमर्शिनीकारः शिवानन्दो महेश्वरानन्दपरमगुरुः[1], चोलदेशशिरोमणिर्महा-

---

१. महेश्वरानन्देन परमगुरुकृतित्वेनोद्धृतानां ग्रन्थानां परिचयो नित्याषोडशिकार्णवोपोद्घाते (पृ० १७-१९) प्रदत्तः।

प्रकाशश्चास्य गुरुः[१]। महाराष्ट्रभुवा प्राकृतभाषया महार्थमञ्जरीं जग्रन्थ सः। चोलजनपदाभिजनो महेश्वरानन्दः पूर्वं गोरक्षनाम्ना प्रसिद्धिमाप, दीक्षोत्तरं च गुरुप्रदत्तयाऽभिनवयाऽनया संज्ञया प्रचकासेति। सर्वमेतन्महार्थमञ्जरीपरिमलप्रामाण्येनावदामेति तत्प्रपञ्चोऽत्रानावश्यकः। महार्थमञ्जरीकारो गोरक्षापरनामधेयो महेश्वरानन्द एष नवनाथेष्वन्यतमाद् गोरक्षनाथादभिन्न इति, एष च मत्स्येन्द्रनाथस्य सकलकुलशास्त्रावतारकस्य शिष्य इति विद्वद्गोष्ठीषु बहुचर्चितो विषयो नास्मभ्यं रोचत इति च वयं नित्याषोडशिकार्णवटिप्पण्योः (पृ० १७, ११६-११७) सप्रमाणं प्रत्यपादयाम। किञ्च, योगतन्त्रविमर्शिन्याः प्रथमेऽङ्के स्वकीये निबन्धे (पृ० १५९-१६०) ऋजुविमर्शिनीकारस्य शिवानन्दस्य समयः खीष्टत्रयोदशतमशताब्द्या अन्तिमो भागः, योगिनीहृदयदीपिकाकारस्य योगिनोऽमृतानन्दस्य समयः खीष्टचतुर्दशतमशताब्द्या अन्तिमो भागः, उभयोरनयोर्मध्ये च महार्थमञ्जरीकारस्य महेश्वरानन्दस्य स्थितिरिति वयं प्रमाणपुरस्सरमसाधयाम। अधिकं तु किञ्चिदत्रोच्यते।

यैर्विद्वद्भिर्गोरक्षनाथो मत्स्येन्द्रनाथशिष्यत्वेन साध्यते, तैरेवाभिनवगुप्तप्रामाण्येन मत्स्येन्द्रनाथस्य समयो नवमी दशमी वा शताब्दी खीष्टस्य निर्धार्यते। अभिनवगुप्तस्य खलु शिष्यः क्षेमराजोऽनेकान् तन्त्रग्रन्थान्, शिवसूत्राणि, साम्बपञ्चाशच्च व्याख्यातवान्, जग्रन्थ च सव्याख्यं प्रत्यभिज्ञासूत्रं प्रत्यभिज्ञाहृदयाख्यम्। सोऽयं क्षेमराजः सादरं स्मृतो महेश्वरानन्दस्य परमगुरुणा शिवानन्देन ऋजुविमर्शिन्याम् (पृ० २२९)। अत्रैव शिवानन्दः क्षेमराजकृतस्य स्पन्दनिर्णयस्य शिवसूत्रविमर्शिन्याश्च भाषामानुपूर्व्या छायया वाऽनुसरति। एवं चाभिनवगुप्तेन मच्छन्दविभुरित्येवं सादरं स्मृतस्य मत्स्येन्द्रनाथस्य कथं नामाभिनवगुप्तशिष्यस्य क्षेमराजस्य ग्रन्थानुद्धर्तुः शिवानन्दस्य प्रशिष्यो महेश्वरानन्दो गोरक्षापरनामधेयः शिष्यः स्यादिति विभावयन्तु मनीषिणः। न चायं कुत्रापि मत्स्येन्द्रनाथं स्वगुरुत्वेन स्मरति। महार्थमञ्जर्यां परिमले वा प्रतिपादितैः सिद्धान्तैरपि गोरक्षनाथस्य हठयोगिनो नाथसम्प्रदायप्रवर्तकस्य सिद्धान्तानां नैव किमपि साम्यमवलोक्यत इत्युभयोः पार्थक्यमेवाङ्गीकर्तव्यम्। किञ्च, शिवानन्द ऋजुविमर्शिन्यां (पृ० २२५) सोमशम्भुकृतकर्मकाण्डक्रमावलीवचनमुद्धरति। सोमशम्भुना चायं ग्रन्थः ११३० तमे वैक्रमे वत्सरे (१०७३ ई०) पूरितः। अपि

---

१. गुरोर्महाप्रकाशस्येमे ग्रन्थाः परिमले स्मृताः—१. मनोनुशासनस्तोत्रम्, २. मातङ्गीस्तोत्रम्, ३. संवित्स्तोत्रम्, ४. आनन्दताण्डवविलासस्तोत्रं चेति। एतेषु संवित्स्तोत्रमेकत्र (पृ० ६८) गुरुकृतित्वेन, अपरत्र (पृ० १२४) च परमगुरुकृतित्वेन स्मृतम्।

च, ऋजुविमर्शिन्यामेव शिवानन्दो द्वित्रेषु स्थलेषु नागभट्टं तद्ग्रन्थस्य त्रिपुरासारसमुच्चयस्य वचनं च समुद्धरति। नागभट्टश्चायं जैनसम्प्रदाये प्रसिद्धादनेकनाटककर्तुर्हस्तिमल्लादभिन्नः प्रायः ख्रीष्टत्रयोदशतमशताब्द्या अन्तिमे भागे लब्धस्थितिक इति समसाधि योगतन्त्रविमर्शिन्यां तत्रैव (पृ० १५७)। एवं च महेश्वरानन्दो न कथमपि भवितुमर्हति नाथसम्प्रदायप्रवर्तको गोरक्षनाथः। गोरक्षनाथोऽपि नैव भवति साक्षाच्छिष्यो मत्स्येन्द्रनाथस्य, न च प्रातिनिध्यमाचरति मत्स्येन्द्रसिद्धान्तानामित्यन्यत्र विस्तरेण प्रतिपादयिष्यते। तस्मादुपर्युद्धृतैः प्रमाणैर्गोरक्षनाथाद् भिन्न एवायं महेश्वरानन्दः, तस्य च स्थितिकालः ख्रीष्टचतुर्दशशताब्द्यां कस्मिंश्चित् समयेऽङ्गीकर्तव्यः।

महेश्वरानन्दः सप्ततिसंख्याकप्राकृतगाथामयीं महार्थमञ्जरीं जग्रन्थ। शिवानन्दमुनिविरचिते सुभगोदये सुभगोदयवासनायां सुभगोदयप्रभायां च, शिवानन्दपौत्रचिदानन्दपुत्रश्रीकण्ठानन्दविरचितायां निष्कलङ्कमचर्चायां चापि सप्ततिसंख्याका एव श्लोकाः सन्ति। रहस्यात्मकस्यास्य शास्त्रस्यैतदपि रहस्यमेव। महार्थमञ्जरीकारः स्वयमेवात्र स्वोपज्ञां प्रतिभासारसर्वस्वां विस्तृतां परिमलाख्यां व्याख्यां ख्यापयामास। अत्रैव तेन कुण्डलाभरणम्, कोमलवल्लीस्तवः, नखप्रलापः, परास्तोत्रम्, पादुकोदयः, महार्थोदयः, संविदुल्लास इत्येते ग्रन्थाः स्वकृतित्वेनोल्लिखिताः। एषु कुण्डलाभरणनखप्रलापौ केवलं नामोल्लेखमात्रेण स्मर्येते, अन्येषां ग्रन्थानां वचनान्यप्यत्र दृश्यन्ते। अत्र ५७ तमे पृष्ठे "अत्र च मदीयमेव सूक्तम्" इत्युक्त्वोद्धृतः "अश्वेषु गच्छत्सु" इत्यादिकः श्लोकस्तु सुभाषितरूपेणैव प्रकीर्णकतया लिखितः स्यात्, न तु सूक्तनामा कोऽपि ग्रन्थः। सूक्तशब्दोऽत्र शोभनोक्तिपर्यायः प्रतिभाति।

परिमलोद्धृता ग्रन्था ग्रन्थकाराश्च

लुप्तागमसंग्रहस्य द्वितीयभागोपोद्घातेऽत्रोद्धृता ग्रन्थग्रन्थकाराः परीक्षिष्यन्ते विस्तरेणेत्यनुपदमेवोक्तम्। यद्वर्तते प्रस्तुतसंस्करणोपयोगि तत्तु संक्षेपेणात्र समुपस्थाप्यते उद्धरणस्थलगवेषणाप्रसङ्गेनोन्मीलितम्। अत्रोद्धृता भूयांसो ग्रन्था नैवोपलभ्यन्ते मुद्रिता हस्तलिखिता वा। एतादृशां ग्रन्थानां वचनानि केवलं ग्रन्थग्रन्थकारनिर्देशमुखेनैव स्थापितान्युद्धृतवचनश्लोकार्धानुक्रमण्याम्। यानि वचनानि विनैव ग्रन्थग्रन्थकारनामनिर्देशमुद्धृतानि, तान्यपि लुप्तागमसंग्रहप्रथमद्वितीयभागसाहाय्येन तथा कृतानि। कानिचन वचनानि च साम्प्रतमप्यपेक्षन्ते ग्रन्थग्रन्थकारनामनिर्देशम्। अर्चनात्रिशिकामातृकाद्वयं लक्ष्मणपुरस्थसंस्कृतपरिषत्पुस्तकालये समुपलभ्यते। "बालिकारचित" (पृ० १०८) इत्यादिक-

मत्रोद्धृतं पद्यं द्वितीयश्लोकत्वेन तत्र दृश्यते। एवमेव "सच्चित्सुखमयः" (पृ० ३४) इत्यादिकः श्लोकार्धः पादसूत्रमातृकायामड्यारपुस्तकालयस्थायां ६२१०३ संख्याङ्कितायां दृश्यते। आनन्दवर्धनाचार्यस्य ध्वन्यालोकः काव्यालोकपदेन, शिवानन्दस्य सुभगोदयवासना च क्रमवासनापदेनात्रोक्ता। नरेश्वरविवेकः सद्योज्योतिषा विरचिताद् नरेश्वरपरीक्षानाम्नो ग्रन्थाद्भिन्न एव।[1]तन्त्रालोकनाम्नोद्धृतमुद्धरणद्वयं [2]स्वच्छन्दनाम्नोद्धृतं पङ्क्तित्रयं च नोपलब्धमस्माभिस्तन्त्रालोके स्वच्छन्दतन्त्रे च। प्रबोधपञ्चदशिका काश्मीरग्रन्थमालायां प्रकाशिताया अभिनवगुप्तकृतेर्बोधपञ्चदशिकाया भिन्ना। मदालसोक्तिनाम्नोद्धृतः श्लोको मार्कण्डेयपुराणे योगिन्या मदालसाया उपाख्याने दृश्यते। महानयप्रकाशस्य संस्करणद्वयं प्रकाशितम्। एकं काश्मीरग्रन्थमालायां प्रकाशितं प्राकृतगाथामयम्, अपरं च त्रिवेन्द्रंसंस्कृग्रन्थमालायां प्रकाशितं संस्कृतभाषया निबद्धम्। परिमलोद्धृतानि महानयप्रकाशस्यानेकानि वचनानि त्रिवेन्द्रंसंस्करणे समुपलभ्यन्ते, नोपलब्धानि च कानिचन। ग्रन्थोऽयमपूर्ण एव प्रकाशितः। संभाव्यतेऽनुपलब्धाः श्लोकास्तदंशीया एव स्युः। विज्ञानभैरव इति ग्रन्थनाम, विज्ञानभट्टारकश्च ग्रन्थकर्तुः संज्ञा। शम्भ्वैक्यदीपिका शाम्भवदीपिका, ज्ञानेन्दुकौमुदी विज्ञानेन्दुकौमुदी इत्येते अभिन्ने नामनी प्रतीयेते। शिवानन्दविरचिता शम्भुनिर्णयदीपिकैव शम्भ्वैक्यदीपिका शाम्भवदीपिका वा स्यादित्युद्धरणानां स्वरूपावलोकनमुखेन प्रतीयते। मतेशापरनामधेयस्य षड्विंशावच्छेदात्मकस्य शम्भुनिर्णयस्य व्याख्यायाः शम्भुनिर्णयदीपिकायाः शिवानन्दमुनिविरचिताया मातृका मद्रपुरीराजकीयपुस्तकालये खण्डिताऽपूर्णा चोपलभ्यते। स्तोत्रभट्टारकस्य द्विविधान्युद्धरणान्यत्र दृश्यन्ते—अनुष्टुप्छन्दोमयानि, उपजातिवृत्तग्रथितानि च। सिद्धनाथविरचितस्य क्रमस्तोत्रस्य द्वादशकालीस्वरूपावबोधकाः श्लोका उपजातिवृत्तनिबद्धा जयरथेन तन्त्रालोकविवेके समुद्धृताः। अत्राभिनवगुप्तः क्रमकेलिनाम्नीं व्याख्यां जग्रन्थेति तत एव ज्ञायते। परिमले चानुष्टुप्छन्दोमयानां स्तोत्रभट्टारकश्लोकानामपि क्रमकेलिसाहचर्यं स्तोत्रभट्टारक इति क्रमस्तोत्रस्यैव संमानसूचकं नामेति ज्ञापयति। "एताश्च सृष्टिकाल्यादिव्यपदेशेन स्तोत्रभट्टारकादावुद्घाट्यन्ते" (पृ० १०१) परिमलोक्त्याऽनयापि तदेव सूच्यते। किञ्च, परिमलस्थः "कौलार्णवानन्दमयोर्मिरूपाम्"

१. "एकैकत्र च तत्त्वेऽपि षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपता" (पृ० ६५), "गुरुहृदयनिविष्टः शङ्करोऽनुग्रहीता" (पृ० १६९) इति च। अत्रत्यं प्रथममुद्धरणं तन्त्रालोकविवेके (४।४६) समुद्धृतं वर्तते।

२. "मुक्तानां शिवताव्यक्ति" इत्यादि "ते सर्वे बन्धना अपि" (पृ० ७०) इत्यन्तम्।

(पृ० १२६) इति स्तोत्रभट्टारकश्लोकांशस्तन्त्रालोकविवेके क्रमस्तोत्रश्लोकत्वेनोद्धृत इति क्रमस्तोत्रमेवैतत् स्तोत्रभट्टारक इति निश्चप्रचम्। अत एवास्माभिरत्र "तद्विवर्त" (पृ० १५०) इत्यादिकः श्लोकार्धः स्तोत्रभट्टारकश्लोकत्वेनाङ्कितः। अभिनवगुप्तविरचितः परमार्थसारोऽत्र परमार्थसंग्रह इति, परमार्थसारसंग्रह इति च नाम्ना स्मृतः, तत्तन्नाम्नोद्धृतानां सर्वेषां श्लोकानामेकत्रोपलम्भात्। क्रमवासनानाम्नोद्धृताः सर्वे श्लोकाः सुभगोदयवासनायां नित्याषोडशिकार्णवपरिशिष्टे प्रकाशितायामुपलभ्यन्त इति सुभगोदयवासनैवात्र क्रमवासनापदेन स्मृतेति सूच्यते। शिवानन्देन यथा सुभगोदयस्तथैव महेश्वरानन्देन महार्थोदयो रचित इति "तत्तद्देवतामन्त्रोद्धारो मदीये महार्थोदये पर्यालोचनीयः" (पृ० १०४) इति तदुक्त्यैव प्रतीयते। मुद्रितायां तन्त्रवटधानिकायाम्—"षट्त्रिंशत्तत्त्वपर्यायः" (पृ० ६७) इति परिमलोद्धृतपाठस्य स्थाने—"विद्यातत्त्वादाशिवान्तम्" (३।१६) इति पाठो वर्तते। ईश्वरसिद्धौ च मुद्रितायां द्वितीयश्लोकस्योत्तरार्धः खण्डितो दृश्यते, परिमलसाहाय्येन तु "घटवद् यदनेवं तन्नैवं खपरमाणुवत्" (पृ० १७) तदेवं पूर्यते। "अख्यातिर्यदि" (पृ० १५) इत्यादिकं पद्यं क्षेमराजेन प्रत्यभिज्ञाहृदयचतुर्थसूत्रव्याख्यायां "तदुक्तं मयैव" इत्युक्त्वोद्धृतमिति तस्यैवैतत्। "नमः प्रमातृवपुषे" (पृ० ६१) इति श्लोकार्धो योगिनीहृदयदीपिकायां (पृ० २९३) "सर्वसंविन्नदीभेदभिन्नविश्रान्तिभूमये" इति पूर्वार्धपूर्तिपुरस्सरं परापञ्चाशिकावचनत्वेनोद्धृतो नोपलभ्यते मुद्रितायां तस्याम्। [1]महानयप्रकाशे, भावोपहारे (पृ० ४४) च श्लोकोऽयं प्रत्यभिज्ञाकारकृतित्वेनोल्लिखितः। "यत्रेन्धनम्" (पृ० १०९) इत्यादिकः श्लोकः परमार्थसारविवृतौ (पृ १४६) वीरवामनककृतित्वेनोट्टङ्कित इति तस्यैवात्र श्लोकानुक्रमण्यां स्थाप्यते।

महार्थमञ्जरीप्रतिपाद्यस्य क्रमदर्शनस्येतिहासः

महेश्वरानन्दो महार्थमञ्जर्यां परिमले च महार्थ-औत्तराम्नाय-अनुत्तराम्नाय-क्रमसरणिप्रभृतिपदाभिधेयं क्रमदर्शनं व्याख्यातवान्। क्रमदर्शनमेतत् प्राधान्येन त्रिकदर्शनमनुसरतीति स्वयमेवाह सः—"श्रीमहार्थत्रिकदर्शनयोर्नात्यन्तं भेदप्रथा" (पृ० ९२) इति। कौलदर्शनतोऽप्यस्य नैव वैलक्षण्यमित्यप्युक्तं तेनैव—"अस्यामर्थस्थितिः सैव या सर्वत्र कुलागमे। किन्तु शब्दस्य शय्यान्या नात्यन्तं सा विभिद्यते ॥" (पृ० १९२) इति। मतदर्शनं यद्यपि नात्र चर्चितम्, तथापि महेश्वरानन्दस्य परमगुरुः शिवानन्दो मतेशापरनामधेयं शम्भुनिर्णयं व्याख्याति। मतशास्त्र-मतोत्तरप्रभृतयो ग्रन्थाश्चोद्धृता दृश्यन्ते तत्र तत्र।

१. काश्मीरसंस्करणम्, पृ. १२.

"वेदाच्छैवं ततो दक्षं ततो वामं ततः कुलम्। ततो मतं ततश्चापि त्रिकं सर्वोत्तमं परम् ॥" (पृ० ९२) इति परात्रीशिकाव्याख्यायामभिनवगुप्तोद्धृते वचनेऽस्मिन् कुलत्रिकयोरन्तरालवर्ति दृश्यते मतदर्शनम्। एवं च क्रम-मत-कुल-त्रिकदर्शनानामन्योन्यं नात्यन्तं भेदप्रथा, उपासनाविधिषु परं भेद इति वयं भणामः। अत्र मतोपासनाविधिस्वरूपं साम्प्रतं ग्रन्थानामनुपलम्भान्नैव स्पष्टीकर्तुं शक्यते, संभाव्यते कुब्जिकामत-मतशास्त्र-मतोत्तर-मतेशादिग्रन्थानां प्रकाशने सति तदधिगतं स्यात्। दक्षिणस्रोतःप्रवृत्तेषु चतुष्षष्टिसंख्याकेषु भैरवागमेषु देवो भैरवो वक्तृरूपेण, देवी च हिमगिरितनया श्रोतृरूपेण समुपस्थाप्येते। एवमेव दृश्यते कुलागमेष्वपि। औत्तराम्नायपदाभिधेयेषु क्रमशास्त्रेषु तु भगवती काली वक्तृरूपेण, शिवभट्टारकश्च श्रोतृरूपेणोपस्थापितौ। क्रमसद्भावादिशास्त्रोद्धरणेषु तदवलोकयितुं शक्यते। भैरवागमा दक्षनय इति, औत्तरागमा देव्यागमा ऊर्ध्वाम्नायपदाभिधेयाः कुलागमाश्च वामनय इत्याख्यया परिचीयन्ते। साम्प्रतिकौ दक्षिणाचार-वामाचारशब्दौ यमर्थं स्फोरयतः, नहि तत्रार्थे तदात्वे प्रयुक्तावेतौ शब्दौ। केवलमेतयोर्दक्षिणवाममुखोद्गतत्वप्रयुक्तो भेदस्तदाऽवर्तत। पूजोपादानेषु तु नात्यन्तं भेदप्रथेति तत्तच्छास्त्रावलोकनतः प्रतीयते। त्रिकदर्शनं च [1]सिद्धान्तनाम्ना कदाचित्प्रसिद्धस्य शैवागमस्य क्रमकुलदर्शनयोश्च सिद्धान्तान् शिवाद्वैतप्रतिपादनपरत्वेनैकीकृत्य प्रवर्तते। अत्र हि [2]शैवागमसिद्धान्तानाणवोपायत्वेन, क्रमदर्शनसिद्धान्तान् शाक्तोपायत्वेन, कुलागमसिद्धान्तांश्च शाम्भवोपायत्वेनाङ्गीकृत्यानुपायाख्यस्तुरीय उपायोऽपि वर्ण्यते। आगमदर्शनमत्रैव चूडान्तमुत्कर्षमवाप। त्रिकदर्शनानुप्राणिता एव प्रायो दृश्यन्ते साम्प्रतमुपलभ्यमाना शिवानन्दमहेश्वरानन्दप्रभृतीनां परम्पराः।

दृश्यते च भेदोऽपि कियानेतेषु शास्त्रेषु। स च बाहुल्येन वर्तते उपासापद्धतिष्वेव। कुल-मत-क्रम-त्रिकदर्शनानि सर्वाण्यद्वैतवादीन्येव। शास्त्राणामेतेषां वर्तते प्रभूतं वाङ्मयम्। तन्नास्माभिरत्र समालोचनीयम्। केवलं प्रासङ्गिक-

---

१. "सिद्धान्तशब्दश्च पङ्कजादिशब्दवद् योगरूढ्या शिवप्रणीतेषु कामिकादिषु दशाष्टादशसु तन्त्रेषु प्रसिद्धः" (पृ० ५) इति रत्नत्रयोल्लेखिन्यामघोरशिवाचार्यः।

२. "अभेदोपायमत्रोक्तं शाम्भवं शाक्तमुच्यते। भेदाभेदात्मकोपायं भेदोपायं तदाणवम् ॥" (१।२३०) इति तन्त्रालोकवचनमेतदनुगुणमेव। "विश्वोत्तीर्णमात्मतत्त्वमिति तान्त्रिकाः। विश्वमयमिति कुलाद्याम्नायनिविष्टाः। विश्वोत्तीर्णं विश्वमयं चेति त्रिकादिदर्शनविदः" (सू० ८ व्याख्यानम्) इति प्रत्यभिज्ञाहृदयवचनमपि समर्थयति तमेनमर्थम्।

मेवात्रोपात्तव्यम् । त्रिपुरा विद्या चतुराम्नायसाधारण्यपि दक्षिणपक्षपातिनीति विद्यानन्द (अर्थ०, पृ० ४१) ऊचे । इममर्थममृतानन्दोऽपि (यो० दी०, पृ० ११०) संमनुते । दक्षिणपक्षपातिनीति पदेन भैरवागमानुवर्तित्वमस्याः ख्याप्यते । त्रिपुरोपासनाप्रतिपादके नित्याषोडशिकार्णवे त्रिसंख्याकं पदार्थजातं प्रतिपाद्यते । संगृह्यते च तल्लघुभट्टारकेणानेनैकेन श्लोकेन—

देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिस्वरा-
स्त्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करमथ त्रिब्रह्म वर्णास्त्रयः ।
य त्किञ्चिज्जगति त्रिधा नियमितं वस्तु त्रिवर्गात्मकं
तत्सर्वं त्रिपुरेति नाम भगवत्यन्वेति ते तत्त्वतः ॥ (श्लो० ९)

व्याख्यातं चैतत्पदार्थजातं नित्याषोडशिकार्णवचतुर्थपटलीयाद्यविंशतिश्लोकव्याख्यानेष्वन्यत्र[1] च । कौलदर्शने पिण्ड-पद-रूप-रूपातीताख्यं पदार्थचतुष्टयं व्याख्यायते । एतदानुगुण्येन शिवानन्देन ऋजुविमर्शिन्याममृतानन्देन च योगिनी हृदयदीपिका-सौभाग्यसुधोदयादिष्वनाख्याख्यं तुरीयं तत्त्वमङ्गीकृत्य तत्त्वचतुष्टयप्रतिपादनपरं व्याख्यातं त्रैपुरं तन्त्रम् । अर्थरत्नावल्यां विद्यानन्देन तु संकेतपद्धतिमनुसृत्य पीठपञ्चक-वामादिपञ्चक-इच्छादिपञ्चक-अकारहकारपञ्चकादीनां हतानाहतोत्तीर्णानां नादानाम् अनिकेत-रसत्रितयादिपदानां च व्याख्यानं क्रमदर्शनानुगुण्येन कृतम् । त्रिपुरसुन्दरीदण्डके—"सुस्फुटं वाममार्गस्य सर्वोत्तमत्वं समुपदिशता" इत्युक्तवता दीपकनाथसिद्धेन त्रिपुराविद्याया वाममार्गसेव्यत्वमुपदिष्टम् । एवं चैकस्यामेव त्रिपुरोपास्तौ व्याख्यातृभेदेन दृश्यते दृष्टिभेदो विधिभेदश्च । महार्थमञ्जरीकारेण स्वात्मदेवतैवोपास्यत्वेनात्राभिहिता क्रमसरणिमनुसरता । स्वात्मदेवता च—"स्वात्मैव देवता प्रोक्ता ललिता विश्वविग्रहा" (३५।१३) इति तन्त्रराजवचनप्रामाण्येन सेयं ललिता भगवती त्रिपुरसुन्दर्येव । अत्रैव देवतास्वरूपप्रतिपादकस्य महार्थमञ्जरीपरिमलग्रन्थस्य (पृ० ११७-१२७) विनियोगो दृश्यते । स्वात्मदेवताया अस्याः सपर्याविधिप्रदर्शनमुखेनैव सर्वोऽपि महार्थोऽत्र (पृ० ७९-११७) व्याख्यातः ।

तन्त्रालोकविवेककारजयरथप्रामाण्येन क्रमदर्शनस्यैतिहासिकं परिचयं समुस्थापयद्भिः श्रीमद्भिः [2]कान्तिचन्द्रपाण्डेयमहानुभावैः शिवानन्दः क्रमदर्शनस्य

---

१. द्रष्टव्यम्—ऋजुविमर्शिन्यामर्थरत्नावल्यां च (पृ० ६३-६४) ।

२. "अभिनवगुप्त" इत्याद्याख्यस्य ग्रन्थस्य द्वितीये संस्करणे, पृ० ४६४–४६६.

प्रथम आचार्य इत्यमन्यत। अत एव [1]सोऽवतारकनाथनाम्ना तत्र स्मर्यते। क्रमकेलिग्रन्थमुद्धरता हि जयरथेनैवमुच्यते—"यथैकः श्रीमान् वीरवरः सुगृहीतनामधेयो गोविन्दराजाभिधानः, श्रीभानुकाभिधानो द्वितीयः, श्रीमानेरकसमाख्यस्तृतीयः सममेवोपदेशं पीठेश्वरीभ्य उत्तरपीठलब्धोपदेशात् श्रीशिवानन्दनाथाल्लब्धानुग्रहाभ्यः श्रीकेयूरवती-श्रीमदनिका-श्रीकल्याणिकाभ्यः प्राप्नुवन्तः। तत्राद्यः ...... स चेदं रहस्यं श्रीसोमानन्दाभिधानाय गुरवे संचारयाम्बभूव। द्वितीयोऽप्येवमेवास्त। तस्यैव चैषा श्रीमदुज्जटोद्भटादिनानागुरुपरिपाटीसन्ततिः, यत्प्रसादासादितमहिमभिरस्माभिरेतत् प्रदर्शितम्" (आ० ४, पृ० १९२) इति। जयरथेनास्मिन्नेव प्रसङ्गे ह्रस्वनाथ-नवेरकनाथ-भोजराज-[2]चक्रभानु-भूतिराजप्रभृतय आचार्याः स्मृताः। अस्यामाचार्यपरम्परायां कल्लटशिष्यो भट्टप्रद्युम्नस्तत्त्वगर्भस्तोत्रकर्ता न दृश्यते। अत्र यद्वक्तव्यं तदस्माभिः "त्रिपुरादर्शनस्यापरिचिता आचार्याः कृतयश्च" इत्याख्ये [3]निबन्धे उक्तम्। तेनायमपि क्रमदर्शनस्यैवाचार्यः प्रतीयते। अभिनवगुप्ततः प्राचीनायामस्यां काल्युपासकाचार्यपरम्परायां स्मृतः शिवानन्दो नूनं महेश्वरानन्दपरमगुरोः शिवानन्दाद् भिन्नः। महेश्वरानन्दोऽपि नैतेषु कानपि स्मरति, देवपाणिसम्प्रदायानुप्रविष्टत्वं चात्मनः ख्यापयति (पृ० १०४), "शक्तिः शिवो देवपाणिः" (पृ० ९५) इत्यादिना च पादुकोदयवचनेन तस्यास्य सम्प्रदायस्याद्यप्रवक्तृत्वमुपपाद्यते। कोऽयं देवपाणिरिति त्वद्य न ज्ञायते, तथापि क्रमदर्शनस्यैवायमाचार्यः स्यात्। शिवानन्दो हि परमगुरुरस्य ऋजुविमर्शिन्यामन्यत्र वोपलब्धेषु ग्रन्थेषु न व्याख्याति क्रमदर्शनम्। महेश्वरानन्देन क्रमवासनापदेनोक्तायां सुभगोदयवासनायां भगवत्यास्त्रिपुरसुन्दर्या आन्तरमुपासनमेव वर्ण्यते। नह्येषु शिवानन्दग्रन्थेषु कुत्रापि दृश्यते क्रमदर्शनस्य स्वल्पोऽपि प्रभावः। अतो देवपाणिसम्प्रदायानुप्रवेशमुखेनैव क्रमसरणिरनुसृता महेश्वरानन्देनेति युक्तमुत्पश्यामः। तामिमां सरणिमनुसरताऽपि महेश्वरानन्देन स्वात्मदेवता ललितैवोपास्यत्वेनाभिहितेति महेश्वरानन्दव्याख्यातस्य क्रमदर्शनस्य वैशिष्ट्यमेतदवधेयताकोटिमाटीकते।

---

१. तन्त्रालोकविवेके, आ० ४, पृ० १९५, १९७ द्रष्टव्ये।

२. चक्रभानुरयं चिद्गगनचन्द्रिकायां ३०० तमे श्लोके स्मृतः। क्रमदर्शनस्यात्रोद्धृतानामन्येषां च ग्रन्थग्रन्थकर्तॄणां विस्तृतः परिचयोऽस्मत्सुहृदा श्रीमता डॉ० नवजीवनरस्तोगिमहोदयेन स्वकीये क्रमदर्शनसंबद्धे शोधनिबन्धेऽधुनावध्यप्रकाशिते समुपस्थापितः।

३. सारस्वती सुषमा, व० २०, अ० २, पृ० १८ द्रष्टव्यम्।

महार्थमञ्जर्यां परिमले चोन्मीलिता विशिष्टा दृक्

प्रथमगाथापरिमलोपोद्घाते सर्वासां गाथानां प्रतिपाद्या विषयाः, परिमलप्रतिपादिताश्च विषया ग्रन्थान्ते "आदिवाक्यम्" इत्यादिना (पृ० १९३) "गृह्यतां तन्त्रसंग्रहः" (पृ० १९४) इत्यन्तेन ग्रन्थेन संक्षेपेणोपन्यस्ताः। क्रम-कुल-त्रिकदर्शनानां समष्टिभूतमेतन्महार्थमञ्जर्याह्वयं महत् तन्त्रम् । अत्रोपन्यस्तान् कांश्चन विशिष्टान् सांस्कृतिकान् दार्शनिकांश्च विषयान् व्याचिख्यासयिषामः ।

श्रौतस्मार्तादिशास्त्राणामवरत्वम्

श्रौतस्मार्तादिशास्त्राण्यत्र बाह्याम्नायपदेनाभिधीयन्ते (पृ० १७७)। शाङ्कराद्वैतदर्शनं च मायावेदान्त(पृ० ५०)-पाशववेदान्त (पृ० ७५)-बाह्याद्वैतसिद्धान्त-पाशवशास्त्र(पृ० १३०)प्रभृतिभिः पदैः स्मर्यते । एतच्च "वेदाच्छैवं ततो वामम्" इत्यादिपरात्रीशिकाव्याख्योद्धृतवचनेन, "सर्वेभ्यश्चोत्तमा वेदा वेदेभ्यो वैष्णवं परम्" (२।७) इत्यादिकुलार्णववचनेन च समर्थ्यते । अत एव—"श्रुतिस्मृत्यादेरप्यस्मत्तन्त्रस्य प्रामाण्योत्कर्षः" (पृ० २२) इत्येवं वदति सः, "अत्र ये सौत्रामण्यादिदृष्टान्तदृष्ट्या प्रामाण्यं प्रसाधयन्ति, नूनं ते हिंसावलोकितकेन विगलितमपि ब्राह्मण्यमालोकयन्ति" इति च कटाक्षयति वैदिकान् । वर्णाश्रमादिनैयत्यादिना परिस्फुरन् सर्वोऽपि व्यवहारः पाशप्ररोहपदेनाभिहितो (पृ० १४५) महेश्वरानन्देन । "ब्राह्मणचाण्डालादिव्यवस्थापरित्यागेन च—"घृणा शङ्का भयं लज्जा जुगुप्सा चेति पञ्चमी । कुलं जातिश्च शीलं चेत्यष्टौ पाशाः प्रकीर्तिताः ॥" इत्युपपादितं पाशाष्टकं स्वत एवापह्रीयते" इत्यप्युक्तं तेनैव । एतच्च—

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्येऽथवा प्रिये ।
सर्वे ते समधर्माणः शिवधर्मे नियोजिताः ॥ ....
एकैव सा स्मृता जातिर्भैरवीया शिवाव्यया ।
तन्त्रमेतत् समाश्रित्य प्राग्जातिं नह्युदीरयेत् ॥ ...
प्राग्जात्युदीरणाद् देवि प्रायश्चित्ती भवेन्नरः ॥ ....
अविवेकी भवेत् तस्माद् य इच्छेदुत्तमां गतिम् । (४।५४०-५४६)

इति स्वच्छन्दतन्त्रानुगुण्येन प्रवर्तते ।

विधिनिषेधव्यवस्थापनम्

अत एव महार्थमञ्जरीकारोऽयं वैदिकान् आचारानपि समालोचयति, न तु सार्वात्म्येनताननुसरति। तथाहि सप्तमगाथाव्याख्याने स वदति—"तत्र सन्ध्योपास्त्यादौ विधिः, कलञ्जभक्षणादौ निषेधश्चेत्युच्यते।... तत्र किं तज्ज्ञानमात्रेण ते प्रवर्तन्ते निवर्तन्ते च, उत स्वेच्छानुगुण्यात्। यदि ज्ञानमात्रेण सन्ध्यानुपासकः कलञ्जभक्षको वा न कश्चिदालोक्येत। यदि तु स्वेच्छानुगुण्यात्, तदानुष्ठातॄणां रुचिमेव विधिनिषेधावनुवर्तेते इत्यर्थो भवति। ततश्च तेषां सन्ध्योपासनादावर्थे यत्र रुचिस्तत्र विधिः, यत्र वा कलञ्जभक्षणादौ न रुचिस्तत्र निषेध इत्यनया भङ्ग्या सन्ध्योपासनादावेवारुचिश्चेत् तत्र निषेधः, कलञ्जभक्षणादावेव चेद् रुचिस्तत्र च विधिरित्यर्थतत्त्वनिश्चयः स्यात्" (पृ० २१-२२) इति, प्रमाणयति च तमिमं सिद्धान्तं संवित्प्रकाशश्लोकेनानेन—

त्यागः शक्यक्रियो यस्य स हेय इति निश्चितः।
त्यक्तुं न शक्यते यच्च तदुपादेयमित्यपि॥ इति।
(पृ० २२)

ख्यातिस्वरूपम्

ख्यातिशब्दो यद्यपि सामान्येन प्रसिद्ध्यर्थे प्रयुज्यते, तथापि धातूनामनेकार्थत्वाद् भारतीयेषु दर्शनेषु भ्रान्तिबोधकत्वेन संकेतितः सः। जडचेतनात्मकमेतज्जगदवलोक्य जिज्ञासा समुदेति—किमेतस्य कारणमिति। जिज्ञासाया अस्याः समाधानमुखेनैव प्रवर्तन्ते सर्वाणि दर्शनानि। कारणस्य कार्यस्य च जडचेतनात्मकस्य स्वरूपप्रतिपादने वर्तते मतभेदो दार्शनिकानाम्। भारतीयेषु दर्शनेषु तमिमं मतभेदं ख्यातिशब्दः साधु व्यनक्ति। ख्यातिरियं षड्धा व्याख्यायते। विज्ञानाद्वैतवादिनो योगाचारा आत्मख्यातिवादिनः, शून्यवादिनो माध्यमिका असत्ख्यातिं संगिरन्ते, प्राभाकरा अख्यातिमाहुः, नैयायिका अन्यथाख्यातिवादिनः, ब्रह्माद्वैतवादिनः शाङ्करा अनिर्वचनीयाख्यां ख्यातिमङ्गीकुर्वन्ति, रामानुजादयो वैष्णवदार्शनिकाश्च सत्ख्यातिं साधयन्ति। तत्रात्मख्यातिर्नामात्मनो विज्ञानस्य ख्यातिर्विषयरूपेण प्रतिभासः। इदं रजतमिति विज्ञानमेव रजतरूपेणावभासते, न तत्र विषयान्तरापेक्षा। अयं घट इत्यादिषु सर्वत्र विज्ञानस्यैव विषयाकारोल्लेखसंभवेनात्रापि तथैवौचित्यादिति विज्ञानाद्वैतवादिनो बौद्धाः। असत्ख्यातिर्नामासतो रजतादेः ख्यातिः प्रतीतिरिति शून्याद्वैतवादिनो माध्यमिका बौद्धाः। अख्यातिर्नाम न ख्यातिरख्यातिरप्रतीतिः, शुक्तिरजतस्थल इदं रजत-

मित्यत्रेदमंश एव प्रत्यक्षप्रतीतिविषयः, न रजतांशः, तस्य चक्षुराद्यसंनिकर्षात्। रजतमिति तु स्मृत्याकारदर्शनमिति प्राभाकराः। अभिनवगुप्तपादा अपि तामेनामख्यातिमेवाङ्गीकुर्वन्ति। तथाहि—"यावता पूर्णेन रूपेण प्रख्यातव्यं विमर्शपर्यन्तं तावन्न प्रख्यातीत्यपूर्णख्यातिरूपाऽख्यातिरेव भ्रान्तितत्त्वम्" (ई० प्र० वि०, २।२।१३) इति। अन्यथाख्यातिर्नामान्यस्यान्यरूपेण प्रतीतिः। अन्यदेशकालगतं रजतं तद्विपरीतान्यदेशकालगतत्वेन संस्कारवशेन शुक्तिसम्प्रयुक्तेन दोषोपहतेनेन्द्रियेण शुक्त्यात्मना गृह्यत इत्यन्यथाख्यातिवादिनो नैयायिकाः। सर्वत्र संसर्गमात्रमसदेवावभासते, संसर्गिणस्तु सन्त एव। सेयं विपरीतख्यातिरुच्यते मीमांसकैः। "शुक्तिरजतवेदनेऽपि विद्यमानैव रजतत्वजातिर्विद्यमानस्यैव शुक्तिकाशकलस्यानात्मभूतैवात्मतयाऽवगम्यते" इति [1]भाट्टमीमांसकैः प्रतिपादिता विपरीतख्यातिरन्यथाख्यातितो नातीव भिन्ना सदसत्ख्यातिनाम्नाऽप्यभिधीयते। अनिर्वचनीयख्यातिर्नाम सत्त्वेनासत्त्वेन चानिर्वचनीयस्य रजतादेः ख्यातिः प्रतीतिः। शुक्तिरजतस्थले हि शुक्त्यज्ञानपरिणामभूतं सदसद्भ्यामनिर्वचनीयमपूर्वं रजतमुत्पद्यते। प्रपञ्चस्याप्यनाद्यविद्यापरिणामभूतत्वादनिर्वचनीयत्वमेवेति ब्रह्माद्वैतवादिनः शाङ्कराः। "सत्ख्यातिर्नाम ज्ञानविषयस्य सत्यत्वम्। तर्हि भ्रमत्वं कथमिति चेद् विषयव्यवहारबाधाद् भ्रमत्वम्" इति रामानुजीयाः[2]। एवं सर्वेष्वेतेषु दर्शनेषु ख्यातिवादव्याजेन कारणकार्यविषयिणी स्वीया विशिष्टा दृगुन्मील्यते।

अभिनवगुप्तपादपथानुवर्तिना महेश्वरानन्देनापि "ख्यातिमपूर्णाम्" (श्लो० ५२) इति विरूपाक्षपञ्चाशिकावचनम्, "अख्यातिर्यदि" इति प्रत्यभिज्ञाहृदयोद्धृतक्षेमराजवचनं चोद्धरताऽपूर्णताख्यातिरूपाऽख्यातिरेवाङ्गीकृता (पृ० १४-१५)। अग्रे चापूर्णताख्यातिरियमाणवमलव्यापार (पृ० २४) इत्युक्त्वा, भेदवादखण्डनावसरे (पृ० ४५-४६) अख्यातिवादः स्मृतः, निष्कलशब्दव्याख्यानावसरे च (पृ० १२९) कलाशब्दः स्वात्मापूर्णाख्यातिलक्षणस्वीयसङ्कोचपरत्वेन व्याख्यातः। एवं च प्रायो गुरुमतसंमतोऽख्यातिवाद एवाभिनवगुप्तमहेश्वरानन्दादीनां संमतः।

तान्त्रिकदर्शनस्य प्रायो गुरुमतानुवर्तित्वम्

न केवलमख्यातिवादप्रसङ्गे, अपि तु संवित्स्वरूपविषये (पृ० ७७), विश्वव्यवहारे ज्ञातृज्ञानज्ञेयरूपत्रिपुटीस्वीकारे (पृ० ७६), अन्विताभिधान-

१. शास्त्रदीपिकातर्कपादः, निर्णयसागरसंस्करणम्, सन् १९३५, पृ० ५८.

२. यतीन्द्रमतदीपिका, आनन्दाश्रमसंस्करणम्, द्वितीयावृत्तिः, सन् १९३४, पृ० १२.

वादाङ्गीकारे (पृ० ७५) च समर्थितं प्राभाकरदर्शनं महेश्वरानन्देन। महेश्वरानन्दो हि संविदेव भगवती विषयसत्त्वोपगमे नः शरणमिति गुरुमतमर्यादामङ्गीकरोति (पृ० ७७)। इयांस्तु विशेषो यत् संविदियं तान्त्रिकैर्न केवलं प्राभाकरवज्ज्ञानपदपर्यायवाचित्वेन, अपि तु परतत्त्वप्रतिपादकत्वेन व्याख्यायते। अत एव—"संविदेव भगवती स्वान्तःस्थितं जगद् बहिः प्रकाशयतीति दर्शनरहस्यम्" (ऋ० वि०, पृ० २७) इत्येवं शिवानन्दो वदति। व्याख्याता चेयं संविद् विस्तरेण प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी-प्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिन्यादिष्वभिनवगुप्तप्रभृतिभिः। "प्राक्तनकुशलविपाकप्रवर्तितसंवित्सारपरामर्शाभ्यासतपःप्रभावप्रतिलब्धोन्मेषेण भट्टशङ्करनन्दनेन" (भा० २, पृ० १९९) इति, "संवित्सारमीमांसकेन भट्टश्रीनारायणेन" (भा० २, पृ० १९७) इतीश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिन्यामभिनवगुप्तोक्तिदिशा प्रज्ञालङ्कारकर्तृभट्टशङ्करनन्दनस्य, स्तवचिन्तामणिकर्तृभट्टनारायणस्य च मीमांसकत्वं संवित्सारमात्राङ्गीकर्तृत्वं च ज्ञायते। काव्यप्रकाशकर्त्रा रसप्रक्रियाविवरणप्रसङ्गे मीमांसकस्य भट्टलोल्लटस्य सिद्धान्तः समुपस्थापितः। क्षेमराजेन स्पन्दनिर्णये (पृ० ३४) स्पन्दकारिकाव्याख्यातृत्वेन सूचितो भट्टलोल्लट इतोऽभिन्न एव स्यात्। एतेन कश्मीरेषु दार्शनिकानां विशेषतो मीमांसकानां तान्त्रिकाणां च विदुषां कापि विशिष्टा परम्परा सूच्यते, या हि बौद्धदार्शनिकानां प्रतिस्पर्धित्वेन विकसिता। तामेव परम्परां [1]श्लोकवार्त्तिकारम्भे भट्टकुमारिल एवं स्मरति—

"प्रायेणैव हि मीमांसा लोके लोकायतीकृता" इति।

व्याख्याति च न्यायरत्नाकरकारः—"मीमांसा हि भर्तृमित्रादिभिरलोकायतैव सती लोकायतीकृता" इति। प्राभाकरसिद्धान्तः काश्मीरं तान्त्रिकं दर्शनं च तस्यामेव परम्परायां विकसितं प्रतीयते। अत्र हि नूतना कापि दृगुन्मीलिता, या हि बौद्धदार्शनिकैर्मीमांसाप्रभृतिषु दर्शनेषु समुद्भावितान् तर्कानभिनवया भङ्ग्या समालोचयति। काश्मीरं प्रत्यभिज्ञादर्शनं हि शून्याद्वैतवादिनां विज्ञानाद्वैतवादिनामनिर्वचनीयाद्वैतवादिनामन्येषां च दार्शनिकानां सिद्धान्तान् समालोचयत् स्वातन्त्र्याद्वैतवादप्रतिष्ठापनमुखेन प्रवर्तते। तदनुपदमेव स्पष्टीभविष्यति।

अन्विताभिधानवादः

एकस्यापि भावस्य स्वव्यतिरिक्ताशेषभावात्मकत्वं स्थापयता महेश्वरानन्देनोच्यते— "एतेनाभिहितान्वयवादादन्विताभिधानवादस्यौचित्यमस्तीत्युक्तं

१. श्लोकवार्त्तिकम्, चौखम्बासंस्करणम्, १८९८, पृ० ४.

भवति। तत्र हि 'स्तम्भं पश्य' इत्यादौ स्तम्भशब्दार्थान्वितैव दर्शनक्रिया क्रियापदेनाभिधीयते। एवं पश्यत्यर्थान्वितश्च स्तम्भः कर्मकारकेणेत्यनन्तरोपपादितार्थानुगुण्येनान्वय इत्युपपाद्यत इति" (पृ० ७२) इति। अयं भावः—अभिहितानां स्वस्ववृत्त्या पदैरुपस्थापितानामर्थानामन्वयोऽभिहितान्वय इति वादिनां भाट्टमीमांसकानां मते हि 'घटं करोति' इत्यत्र घटवृत्तिकर्मत्वानुकूला कृतिरित्यर्थो बोध्यते। तत्र घटशब्दस्य घटोऽर्थः, अम्प्रत्ययस्य च कर्मता। वृत्तिता तु न कस्यापीत्यपदार्थोऽपि वृत्तिता तात्पर्यवशादनयोः संसर्गविधया भासते। पदान्यन्वितानि भूत्वा पश्चाद् विशिष्टमर्थं कथयन्तीतिवादिनोऽन्विताभिधानवादिनः प्राभाकराः। एषां मते हि पदार्थो वाच्योऽभिधेय एव, न तु तात्पर्याख्यवृत्त्यन्तरबोध्यः। तथा हि—'देवदत्त गामानय' इत्युत्तमवृद्धप्रयोगात् सास्नादिमतीं व्यक्तिं मध्यमवृद्धे संचारयति तच्चेष्टया तस्य वाक्यस्य तदर्थबोधकत्वमनुमायानन्तरं 'गां नय, अश्वमानय' इति प्रयोगे गवापसरणमश्वाहरणं च दृष्ट्वाऽन्वयव्यतिरेकाभ्यां क्रियापदार्थान्विते कारके कारकपदस्य, कारकपदार्थान्वितक्रियायां च क्रियापदस्य शक्तिं बालोऽवधारयति। ततः प्रयोगकाले तस्य प्रथमत एवान्वितबुद्धिर्जायते। तेनाभिधयैवात्रान्वयबोधोपपत्तौ किं तात्पर्यरूपवृत्त्यन्तरेणेति तेषामाशयः। एवं चैकस्यापि भावस्य स्वव्यतिरिक्ताशेषभावात्मकत्वमन्विताभिधानवाद एव साधयितुं शक्यते। प्रकाशो हि न कदाचिद् विमर्शक्रियतां विमर्शोऽपि न प्रकाशकर्तृकतां व्यभिचरति। प्रकाशविमर्शात्मकमेव च सर्वं जगदिति।

सर्वं सर्वात्मकम्

शिवः प्रकाशस्वरूपः शक्तिश्च विमर्शरूपेति ह्यागमसिद्धान्तः। सर्वस्यापि विश्ववैचित्र्यस्य प्रकाशविमर्शान्तर्गतत्वमेव। प्रकाशरूपस्यात्मनो विमर्शशक्तिरेवानुप्राणनम्। वस्तुतः—"न शिवेन विना शक्तिर्न शक्तिरहितः शिवः" (सूतसंहिता, ४।१३।२९) इति नीत्या प्रकाशो न कदाचिद् विमर्शक्रियतां विमर्शोऽपि न प्रकाशकर्तृकतां व्यभिचरतीत्यनयोर्वास्तवं वपुरैक्यस्वभावम्। परमेश्वरस्य काचिदुन्मेषनिमेषयौगपद्यलक्षणा शक्तिरस्ति। तत्र स्वरूपोन्मेषे विश्वनिमेषः, विश्वोन्मेषे च स्वरूपनिमेष इति द्वितयमपि तुलाधृतवदुत्पद्यते। ततश्च विश्वात्मको विश्वोत्तीर्णश्च परमेश्वरः सिद्ध्यति। विश्वोन्मेषावस्थायामात्मरूपस्य केवलं तिरोधानमात्रम्, न पुनरत्यन्तोपप्लवः। ननून्मेष एव निमेषो निमेष एवोन्मेषो विश्वस्य विश्वोत्तीर्णस्य चेति महत्येषा व्याहतिरिति तु न वाच्यम्, विश्वव्यवहारे वादिनां सर्वोऽपि वचनपरम्पराप्रपञ्चो ज्ञाता ज्ञानं ज्ञेयमित्येवंरूपपुटत्रयसमाहारात्मन्यर्थतत्त्वे पर्यवस्यति। परमार्थतो वेदितैव वेद्यम्, वेद्यमेव वेदिता, वित्तिरेव

वेद्यमित्याद्यशेषस्वभावसामरस्याभ्युपगमस्य पर्यन्ततः सिद्धान्तरहस्यत्वादुन्मेष एव निमेष इत्यादिव्याहृतिदोषोद्भावनमसमञ्जसमेव। "विमर्शो हि सर्वंसह आत्मानमपि परीकरोति, परमप्यात्मीकरोति, द्वयमप्येकीकुरुते, उभयमपि न्यग्भावयति" (१।५।१३) इति हि प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी। सर्वैकरसवादस्वीकारे च सत्यासत्ययोर्भावाभावयोश्च युक्तिपर्यालोचनायामैकरूप्यमेव सिद्ध्यति। तच्च प्रदर्शितं महेश्वरानन्देन ३२-३३ गाथयोर्व्याख्यानावसरे सयुक्तिकम्। एवं चैकस्यापि भावस्य स्वव्यतिरिक्ताशेषभावात्मकत्वमिति ह्यागमसिद्धान्तः। तदुक्तं तन्त्रालोके—

"अस्यां भूमौ सुखं दुःखं बन्धो मोक्षश्चितिर्जडः।
घटकुम्भवदेकार्थाः शब्दाः" (३।१९) इति।

सर्वं सर्वात्मकमित्येष सिद्धान्तः शिवदृष्टौ सोमानन्देन प्रथमाह्निकसमाप्तौ संक्षेपेण, चतुर्थपञ्चाह्निकयोश्च विस्तरेण सर्वशिवत्वोपपादनमुखेन व्याख्यातः। "समता सर्वभावानाम्" इत्यादिभ्यां तन्त्रालोकविवेके त्रिकशास्त्रवचनत्वेनोद्धृताभ्यां महेश्वरानन्देन च स्मृताभ्यां (पृ० १६८) श्लोकाभ्यामपि स एवार्थो व्यज्यते। अत एव परिमलकारेण "अतो विश्वात्मको नाथः" इत्यारभ्य "महार्थात्मा महार्थिकमनीषिणाम्" इत्यन्तान् पादुकोदयश्लोकानुद्धरता (पृ० ११) चार्वाक-अभावब्रह्मवादि-माध्यमिक-सांख्य-शब्दब्रह्मवादि-मीमांसक-नैयायिक-सौगतप्रभृतिषु श्रौताश्रौतेषु सर्वेष्वपि सिद्धान्तेषु नात्यन्तं विसंवाद इति निष्कृष्टम्। स्वात्मपरामर्श एव परा देवतेत्युक्त्वा च—"येन येन स्वरूपेण भासते तस्य तन्मयी" इत्यादिना "सर्वेषां मोहनी स्मृता" (पृ० १०३) इत्यन्तेन ग्रन्थेन तस्यास्तत्तन्मतेषु तत्तदधिकाराधिरोहक्रमतारतम्यादन्यथाऽन्यथा व्यवहार इति निदर्शितम्। पारमार्थिकावस्थायां सर्वसामरस्ये सिद्धेऽपि व्यवहारदशायां दृष्टिभेदोऽङ्गीक्रियत एव। अत एव परिमलकारेण प्रसक्त्यानुप्रसक्त्याऽत्र वैशेषिका माध्यमिकाश्च केचन सिद्धान्ताः क्षणभङ्गवादानिर्वचनीयवादादयश्च समालोचिताः।

दर्शनान्तरसमालोचनम्

महेश्वरानन्दो हि—"अविकल्पात्मा महाप्रकाशः सामान्यम्" (पृ० ७७) इति सामान्यलक्षणं प्रतिपादयन् "अनुवृत्तिप्रत्ययनिमित्तं सामान्यम्" इति तस्य वैशेषिकं लक्षणं तत्संमतं सामान्यस्य पदार्थान्तरत्वं च खण्डयामास। एवमेव चतुष्पञ्चाशयां गाथायां तत्परिमले च क्षणभङ्गवादं तत्प्रसङ्गेन शून्यवादं च समालोचयामास। शाङ्कराणामनिर्वचनीयतावादं माध्यमिकानां शून्यवादं च

सोऽनेकेषु स्थलेषु समालोचयत् । तथाहि द्वितीयगाथापरिमले—"स्फुटप्रकाशात्मनि प्रपञ्चोद्योते न कस्यचिन्मिथ्यात्वोपपादकादेश्छलस्यावकाशः" (पृ० १०) इति प्रतिपादयन् माध्यमिकानिर्वचनीयवादमर्यादां शिथिलयाञ्चकार। एवमेवाधिकारिनिरूपणप्रसङ्गे वेदान्तोपदिष्टसाधनचतुष्टयसम्पत्त्युपात्तयोरिहामुत्रार्थफलभोगविरागित्वमुमुक्षुत्वयोरनावश्यकतां प्रतिपादयाञ्चकार। अपि च— "परमेश्वरस्य ह्ययमेवासाधारणस्वभावो यत् सर्वदा सृष्ट्यादिपञ्चकृत्यकारित्वम्। एतदनङ्गीकाराद्धि मायावेदान्तादिनिर्णीतस्यात्मनः स्वस्फुरणामोदमान्द्यलक्षणमसत्कल्पत्वमापतितम्" (पृ० ५०) इत्यत्र सूचितस्यार्थस्य स्पष्टीकरणाय "बाह्याद्वैतसिद्धान्तः पाशवशास्त्रशय्यामधिशेते" (पृ० १३०) इति निर्दिशन् "अद्वैतवादनिर्वाहो वेदान्तेष्वपि दृश्यते" इति प्रतिज्ञाय "तत्रात्मा कश्चिदुत्तीर्णः" इत्यादिना "नित्यमुक्तो निरूपितः" इत्यन्तेन ग्रन्थेन तत्सिद्धान्तं स्वीकृत्यापि "अविभ्रष्टत्वपर्यायमकर्तृत्वं न युज्यते" इत्यादिना तत्रासंगतिप्रदर्शनपुरस्सरम्—

तस्माद्विमर्शो देवस्य स्वभावोऽस्माभिरुच्यते ।
भवन्त्यस्यैव पर्यायाः शक्तिरैश्वर्यमुद्यमः ॥
स्पन्दः स्वतन्त्रता स्फूर्तिरूर्मिरोजः कलेत्यपि ।

इत्युपसंहारयामास । अग्रे च वेदान्तसम्मतं विमर्शलक्षणं समालोच्य (पृ० १४९) "विवर्तो विचित्रेण रूपेण वर्तनं न त्वविद्यावशात्, अपि तु स्वातन्त्र्यतः" (पृ० १५०) इति क्रमकेलिप्रोक्तं विवर्तलक्षणं समुपस्थाप्य "संवित्स्वातन्त्र्यमय्या महासत्तया विश्वव्यवहारस्य निर्वचनीयत्वनैयत्यादेतद्विपर्ययात्मा तस्यानिर्वचनीयत्वपक्षोऽप्यपहस्तित एव स्यात्" इति प्रतिपादयाम्बभूव । परिमले ५३-५४ पृष्ठयोर्द्वैतवादिनामर्हतां भूतचैतन्यवादिनां शून्यवादिनां च पक्षः प्रतिक्षिप्तः, ५६-५७ पृष्ठयोः सांख्यसंमतः पुरुषोदासीनत्वपक्षः, १५० पृष्ठे च ब्रह्मपरिणामवादः समालोचितः। एवं व्यवहारदृष्ट्या निरस्य परमतवादानिमान् स्थापयामास स्वसिद्धान्तान् महेश्वरानन्दो ब्रह्मजीवजगद्विषयकान् कुलक्रमत्रिकदर्शनानुसारिणः।

प्रतिबिम्बवादसतत्त्व आभासवादः

माध्यमिकानां शून्यवाद इव योगाचाराणां विज्ञानवाद इव, शाङ्करवेदान्तिनामनिर्वचनीयतावाद इव वर्तते तान्त्रिकाणां प्रतिबिम्बवादान्वित आभासवादः स्वातन्त्र्याद्वैतवादसाधनाय प्रधानमवलम्बनम्। "विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतम्" (श्लो० १) इत्यादिना दक्षिणामूर्तिस्तोत्रे

प्रतिपाद्यते स एष सिद्धान्तः। परिमलकारेण "दर्पणादिप्रकाशानां हि" (पृ० ११) इत्यादिना, "तस्य च विमर्शाख्योऽतिशयः" (पृ० २९) इत्येवम्, "प्रतिबिम्बप्रक्रिया च" (पृ० १०२) इति च सूचितः प्रतिबिम्बवादस्तन्त्रालोक-तृतीयाह्निकमाधृत्य विस्तरेण प्रतिपादितः शाम्भवोपायवर्णनपराया एकोनषष्ट्या गाथाया व्याख्यानावसरे (पृ० १४७–१५३)। तथाहि—लोके हि दर्पणादौ स्वच्छे वस्तुन्याभिमुख्येनोल्लसन्नाननादिः पदार्थः प्रतिफलनयुक्त्या परिस्फुर-तीत्यतिप्रसिद्धोऽयमर्थः। तत्र मुखतयाऽभिमतो भावः प्रतिबिम्बनक्रियामनुभवति, आदर्शात्मकश्च तदाधारतया तत्प्रयोजको भवति। एवमेव सर्वोऽयमादर्शानिना-द्युपलक्षितः स्तम्भकुम्भादिर्वेद्यविलासः स्वच्छत्वोत्कर्षशालिनि स्वस्वभावा-भिन्नपरमेश्वरात्मके मुकुरमण्डले तन्मयत्वमर्यादया प्रतिबिम्बनयुक्त्या परि-स्फुरति। नन्वेवं प्रतिबिम्बवादेऽपि मिथ्यात्वशङ्काया अपरिहार्यत्वम्? तत्र हि स्वच्छेन दर्पणादिद्रव्येण प्रतिहता लोचनमरीचयः परावृत्त्य स्वमात्मानं गृह्णन्तीति प्रसिद्ध्या दर्पणे पुरुष इति प्रतीतिर्भ्रान्तिरित्यवधार्यते। दर्पणे पुरुषो नास्तीत्यौत्तर-कालिकेन प्रतीत्यन्तरेण तस्य बाधादिति चेन्न, बाह्येषु दर्पणादिषु बिम्बसव्यपेक्षः प्रतिबिम्बोपलम्भः। स्वात्मरूपे पुनरेतद्वैपरीत्यम्, अशेषस्यापि विश्ववैचित्र्यस्य प्रतिबिम्बतयाऽनुभूयमानत्वात्। पारमेश्वरी हि प्रतिबिम्बभङ्गिरलौकिकत्वादन-वद्यामेव कक्ष्यामधिरोहति यदमुष्यामुपन्यस्तया नीत्या बिम्बव्यपेक्षा नोत्पद्यते। तत्संभवे हि बिम्बान्वयव्यतिरेकानुविधायिनी प्रतिबिम्बस्फुरत्तेति मिथ्यात्व-शङ्काया अवकाशः स्यात्। ननु बिम्बव्यतिरिक्तः प्रतिबिम्बयोगो न क्वचिदुपपद्यत इति चेत्? सत्यम्। किं क्रियताम्। एतदेव हि पारमेश्वरं तदतिशयं स्वातन्त्र्य-मुच्यते, यद्बिम्बनिरपेक्षे विश्वप्रतिबिम्बनक्षमत्वं नाम। दर्पणादिप्रकाशानां हि प्रतिबिम्बादिप्रकाशनक्षमत्वेऽपि प्रमातृप्रकाशसापेक्षत्वादस्त्युपाधित्वम्। प्रमातृ-प्रकाशस्य त्वनन्यमुखप्रेक्षितत्वमेवेति। तस्य हि विमर्शाख्योऽतिशयः कश्चित् स्वभावतया स्वीक्रियते। अन्यथा दर्पणादिप्रकाशवदस्य जाड्यकक्ष्यानुप्रवेशः स्यात्। अत एवात्रत्या प्रतिबिम्बप्रक्रिया स्फटिकमुकुरादिव्यतिरेकादलौकिकी काचिदङ्गीकर्तव्या। यतः स्फटिकादेः प्रतिबिम्बने प्रतिबिम्बापेक्षावश्यम्भावः। अस्यास्तु समस्तस्यापि प्रपञ्चस्य प्रतिबिम्बनं प्रति भित्तिभूतत्वादेतद्विपर्ययः।

स्वातन्त्र्यशक्तिर्भासा

एतदेव परमेश्वरस्यात्यन्तदुर्घटघटनप्रागल्भ्यलक्षणं स्वातन्त्र्यमासूत्र्यते। ईश्वरो हि परमस्वतन्त्रः। इयमेव हि तस्य स्वातन्त्र्योत्कर्षकाष्ठा, यत् स्वात्माव-भासाद्वैतजीविते जगति भेदप्रभेदवैचित्र्योत्पादनप्रावीण्यम्, येनातिदुर्घटकारी परमेश्वर इत्याघोष्यते। अत एव चासौ लोकपतिर्देहाक्षभुवनादेः प्रपञ्चस्येश्वरः।

मायाव्यतिरेके भेदप्रथापारमार्थ्यस्य प्रपञ्चस्याभावः। तदभावे च तत्प्रतियोगिकस्य पारमेश्वरैश्वर्यस्यानुपपत्तिरिति न किञ्चिदप्युज्जृम्भेत। तदियं माया नाम तस्योत्कृष्टं स्वातन्त्र्यम्। तदुक्तं परमार्थसारे—

परमं यत् स्वातन्त्र्यं दुर्घटसम्पादनं महेशस्य।
देवी मायाशक्तिः स्वात्मावरणं शिवस्यैतत्॥ (श्लो० १५)

परमशिवभट्टारकस्येयं शक्तिः स्वातन्त्र्यलक्षणा महती तत्त्वानामन्योन्यप्रयोज्यप्रयोजकभावे प्रगल्भा सती पृथिव्यादिभाववर्गमिवानाश्रितशिवभट्टारकमपि क्रोडीकृत्याभिवर्धते। "चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतु" (प्र० हृ० १) इत्यादिना स एवार्थः प्रतिपाद्यते। क्रमदर्शनेषु स्वातन्त्र्यमेतद् भासानाम्ना व्याख्यायते। तदुक्तं परिमलकारेण—"भासा नाम सृष्ट्यादिकृत्याक्रान्तविश्ववैचित्र्यव्यवहारगर्भिणी सर्वोत्तीर्णा सर्वानुग्राहिणी च पारमेश्वरी चिच्छक्तिः, या तदीयं स्वातन्त्र्यं स एवेत्यध्यवसीयते। यथोक्तं श्रीपादुकोदये—

भासा च नाम प्रतिभा महती तत्त्वगर्भिणी।
स्वस्वभावशिवैकात्म्यदेशिकात्मकचिन्मयी॥

यस्यां हि भित्तिभूतायां मातृमेयात्मकं जगत्।
प्रतिबिम्बतया भाति नगरादीव दर्पणे॥

स्वातन्त्र्यरूपा सा काचिच्चिच्छक्तिः परमेष्ठिनः।
तन्मयो भगवान् देवो गुरुर्गुरुमयी च सा॥
(पृ० १०१) इति।

उक्तरूपं च तत्स्वातन्त्र्यं संवित्स्वभावतां नातिक्रामति। संविदेव च भगवती स्वान्तःस्थितं जगद् बहिराभासयति।

चिदात्मैव हि देवोऽन्तःस्थितमिच्छावशाद् बहिः।
योगीव निरुपादानमर्थजातं प्रकाशयेत्॥
(ई० प्र०, १।५।७)

इति वदन् प्रत्यभिज्ञाकारोऽपि तमेनमर्थं समर्थयति। एवं च पत्रपटभित्तितलादिषु चित्रकारसंविदिव, स्वच्छेषु मुकुरासिसलिलादिषु मुखादिप्रतिबिम्ब इव, स्वातन्त्र्यशक्तिमये चिदात्मनि विश्वमुन्मील्यते, आभासते च तद् घटपदादिरूपेण। आभासोऽयं सुरेश्वराचार्यादिप्रतिपादिताभासवन्नालीकोऽनिर्वचनीयो वा, किन्तु संविन्मय एव। विश्वमयो विश्वोत्तीर्णश्च भगवानिति ह्यागमसिद्धान्तः।

विश्वोत्तीर्णमष्टात्रिंशं तत्त्वम्

विश्वमयविश्वोत्तीर्णस्यानाश्रितादिकालाग्निरुद्रान्तषट्त्रिंशत्तत्त्वरूपविश्ववैचित्र्यसंयोजनवियोजनवैदग्ध्यशालिनः परमशिवभट्टारकस्य हि शक्तिः स्वातन्त्र्यलक्षणा तत्त्वानामन्योन्यप्रयोज्यप्रयोजकभावे प्रगल्भा भवति, पृथिव्यादिभाववर्गमिवानाश्रितादिशिवभट्टारकमपि क्रोडीकृत्य परिस्फुरति। सा च विमर्शसंरम्भमयी, विमर्शाख्यो यः संरम्भः स्वान्तःस्फुरत्क्रियाशक्तिस्फाररूपः, तेन प्रकृतेत्यर्थः। सा चिदानन्देच्छाज्ञानक्रियारूपशक्तिपञ्चकसामरस्यस्वभावेत्याख्यायते। सोऽयं स्वात्मसात्कृताशेषषट्त्रिंशत्तत्त्वकलापो महान् परमशिवभट्टारकाह्वयः प्रमाता सप्तत्रिंशतया स्वीक्रियते। तस्य तादृग्रूपतापि पर्यन्ततो विकल्पकक्ष्यामनुभवति। अविकल्पात्मना च भाव्यं विश्वोत्तरेणेत्यतोऽत्राप्यविकल्पवृत्तिरष्टात्रिंशः कश्चिदागमेषूद्घोष्यते।

परमेश्वरस्य विश्वव्यवहर्तृत्वम्

विश्वोत्तीर्णस्याविकल्पस्यास्य परमेश्वरस्य—"मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च" (१५।१५) इति भगवद्गीताप्रामाण्येन, "स्यादेकश्चिद्वपुर्ज्ञानस्मृत्यपोहनशक्तिमान्" (१।३।७) इति प्रत्यभिज्ञाप्रामाण्येन च ज्ञानस्मृत्यपोहनशक्तित्रितयवत्त्वेन विश्वव्यवहर्तृत्वं सिद्ध्यति। परिमलकारेण त्रयोदशीगाथाव्याख्यानावसरे सूचितो विश्वस्फुरणप्रकारश्चतुःपञ्चाशीगाथापरिमले ज्ञानस्मृत्यपोहनलक्षणव्याख्यानमुखेन परिदर्शितः (पृ० १३५-१३६)। अत्र विशेषजिज्ञासुभिः श्रीभगवद्गीताव्याख्यानेषु प्रत्यभिज्ञाविमर्शिन्यादिषु च प्रकरणमेतदवलोकनीयम्। विश्वस्फुरणप्रक्रियायामुपादेयास्वेतासु शक्तिषु बोधः स्मृतिश्च विश्वमय्या स्वचिच्छक्त्या तादात्म्यं न परित्यजत इति विश्वोपसंहारप्रक्रियायां तौ वर्ज्यौ भवतः। वेद्यं वित्तितो वित्तिर्वित्त्यन्तराद् वेद्यं चान्यस्माद् वेद्याद् यथा विच्छेदमाप्नुयात् तथा सामर्थ्यवती भगवतः स्वातन्त्र्यशक्तिरेवात्रापोहनपदेनाभिधीयते। सा च विश्वस्फुरणवेलायां विश्वोपसंहारे च सममेवोपादीयते। अत एव परिमलकारेण प्रकरणमेतदेवमुपसंह्रियते—

तिसृभिः शक्तिभिराभिः शिवः कुविन्दो भवन् कुलालो वा।
अनुभवति सुखं स्मरति च बहु च विकल्पयति विश्ववैचित्र्यम् ॥ इति।

विश्वोत्तरस्य विश्ववैचित्र्यस्फुरणप्रकारोऽयं परिमले (पृ० ५०-६०) विस्तरेण निरूपितस्तत एवावगन्तव्यः। स्वातन्त्र्यशक्तेः कृत्यपञ्चकप्रयोजयितृत्वं त्वत्र निरूप्यते।

स्वातन्त्र्यशक्तेः कृत्यपञ्चकप्रयोजयितृत्वम्

परमशिवभट्टारकस्य हि स्वातन्त्र्यशक्तिश्चिदानन्देच्छाज्ञानक्रियारूपशक्तिपञ्चकमहिम्ना [1]सृष्टिस्थितिसंहारतिरोधानानुग्रहरूपं सृष्टिस्थितिसंहारानाख्याभासारूपं वा कृत्यपञ्चकं प्रयोजयति। परमेश्वरो हि अहमेव सर्वमिति वैश्वात्म्यप्रथानुभूतिस्फारचमत्कारोत्तरतया शुद्धां संकोचकलङ्कशङ्काशून्यां संविदं स्वस्वातन्त्र्यस्वभावविद्यामयीमनुभवन्ननेनैव हेतुना "नर्तक आत्मा" (३।९) इति शिवसूत्रस्थित्या विश्वनाटकस्य शैलूषो नट इति व्यपदिश्यते। विश्वं च पृथिव्यादिशिवान्ततत्त्वसन्दोहात्मकं सृष्टिस्थित्याद्यवस्थापञ्चकाविनाभूतत्वा[2]दारम्भयत्नाद्यवस्थापञ्चकलक्षणस्य नाटकस्यानुकरोति। कृत्यपञ्चके च परमेश्वरस्य सृष्टिस्थितिसंहारेषु त्रिषु न क्वचिदपि वैषम्यम्। उपरितनयोः पुनर्यदा व्यामोह्यमानपशुजनापेक्षया समयभ्रंशापादनादिरूपमेतच्चित्तस्य व्याकुलीकरणम्, यदा च कारुण्योत्कर्षादितद्दोषव्युदासेनास्य भूयः स्वरूपलाभप्रदायित्वम्, तदा तिरोभानमनुग्रहश्चेति तत्कृत्यद्वयं व्यपदिश्यते। यदा पुनः पशुप्रमात्राद्यवच्छेदव्यपोहेन विश्वमेव कार्यतयाऽनुसन्धीयते, तदाऽनाख्या भासेति तत्कृत्यद्वयव्यपदेश इति।

तत्र सृष्टिर्हि नामो[3]द्योगावभासचर्वणात्मविलापननिस्तरङ्गत्वलक्षणप्रथापञ्चकसमष्टिरित्याम्नायते। सर्वेषामस्मदादीनामपि प्रमातॄणामेतत्प्रथापञ्चकाविनाभावः। प्रथापञ्चकं चैतत् क्रियाज्ञानेच्छोद्योगप्रतिभास्वभावसृष्टिस्थितिसंहारानाख्याभासास्वरूपतया निष्कृष्यते। ततश्च सृष्ट्यादिपञ्चकृत्यान्तर्गतमखिलमपि विश्ववैचित्र्यमेकस्यां सृष्टावेव परिस्फुरति। स्थितिश्च सृष्टानां पदार्थानां यावत्संजिहोर्षोदयमवैयाकुल्येनावस्थानम्। संहारो नाम बहिरुद्वान्तानां भावानां पारमेश्वरे प्रकाशे पुनः प्रसूत्यौचित्येन वटधानादिनीत्या वासनात्मतयाऽवस्थानम्। अनाख्यमित्याख्याशून्यमुच्यते। आख्या च पश्यन्त्यादिस्थूलवाक्त्रयस्वभावा। भासा नाम सृष्ट्यादिकृत्याक्रान्तविश्ववैचित्र्यव्यवहारगर्भिणी सर्वोत्तीर्णा सर्वानुग्राहिणी च पारमेश्वरी चिच्छक्तिः। एतत्पञ्चकप्रणेतृत्वमेव परमेश्वरस्य तत्पारमैश्वर्यं यन्नष्टार्थचतुष्कावभासनम्, लीनमेयत्रयवासनानु-

---

१. "आभासन-रक्ति-विमर्शन-बीजावस्थापन-विलापनतस्तानि" (सू० ११) इति प्रत्यभिज्ञाहृदयसूत्रदिशा परिच्छिन्नप्रमातर्यपि पञ्चकृत्यकारित्वमभिव्यज्यते। सूत्रार्थस्तत्रैवावलोकनीयः।

२. आरम्भ-यत्न-प्रत्याशा-नियताप्ति-फलागमाख्यमवस्थापञ्चकं दशरूपके (१।१९-२२), साहित्यदर्पणे (६।७०-७३), अग्निपुराणादिषु (३३८।२१) च निरूपितम्।

३. उद्योगादिपदानामर्थोऽत्रैव (पृ० ९७) व्याख्यातोऽवलोकनीयः।

वृत्तित्वम्, मेयमानघस्मरवेत्तृत्वम्, सविकल्पकमेयविमर्शः, निर्विकल्पमेयावभास इति क्रमादागमेषु संक्षेपेणोपपाद्यते।

चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुरिति प्रतिपादितम्। चितिरेव चेतनपदादवरूढा चेत्यसंकोचिनी चित्तं भवति। परमेश्वरश्च स्वस्वातन्त्र्याच्छक्तिसंकोचमनुभवन् संसारी भवति। तथाहि—अप्रतिहतस्वातन्त्र्यरूपा इच्छादिशक्तयः पशुदशायां कूर्माङ्गभङ्ग्या संकुचन्त्यः क्रमादपूर्णताख्यातिरूपमाणवम्, वेद्यभेदप्रथास्वरूपं मायीयम्, शुभाशुभानुष्ठानात्मकं कार्मणं च मलमुन्मीलयन्ति। तथा सर्वकर्तृत्व-सर्वज्ञत्व-पूर्णत्व-नित्यत्व-व्यापकत्वशक्तयः संकोचं गृह्णाना यथाक्रमं कला-विद्या-राग-काल-नियतिरूपतया भान्ति। तथाविधश्चायं शक्तिदरिद्रः संसारी जीव इति, अवच्छिन्नप्रमातेत्युच्यते। चित्तमयत्वं चास्यावच्छिन्नस्य प्रमातुः "तन्मयो मायाप्रमाता" (सू० ६) प्रत्यभिज्ञाहृदयमर्यादया सम्प्रतिपद्यते। अयमेवार्थः—

स्वतन्त्रः स्वच्छात्मा स्फुरति सततं चेतनशिवः
परा शक्तिश्चेयं करणसरणिप्रान्तमुदिता।
तदाभोगैकात्म स्फुरति च समस्तं जगदिदं
न जाने कुत्रायं ध्वनिरनुपतेत् संसृतिरिति॥

इत्यभिनवगुप्तश्लोकेन संगृह्यते। मलत्रयसम्पर्कतारतम्यादेव[1] सकल-प्रलयाकल-विज्ञानाकलाः, मन्त्र-मन्त्रेश्वर-मन्त्रमहेश्वराः, अनाश्रितशिवश्चेति सप्त प्रमातार उन्मीलयन्त इति मलत्रयदाहोपाय एव स्वस्वरूपाभिव्यक्तिनिमित्तम्; मलशङ्कापरित्याग एव च मलक्षयोपायः। एवं च स्वरूपाभिव्यक्तिर्मोक्षः, तद्विपर्ययश्च बन्ध इति बन्धमोक्षलक्षणमत्र व्याख्यायते।

बन्धमोक्षौ

वस्तुस्थित्या न बन्धोऽस्ति तदभावान्न मुक्तता।
विकल्पघटितावेतावुभावपि न किञ्चन॥

इति न्यायादत्र नये बन्धमोक्षव्यवस्था विकल्पघटितैव। वस्तुतो बन्ध एव नास्ति, कुतो मोक्षः, कुतस्तरां तदिच्छा। स्वस्वरूपपरामर्शाख्यचिदानन्दलाभरूपः स्वस्वभाव एव हि मोक्षोऽत्राभिधीयते, स्वस्वभावश्च यदाऽपूर्णताख्यातिरूपाणवादिमलावृतो भवति, तदा पाशवावेशस्वभावो बन्ध उच्यते। दानक्षणलक्षणदीक्षादिना मलत्रयदाहे च सति देशिककटाक्षपातधन्यानां पुंसां परमशिवीभाव-

१. तारतम्यक्रमोऽयं सकलादिपदानामर्थश्च परिमले ३१-३२ पृष्ठयोर्व्याख्यातः।

लक्षणो मोक्ष आविर्भवति। एवं चात्र पाशववेदान्तोपदिष्टेहामुत्रार्थफलभोगविरागादयो[1] नाधिकारिविशेषणत्वेनोपादीयन्ते, यत इहामुत्रार्थभोगोद्रेक एव मोक्षः पुरुषार्थात्मनः स्वात्मविमर्शस्य प्रयोजकतयाऽभिधीयते। एतदेव ह्यस्य दर्शनान्तरेभ्यो वैशिष्ट्यं यद् भोगमोक्षद्वितयसामरस्यं नाम। एतच्च प्रतिपादितं महेश्वरानन्देन पञ्चषष्टितम्यां गाथायां तत्परिमले च विस्तरेण। उपसंहृतं च तत्र—"श्रीमदनुत्तरक्रमप्रणयनप्रवीणस्य परमेश्वरस्य परमकारुण्यमात्रोपपादितेयमास्माकीना यामली सिद्धिः, या श्रीकुलगह्वरादिषु भोगमोक्षसामरस्यात्मकतयोपपाद्यते" (पृ० १६५) इति, "अस्यां भूमौ सुखं दुःखं बन्धो मोक्षश्चितिर्जडः। घटकुम्भवदेकार्थाः शब्दाः" (पृ० १६५) इति च। सर्वप्रपञ्चविकल्पपरिस्फुरणक्रोडीकारविलक्षणो हि विमर्शः प्रतिपादितात्मरूपावबोधितं भोगमोक्षलक्षणं पुरुषार्थद्वितयमप्युपपादयति। अस्यां स्थितौ भोगोऽपि मोक्षात्मा, मोक्षोऽपि भोगस्वभाव इत्यनयोरन्योन्यमेलकरूपा श्रीमदनुत्तरसंविदद्वैतसिद्धान्तैकसाध्या जीवन्मुक्तिरभिव्यज्यते।

जीवन्मुक्तिः

"चिदानन्दलाभे देहादिषु चेत्यमानेष्वपि चिदैकात्म्यप्रतिपत्तिदार्ढ्यं जीवन्मुक्तिः" (सू० १६) इति प्रत्यभिज्ञाहृदयमर्यादया भोगमोक्षसाक्षात्कारलक्षणो जीवन्मोक्षः स्ववैश्वात्म्यानुसन्धानसन्धुक्षितैश्वर्याणां प्रमातॄणां स्वभाव एव, न त्वाहार्यः कश्चिदतिशयः। जीवन्मुक्तिर्नामात्मनो जननमरणाद्यनुस्यूतस्य सर्वावस्थानिर्विशेषं स्वानन्दोत्सवानुभूतिः। योऽयमन्वादिश्यमानो भावः स्वहृदयस्फुरत्तापरपर्याया महासत्ता, स खलु—

यस्मिन् काले तु गुरुणा निर्विकल्पं प्रकाशितम्।
तदैव किल मुक्तोऽसौ यन्त्रं तिष्ठति केवलम्॥

इति श्रीरत्नमालामर्यादया गुरुकटाक्षपातलक्षणात् काललेशविशेषात्मनः क्षणादेव सृष्ट्यनुप्रविष्टो भवन्नप्यमृतस्वभावचिदाह्लादद्वितयसामरस्याकारसारस्वरूपतया जीवन्मुक्त्यात्मा महोपभोगो भवति। तादृशा च भावेन हेतुभूतेन सर्वतिर्यक्त्वमनुष्यत्वजीवत्वामृतत्वजडत्वाजडत्वादितारतम्यशून्यः प्रमातृवर्गः सर्वस्माद् विश्वविलासलक्षणाद् बन्धहेतोरुत्तीर्णः शुद्धचैतन्यस्वभावो भवन् यावत्कालतत्त्वं सर्वं पाषाणादिजडपदार्थस्वभावापत्तिपर्यन्तमिदन्तासाम्राज्यं परमशिवीभावरूपचैतन्योत्कर्षकाष्ठावधिकमहन्तासम्पत्सम्भोगसर्वस्वं चेति संभूय विश्वतदुत्तीर्णत्वसामरस्यास्वादसामानाधिरण्यरूपं सौभाग्यमन्तःकरणहरणप्रावीण्यलक्षणं श्लाघ्य-

---

१. साधनचतुष्टयसम्पन्न इत्यधिकारिविशेषणोपात्तसाधनपदेन नित्यानित्यवस्तुविवेक-इहामुत्रार्थफलभोगविराग-शमदमादिषट्कसम्पत्ति-मुमुक्षुत्वानि गृहीतानि।

स्वातिशयं लभते, स्वपरिस्पन्दात्मतया प्राप्नोति । अयं भावः—श्रीमद्देशिकनाथकटाक्षपातसमसमयमेव पुंसां स्वहृदयसंवादसौन्दर्यशालिनो जीवन्मोक्षलक्षणस्य पुरुषार्थस्योपलम्भ इत्यत्र न काचिद् विप्रतिपत्तिः । एवं च सर्वसाम्यस्वभावा स्वस्वरूपावस्थितिरेव जीवन्मुक्तिर्महार्थमतसंमता ।

उक्तलक्षणा जीवन्मुक्तिरियं स्वात्मविमर्शलक्षणक्रमपरामर्शेनोन्मील्यते । क्रमपरामर्शप्रक्रिया चेत्थं निर्दिशिता परिमलकारेण—सृष्ट्यादिषु चतुर्षु कृत्येषु सृष्टिसृष्टिः, सृष्टिस्थितिरित्यादिक्रमेण प्रत्येकं चातुर्विध्यम्, पर्यन्ततो भासापर्यवसायित्वं च । भासा च स्वरूपनिष्कर्षावलोकने संविदैक्यपरामर्शचमत्कारसारापि विश्वप्रतिबिम्बयुक्त्यनुप्रविष्टप्रपञ्चस्वभावानुकारितया पञ्चकस्वरूपैवेति पञ्चापि कृत्यानि प्रत्येकं पञ्चकात्मकतां नातिक्रामन्ति । तेषु च पूर्वपूर्वपञ्चकस्य पञ्चमीं कलामवलम्ब्योत्तरोत्तरस्य पञ्चकस्य प्राथमिकी परिस्फुरति । एवमुत्तरोत्तरपञ्चकप्रथमस्फुरत्तानामधोधःपञ्चकपर्यन्तशक्तिषु विश्रान्त्यनुभव इत्युत्पलदलदशशतविदलनलाघवोल्लासवत् क्रमसङ्घावेऽप्यसंलक्ष्यक्रमा पारमेश्वरी पञ्चकृत्यचक्रनिर्व्यूढिरत्यन्तगाढाभ्यासैः प्रौढैः कैश्चिद् विमृष्टव्यतयाऽवतिष्ठते । इत्थमेव क्रमपरामर्श एव स्वात्मविमर्शरूपो जीवन्मोक्ष इति ।

वैष्णवदार्शनिकैर्जीवन्मुक्तिर्नाङ्गीक्रियते । तथाहि रामानुजेन समन्वयाधिकरणभाष्ये—"तत एव जीवन्मुक्तिरपि दूरोत्सारिता" इत्यादिना "अतः सकलभेदनिवृत्तिरूपा जीवन्मुक्तिर्जीवतो न संभवति" इत्यन्तेन ग्रन्थेन प्रत्याख्याता सा । एष च प्रत्याख्यानप्रकारः स्वात्मविमर्शरूपायां सर्वसाम्यस्वभावायां स्वस्वरूपावस्थितिप्रख्यायां जीवन्मुक्तौ सर्वथा न घटत इति नासंभावनादोषग्रस्तः स्वातन्त्र्याद्वैतवादिनां जीवन्मोक्षः ।

उपसंहारः

एवमत्र महार्थमञ्जर्यां परिमले च प्रतिपादिताः केचन सांस्कृतिका दार्शनिकाश्च विषया यथामति विवेचिताः । अत्र षट्त्रिंशत्तत्त्वानां स्फुरणप्रकारः, श्रीपीठ-पञ्चवाह-नेत्रत्रय-वृन्दचक्रप्रतिपादनपरः क्रमसपर्याविधिश्च विस्तरेण प्रतिपादितो ग्रन्थाध्ययनेनैव परिज्ञायेतेति कृत्वा नास्माभिरालोचितः । क्रमदर्शने कालीनां द्वादशविधत्वं त्रयोदशविधत्वं वेत्यत्र पक्षद्वयं तन्त्रालोकविवेके चतुर्थाह्निके १७३ तमश्लोकव्याख्यायां जयरथेन विस्तरेण प्रतिपादितम् । अत्र परिमलकारो महानयप्रकाशप्रामाण्येन कालीनां त्रयोदशविधत्वमेवाङ्गीचकार (पृ० १०१) । अधुना एतावदेवोक्त्या विरम्यते ॥

सात्वतीयं दर्शनम्

अलशिङ्गभट्टविरचितेन भाष्येण सहिता सात्वतसंहिता पाञ्चरात्रागमीया न चिरादेव सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयतः प्रकाशिता भविष्यति। तदाधारीकृत्य किञ्चिदिवात्र सात्वतीयं दर्शनं विव्रियते।

आगमग्रन्थेषु संहिताग्रन्थेषु च [1]ज्ञान-योग-क्रिया-चर्यात्मकः पादविभागो[2] दृश्यते, किन्तु त्रिरत्ननाम्ना प्रख्यातासु सात्वत-पौष्कर-जयाख्यासु तन्नास्ति[3]। अथापि ज्ञान-योग-क्रिया-चर्यापादेषु प्रतिपादिताः सर्वे विषयाः संक्षेपेण विस्तरेण वा प्रकरणबद्धा विप्रकीर्णा वा तासु विद्यन्त एव। जयाख्यसंहितायाम्,

---

१. "पशुपाशपतिज्ञानं ज्ञानमित्यभिधीयते। षडध्वशुद्धिर्विधिना गुर्वधीना क्रियोच्यते॥ वर्णाश्रमप्रयुक्तस्य मयैव विहितस्य च। ममार्चनादिधर्मस्य चर्या चर्येति कथ्यते॥ मदुक्तेनैव मार्गेण मय्यवस्थितचेतसः। वृत्त्यन्तरनिरोधो हि योग इत्यभिधीयते॥" (७।२।१०।३१-३३) इत्येवं शिवपुराणे तेषां लक्षणानि दृश्यन्ते, "विवेको यत्र तत्त्वानां कार्यकारणभेदतः। यथावदुचितं वस्तु हेयं चैवोपचर्यते॥ विद्यापादः स विज्ञेयः" (२।८-९), "मुद्रामण्डलमन्त्राणां लक्षणं साधकात्मनाम्। आचार्याणां च ········क्रियापादः स विज्ञेयः॥" (२।१०-११), "यत्रोपायो विरक्तानां षडङ्गः सुमहात्मनाम्॥ रागिणामपि भोगार्थं योगपादः स उच्यते।" (२।११-१२), "समयाचारसद्भावस्थितिः स्वाम्नायलक्षणः। चर्यापादः स उद्दिष्टः" (२।१३) इति च मतङ्गपारमेश्वरे विद्यापादे। अत्र ज्ञानं विद्येत्यनर्थान्तरम्। विभिन्नेष्वागमेषु लक्षणानामेतेषां संकरोऽपि दृश्यत इत्यजितागमप्रथमभागसंस्कृतोपोद्घाते (पृ० १०-११) पाण्डिचेरीमुद्रिते द्रष्टव्यम्।

२. वैष्णवशैवशाक्तादिष्वागमेषु बौद्धशाक्तादिषु तन्त्रेषु चैष पादविभागो दृश्यते। तत्र बौद्धेषु तन्त्रेषु ज्ञानपदस्य स्थानेऽनुत्तरपदं प्रयुज्यते। शैवेष्वागमेषु च विद्यापादनाम्ना प्रथमः पादः प्रसिद्ध्यति।

३. पादविभागो न दृश्यत इत्यतोऽपि पादविभागात्मकसंहितागमापेक्षया रत्नत्रयस्य प्राचीनता प्रसिद्ध्यति। संहितात्रयेऽपि वर्तते सात्वतायाः परिच्छेदविभागात्मकं वैशिष्ट्यम्। संहिताग्रन्था आगमग्रन्थास्तन्त्रग्रन्था वा पटलेष्वध्यायेषु वा विभक्ता दृश्यन्ते। यथा जयाख्यायां पटलविभागः, पौष्करायां चाध्यायविभागः। परिच्छेदविभागस्तु सात्वतां विहाय क्वाप्यन्यत्र नावलोक्यते।

अहिर्बुध्न्यसंहितायाम्, लक्ष्मीतन्त्रे वा यथा ग्रन्थारम्भे साटोपं दार्शनिकं[१] विवेचनं वर्तते, न तथा दृश्यते सात्वतपौष्करयोः[२]। सात्वतसंहितायां दर्शन-प्रतिपादका अंशाः प्रायः सम्पूर्णे ग्रन्थे विप्रकीर्णा वर्तन्ते। तान् संगृह्यात्र त्रिविधपरब्रह्मस्वरूपं मन्त्रात्मकं तदुपासनविधिं च संक्षेपेण समुपस्थापयामः।

त्रिविधं परं ब्रह्म

"त्रिविधेन प्रकारेण परमं ब्रह्म शाश्वतम्। आराधयन्ति ये तेषां रागस्तिष्ठति दूरतः॥" (१।२३) इति परब्रह्मणस्त्रिविधां सत्तां संसूच्य— "षाड्गुण्यविग्रहं देवं भास्वज्ज्वलनतेजसम्। सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्॥ परमेतत् समाख्यातमेकं सर्वाश्रयं प्रभुम्।" (१।२५-२६) इत्येवं परब्रह्मणः स्वरूपमत्र वर्णितम्। तदनु—"एतत्पूर्वं त्रयं चान्यज्ज्ञानाद्यैर्भेदितं गुणैः॥ विद्धि तद् व्यूहसंज्ञं सन्निःश्रेयसफलप्रदम्।" (१।२६-२७) इत्येवं वासुदेवसङ्कर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धाख्यस्य व्यूहचतुष्टयस्य स्वरूपं निरूप्य, "मुख्यानुवृत्तिभेदेन युक्तं ज्ञानादिकैर्गुणैः। नानाकृतिं च तद्विद्धि वैभवं भुक्तिमुक्तिदम्॥" (१।२७) इति संक्षेपेण विभवस्वरूपं व्याख्यातम्।

अत्र पराशरभट्टपादा विष्णुसहस्रनामभाष्येऽमुमेव ग्रन्थं व्याकुर्वन्त एवमाहुः—"परव्यूहविभवात्मना त्रिविधं परंब्रह्मेति भागवतसिद्धान्तः। तत्र परं-

---

१. जयाख्याया दार्शनिकं विवेचनं डॉ० सुरेन्द्रनाथदासगुप्तकृते दर्शनेतिहासे तृतीये खण्डे, अहिर्बुध्न्यसंहिताया डॉ० श्रादरकृते भूमिकाग्रन्थे, लक्ष्मीतन्त्रस्य च डॉ० अशोककुमारकालियाविरचिते "लक्ष्मीतन्त्र : धर्म और दर्शन" इत्याख्ये ग्रन्थे द्रष्टव्यम्।

२. त्रिरत्नेष्वेकतमायाः श्रीरङ्गक्षेत्रे मानितायाः पौष्करसंहिताया अद्यावधि शोभनं संस्करणं नाभूदिति खेदावहोऽयं विषयः। पारमेश्वरसंहितापराशरभट्टकृतविष्णुसहस्रनामभाष्यादिविविधग्रन्थसाहाय्येन कार्यमेतत्सम्पादयितुं शक्यते। यथा हि— "केशवः क्लेशहा लोके द्वैरूप्येण क्षितौ स्थितः। मथुराख्ये महाक्षेत्रे वाराणस्यामपि द्विज॥" इत्यत्रत्य उत्तरार्धः पौष्करसंहितायां ग्रन्थस्य त्रुटितत्वान्न दृश्यते (३६।३०६)। विष्णुसहस्रनामभाष्ये तु पराशरभट्टेन केशव(६५४)-शब्दव्याख्यानावसरे सम्पूर्णः श्लोको धृतः। अत्र वाराणस्यां स्मृतः केशवोऽयमादिकेशवादभिन्नः स्यात्। कृष्णमिश्रेण प्रबोधचन्द्रोदयनाटके वाराणसीवसतेरादिकेशवस्यायतनमेवं वर्ण्यते—"पश्य पश्य! तदिदं सुरसरित्परिसरालङ्कारभूतं भगवतः पावनमनादेरादिकेशवस्य विष्णोरायतनम्" (पृ० १६१) इति।

नामाकार्थं कार्यादनवच्छिन्नपूर्णषाड्गुण्यमहार्णवोत्कलिकैकातपत्रीकृतनिस्सम-नित्यभोगविभूतिकं मुक्तोपसृप्यमनौपाधिकमवस्थानम्। व्यूहश्च मुमुक्षुसिसृक्षया प्रदेयसृष्टिस्थितिलयाः शास्त्रतदर्थतत्फलानि ध्यानाराधने लीला चेतीदृशकार्योपयुक्तविभक्तपरगुणरूपव्यापारशीकरव्यूहनिर्वाहितलीलाविभूतिकं मुक्तिसाधकं चतुर्धावस्थानम्। विभवश्च तच्छायः सुरनरतिर्यगादिः स्वविभवसजातीय ऐच्छः प्रादुर्भावविवर्ग इति। ...... तत्र प्रादुर्भावाः केचित् साक्षात्, यथा मत्स्यकूर्मादयः। अन्ये तु ऋष्यादिविशिष्टपुरुषाधिष्ठानेन, यथा भार्गवरामकृष्णद्वैपायनादयः। अपरे काले शक्त्यावेशेन, यथा पुरञ्जयादिषु[1]। इतरे च व्यक्तिषु स्वयमेवावतीर्य, यथार्चावतार इति चतुर्धा" (पृ० १८२) इति।

अत्र पराशरभट्टारकेण विभवानां चातुर्विध्यं प्रदर्श्याऽर्चावतारस्य तत्रैवान्तर्भावः प्रदर्शितः। लक्ष्मीतन्त्रे तु—"अर्चापि लौकिकी या सा भगवद्भावितात्मनाम्। मन्त्रमन्त्रेश्वरन्यासात् सापि षाड्गुण्यविग्रहा। पराद्यर्चावतारेऽस्मिन् मम रूपचतुष्टये।" (२।५९-६०) इत्येवं चातुर्विध्यं परब्रह्मणः प्रतन्यते। अत्रार्चावतारस्य स्पष्टं पृथङ्निर्देशो विद्यते। तत्र केचन परव्यूहविभवानां त्रयाणामप्यर्चारूपत्वसंभवादर्चावतारस्य परादिषु त्रिष्वन्तर्भावं प्रदर्शयन्ति। तन्नेति भाष्यकारोऽलशिङ्गभट्टः। तथा हि—"वासुदेवसङ्कर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धाख्यव्यूहानामेव श्रीकृष्णबलभद्रप्रद्युम्नानिरुद्धरूपेणावतीर्णत्वेऽपि तेषां यथा विभवत्वमेव न व्यूहत्वम्, तथा परव्यूहविभवानामर्चावताररूपेणावतीर्णत्वेऽपि तेषां विभवेष्वेवान्तर्भावः, न तु परव्यूहयोरिति" (पृ० १०) इति।

वस्तुतस्तु—"गुणकल्पनयाऽध्यस्तो गुणोन्मेषकृतश्रमः। मूर्तीभूतगुणश्चेति त्रिधा मार्गोऽयमद्भुतः॥" (२।३९) इत्येवं लक्ष्मीतन्त्रेऽपि त्रैविध्यमेव परब्रह्मणो वर्ण्यते। "व्याप्तिमात्रं गुणोन्मेषो मूर्तीकार इति त्रिधा" (५।२०) इत्यहिर्बुध्न्यवचनस्यैव व्याख्यानमेतत्। तथापि—"मूर्तीभूतगुणत्वरूपं विभवत्वं विभवार्चावतारयोरुभयत्रापि समानम्" (पृ० ११) इति भाष्यकारदिशा लक्ष्मीतन्त्रोक्तं परब्रह्मणश्चातुर्विध्यमपि समर्थनीयम्। एवं च सात्वतनिष्ठैर्ब्रह्मणस्त्रैविध्यम्, लक्ष्मीतन्त्रानुयायिभिश्च चातुर्विध्यमुपासितव्यमिति सर्वं सुस्थम्।

तत्त्वत्रयव्याख्यानधृतविष्वक्सेनसंहितायां तु परब्रह्मणः [2]पर-व्यूह-विभव-अन्तर्यामि-अर्चावतारभेदेन पञ्चप्रकारत्वमुपदिश्यते। तथैवोपपादितमेतत् तत्त्वत्रये

१. शक्त्याविष्टस्य पुरञ्जयस्य कथानकमेतत्—"तेजसाऽऽप्यायितो विष्णोः पुरुषस्य महात्मनः" (९।६।१६) इत्येवं श्रीमद्भागवते वर्ण्यते।

२. वरवरमुनिविरचितव्याख्यानसहिततत्त्वत्रयस्य वाराणसीमुद्रितं द्वितीयसंस्करणमवलोकनीयम्।

तद्व्याख्याने[1] च। यतीन्द्रमतदीपिकाकारश्रीनिवासदासादयो[2] रामानुजसम्प्रदायानुयायिनः श्रीवैष्णवास्तदेतत् पञ्चविधं परं ब्रह्मैवोपासते। एवं चातुर्विध्ये पाञ्चविध्ये वा सत्यपि सात्वतनिष्ठैस्त्रिविधं परब्रह्म उपास्यते। विभवावतारस्य पराशरभट्टारकदिशा चातुर्विध्ये स्वीकृते न कोऽपि विरोधोऽत्रावशिष्यते। "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥" (१८।६१) इति भगवद्गीतोक्तान्तर्यामिस्वरूपस्य ब्रह्मणः सत्त्वं सिद्ध्यत्येव। अत्रापि—"परमेश्वरः। स्थितोऽन्तर्यामिभावेन रूपमासाद्य निष्कलम्॥" (९।९६-९७) इत्येवं ब्रह्मणोऽन्तर्यामित्वं निष्कलत्वं[3] च प्रतिपाद्यते। एवं सत्यपि सात्वतायां त्रिविधस्य परब्रह्मण एवोपासना सविस्तरं वर्णिता।

परब्रह्मलक्षणम्

"सर्वगं परमं ज्योतिरमूर्तममलं हि यत्॥ स एव वासुदेवेति" (८।५२-५३), "महत्तु सततोदितम्" (८।५६) इति सततोदितं वासुदेवाख्यं परंब्रह्म [4]भूतवास(८।१५१)पदेन, "नारायणः परं ब्रह्म" (१७।४१९) इति [5]नारायणपदेन च प्रोच्यते। "चिदानन्दघनः शान्तः" (६।२१२) इति,

१. तत्रैव १०१-१२० पृष्ठानि द्रष्टव्यानि।

२. यतीन्द्रमतदीपिका पुण्यपत्तनस्थानन्दाश्रमग्रन्थावलिप्रकाशिता (१९३४ ई० वर्षीयं द्वितीयं संस्करणम्, पृ० ८३-८९) द्रष्टव्या। डॉ० श्रादरमहोदयेनापि स्वकीये भूमिकाग्रन्थे शुद्धसृष्टिनिरूपणप्रकरणे तत्त्वत्रय-तद्भाष्य-यतीन्द्रमतदीपिकासाहाय्येन तदेतत् पञ्चविधं परंब्रह्म व्याख्यातम्।

३. ब्रह्मणो निष्कलं सकलं च स्वरूपं तन्त्रागमेषु प्रतिपाद्यते। अत्रापि विभवपरिच्छेदे तत्प्रदर्शितम्। अन्तर्यामितया निष्कलात्मना च स्थित आप्तकामो भगवान् स्वव्यापारवशेन स्वां शक्तिमवलम्ब्य पद्मनाभाद्यात्मना सकलं स्वरूपं धारयति (९।९७-९८)। विभवात्मकोऽयं भगवानत्र निष्कलात्मना सकलात्मना चार्च्यत्वेन वर्णितः (९।११४-११५)।

४. "वसन्ति त्वयि भूतानि भूतावासस्ततो हरे" इत्येवं विष्णुसहस्रनामभाष्ये पराशरभट्टेन भूतावासशब्दो व्याख्यातः। एवं च भूतावासपदं वासुदेवस्यैव पर्यायान्तरम्।

५. "आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः। अयनं मम तत् पूर्वमतो नारायणो ह्यहम्॥" (महाभारते शान्तिपर्वणि ३४१।४०)। "ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः" (१।१०) इति मनुस्मृतौ पाठान्तरम्। नारायणीयोपाख्यानेऽत्र वासुदेव एव नारायणो निर्दिष्टः। रामानुजीये च दर्शने लक्ष्मीनारायणाख्यं मह एव परब्रह्मत्वेनोपास्यते। तथैव च प्रतिपाद्यते लक्ष्मीतन्त्रेऽपि (१।१; २२।५) इत्यादिषु स्थलेषु।

"चिच्छक्तिलक्षणं ब्रह्म त्वाह्लादानन्दलक्षणम्" (२०।१३) इति च तस्य चिदानन्दलक्षणत्वं बोध्यते। "सद्ब्रह्म वासुदेवाख्य" (२।४) इति सदात्मकत्वं प्रतिपादितमेव। एवं च सच्चिदानन्दलक्षणत्वं ब्रह्मणोऽत्रापि स्वीक्रियते। तदेतस्य परस्य ब्रह्मण आराधनाय द्वितीये परिच्छेदे "ॐ शान्तोदितविज्ञानप्राणाय" (पृ० १७) इत्यादिकं मन्त्रमुद्धरन्त्या सात्वतया दशाद्वयमुररीक्रियते। तत्र प्रथमा सततोदिता नित्योदिता वा, अपरा च शान्तोदिता सञ्ज्ञीयते।

परब्रह्मणो दशाद्वयम्

तत्र सततोदितया नित्योदिताऽपरनामधेयया दशया युक्तः परवासुदेव इति, शान्तोदितया च दशया युक्तो व्यूहवासुदेव इत्युच्यते। परवासुदेवे षाड्गुण्यं स्तिमितं व्यूहवासुदेवे च प्रबुद्धमवतिष्ठते। शान्तोदितो व्यूहवासुदेवः षाड्गुण्य-महिम्ना यथायथं शान्तेषु चतुर्षु गुणेषु प्रबुद्धयोश्च द्वयोर्द्वयोर्गुणयोः साहाय्येन क्रमशः सङ्कर्षण-प्रद्युम्न-अनिरुद्धाख्यानि त्रीणि रूपाणि धत्ते। एवं च पर-ब्रह्मणश्चातुरात्म्यं निष्पन्नं भवति। व्यूहदीक्षावसरे तदेतत्—"चतुरात्मान-मव्यक्तं शब्दमूर्तिं निराकृतिम्। गुणमात्रैर्विभिन्नं च" (१८।२०७-२११) इत्यादिषु श्लोकेषु वर्ण्यते। चातुरात्म्यं चैतज्जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुर्याख्येषु चतुर्षु पदेष्व-वतिष्ठते। तत्र तुर्यपदस्थिते परब्रह्मणि चातुरात्म्यं स्तिमितं भवतीत्येकमूर्तिपदेन तदुच्यते, एकेनैव च मन्त्रेण तदाराधनं क्रियते। सुषुप्तिस्वप्नजाग्रत्पदेषु च चातुरात्म्यस्य प्रबुद्धत्वात् तदाराधनाय पृथक्-पृथक् चत्वारो मन्त्रा विनियुज्यन्ते।

सात्वतसंहितायां द्वितीये परिच्छेदे एकमूर्तीयस्याऽव्यक्तस्य गुणमात्र-लक्ष्यस्य पराभिन्नस्य तुर्यव्यूहस्य, तृतीये सुषुप्तिव्यूहस्य, चतुर्थे स्वप्नव्यूहस्य, पञ्चमे च परिच्छेदे जाग्रद्व्यूहस्यान्तर्यागविधिः समासेनोदितः। अन्तर्याग-बहिर्यागभेदेन द्विविधं यजनं भवतीति जानन्त्येवागमतत्त्वविदो विद्वांसः। "यागो बिम्बादिषु भगवदर्चनम्" (पृ० १९) इति चाह भाष्यकारः। अन्तर्यागे बिम्बादीनां स्थितिर्न भवतीति तत्र मन्त्रात्मके[1] स्वरूपे भगवानर्च्यते। अतो द्वितीयादिपञ्चमान्तेषु चतुर्षु परिच्छेदेषु तुर्यसुषुप्तिस्वप्नजाग्रत्पदस्थस्य भगवतो मन्त्राः समुद्धृताः।

परस्यापि चतूरूपत्वम्

अत्र भाष्यकारपद्धत्या किञ्चिद्विचार्यते—ननु तर्हि शान्तोदितापरनामधेय-तुर्यव्यूहचतुर्मूर्तिप्राधान्यं किमिति वर्ण्यते? इति चेच्छृणु—"अभेदेनादिमूर्तेर्वै

१. अन्तर्यागविधिरत्र मन्त्रात्मक उपदिष्टः, न तु कुण्डलिनीयोगपर इति विभावनीयम्।

संस्थितं 'वटबीजवत्'' (५।८१) इत्युक्त्यनुसारेण परसंज्ञस्य तद्व्यूहस्य परात्परवासुदेवाद्यभिन्नत्वात्। अत एव सुषुप्त्यादिव्यूहवत् प्रत्येकं तद्व्यहवाचकमन्त्राणामत्रानुक्तिः, परात्परमन्त्रेणैव तस्यापि चारितार्थ्यात्। एवं च परात्परदशायामिव परत्वेऽपि वासुदेवस्यैकस्यैव प्राधान्यं ज्ञेयम्। तर्हि एवमभिन्नत्वे पुनः केन तयोर्भेद इति चेत्, नित्योदितत्वेनेति बोध्यम्। नित्योदितत्वं नाम स्वविभूत्यनुभवदशाविशिष्टत्वम्। शान्तोदितत्वं नाम स्वात्ममात्रानुभवदशाविशिष्टत्वम्।

ननु चैवं शान्तोदितव्यूहेऽप्येकमूर्तिप्राधान्ये व्यूहशब्दस्य स्वारस्यं न सम्भवतीति चेदुच्यते—किं व्यूहशब्दमात्रेण चतुर्णां प्राधान्यमङ्गीकार्यम्? यद्येवमङ्गीक्रियते, तदा—"नित्योदितस्य व्यूहस्य तथा शान्तोदितस्य च" (ईश्व० ८।५२; पार० ८।५१), "यत्र शान्ततरं व्यूहं शान्तोदितमनन्तरम्" (ईश्व० २०।१९८; पार० १९।५३३), "परात्परस्वरूपस्य परस्य चतुरात्मनः। शान्तोदितादिव्यूहानाम्" (पार० १५।२१), "सदोदितस्वरूपस्य वासुदेवस्य वै विभोः। त्रयाणामच्युतादीनां तद्भेदानां तथैव च॥ शान्तोदितस्वरूपस्य परस्य चतुरात्मनः।" (पार० १५।२३-२४) इत्येवमादीनामीश्वरपारमेश्वरवचनानां सर्वत्र परात्परत्वसंज्ञायां नित्योदितदशायाम्, परत्वसंज्ञायां शान्तोदितदशायां च वासुदेवादिचातुरात्म्यसद्भावप्रतिपादकानां का गतिः स्यात्? अतो यद्यपि व्यूहचातुरात्म्यशब्दौ सर्वावस्थासाधारणौ, अर्थाज्जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुर्याख्यासु[२] सर्वास्ववस्थासु स्थितस्य परात्परवासुदेवस्य वाचकौ, तथापि परात्परत्वदशायां परत्वदशायां (तुर्ये व्यूहे) च वासुदेवस्यैव प्राधान्यम्, एक एव मन्त्रः, तदर्चनेनैवोपसर्जनीभूतानामन्येषामप्यर्चनसिद्धिरिति ज्ञेयम्।

---

१. वटबीजान्तर्गतवटवृक्षीयसूक्ष्मरूपतुल्यशब्दसृष्टिसूक्ष्मरूपशालिनी पूर्वोक्तरूपा त्रिपुरसुन्दर्येव तादृशसूक्ष्मरूपवत्त्वप्रवृत्तिनिमित्तकपराशब्दवाच्या" (पृ० १७) इति वरिवस्यारहस्ये भास्करराय:। तद्वदेव सर्वोऽपि चातुरात्म्यप्रपञ्चोऽभेदेन परस्मिन् ब्रह्मणि वासुदेवे स्थित इति भावः।

२. जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुर्याख्यं पदचतुष्टयं लक्ष्मीतन्त्रे (२२।२२-२७) विवृतमत्र भाष्ये (पृ० ३१) समुद्धृतं द्रष्टव्यम्। एतच्च पदाध्वनो रूपम्। तुर्यवर्जमेतद्धेयकोटौ स्थाप्यते। एवं च पदाध्वन एतत्स्वरूपं शैवशाक्तसम्मतपदाध्वापेक्षया विलक्षणमिति ज्ञेयम्। पदाध्वनो हेयत्वादेवात्र पदात्मनो मन्त्रस्यापि जाग्रद्वृत्तित्वं स्थूलत्वं (पृ० १७५) चाप्यभ्युपगतम्।

अत्रेदं बोध्यम्—सात्वतायां द्वितीये परिच्छेदे तुर्यव्यूहस्य एक एव मन्त्रः समुद्धृतः। सुषुप्त्यादिव्यूहत्रयाणां च चत्वारश्चत्वारो मन्त्राः समुद्ध्रियन्ते। तदनुरोधेन तुर्ये व्यूहेऽपि चत्वारो मन्त्रा अपेक्षिता आसन्। न केवलं भाष्ये, संहितायामपि हि चातुरात्म्यचतुष्टयं प्रतिपाद्यते (५।८०-८७)। यदा तुर्ये व्यूहेऽपि चातुरात्म्यं भासते, तदा तत्रापि चत्वारो मन्त्रा विनियोक्तव्या आसन्निति किल भवति स्वाभाविकी शङ्का। तस्या एवं परिहारः क्रियते—पर-व्यूह-विभवाख्यं त्रिविधं खलु ब्रह्म अत्र प्रतिपाद्यते। तत्र द्वितीये परिच्छेदे परस्वरूपस्य विवरणं वर्तते। तृतीयचतुर्थपञ्चमपरिच्छेदेषु च व्यूहस्वरूपस्य सुषुप्तिस्वप्नजाग्रत्पदस्थितस्य वर्णनं भवति। तदेतद् व्यूहाख्यं ब्रह्म चातुरात्म्यपदेनाप्युच्यते। एतच्च चातुरात्म्यं परस्वरूपेऽव्यक्तदशायां तिष्ठतीति तत्रापि चातुरात्म्यपदप्रयोगो भवति, तुर्यव्यूहनाम्नाऽपि च तदुच्यते। अत्र च नित्योदितशान्तोदिताख्यं दशाद्वयमङ्गीक्रियते। नित्योदितदशा [1]परात्परवासुदेव इति, शान्तोदितदशा च परवासुदेव इत्युच्यते। एवमुभयोरपि दशयोरत्र वासुदेवस्यैव प्राधान्यम्, अन्यस्य सङ्कर्षणादित्रयस्य, अच्युतादित्रयस्य[2] च तदाऽव्यक्तरूपेणैवावस्थानात्। एतच्च स्पष्टमेवोक्तं संहितायाम्—"अभेदेनादिमूर्तेर्वै संस्थितं वटबीजवत्" (५।८१) इति। एवं

---

१. एवं च परात्परवासुदेव इति परवासुदेव इति पदद्वयं दशाद्वयद्योतनाय प्रयुक्तम्। वस्तुतस्तु परवासुदेवो नित्योदितः, व्यूहवासुदेवश्च शान्तोदित इत्युच्यते, "एतत्पूर्वं त्रयं चान्यद् ज्ञानाद्यैर्भेदितं गुणैः" (१।२६) इत्यत्र, "अत्रापि पूर्वमेवोक्तं रूपमस्योपचर्यते" (३।८) इत्यत्र च तथैव प्रतिपादनात्। एवमेवोपबृंहितमहिर्बुध्न्यसंहितायां पञ्चमाध्याये, लक्ष्मीतन्त्रेऽपि च द्वितीयदशमयोः। अस्यां स्थितौ विष्वक्सेनसंहितानुसारं परवासुदेवस्यैवैतद् दशाद्वयमिति भाष्यकारव्याख्यानं सुखावबोधफलकमवसेयम्। अत एवास्माभिः परब्रह्मणो दशाद्वयव्याख्यानावसरे सात्वताद्युक्त एव क्रमो मुख्यत्वेन वर्णितः।

२. "अच्युताद्या मूर्तयस्तिस्रः" (पृ० २९) इति, "सङ्कर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धानामेवाच्युत-सत्यपुरुषापरनामधेयत्वं बोध्यम्" (पृ० २९) इति च भाष्यकारः। एताश्च वासुदेव-अच्युत-सत्य-पुरुषाख्याश्चतस्रो मूर्तयोऽप्ययक्रमेण विदिक्षु पूज्यन्ते (पृ० ८८)। एतासां चत्वारो मन्त्राः (पृ० ५५, ८८, १०५, १३३) अत्र द्रष्टव्याः। जयाख्यायां मूर्तिचतुष्टयस्यास्य स्वरूपादिकमवलोकनीयम् (४।२-१३)। वैखानसास्तु पुरुष-सत्य-अच्युत-अनिरुद्धाख्यं मूर्तिचतुष्टयं समाराधयन्ति। एतच्चात्रैव (पृ० २९) भाष्ये वर्णितं द्रष्टव्यम्, अत्रोद्धृतं महाभारतीयं सार्धश्लोकद्वयं दाक्षिणात्ये पाठ एव समुपलभ्यत इति च विभावनीयम्।

चादिमूर्तेर्वासुदेवस्यैव प्राधान्यप्रदर्शनाय, तुर्यव्यूहापराभिधस्य परस्वरूपस्याराधनाय च एक एव मन्त्रोऽत्र निर्दिष्ट इति।

एवमत्र सात्वतायामेकमूर्तेः परात्परवासुदेवस्य, व्यूहानां वासुदेवादीनां तुर्याद्यवस्थाभेदस्याखिलस्यावतारक्रमो ध्यानं मन्त्रपूर्वकमर्चनं च प्रोक्तम्। अत्रायं विशेषोऽवगतव्यः—अस्पन्दलक्षणमलोलीभूतं नित्योदितं परात्परं भगवन्तं तुर्यात्मना तुर्यरूपेणाभिन्नं स्मरेत्। षाड्गुण्यविग्रहमाद्यं[1] चातुरात्म्यम्, अर्थाच्चातुरात्म्यचतुष्टये प्रथमं सुषुप्तिपदस्थं वासुदेवं च "यद्यप्यरूपो भगवान्" (३।८) इत्युक्तदिशाऽलाञ्छनं स्मरेत्, अन्यत् त्रितयं (सङ्कर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धाख्यं) च पारमेश्वरं सामर्थ्यं सृष्ट्यर्थं लोलीभूतं स्मरेदिति।

यः साधको विशेषव्यक्तिलक्षणं परव्यूहविभवाख्यतत्तन्मूर्तिविशिष्टं भगवन्तमर्चितुमिच्छति, तं साधकं स्वबुद्ध्या संकल्प्य स्वाभिमुखं ज्ञात्वा तत्कालसमनन्तरं तदिच्छासमनन्तरमेवं ध्रुवा पारमेश्वरी सामर्थ्यशक्तिः स्वयमेव स्पन्दतामेति, मन्त्री साधको यत्र कृतास्पदो यन्मन्त्रसाधनमिच्छति तन्मन्त्रमग्निकणवत् सूते च। तत्स्पन्दनमात्रेणाग्नेः स्फुलिङ्गवन्मन्त्रः समुद्भूतो भवतीति भावः। तन्मन्त्रमाकाशात् तारकमिव हृत्कमलकर्णिकामध्ये आगतं भावयेत्। तन्मन्त्रमध्यादाराध्यं मन्त्रनाथमादिमूर्तिस्वरूपेण परवासुदेवरूपेण, चतुर्मूर्तिस्वरूपेण, एकैकमूर्तिस्वरूपेण, आहोस्विन्नानाऽऽकृत्यात्मना वैभवीयेन क्रमेण पद्मनाभादिभेदेन वा उदितं स्मरेत्। इति शम्॥

१. षाड्गुण्यविग्रहमाद्यं चातुरात्म्यमित्यनेन व्यूहवासुदेवोऽभिप्रेत इति मन्तव्यम्।

शक्तिसंगमतन्त्रविषये किञ्चित्

अस्य ग्रन्थस्य कालीखण्डाख्यः प्रथमो भागः १९३२ ई०, ताराखण्डाख्यो द्वितीयो भागः १९४१ ई०, सुन्दरीखण्डाख्यस्तृतीयो भागः १९४७ ईशवीये वर्षे प्रकाशित आसीत्। ततः परं ग्रन्थस्याऽस्य सम्पादकाः श्रीमन्तो डॉ० विनयतोषभट्टाचार्यमहोदया भगवत्यास्त्रिपुरसुन्दर्या धाम मणिपुरमधिगतवन्त इति हेतोः प्रकाशनमवरुद्धमासीत्। त्रिंशद्वर्षानन्तरमधुनाऽचिरादेवाऽस्य चतुर्थो भागश्छिन्नमस्ताखण्डाख्यः प्रकाशयिष्यते।

नामान्तराणि वैशिष्ट्यं च

सरस्वतीभवनपुस्तकालयेऽस्य ग्रन्थस्य चतुर्णामपि खण्डानां प्रायोऽष्टादशमातृका अस्माकं दृष्टिपथमायाताः। षट्शाम्भवरहस्यमस्यैव ग्रन्थस्य तृतीयः खण्डः, तारासूक्तमिति च चतुर्थस्य खण्डस्याऽपरं नामधेयम्। सम्मोहनतन्त्रमपि शक्तिसंगमचतुर्थखण्डादभिन्नमेवेति सप्रमाणं साधितमस्माभिरन्यत्र। तेन हि सम्मोहनतन्त्रमेतत् कम्बुजशिलालेखसमुद्धृतात् सम्मोहनतन्त्रादभिन्नमेवेति डॉ० प्रबोधचन्द्रबागचीमहोदयानां रिक्तमेतद्वचः।

प्रायोऽशीतिसंख्याकानां ग्रन्थानां सार्धशताधिकसम्प्रदाय-मत-क्रम-मार्गादीनां च परिचायकस्याऽस्य ग्रन्थस्य वैशिष्ट्यमङ्गीकर्तव्यमेव। प्राचीनेषु तन्त्रेषु नाऽस्य परिगणनं स्मरणं वेत्येतावता नाऽस्य महत्त्वं हीयते। अन्यत्राऽनुपलब्धानामनेकेषां ग्रन्थनाम्नां तद्विषयाणां लुप्तप्रायाणामनेकेषां सम्प्रदायानामाचार्याणां च विशिष्टानां मतानामत्र समुपलम्भाद् ग्रन्थोऽयं तान्त्रिकविश्वकोशस्य महिमानं धत्ते। अस्मादेव वैशिष्ट्यादयं न कस्याप्येकस्य सम्प्रदायस्य ग्रन्थ इति वक्तुं शक्यते। अत्र हि प्रायः सर्वेष्वेव प्रकरणेषु विभिन्नेषु सम्प्रदायेषु कृतपदानां सूक्ष्मतमानां विषयाणां विश्लेषणं दरीदृश्यते। यद्यपि पटलसमाप्तिपुष्पिकासु विषयनिर्देशो विद्यते, किन्तु तद्भिन्नानामपि नैकेषां विषयाणां तत्र वर्णनं समस्ति। त एव विषयाः पटलान्तरेषु खण्डान्तरेषु च प्रतिपादिताः। प्रसङ्गेऽस्मिन्—"पुनरुक्तिर्न मन्तव्या विद्याभेदाद्विशेषता" (i ५.१०१) इत्युक्तिरवश्यमेव स्मृतिपदवीमानेतव्या।

प्राचीनेषु तन्त्रेषु यथा दार्शनिका विचारा योगशास्त्रीयाश्च प्रक्रिया विस्तरेण प्रतिपाद्यन्ते, न तथा नवीनेषु तेषु। तन्त्रस्याऽस्याऽऽविर्भावकालोऽर्वाचीन

इति कृत्वा सैव स्थितिरत्राप्यवलोक्यते। चतुर्थखण्डसमाप्तौ षड्विधवन्ध्याना-मपस्मारब्रह्मराक्षसादीनां च वर्णनमप्रासङ्गिकमिव प्रतीयते, किन्तु ततः प्राग् द्विविधशाबरमन्त्रप्रतिपादनानन्तरम्—"तेन शाबरमन्त्रेण सर्वदोषान् निवारयेत्" (११.१५) इत्युक्तेः के के दोषाः शाबरमन्त्रप्रभावेण परिहृता भवन्तीति विषय-स्याऽस्य प्रतिपादनमुखेनैव तेषां दोषाणां वर्णनमत्र कृतमिति मन्तव्यम्।

अवतारकालो देशश्च

शङ्करोत्पत्तितः देवि महाकलियुगे शिवे।
वर्षसाहस्रकस्याऽन्ते त्रिंशद्वर्षोत्तरं शिवे॥
तन्त्रस्याऽस्य महेशानि प्रकाशोऽत्र भविष्यति।
(iv. ८.२१७-२१८)

इत्येवमत्र तन्त्रस्याऽस्य प्रकाशकालः प्रदर्श्यते। भगवत्पादस्य शङ्कराचार्यस्य उत्पत्तिश्च एवमत्र वर्णिता—

षट्शतीवत्सरान्ते तु द्विसप्तत्युत्तरं शिवे।
आविर्भवति देवेशि! दिव्यौघद्वारतः शिवे॥
बौद्धपाषण्डनाशार्थं सम्प्रदायार्थमेव च। इति।
(i. १. १६-१७)

शङ्कराचार्योत्पत्तिरेवाऽत्र वर्णितेति यद्यपि स्पष्टतया नाऽत्र प्रतीयते, किन्तु चतुर्थखण्डीयशङ्करोत्पत्तिप्रकरणस्य तुलनया सैवाऽत्र वर्णितेति निश्चीयते। अत्र वैक्रमः संवत्सरो यदि गृह्यते, तर्हि ६७२ (द्वासप्तत्युत्तरषट्शतम्) वर्षेषु व्यतीतेषु शङ्कराचार्यस्योत्पत्तिः स्वीकर्तव्या। ततश्च १०३० (त्रिंशदुत्तरैकसहस्र)-वर्षाऽनन्तरमस्य तन्त्रस्य प्रकाशः समजायत, अर्थादस्य तन्त्रस्याविर्भावः १७०२ (द्व्युत्तरसप्तदशशत)वैक्रमवत्सरेषु व्यतीतेषु समभूत्। तदनुसारं १६४५ (पञ्चचत्वारिंशदुत्तरषोडशशततमे) ईशवीये वर्षे तन्त्रमिदं प्रकाशितमभूत्।

शक्तिसंगमतन्त्रम् आगमवागीशेन कृष्णानन्देन स्वकीये तन्त्रसारे समुप-हृतम्। अस्मिंश्च तन्त्रे निम्बार्क-रामानन्द-राधावल्लभ-हरिव्यास-सम्प्रदायाना-मुल्लेखो वर्तत इति कृत्वा श्रीमता बी० भट्टाचार्यमहोदयेन प्रथमखण्ड-प्रस्तावनायामस्य तन्त्रस्याविर्भावकालः १५८१ (एकाशीत्युत्तरपञ्चदशशतमितः) ईशवीयो वर्षो निर्धारितः (पृ० v-vii)। अत्र तैर्गोकुलेशः सम्प्रदायो न समा-लोचितः। पुष्टिमार्गसंस्थापकानां वल्लभाचार्याणां पौत्रेण गोकुलनाथेन हि सम्प्रदाय एष संस्थापितः। डॉ० सुरेन्द्रनाथदासगुप्तमहोदया गोकुलनाथस्य स्थितिं १५५४ ई० वर्षतः १६४३ ई० (चतुःपञ्चाशदुत्तरपञ्चदशशततमवर्षतस्त्रि-

चत्वारिंशदुत्तरषोडशशततमेशवीयवर्षम्) यावद् निर्धारयन्ति। सम्राजो जहाँगीरस्य समये (१६०५-१६२७ ई०) तैः स्वकीयः सम्प्रदायः संस्थापित इत्यनुश्रूयते। अतश्च १६४५ ई० (पञ्चचत्वारिंशदुत्तरषोडशशतेशवीये) वर्षे शक्तिसंगमतन्त्रस्याऽऽविर्भावः समजायत इत्युचितमेव प्रतिभाति। डॉ० भट्टाचार्य-महोदयाः कृष्णानन्दस्य आगमवागीशस्य तन्त्रसारकर्तुः समयः १६०७ (सप्तोत्तरषोडशशततमेशवीयवर्ष)समीपस्थ इति निर्धारयन्ति। श्रीचिन्ताहरणचक्रवर्तिमहोदयाः प्रतिपादयन्ति यत् कृष्णानन्दश्चैतन्यसमकालिकः (१४८५-१५२३ ई०) इत्यनुमीयते, यद्यपि केचन विद्वांसस्तमतीव परवर्तिनं साधयन्तीति। अस्यां स्थितौ कृष्णानन्देन शक्तिसंगमस्थानि वचांस्येवोद्धृतानीति चेत् तस्य कालः शक्तिसंगमाविर्भावकालादुपर्युक्तात् पश्चात्तन एव स्वीकर्तव्यः।

"समाप्ते फाल्गुने मासे कृष्णैकादशिका च या" (iv. ६. २२), "श्रावणे चाष्टमी शुक्ला बुधरोहिणीसंयुता। वज्रयोगे मध्यरात्रौ पूर्णः कृष्णो हरिः स्वयम्॥" (iv. ६. १४) इत्यादिभिर्वाक्यैर्जयन्तीप्रकरणे पठितैर्ज्ञायते यत् तन्त्रस्याऽस्याऽऽविर्भावो विन्ध्यदक्षिणवर्तिनि कस्मिंश्चित् प्रदेशे संजात इति। उत्तरे हि भारते फाल्गुनमाससमाप्तौ शुक्लैकादशिका समापतति। एवमेव भाद्रकृष्णाष्टम्यां भगवतः श्रीकृष्णस्य जयन्ती मान्यते।

तन्त्राणां कालविचारः

श्रीमता चिन्ताहरणचक्रवर्तिमहोदयेन तन्त्राणां कालविषये कर्तृविषये च युक्तियुक्तो विमर्शः समुपस्थापितः। तत्रोद्धृतैः कूर्म-भागवत-पराशरपुराणादीनां पाञ्चरात्रप्रामाण्यप्रभृतिग्रन्थानां च वचनैर्वैष्णवागमाः शैवागमाश्च मानवकृतय इति सिद्ध्यति, किन्तु वचनेष्वेषु साम्प्रदायिकत्वारोपं को नाम निवारयेत्? अथवा "न निन्दा निन्द्यं निन्दितुं प्रवर्तते, अपि तु विधेयं स्तोतुम्" इति न्यायेन प्रश्न एष समाधातुं शक्येत। यथाश्रुतग्रहणे हि सुन्दोपसुन्दन्यायेन सर्वेषामप्रामाण्यमेवापतेत्।

वेदागमपुराणादिशास्त्राणां कालविषये कर्तृविषये च द्विविधा दृष्टिः साम्प्रतं प्रचरति—अपौरुषेयाणि दिव्यानि मुनिभाषितानि वा शास्त्राणीति प्राच्या, सर्वाणि समये समये मानवैरेव निर्मितानीति प्रतीच्या। कस्मिंश्चिद् विशिष्टे देशे काले च तेषां तेषां शास्त्राणां प्रचारोऽवलोक्यते। दीर्घकालनिरन्तरसत्कारासेवितेनाभ्यासेन शुद्धान्तःकरणानां योगिनां चेतस्सु शब्दब्रह्मवर्त्मना परापश्यन्त्यादिक्रमेण शास्त्राणामवतारो देशकालानुरोधी प्रवर्तत इति तन्त्रागमसम्मतः पन्थाः। अत एव पर्यायसप्तकप्रकरणे देशपर्याये कालपर्याये च बहूनां

तन्त्राणामाविर्भावोऽत्र निरूप्यते, "गुरुशिष्यपदे स्थित्वा स्वयं देवः सदाशिवः। प्रश्नोत्तरपरैर्वाक्यैस्तन्त्रं समवतारयत् ॥" इति च प्रतिपाद्यते योगिनीहृदयदीपिकोद्धृते (पृ० २) महास्वच्छन्दवचने। "रौद्रा रुद्रैः शिवाविष्टैरुद्गीर्णा न स्वबुद्धितः" (१. ४३) इति मृगेन्द्रागमचर्यापादवचनमप्यत्रावधेयम्।

श्रीकण्ठ्यां संहितायां नित्याषोडशिकार्णवे सर्वोल्लासतन्त्रोद्धृततोडलोत्तरतन्त्रे च प्रदर्शितासु चतुष्षष्टितन्त्रनामावलीषु न दृश्यते शक्तिसंगमतन्त्रस्य नाम। महासिद्धसारतन्त्रे विष्णुक्रान्ता-रथक्रान्ता-अश्वक्रान्ता-भेदेन प्रत्येकं चतुष्षष्टितन्त्राणि परिगणितानि। तत्र रथक्रान्ताविभागेऽस्य नाम दृश्यते। अतोऽनुपदमेव प्रदर्शितः शक्तिसंगमावतारकाल एतदनुगुण एव।

शक्तिसंगमे स्मृतानां ग्रन्थानाम्, पर्यायसप्तकेषु पठितानां शास्त्राणाम्, कादि-हादि-कहादिमतानां देशानां च, केरल-काश्मीर-गौडानां दक्षिणवामानामन्येषां परश्शतानां क्रमाणां च, दर्शनयोगकर्मणाम्, दशमहाविद्यानाम्, दीक्षा-अभिषेक-मेरु-श्रीचक्रादीनाम्, शक्तियोगस्य, सिद्धीनां च विषये विस्तरेणोपोद्घाते विचारः कृत इति तत्रैव द्रष्टव्यम्।

द्विविधसिद्धिसमीक्षा

डॉ० बी० भट्टाचार्यमहोदया अणिमाद्यष्टसिद्धीनाम्, अष्टादशविधानां चतुर्विंशतिप्रकाराणां च सिद्धीनामुल्लेखं विधाय ब्रह्मवैवर्तपुराणवर्णितासु सिद्धिषु काश्चन वर्णयन्ति। हिन्दूतन्त्रेष्वेताः सिद्धयो वर्ण्यन्ते, एताभ्यो भिन्नाः खड्ग-अञ्जन-पादलेप-अन्तर्धान-रसरसायन-खेचर-भूचर-पातालाख्या अष्टौ सिद्धयो बौद्धतन्त्रेषु स्वीक्रियन्त इति च तेऽभिनिविशन्ते। बौद्धतन्त्रवर्णिताः सर्वा एताः सिद्धयः शक्तिसंगमतन्त्रेऽपि सन्ति, किन्त्वेतादृशान्युदाहरणानि हिन्दूतन्त्रेषु बौद्धतन्त्राणां प्रभावस्य सूचकानीति तेषामभिप्रायः। डॉ० बी० भट्टाचार्यमहोदया डॉ० प्रबोधचन्द्रबागचीमहोदयाश्च महताऽऽटोपेन विषयममुं प्रसाधयन्ति। पद्मान्तक-मञ्जुघोष-वैरोचनाष्टक-पार्श्वनाथ-पद्मावतीप्रभृतयः शब्दा न व्याकृताः शक्तिसंगमादिषु तन्त्रेषु वैशद्येन, यथा हि व्यावर्ण्यन्ते बौद्धजैनादिषु तन्त्रेष्विति परवर्तिषु केषुचित् तन्त्रेषु बौद्धादीनां तन्त्राणां प्रभावोऽङ्गीकर्तव्य एव, तथापि भट्टाभिनवगुप्तकालादर्वागाविर्भूतेषु तन्त्रेषु नेदृशः प्रभावोऽवलोक्यते। प्राचीनेषु तन्त्रेष्वपि नित्याषोडशिकार्णवप्रभृतिष्वेताः सिद्धय उपलभ्यन्त इति बौद्धतन्त्राणां हिन्दूतन्त्राणां च सिद्धयो भिन्ना इति व्याहतं वचः। प्राचीनानां हिन्दूतन्त्राणां बौद्धतन्त्रेषु प्रभाव इत्यपि सप्रमाणं साधयितुं शक्यते।

वस्तुतस्तु सर्वमेतद् भारतीयं ज्ञानम्। वैदिका बौद्धा जैनाश्च शैवा वैष्णवाश्च विद्वांसः सहैव निवसन्ति स्म। परस्परमावापोद्वापरूपेणैव भारतीयस्य सम्पूर्णस्य ज्ञानस्य विकासः समजायत। धर्मसम्प्रदायनिरपेक्षं देशकालानुरोधि दुराग्रहवर्जितमनुशीलनमेव यथार्थां स्थितिं प्रकाशयेत्। श्रद्धेयचरणैः श्रीगोपीनाथकविराजमहोदयैर्मन्त्रयाननाम्ना प्रसिद्धानि बौद्धतन्त्राणि वज्रयान-सहजयान-कालचक्रयान-भेदेषु विभज्यन्ते। अत्रत्याः सर्वे विषयाः प्राचीनेषु तन्त्रग्रन्थेष्वपि समानमाना अवलोक्यन्त इति प्राचीनानां तन्त्राणां त्रिभेदभिन्नानां बौद्धतन्त्राणां च तुलनात्मकमनुशीलनं विधेयताकोटिमाटीकते, यद्धि नाद्यावधि संजातम्। तदैव चतुरशीतिसिद्धानां विषयेऽपि किमपि याथार्थ्येन वक्तुं शक्यते। शक्तिसंगमतन्त्रे हि नवनाथानां चतुरशीतिसिद्धानां च दशाधिकेषु स्थलेषु सहैवोल्लेखो विद्यते, साम्प्रतमपि च तेषां सम्प्रदायनिरपेक्षा स्थितिरङ्गीक्रियते। नैकैर्विद्वद्भिः कृतेन आधुनिकेनाऽनुशीलनेन सर्वे सिद्धा बौद्धमतावलम्बिनो निर्धार्यन्ते। वस्तुतस्तु मत्स्येन्द्रनाथ एव सकलकुलशास्त्रावतारकतया प्रसिद्धः। स च सिद्धानां नाथानां च प्रथमः। तेन प्रवर्तितासु षट्संख्याकासु ओवल्लीषु प्रभु-पाद-बोधिशब्दान्ता अपि सिद्धा अवतेरुः, आनन्द-आवलि-योगि-शब्दान्ता अपि चेति शैवानां शाक्तानां बौद्धानां च त्रिविधानां तन्त्राणां कौलत्वेन स्वरूपं समानमेव, योगपद्धतिः क्रियापद्धतिश्च समानैवेति विभावनीयं विपश्चिद्भिः।

बाह्याभ्यन्तरपूजाविमर्शः

खण्डत्रयस्य सम्पादका डॉ० बी० भट्टाचार्यमहोदया द्वितीयखण्डप्रस्तावनायां बाह्यशक्तिपूजासम्बद्धानि प्रकरणान्यपि कुण्डलिनीशक्तिपरकतया नीत्वा सर्वत्र आन्तरवरिवस्यामेव समर्थयन्ति। किन्तु—"मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मुद्रा मैथुनमेव च। एभिरेव कृता पूजा कुलाचारः प्रकीर्तितः॥" (ii. ३६.२०-२१), "चतुर्विधाऽपि मुक्तिर्हि नीवीमुक्तौ प्रतिष्ठिता" (iv. २.११३), "रक्तरूपं श्वेतरूपं श्लक्ष्णं परमचिक्कणम्। तत्त्वं संजायते तस्याः कुण्डसाराभिधं भवेत्॥" (iv. ३.११२-११३), "हस्ताहस्तिकया योगो निह्नवः परिकीर्तितः" (iv. ३.२०८), "योनिं विना महेशानि न किञ्चिज्जगतीतले" (iv ८. ३०-३३) वचनानामीदृशानां कामशास्त्रमन्तरा नहि धर्मशास्त्रेण कश्चन सम्बन्धः समस्ति। प्रत्युत—"स्वमातृमपि गच्छन्तं कौलिकं न निवारयेत्॥ साक्षात्तु भगिनी या तु चूडाचक्रे शुभावहा। स्वपुत्री च शुभा प्रोक्ता ऊर्मिलाचक्रसम्मते॥" (iv ११.१४-१५) इत्यादीनि, कौलतीर्थपटले (ii. १३) पठितानि च वचनानि महत् सामाजिकं वैशसमापादयन्ति। सत्यमेवोक्तं श्रीमद्भागवते—

जुगुप्सितं धर्मकृतेऽनुशासतः स्वभावरक्तस्य महान् व्यतिक्रमः।
यद्वाक्यतो धर्म इतीरितः स्थितो न मन्यते तस्य निवारणं जनः॥ इति।

नहि नासिकायां सत्यां स्वर्गो नाऽवलोकयितुं शक्यत इति विग्रसम्प्रदायोऽऽयं प्रवर्तनीयः। हिंसाबहुलं वैदिककर्मकाण्डं बुद्धमहावीरादिभिः समालोचितं सद् यथा साम्प्रतं विरलतामापेदे, तथैव सौन्दर्यलहरीकारेण लक्ष्मीधरप्रभृतिभिश्च—"अर्घपात्रं यागधाम दीप इत्युच्यते त्रयम्। रहस्यं कौलिके यागे तत्रार्घः शक्तिसंगमात्॥" (तन्त्रा० २९.१४.१५) इत्याद्यभिनवगुप्तादिप्रदर्शितं रहस्यात्म कौलिकं बाह्यमर्चनं निषिध्य योगप्रक्रियाप्रधानमान्तरमर्चनं समयिमतनाम्ना वैदिकप्रक्रियायां परिगृहीतम्। शक्तिसंगमन्त्रेऽपि—"ब्राह्मणेन तथा कार्यं ब्राह्मण्यं न विनश्यति" (i. ८ १७; ९-३६; ii. १-३४) "वेदेन रहितं यत्तु तन्न कुर्याद् द्विजः क्वचित्" (i. ८.३३), "वेदमूलाः क्रियाः सर्वा ब्राह्मणो वेद एव च। प्राणा वरं प्रयच्छन्तु ब्राह्मणो नार्पयेत् सुराम्॥" (i. ९.५१), "गुडार्द्रकरसेनैव सुरा तु ब्राह्मणस्य च" इत्यादिप्रकरणेषु वेदविरुद्धाचरणं सर्वथा प्रतिषिद्धम्, वर्णधर्मानुसारेण तान्त्रिकविधीनां समादरश्च कर्तव्यः (i. २.८०.८२; ii. १.३३-३६) इति सूचितम्। वर्तन्ते हि तादृशा आचारविचारा विचित्रास्तेषु तेषु वर्णेषु जातिषु च। "यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः" (वा० अ० १०३।३०) इति वचनानुसारं मानवैः स्वीयाचारविचारानुसारं तास्ता देवताः समर्च्यन्ते। मानवमात्रस्य कल्याणाय हि प्रवर्तते तन्त्रशास्त्रम्। ते च स्वीयाचारानुसारमेव प्रवर्तिताः परमतत्त्वाधिगमाय सारल्येन समर्थाः स्युरिति विभाव्य तन्त्रशास्त्रीया नानाविधाः सम्प्रदायाः प्रवृत्ताः सन्ति देशकालानुसारम्। बाह्या इमे आचारा विचाराश्च देशभेदेन कालभेदेन च भिद्यन्ते, कालातीताश्च भवन्ति तेषु केचन धर्माः। अथवा—

स्त्रीमुद्रां झषकेतनस्य महतीं सर्वार्थसम्पत्करीं
ये मोहादवधीरयन्ति कुधियो मिथ्याफलान्वेषिणः।
ते तेनैव निहत्य निर्दयतरं मुण्डीकृता लुञ्चिताः
केचित् पञ्चशिखीकृताश्च जटिनः कापालिकाश्चापरे॥

इति यशस्तिलकचम्पूधृत(भा० २, पृ० २५२)नीलपटोक्तिगूढाभिप्रायमन्वीक्ष्यापक्वाशयानां योगिनां चित्तविकारोपशमाय यामलो विधिर्यथाकथञ्चित् समर्थयितुं शक्यते। श्रीमता भास्कररायेण तन्त्राणां धर्मशास्त्रेऽन्तर्भावं कुर्वता—"तेषां प्रामाण्यसमर्थनं त्वस्मदीये त्रिपुरसुन्दरीबाह्यवरिवस्याविधौ द्रष्टव्यम्, तन्त्रराजव्याख्याने च विस्तरेण तन्त्राणां धर्मशास्त्रेऽन्तर्भावः प्रपञ्चयिष्यते" इति प्रोच्यते। तन्त्रराजव्याख्यानस्य भास्कररायकृतस्यानुपलम्भात् तत्र तन्त्राणां

धर्मशास्त्रेऽन्तर्भावः सार्वात्म्येन आंशिकरूपेण वा कृत इति ज्ञातुं न शक्यते। याज्ञवल्क्यस्मृतिव्याख्यात्राऽपरार्केण शैवपाञ्चरात्राद्यागमानामांशिकं प्रामाण्यमङ्गीकृतम्। शाक्ततन्त्राणामपि तयैव पद्धत्या आंशिकमेव प्रामाण्यं सिद्ध्यति। तत्रापि बाह्यशक्तिवरिवस्याप्रतिपादकानि शास्त्राणि कामशास्त्राङ्गत्वेनैव प्रामाण्यं लभेरन्, न धर्मशास्त्राङ्गतयेति निबन्धकारसम्मतः पन्थाः।

शर्मण्यदेशीयेन विदुषा डॉ० विण्टरनित्जमहोदयेन प्रोच्यते—"पुराणानां तन्त्रशास्त्राणां चानुशीलनं नानन्ददायकं कार्यम्। तन्त्रशास्त्राणां विषये कथनमेतत् सविशेषं घटते। तानि हि हीनकोटिकैर्लेखकैर्व्याकरणनियमविहीनायां भाषायामाबद्धानि" इति। यद्यपि परावकालिकान् कांश्चन तन्त्रग्रन्थानवलोक्य विदुषा लेखकेन धारणेयं स्थिरीकृता, प्राचीनेषु हि तन्त्रग्रन्थेषु नैवंविधा दोषाः समवलोक्यन्ते, तथापि विचारणीयेयमुक्तिस्तत्रभवतो विण्टरनित्जमहोदयस्य। वैष्णवेषु, शैवेषु, शाक्तेषु च सम्प्रदायेष्वाध्यात्मिकक्षेत्रेष्वपि रहस्यात्मिकाः काश्चन क्रियाः साम्प्रतमपि प्रवर्तन्ते। "अन्तः शैवा बहिः शाक्ताः सभामध्ये च वैष्णवाः" इत्येतादृशं द्वैधीभूतं जीवनं यापयन्ति केचन। भगवतः श्रीकृष्णस्य मोहकं रूपमेभिराराध्यते, न लोकमङ्गलकारि। मर्यादापुरुषोत्तमस्य रामभद्रस्य चरितमपि कलुषीक्रियते। योगच्छद्मना देशे विदेशेषु च प्रचारयन्ति ते रहस्यात्मिका एताः क्रियाः। वस्तुतो धर्ममोक्षयोश्छलेनार्थकामयोः साम्राज्यमेतत् प्रसरति। "मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यत्" इत्येवं विभक्तासु उत्कृष्टासु समाजव्यक्तिषु किं न स्याद् वचस्येव स्थितिराध्यात्मिकताया नैतिकताया वेति स्वयमेव निभालयन्तु सुधियः। वैचित्र्यमेतदवलोक्य सीदति साम्प्रतिकः साधारणो मानवः। विषादस्याऽस्य परिहाराय, आध्यात्मिकानां चिरन्तनभावानां स्थापनाय, सम्पूर्णस्य मानवसमाजस्य सुव्यवस्थायै च आवापोद्वापपद्धत्या वैदिकतान्त्रिकश्रुतीनां समन्वयमुखेन प्रवर्तयितव्यो नूतनो मानवो धर्मः। एतदर्थं च—

यद्यप्यस्ति त्रिकालज्ञस्त्रैलोक्याकर्षणक्षमः।
तथापि लौकिकाचारं मनसाऽपि न लङ्घयेत्॥
(ii. ४६.४२-४३)

इति शक्तिसंगमतन्त्रवचनमेतत् साहाय्यमाचरिष्यतीति शम्॥



शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति

सात्वतसंहितायां द्वितीये परिच्छेदे परस्वरूपविवरणप्रसङ्गे परा वाग्भ्रमरी सर्वमन्त्रमयी शान्तात्मनः सूक्ष्मस्य विभोः शक्तिरिति साऽपि तथैव सूक्ष्मा निर्दिष्टा। तथाहि—आधारनाभिहृत्कण्ठाख्यचतुश्चक्रविशिष्टे नवद्वारान्विते स्वशरीरे देवगृहात्मके कण्ठकूपधरारूढं यदधोमुखं हृत्पद्मं राजते, तत्कर्णिकावनेर्मध्ये रूढमूर्ध्वमुखं च यत्कमलम्, तदूर्ध्वे तत्कमलद्वयसम्पुटमध्येऽधःकमलोपरि सूर्यचन्द्राग्निलक्षणं ज्योतिःस्वरूपं शब्दब्रह्म विलसति। अत्रैव आधारनाभिहृदयाख्यचक्रत्रयोपरि त्रिदीप्तिभास्वराऽव्यक्तध्वनिविग्रहा सुषुम्नाख्या नाडी वर्तते, या ब्रह्मरन्ध्रेण निःसृता सूर्यपथात् परं गता वायुद्वारेण पातालं भित्वा आमूलाग्रं यावदन्तं सर्वशरीरं व्याप्नोति। भगवत्संकल्पितः सर्वोऽपि बाह्यो विषयः सूत्रे मणिगण इव सुषुम्नानाडीसम्बद्धः प्रतितिष्ठति। अत इयं मध्यनाडीति नाम्नाऽपि प्रसिद्ध्यति। तस्यामभ्यन्तरे पूर्वोक्ते हृदयकमलस्थाने निमेषोन्मेषलक्षणे निमीलनोन्मीलनविशिष्टे शशिसूर्याख्ये[1] कमले वर्तेते। तत्र कमलद्वयसम्पुटेऽर्कसंबन्धि अधःकमलमाश्रित्य परा (सूक्ष्मा) वाग्भ्रमरी स्थिता। एवं च सा परा वाग्भ्रमरी सर्वमन्त्रमयी शान्तात्मनः सूक्ष्मस्य, परस्येति यावत्, विभोः शक्तिरिति साऽपि तथैव सूक्ष्मा।

परा वाग्भ्रमरी चैषा तैलधारावदविच्छेदेनाऽकारादिहकारान्तं शब्दब्रह्माख्यं नादं नदन्ती राजते। नादो हि नाम नादबिन्दुमध्यमावैखर्याख्ये शब्दब्रह्मणोऽवस्थाचतुष्टये प्रथमावस्था।

द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत्।
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥[2]

इति च श्रूयते। तदत्र प्रथमं शब्दब्रह्मणः स्वरूपं विविच्यते।

---

१. "निमीलितोर्ध्वकमलस्य शशिसंज्ञत्वम्, उन्मीलिताधःकमलस्य सूर्याख्यत्वम्" (पृ० २७) इति हि भाष्यम्।

२. मैत्रायण्युपनिषदि (६।२२), महाभारते (१२।२३२।३० : १२।२७०।१-२), विष्णुपुराणे (६।५।४) चोपलभ्यतेऽयं श्लोकः। पुराणेष्वन्येषु च बहुषु ग्रन्थेषु समुपलभ्यतेऽयम्।

सात्वतसंहितायामेव द्वादशे परिच्छेदे विभवावतारान्तर्गतस्य वेदव्यासस्य ध्यानप्रसङ्गे—

वाग्वेदमण्डलं यो वै स्वरूपद्युतिलक्षणम् ।
स्वयं स्वोत्थं विभजति नित्यं पश्यन्तिपूर्वकम् ॥
बोधमारुतहृत्पूर्वस्थानेष्वभ्युदितं क्रमात् ।
(सा० सं० १२। १५३-१५४)

इत्यत्र शब्दब्रह्म व्याख्यायते। "स्वरूपद्युतिलक्षणम् अन्तःस्थितज्योतिस्वरूपमित्यर्थः[१], "स्वरूपज्योतिरेवान्तर्भावयन् संस्थितं हृदि" (३४। ३६) इति पौष्करोक्तेः। केवलशान्तरूपमिति यावत्, वाग्वेदमण्डलं शब्दब्रह्मेत्यर्थः।[२] पश्यन्तीपूर्वकं त्रिधा विभजति पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरीभेदैस्त्रिधा विभक्तं करोतीत्यर्थः। बोधमारुतहृत्पूर्वस्थानेष्वभ्युदितं क्रमादिति पश्यन्त्याद्यवस्थात्रयस्य विशेषणं बोध्यम्" (पृ० २४५) इत्येवं भाष्यकारः सार्धमेतत् श्लोकं व्याचख्यौ।

अत्र मूले स्पष्टं वाक्त्रयं तदुत्पत्तिस्थानत्रयं च प्रतिपाद्यते। भाष्यकारस्तु "एताः शब्दब्रह्मणोऽवस्थाः सुव्यक्तमुक्ता लक्ष्मीतन्त्र" (पृ० २४५) इत्युक्त्वा, वाक्-चतुष्टयप्रतिपादकान् तत्रत्यान् श्लोकान्, "वैखरी शब्दनिष्पत्तिर्मध्यमा" इत्युक्तिं च क्वाचित्कां समुदाजहार। कथमेतत् संगच्छेतेति चेत्, अत्रैव—"परा वाग्भ्रमरी स्थिता" (२। ६७) इत्येवं पराया वाचोऽपि वर्णनदर्शनात् तत् समाधेयम्। तथा च वाग्वेदमण्डलं परावागात्मकं शब्दब्रह्म पश्यन्तीपूर्वकं त्रिधा विभजतीति व्याख्येयम्। बोधमारुतहृत्पूर्वेत्यत्र पूर्वपदेन कण्ठादिस्थानानामध्याहारो विधेयः। तथा च बोध-मारुत-हृदय-कण्ठस्थानेषु तदभिव्यक्तमित्यर्थः करणीयः। एवं चार्थे कृते सति पूर्वापरविरोधः परिहृतो भवति।

---

१. "ज्योतिरान्तरमासाद्य छिन्नग्रन्थिपरिग्रहः। परेण ज्योतिषैकत्वं छित्वा ग्रन्थीन् प्रपद्यते ॥" (पृ० २०३), "स्वरूपज्योतिरेवान्तः सूक्ष्मा वागनपायिनी" (पृ० २१९) इति वाक्यपदीये स्वोपज्ञटीकायाम्।

२. "वैखर्या मध्यमायाश्च पश्यन्त्याश्चैतदद्भुतम्। अनेकतीर्थभेदायास्त्रय्या वाचः परं पदम् ॥" (१।१३४) इत्यत्र वाक्यपदीये यद्यपि त्रिविधैव वाक् प्रपञ्चिता, किन्तु स्वोपज्ञव्याख्यायाम्—"स्वरूपज्योतिरेवान्तः सूक्ष्मा वागनपायिनी" (पृ० २१९) इत्यत्र परा वागपि परामृष्टैव।

शब्दब्रह्मणि निष्णातः कथं नाम[१] परं ब्रह्माऽधिगच्छतीत्ययं विषयोऽत्र दीक्षाप्रकरणे ऊनविंशे परिच्छेदे प्रतिपाद्यते। तथाहि—[२] वेद्यवेदकनिर्मुक्तमच्युतं यत्परं ब्रह्म तत् स्वशक्त्या स्वयमेवाखिलजीवानां मुक्तये शब्दब्रह्मभावेनोदेति। तन्त्रीशब्दवदव्यक्ताक्षरं तच्छब्दब्रह्म अकारादिक्षकारान्तवर्णरूपेण पुनर्व्यक्ततां याति। तदस्याऽव्यक्ताक्षरस्य शब्दब्रह्मणः प्रथमरूपस्य परिज्ञानं चातुरात्म्यस्य भगवतोऽनुभवं विना वेदविदां विदुषामपि दुर्लभम्। स शब्दमूर्तिर्भगवान् ततः कलात्मना परिणमते। यावत् परब्रह्मणो निरञ्जना मूर्तिः षाड्गुण्यकलात्मना न परिणमेत, तावदमूर्तं तत्परं ब्रह्म वद केन कथं वा ग्रहीतुं शक्येत। प्रभवाप्ययलक्षणानि पूर्वोक्तानि वासुदेवाद्यध्यक्षान्तानि सर्वाणि तत्त्वानि कलामयानि भवन्ति। तत्त्वेभ्योऽणिमादिगुणैर्युता ज्ञानैश्वर्यादिषड्गुणात्मका हृदयाद्यङ्गमन्त्रैरन्विताश्च मन्त्रा निर्गच्छन्ति। तैर्मन्त्रैः कर्मिणामात्मलाभार्थं मोहार्थं तत्क्षयाय च तुर्याद्यं पदं गुणत्रयमयं द्विसप्तभुवनं विश्वं च प्रवर्तते। एवं षडध्वात्मकं[३] जगत् परिनिष्पन्नं भवति। सितासितोऽयमध्वा हेयोपादेयलक्षणः। तदेतस्मिन्[४] अध्वषट्के भुवनाध्वनः, पदाध्वनि स्थितस्य सुषुप्त्यादिपदत्रिकस्य च हेयत्वम्, तुर्यपदस्य मन्त्राध्वादीनां चतुर्णां चोपादेयत्वं ज्ञेयम्। अत्राऽपि व्यपेक्षाभेदेन हेयता उपादेयता च प्रवर्तते। मुमुक्षोः शुद्धाः सन्तोऽनपेक्षायामुपेया अपि हेयपक्षान्तर्गता भवन्ति।

विवेकपदसंस्थस्य दीक्षया संस्कृतस्य शिष्यस्य यत्र विश्रामो जायते, तद् वासुदेवाख्यं परं ब्रह्म। यथाऽम्बरं बहूनां परमाणूनामास्पदं भवति, तद्वत् तदिदं परं ब्रह्म अनाद्यप्रबुद्धानां[५] जीवानां निकेतनं विद्यते। एतच्च **भुवनानां पदानां**

---

१. स्वोपज्ञटीकायां भर्तृहरिरपि—"ज्योतिरान्तरमासाद्य छिन्नग्रन्थिपरिग्रहः। परेण ज्योतिषैकत्वं छित्वा ग्रन्थीन् प्रपद्यते॥" (पृ० २०३) इत्यत्र तमेतद्विषयं प्रकारान्तरेण परामृष्टवान्।

२. एतच्च प्रकरणं सात्वतसंहितायां १९।१२७ श्लोकात् प्रवर्तते।

३. "वैष्णवेषु तदितरेषु चागमेषु षडध्वविमर्शः" इति शीर्षकेऽस्मदीये निबन्धे विषयोऽयं विस्तरेण व्याख्यातोऽवलोकनीयः (सारस्वती सुषमा, व० १७, अ० १-२, पृ० १७९-२००)।

४. षडध्वनामेतेषामत्र (२४।३५७-३५९) प्रासादेऽपि भावनमुपदिष्टम्।

५. शब्दोऽयं शैवेषु शाक्तेषु च तन्त्रेषु योगवासिष्ठादिग्रन्थेषु च बहुधा प्रयुक्तो दृश्यते। तत्र विरूपाक्षपञ्चाशिकायां पञ्चविधाः पशवः प्रतिपाद्यन्ते—अप्रबुद्धः, प्रबुद्धकल्पः, प्रबुद्धः, सुप्रबुद्धकल्पः, सुप्रबुद्ध इति। एतेषां लक्षणानि तत्रैव ४१-४४ श्लोकेषु द्रष्टव्यानि।

चान्तः प्रतिष्ठितम्। ईश्वरेच्छयैव मायीयेऽस्मिन्नध्वद्वये मन्त्राः सुखदुःखमयैर्भोगैर्जीवान् क्रीडयन्ति। ईश्वरेच्छानुविद्धानां भक्तानां समक्षं चाध्वद्वयोर्ध्वस्था **मन्त्रा** आज्ञाप्रतीक्षका भवन्ति। ते तान् कर्मिणो मायीयाध्वद्वयादूर्ध्वमणिमादीनां भोगानां प्राप्तये स्वस्थानं नयन्ति। तद्भोगाद् विरक्तस्य स्वशक्त्या स्वव्यापारवशेनामृतोपमे तत्त्वाध्वनि प्रेरयन्ति, यत्र संस्थितः सोऽणिमादिभोगान् तृणानीव मन्येत। तत्रापि विरक्तं पुरुषमनिरुद्धादयः शाश्वते **कला**ध्वनि सम्यगध्ययतां नयन्ति। तदनु **कला**ध्वनि स्थितः षाड्गुण्यमयोऽध्वमूर्तिभृद् वासुदेवो नित्यं स्वात्मनि शब्दब्रह्माभिधे **वर्णा**ध्वनि तस्य योजनां करोति, यत्रस्थः स शिष्यः स्वयमेव सुशान्तं भगवत्पदं प्राप्नोति परं ब्रह्माधिगच्छति।

पञ्चाध्वकोशमुक्तस्य लब्धशुद्धस्वात्मस्वरूपस्य साधकस्य योऽनुभूतिपदं याति, स धारासन्तानरूपधृग् भिन्नवर्णमयः शब्द एव वर्णाध्वा कथ्यते। सोऽयं वर्णाध्वा प्रभवक्रमेऽकारात् सकारान्तम्, अप्ययक्रमे च हकाराद् आकारान्तं चातुरात्म्यसमूहरूपेण भावनीयः। तस्यायं क्रमः—

प्रभवे द्वादशान्तस्तु हकारश्चतुरात्मनाम्।
अकारस्त्वप्यये चैव तुल्यताऽतोऽनयोः स्मृता॥
(१९.१५४-१५५)

प्रभवे[1] हकारश्चतुरात्मनां द्वादशान्तः[2], अप्यये च अकारश्चतुरात्मनां द्वादशान्त इत्यन्वयः। द्वादशान्तो धारणाद्विषट्कान्त[3] इत्यर्थः। अत्राकारादिष्वेकोनपञ्चाशद्वर्णेष्वकारादिसकारान्तं वर्णचतुष्टयक्रमेण द्वादशव्यूहा भवन्ति। तदुपर्यवशिष्टस्य हकारस्य द्वादशान्तत्वम्, एवमप्ययक्रमे हकारमारभ्याऽऽकारान्तं व्यूहद्विषट्कानन्तरमवशिष्टस्याऽकारस्य द्वादशान्तत्वमिति भावः।

---

१. प्रभवे हकारः, अप्ययेऽकारोऽवशिष्यतेऽनया प्रक्रियया। नानाशाक्तग्रन्थोद्धृतसंकेतपद्धत्याम्—"अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः" इति, "हकारोऽन्त्यः कलारूपो विमर्शाख्यः प्रकीर्तितः" इति चाकारहकारयोः प्रकाशविमर्शात्मकत्वं ख्याप्यते। अत्राप्यकारहकारौ ध्येयौ तत्रापि च, प्रक्रिया तु भिद्यते।

२. द्वादशान्तपदमस्माभिर्विज्ञानभैरवोपोद्घाते (पृ० २६-२७) व्याख्यातम्। अत्र तु हकारस्य अकारस्य च द्वादशान्तत्वं प्रतिपाद्यते। धारणानां द्विषट्कं (द्वादशकम्) अत्र चातुरात्म्यत्रयं चतुर्धा विभज्य व्याख्यायते। तदन्ते च परवासुदेव एवावशिष्यत इति द्वादशान्तपदेन तस्यैव परिग्रहोऽत्र मन्तव्यः।

३. द्विषट्कपदस्य प्रयोगो विज्ञानभैरवादिष्वपि (श्लो० २८) दृश्यते। धारणानां द्विषट्कमनुपदमेवात्र व्याख्यास्यते। एतदेवोपबृंहितं लक्ष्मीतन्त्रेऽपि (२०।१३-२३)।

वर्णमये व्यूहसमूहेऽस्मिन् [1]ज्ञानसमाधिना साधकेन वासुदेवमारभ्य एकैका मूर्तिविश्रामः[2], उदयः, व्याप्तिः, व्यक्तिरिति क्रमेण भावनीया। विश्रामो नाम वर्णानां सूक्ष्मा (परा)[3] अवस्था, उदयः पश्यन्त्यवस्था, व्याप्तिर्मध्यमा-वस्था, व्यक्तिर्वैखर्यवस्था। एवं वासुदेवाद्येकैकमूर्तिरपि विश्रामादिचतुष्टयेन युक्ता ज्ञेया। तत्र विश्रामस्तुरीयव्यूहावस्था। उदयः सुषुप्तिव्यूहावस्था। व्याप्तिः स्वप्नव्यूहावस्था। व्यक्तिर्जाग्रद्व्यूहावस्था। एवं विश्रामादिशब्द-वाच्यतुरीयव्यूहावस्थाऽऽदिचतुष्टयविशिष्टेष्वकारादिवर्णेषु दण्डवत् संनिवेशेन संस्थिता। एवं चाकारादिषोडशवर्णानां चतुष्टयचतुष्के जाग्रद्व्यूहवासुदेवादय-श्चतस्रो मूर्तयः, ककारादिचतुष्टयवर्णानां चतुष्टयचतुष्के सुषुप्तिव्यूहमूर्तयः, थकारादिसकारान्तषोडशवर्णानां चतुष्टयचतुष्के सुषुप्तिव्यूहमूर्तयः, एतद्द्वादशान्ते हकारे—"अभेदेनादिमूर्तेर्वै शुद्धसंविन्मयं महत्" (५।८१-८२) इत्युक्तलक्षणा तुरीयव्यूहमूर्तिरित्यर्थो ज्ञेयः। एवं हकाराद्यकारान्तं प्रतिलोम्येनाऽपि ज्ञेयम्।

एवं वर्णाध्वानं विचार्य प्रकरणमिदमेवमुपसंह्रियते भगवता—"द्विषट्कं धारणानां च द्वादशाध्यात्मलक्षणम्। सोपानभूतं यत् क्रान्त्वा द्वादशान्तं विशेत् पदम् ॥" (१९।१५८) इति। एवं वर्णाध्वनः शब्दब्रह्माभिधस्य स्वरूपपरिचयाद् हृत्पद्मोदरसंस्थितम्—"तत्राब्जं चार्कमालम्ब्य परा वाग्भ्रमरी स्थिता" (२।६७) इत्याद्युक्तप्रकारेण हृदयकमलान्तःस्थितं शब्दब्रह्म, तदनु च सुशान्तं भगवत्पदं (परं ब्रह्म) व्यक्तिभावमेतीति सर्वं सुस्थम् ॥

१. ज्ञानभावना-ब्रह्मसमाधिपदाभ्यां व्याख्यातोऽयं ज्ञानसमाधिर्द्वितीये परिच्छेदे (श्लो० ६०), तद्भाष्ये (पृ० २५-२६) च।

२. विश्राम(विश्रान्ति)-उदय-व्याप्तिशब्दा नित्याषोडशिकार्णवे (४।२), ऋजुविमर्शिनी-अर्थरत्नावल्योः (पृ० २९१, २०५, २३१, २४७) प्रायोऽस्मिन्नेवार्थे प्रयुक्ताः।

३. परा वागियमत्र शान्तरूपा सूक्ष्मा चोपवर्णिता (पृ० २७, २४५-२४६, ४०३)।

महामाया कुण्डलिनी

वागीश्वरी च शुद्धाध्वमूलोपादानकारणम् ।
नोपादानं विना कार्यं कदाचिदुपलभ्यते ॥

इति शतरत्नसंग्रहधृते विश्वसारोत्तरसूत्रे वागीश्वरी महामाया निरूप्यते । शुद्धस्याध्वनो मूलभूतमुपादानकारणं वागीश्वरी महाविद्या ।

"परा वागीश्वरी विद्या मायाऽविद्याऽपरा स्मृता"

इति पौष्करवचने वागीश्वर्याः परात्वं विद्यात्वं च, मायायाश्चापरात्वमविद्यात्वं च वर्ण्यते । तदेतस्या महामायाया नादादीनि बहूनि पर्यायनामानि भवन्ति । तद्यथा नादकारिकायाम्[१]—

---

१. एतन्नादकारिकावचनं मुद्रिते ग्रन्थे १५ तमकारिकावृत्तावन्ते दृश्यते, सार्धत्रिशतिकालोत्तरवृत्तौ (पृ० ११) तु रामकण्ठेन मूलपाठ एव पठितमेतत् । तत्र हि सम्पूर्णा नादकारिका तेन समुद्धृता । स एव नादकारिकायाः कर्ता इति चात्र विभावनीयम् । तत्र हि—

बुद्ध्यस्मितामनोभ्यो विद्यातो रागतः कलायाश्च ।
मायापुंशक्तिभ्यो नादोऽन्यो दृश्यते ध्वनिभ्योऽपि ॥ (श्लो० १)
....
रूपरसगन्धशब्दाद्यर्था येनावमृश्यतां नीताः ।
सोऽन्तःसंजल्पात्मा नादः सिद्धो न विषयभावेन ॥

इत्येवं परनादं संसाध्य तस्य स्वरूपं प्रदर्श्यते । कालोत्तरायां च—

नादाख्यं यत्परं बीजं सर्वभूतेष्ववस्थितम् । (१.१५)

इति प्रदर्श्य

स्थूलं शब्द इति प्रोक्तं सूक्ष्मं चिन्तामयं भवेत् ।
चिन्तया रहितं यत्तु तत्परं परिकीर्तितम ॥

इत्येवं तस्य त्रयो भेदा वर्ण्यन्ते । ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिन्यामभिनवगुप्तः परा-पश्यन्ती-मध्यमापरत्वेनेदं वचनं व्याख्याति । "ततो यदुक्तं भगवता श्रीमत्कालपरायां संहितायाम्—"स्थूलं शब्द इति प्रोक्तम्" इति, तन्मध्यमाऽभिप्रायेण मन्तव्यम् । यस्तु श्रोत्राग्राह्यः शब्दः, स तत्प्रपञ्चसतत्त्वप्रायो न पृथग् व्यपदेशमर्हति" (भा० २, पृ० १९२) इत्येवमुपसंहरति स प्रकरणमेतत् । अत एव—"वाग्ब्रह्मणि निष्णातश्चिद्ब्रह्माप्नोति" (श्लो० १९) इति नादकारिकायामुच्यते ।

सिद्धो नादः परः सुमङ्गला मालिनी महामाया।
समनाऽनाहतबिन्दुरघोषा वाग् ब्रह्मकुण्डलिनीतत्त्वम्।
विद्याख्यं चेत्युक्तस्तैस्तैः शब्दैस्तदागमेष्वित्थम्॥

इत्यनेन महामायायाः शुद्धाध्वोपादानत्वरूपं लक्षणं प्रदर्शितं सिद्धान्तशैवशास्त्रेषु। न चात्र समवेतशक्तेरेवोपादानत्वेन सिद्धिरस्त्विति वाच्यम्, तस्या उपादानकारणत्वेऽचेतनात्वापत्त्या चेतनशिवसमवायाऽयोगात्। तदुक्तं पौष्करे—

शिवे कर्तरि तादात्म्यान्नेयं कुण्डलिनी स्मृता।
उपादानत्वतो हेतोः कुलाले मृत्तिका यथा॥ इति।

एवं च मायाप्रकृत्योर्मोहकत्वेन प्रबुद्धपुरुषकामकरणरूपशुद्धाध्वकारणत्वाऽयोगेन पारिशेष्यात् तदनुकारितया महामायासिद्धिरिति।

"मायोपरि महामाया" इति परात्रीशिकाव्याख्योद्धृते कुब्जिकामते, तत्त्वसंग्रहवृत्ति-मृगेन्द्रवृत्तिधृते रौरवागमे च स्मर्यते। कुब्जिकामते सा महामाया त्रिकोणानन्दरूपिणी वर्णिता। शुद्धविद्यैव महामायेतिपदेन श्रीरौरवगुरुभिरुपदिष्टेति चाऽभिनवगुप्त ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिन्यां (३।१।६) वदति। रत्नत्रये तु सा बिन्दुपदेन व्याख्याता। तथा हि[1]—

जायतेऽध्वा यतः शुद्धो वर्तते यत्र लीयते।
स बिन्दुः परनादाख्यो नादबिन्द्वर्णकारणम्॥ (श्लो० २२)

इत्यत्र नादबिन्द्वर्णकारणं परनादाख्यं बिन्दुं प्रतिपाद्य—

शब्दतत्त्वमघोषा वाग् ब्रह्मकुण्डलिनी ध्रुवम्।
विद्या शक्तिः परो नादो महामायेति देशिकैः॥
बिन्दुरेवं समाख्यातो व्योमाऽनाहतमित्यपि।
चतस्रो वृत्तयस्तस्य याभिर्व्याप्तास्त्रिधाणवः॥ (श्लो० ७०-७१)

इत्येवं तस्य पर्यायाः सूच्यन्ते, परापश्यन्त्याद्याश्च चतस्रस्तस्यैत्र वृत्तय इति निर्णीयते। एवं च वागीश्वरी, महामाया, नादः, बिन्दुरित्यादिभिः पदै-

---

१. अघोरशिवः श्लोकमेनमेवं व्याख्याति—"तत्र नादो नामाभिधेयबुद्धिहेतुर्बिन्दोः प्रथमप्रसररूपः सूक्ष्मो नादश्चिन्तया रहितत्वेन श्रीमत्कालोत्तरादावुक्तः। बिन्दुश्च तत्कार्यः मयूराण्डरसबिन्दुवदव्यपदेश्यः परामर्शज्ञानरूपोऽक्षरबिन्दुस्तत्रैव सूक्ष्मत्वेनोक्तः। एवं अर्णश्च वर्णं आकाशवायुप्रभवः श्रोत्रग्राह्यः स्थूलशब्दः" (पृ० ११) इति। एवं चात्र—"स्थूलं शब्द इति प्रोक्तम्" इति कालोत्तरवचनमेव नाद-बिन्दु-वर्णपरकतया व्याख्यायते।

रत्र कुण्डलिनी शक्तिरेव बोध्यत इति निश्चप्रचम्। तदत्र महामाया कुण्डलिनी विशेषेण विविच्यते।

"इष्यतां कुण्डलिन्याख्यं शुद्धमेतद् द्विजोत्तमाः" इति पौष्करवचने महामाया कुण्डलिनीपदेन प्रोच्यते। शतरत्नसंग्रहे स्वतन्त्रतन्त्र-सर्वज्ञानोत्तरादिप्रामाण्येन सेयं महामायाख्या कुण्डलिनी शक्तिरेवं व्याख्याता—समवायिशक्तेरधो वर्तमाना मायाकर्मानुसारिणी कुण्डलिनी शक्तिः शिवस्य परिग्रहशक्तिरित्युदीर्यते। तदुक्तं रत्नत्रये—"मन्त्रयोनिर्महामाया या परिग्रहवर्तिनी" (श्लो० १६६) इति। "अत्र कुण्डलिनीशब्दवाच्या तु भुजङ्गकुटिलाकारेण नादात्मना स्वकार्येण प्रतिपुरुषं भेदेनाऽवस्थिता, न तु स्वरूपेण प्रतिपुरुषमवस्थितेत्यर्थः" इति सर्वज्ञानोत्तरवृत्तिकारः। तस्या महामायायाः सकाशान्नादबिन्द्वादिकं कार्यं निष्पद्यते। तदुक्तं विश्वसारोत्तरसूत्रे—

याऽद्य कुण्डलिनी शक्तिर्मायाकर्मानुसारिणी।
नादबिन्द्वादिकं कार्यं तस्या इति जगत्स्थितिः॥ इति।

अत्राऽयमभिप्रायः—शिवेन समवायिशक्त्या क्षुब्धाया महामायायाः कुण्डलिन्याः सकाशान्नादाभिधानं तत्त्वं प्रथममुत्पद्यते। इदमेव शिवाधारतया शिवतत्त्वमित्यपि वदन्ति। ततो बिन्दुसंज्ञकं तत्त्वमुत्पद्यते। इदं च तत्त्वं शब्दाधारतया शक्तितत्त्वम्। ततः शक्तितत्त्वात् सादाख्यं तत्त्वम्, सादाख्यादीश्वराख्यं तत्त्वम्, ईशाख्याद् विद्याख्यं तत्त्वमिति क्रमेण शुद्धानि पञ्चतत्त्वानि जायन्ते। तत्र विद्यातत्त्वे विद्यातत्त्वाधिपतिश्च, भृगुण्याद्याः सप्त विद्याराज्ञश्च, तदधीनाः सप्तकोटिमहामन्त्राश्च, वाचकशब्दा व्योमव्याप्यक्षरादयश्च, वैखर्यादयः, कामिकाद्यष्टाविंशतितन्त्राणि च वर्तन्ते। ईश्वरतत्त्वेऽनन्तादयोऽष्टौ विद्येशाः, तदधिष्ठात्र्यस्त्वष्टौ वामादिशक्तयः, तद्विलासिन्यः शक्तयोऽष्टौ भानुमत्यादयः, उच्छुष्मादयः पञ्च रुद्राः, सिद्धान्तशास्त्रैः प्रपूजिता नन्द्याद्यष्टौ गणेश्वराः, इन्द्रादयो लोकपालास्तेषामायुधानि च, शिवासनभूता धर्मादयोऽष्टौ च स्थिताः। सदाशिवतत्त्वे तदधिकारावस्थः सदाशिवः, प्रणवाद्या दशाणवः, पञ्च ब्रह्माणि, षडङ्गानि च, अक्षरबिन्दुस्थूलध्वनिरूपो नादश्च वर्तते। बिन्दुतत्त्वे भुवनरूपो निवृत्तिपदादिसंज्ञः सद्योजातादिसंज्ञः सकलनिष्कलाख्यः शिवः, अक्षरबिन्दुहेतुस्वरूपः सूक्ष्मनादश्च वर्तते। नादतत्त्वे तु ध्वनिपतिरिन्धिका वा दीपिका वा रेचिका वा निवृत्त्यादिभुवनपतिसंज्ञः शिवो वर्तते। चिच्छक्तौ च शक्तिमद्वरिष्ठः परमेश्वरः सकलजगत्परमकारणं कुण्डलिनी च वागीशांपतयश्च। तदूर्ध्वं केवलं शिव एवेति।

इदं नादतत्त्वमेव परमकारणं नित्यम्। तदेव महामायेति केचिदाचार्या वदन्ति। तेषां पक्षे चत्वार्येव कार्याणि शुद्धतत्त्वानि। तद्यथा—

शुद्धानि पञ्चतत्त्वान्याद्यं तेषु स्मरन्ति शिवतत्त्वम्।
शक्तिसदाशिवतत्त्वे ईश्वरविद्याख्यतत्त्वे च॥ इति।
(त० प्र०, श्लो० २१)

अस्य व्याख्या—तेषु मद्याच्छिवतत्त्वं[1] बिन्द्वात्मकमाद्यं प्रधानमुपादानं स्मरन्ति पूर्वाचार्याः, परमोपादानत्वेनैव चाऽस्य मायावन्नित्यत्वं सिद्धम्। अतश्चाऽन्यानि चत्वारि तत्त्वानि तत्कार्याणीति भावः। श्रीमत्पौष्करे तु नादाभिधानं शिवतत्त्वमपि कार्यमेव, किन्तु तत्र शक्तितत्त्वान्तर्भावेन चत्वार्येव कार्याणि शुद्धानीत्युक्तम्। तद्यथा—

वृत्तिस्तत्त्वात्मिका चाऽस्य चतुर्थी संव्यवस्थिता।
शिवतत्त्वं सदेशाख्यमीशं विद्याह्वयं तथा॥
शुद्धान्येतानि तत्त्वानि रुद्राणूनां महात्मनाम्। इति।

सर्वज्ञानोत्तरे तु शक्त्यभिधानं बिन्दुतत्त्वमेव परमकारणमित्युक्तम्—

अतोर्ध्वं बैन्दवं तत्त्वं विमलं सर्वतोमुखम्।
परमं सर्वतत्त्वानामनन्तज्योतिरूपकम्॥ इति।

[2]वाग्रूपा वैखर्यादयश्चतस्रस्तस्या महामायाया वृत्तयः कार्याणि। "तस्याश्चतस्रो वाग्रूपा वृत्तयो वैखर्यादयः। वैखरी मध्यमा चाऽन्या पश्यन्ती सूक्ष्म-

१. प्रकरणानुरोधान्नादात्मकमिति पाठेन भाव्यम्।

२. संवित्स्तोत्रानुसारं वक्ति वागिति निरुक्तिमाश्रयन् महेश्वरानन्दः परावागात्मनि संविदि वाग्व्यवहारं विधत्ते। तद्यथा—"तस्याश्च वक्तीति कर्तृव्युत्पत्त्या वाक्त्वम्, न पुनरुच्यत इति वर्णानुगुण्यात्" (म. म. प., पृ. १२४) इति। शिवदृष्टिकारेण सोमानन्देनाऽपि कालपादा-खेटपालकृतस्वायम्भुवटीका-व्याख्यानिगुरुकृतमतङ्गटीका-प्रमाणैर्नादाख्यस्य शब्दस्य शिवात्मकत्वं वर्णितम्, भट्टोत्पलेन तट्टीकाकारेण सोद्धरणं व्याख्यातम् (पृ० १०२-१०४), तन्त्रालोककारेण (१६।२१०) च तत्तथैव स्मृतम्। स्पन्दप्रदीपिकाधृतकालपादायामपि—"शब्दो नादात्मकः" (पृ० १०९) इति, "पराक्षरतरोर्धातुनानाशक्तेर्विवर्तगाः। शक्तयो वर्णदेहेषु वक्त्राद्वर्णत्वमागताः॥" (पृ० १०९) इति च पराया वाच एव सर्वोऽपि वाग्व्यवहारः प्रसृत इति व्यक्तीक्रियते। तत्रैवोद्धृतैः—"निष्कम्पबोधसामान्यरूपः "(जया० २०।२३३-२३९) इत्यादिभिः श्लोकैस्तस्या अभिव्यक्तिक्रमश्च प्रदर्श्यते। "संविन्मूलाद् वर्ण-

संज्ञिता ॥" इति विश्वसारोत्तरवचनमत्र प्रमाणम् । एका वृत्तिर्नाम्ना वैखरीत्युच्यते । अन्या वृत्तिर्मध्यमा । तृतीया नाम्ना पश्यन्ती । चतुर्थी च सूक्ष्मसंज्ञिता[१] । तत्र सूक्ष्मा वृत्तिर्नादः, पश्यन्ती वृत्तिर्बिन्दुः, मध्यमा वृत्तिरक्षरम्, वैखरी वृत्तिर्मातृकेत्युच्यते[२] । अनेन शब्दसृष्टिरपि बिन्दूपादानेत्युक्तं भवति । अत्रायं सृष्टिक्रमः

रूपाज्ज्ञानस्तम्भात् सरस्वती । प्रागघोषा सनादाऽनु पुण्यतीर्था प्रवर्तते ॥" (पृ० ८७) इत्यादिकं संवित्प्रकाशवचनम्, घोषिणी जातनिर्घोषा नित्यमेव प्रवर्तते । तयोरपि च घोषिण्या निर्घोषैव गरीयसी ॥ गौरिव प्रसवत्यर्थान् रसमुत्तमशालिनी । सततं स्पन्दते ह्येषा शाश्वतं ब्रह्मवादिनी ॥ दिव्यादिव्यप्रभावेण भारती गौः शुचिस्मिते । एतयोरन्तरं पश्य सूक्ष्मयोः स्पन्दमानयोः ॥" (आश्व० २१।२१-२३) इति महाभारतवचनम् "वागेवास्याः" (पृ० ८९) इति संवित्प्रकाशवचनं च वाचो महिमानं वर्णयन्ति । संविदेव प्राणद्वारेण वाग्रूपतां धत्त इति—"स्थानेषु विवृते वायौ" (पृ० ११२) इत्यादिकान् श्लोकानुद्धरता स्पन्दप्रदीपिकाकारेण सुष्ठु प्रदर्शितम् । तस्यां चान्तःसंजल्परूपायां (परायां वाचि) द्वावपि शब्दार्थौ समं स्फुरतः (पृ० ११३) इति वदन्, योगिनाथवचनानि प्रमाणयंश्च स तमिमं विषयं स्थूणानिखननन्यायेन पुनः पोषयति । एवं च वाचः शब्दब्रह्मस्वरूपं निर्बाधं सिद्धयति ।

"खेचरी गोचरी चाथ दिक्चरी भूचरीभिदा । परादिभारतीसंस्थं शक्तिचक्रं चतुर्विधम् ॥" (पृ० ९१) इति, "आनन्देच्छाज्ञक्रियाख्यं खेचर्यादिं चतुष्टयम्" (पृ० ९१) इति च स्पन्दप्रदीपिकाधृतयोरनयोर्वचनयोः परादिभारतीसंस्थं शक्तिचक्रं वर्ण्यते ।

वाचः परापश्यन्त्यादयश्चत्वारो भेदाः सर्वत्र प्रदर्श्यन्ते । परिमलधृतपादुकाक्रमे तु—"विमर्शो बिन्दुनादौ च स्फोटः शब्दश्च वाक्क्रमः" (पृ० ८६) इति पञ्चभेदा भारत्या व्याख्यायन्ते । साम्बपञ्चाशिकाव्याख्याधृतभर्गशिखायां (पृ० ३४) च भर्गस्यैव शब्दब्रह्मरूपत्वं समुपवर्ण्यते ।

१. विषयोऽयं सिद्धान्तरहस्यसारवचनप्रामाण्येन विवेचित इति तदर्थं शारत्नधृतं तद्वचनं तत्रैव (पृ० ५३) द्रष्टव्यम् ।

२. मातृका-मालिनी-भूतलिपि-स्वरूपविचारोऽस्माभिर्नित्याषोडशिकार्णवस्य उपोद्घाते (पृ० ६२-६९) कृतः । "तेन ता मातरः प्रोक्ताः" इति विष्णुयामलवचने तेषां मातृत्वं प्रदर्शितम् । "न तैर्विना भवेच्छब्दो नार्थो नाऽपि चितेः स्थितिः" इति सर्ववीरवचने मातृकावर्णानां माहात्म्यातिशयो वर्ण्यते । "अष्टाष्टकविभेदेन मातृका या निरूपिता । तदेव कुलचक्रं तु तेन व्याप्तमिदं जगत् ॥" इति त्रिकुरत्नकुलवचने

—शिवेच्छया प्रथमं क्षुब्धाया महामायायाः सकाशान्नाद उत्पद्यते, नादाद् बिन्दुः, बिन्दोरक्षरम्, अक्षरान्मातृकेति। तदुक्तं मृगेन्द्रे—"शक्तेर्नादोऽभवद् बिन्दुरक्षरं मातृका ततः" (क्रि० १।२) इति, "बिन्दुः क्षुब्धस्तदिच्छातः शब्दराशिरभूत् तदा" इति च पराख्ये। अत एवेयं महामाया शब्दवस्तूभयात्मिका मन्यते, शब्दात्मकानां वर्णपदमन्त्राणां वस्त्वात्मकानां कलातत्त्वभुवनानां चोत्पादनात्।

महामायायाश्चतसृणामपि वृत्तीनामाश्रयभूता निवृत्त्यादयः कलाः पञ्च च बिन्द्वात्मिकायास्तस्या एव कार्याणि। तदुक्तं रत्नत्रये—"सैषा चतुर्विधा वृत्तिर्निवृत्त्यादिकलाश्रयात्। पञ्चधा भिद्यते भूयः कलास्ता बिन्दुवृत्तयः॥" (श्लो० ८५) इति।

अत्र शब्दब्रह्मवादिन आत्मन एव नादादिक्रमेणाऽवस्थानमिति वदन्ति। तदयुक्तम्, अविकारिणस्तस्य नादाद्याकारेण परिणामानुपपत्तेः। नापि तच्छक्तेः, तस्या अपि परिणामायोगात्, द्वयोरपि विकारित्वाभ्युपगमेऽचेतनत्वप्रसङ्गात्। तस्मात् शब्दोपादानत्वं बिन्दोरेवाभ्युपगन्तव्यम्। तदुक्तं नादकारिकासु—"अविकार्यत्रात्मोक्तस्तच्छक्तिश्चाप्यतो न योग्यौ तौ। बहुधा स्यातां यद्वा चैतन्यविनाकृतौ विकारित्वात्॥" (श्लो० १६) इति।

कुण्डलिन्या वर्णोदयप्रक्रिया[1] सिद्धयोगीश्वरीमते सुष्ठु व्याख्याता। तत्र हि संविन्मात्ररूपा विसर्गशक्तिरेव गर्भीकृतनिखिलविश्वत्वात् कुण्डलिनीशब्दव्यपदेश्या [2]अनच्ककलारूपा सर्वस्य जगतो बीजभूता योनिः सर्वव्यवस्थितीनां जीवभूता चाङ्गीकृता। यदुक्तं तत्र—"या सा कुण्डलिनी साऽत्र जगद्योनिः

मातृकाख्येन कुलचक्रेण सर्वं जगद् व्याप्तमिति वर्णितम्। "मातृकाज्ञानभेदे विस्तरतो निरूपितमेतत्" (प. त्री. वृ., पृ. १९२) इत्यभिनवगुप्तो भाषते। शाम्भवोपायप्रदर्शके हि कुलकौलदर्शनेऽनुत्तरादकारादेव विश्वस्य जगतः सृष्टिरिति सिद्धान्तः सविस्तरं प्रतिपाद्यते। एतच्च तन्त्रालोकस्य तृतीयाह्निके परात्रीशिकाव्याख्यायाम्, परापञ्चाशिकायाम्, सौभाग्यसुधोदयस्य प्रथमे प्रपञ्चे, शिवसूत्रविमर्शिन्याम्, संकेतपद्धति-स्वच्छन्दसंग्रहादिवचनेषु च विवेचितम्। अभिनवगुप्तधृतो मातृकाज्ञानभेदाख्यो ग्रन्थस्तु साम्प्रतं नोपलभ्यते, नोपलभ्यते च त्रिकरत्नकुलमपि।

१. तन्त्रालोके (३।२२०-२२३), शिवसूत्रविमर्शिन्यां (२।७) च विषयोऽयं सविशेषं प्रतिपादितः।

२. अनच्ककहकाररूपा प्राणकुण्डलिनी विज्ञानभैरव-नेत्रतन्त्र-स्पन्दकारिका-अद्वयसम्पत्तिवार्त्तिकप्रभृतिषु व्याख्याता, अस्माभिश्च शाक्तपरिभाषासु विशदीकृता।

प्रकीर्तिता। तुटिरूपा तु सा ज्ञेया जीवभूता जगत्यपि ॥ बीजरूपा समाख्याता चिद्रूपापि प्रकीर्तिता।" इति। एवंभूतायाः कुण्डलिन्याः सकाशादनुत्तरेच्छोन्मेषाख्यं वर्णत्रयं जातम्। ततो वर्णत्रयादस्मान्निखिलवर्णान्तरोदय इति। यदुक्तं तत्र—"शक्तित्रयसमुद्भूतिस्ततो वर्णसमुद्भवः" इति।

त्रिशिरोमतेऽमाख्यकलास्वरूपस्फारसिद्धान्तविचाराऽवसरेऽन्तःकरणप्रभृतीनां षोडशानामपि कलानामाप्यायकारित्वान्नित्योदितत्वेन चानस्तमितरूपत्वादमृताकाररूपिणी चिन्मात्रस्वरूपा इकारार्धार्धरूपिणी या [1]अमाख्या कला सप्तदशी, सा परस्य आनन्दात्मनो विसर्गस्य, अपरस्य च हकारात्मनः पराऽपरो योऽसौ विसर्गस्तस्य स्वरूपस्थौ यावात्मभूतौ विसर्जनीयशब्दवाच्यौ बिन्दू, तयोः स्वरूपावबिभासयिषया प्रोच्छलन्ती, अत एव च सर्वेषां प्रमातृप्रमाणप्रमेयात्मनां वस्तूनां प्रकाशात्मिका राजते। सैव च पुनर्विसर्गेण बहिर्भावौन्मुख्येन विरहिता सती प्रसुप्तभुजगाकारत्वात् स्वात्ममात्रविश्रान्ता शक्तिकुण्डलिनी, विसर्गस्य बहिर्भावौन्मुख्यात्मकादिकोटिरूपे प्रान्तदेशे [2]प्राणकुण्डलिनी, तथा प्रत्यावृत्तिक्रमेणान्तर्भावौन्मुख्यरूपान्तकोट्यात्मनि प्रान्ते स्वरूपे पराकुण्डलिनी स्वात्मविश्रान्तपरसंविन्मात्ररूपा प्रोच्यते। इयमेव संविन्मात्ररूपा सप्तदशी कला शिवव्योमेति, परमं ब्रह्मेति, शुद्धात्मस्थानमिति प्रोच्यत इति प्रतिपाद्यते (तन्त्रा० ३।१३७-१४०)। एवं चात्र त्रिविधा कुण्डलिनी व्याख्याता।

सिद्धयोगीश्वरीमते योगिनीकौले च तत्तदेकपिण्डाद्यात्मकमन्त्ररूपतया बहिरुल्लसन्ती वर्णकुण्डलिन्याख्या पारमेश्वरी शक्तिर्यदि नाम प्राणसाम्येनोदयमियात्, तदोन्मना शिवैकात्म्येन प्रस्फुरेदित्येवं वर्णकुण्डलिनी वर्णिता (तन्त्रा० ७४०-४१)। सिद्धामते च चर्चिता कुण्डलाख्या शक्तिर्नित्याषोडशिकार्णवेऽपि[3] व्याख्याता विद्यते। पिण्डं कुण्डलिनी शक्तिः, भैरवो बिन्दुः शक्तिश्च नादकुण्डलिनी[4] मतोत्तरे वर्ण्यते।

---

१. सोमस्य षोडशी कला 'अमा' इत्युच्यते। अस्या कलाया विवरणं शब्दकल्पद्रुमधृतस्कन्दपुराणरघुनन्दनवचनेषु द्रष्टव्यम्। "भारतीय वाङ्मय में शाक्तदृष्टि" (पृ० ३०९), "भारतीय संस्कृति और साधना" (भा० १, पृ० ३१६)-श्रीतत्त्वचिन्तामणि- (६।४७) प्रभृतिग्रन्थेष्वपि कलाया अस्याः स्वरूपं विवृतं द्रष्टव्यम्।

२. अकुलकुण्डलिनी-कुण्डलिनी-कुलकुण्डलिनी-प्राणकुण्डलिनीनां विशदं विवरणमस्मदीये शाक्तपरिभाषाकोशे द्रष्टव्यम्।

३. काशीसंस्करणस्य ३०, २५५-२५६ पृष्ठानि द्रष्टव्यानि।

४. तत्रैव २४, १३९ पृष्ठे अवलोकनीये।

ब्रह्मबिले शूली पञ्चास्यः शशिशेखरोऽवतिष्ठते। तस्योत्सङ्गे परा देवी मोक्षमार्गस्य रोध्री दात्री च ब्रह्माणी समवस्थिता। तत ऊर्ध्वं प्रसुप्तभुजगाकारा ऊर्णातन्तुतनीयसी सर्वतत्त्वानां भुवनानां चाधारभूता ऊर्ध्वकुण्डलिनी वर्तते। निखिलस्याऽस्य विश्वस्यानुन्मिषितत्वेनान्तर्गर्भीकारात् स्वभित्तावेव विश्वस्योल्लासनाच्च सा विश्वाधार इत्युच्यते। एषा च शक्तितत्त्वनाम्ना प्रसिद्ध्यतीति च नन्दिशिखायां द्रष्टव्यम् (तन्त्रा० ८।३९४-३९६)।

एवमत्र महामाया कुण्डलिनी विविधशास्त्रदृष्ट्या विवेचिता। नादकारिकाकारो महामायापर्यायितया नादशब्दं व्यवहरति, रत्नत्रयकारश्च बिन्दुशब्दम्। परो नादः, सुमङ्गला, मालिनी, महामाया, समना, अनाहतबिन्दुः, अघोषा वाक्, ब्रह्मकुण्डलिनी, विद्यातत्त्वम्, शब्दतत्त्वम्, अनाहतव्योम—इत्येते पर्याया इति तौ प्रतिपादयतः। एते शब्दा अत्र प्रायो मूले टिप्पण्यां वा व्याख्याताः। सर्वे एते शब्दा विभिन्नानामागमसम्प्रदायानां प्रातिनिध्यमाचरन्ति, शब्दार्थोभयात्मिकां सृष्टिं च समुत्पादयन्ति।

निष्कलाच्छिवादवबोधरूपं ज्ञानमेव प्रथमं नादरूपेण प्रसृतमिति पौष्करस्वच्छन्दादिषु प्रतिपाद्यते। हंसनिर्णये नव नादा वर्ण्यन्ते। स्वच्छन्दोद्योते च धर्मशिववचनप्रामाण्येनाष्टौ शब्दा लक्षिताः। तन्त्रालोके (५।९७) ब्रह्मयामलप्रामाण्येन दशधा रावो निरूप्यते। अत्र प्रयुक्तौ नाद-रावशब्दौ मध्यमां वाचं निर्दिशतः। योगशास्त्रेषु वर्णिता नादानुसन्धानप्रक्रिया तदाधृतैव।

बिन्दुश्च व्याख्यायते पञ्चविधो मातृकान्तर्गतः। मन्त्रवीर्यस्वरूपश्चतुष्कलो बिन्दुः शिवसूत्रविमर्शिन्यां (२।२) तन्त्रसद्भावप्रामाण्येन विव्रियते। बिन्दुर्बैन्दवं चक्रं च योगशास्त्रेष्वपि व्याख्यायते।

क्वचन शास्त्रेषु शब्दाविमौ परां पश्यन्तीं च वागवस्थां बोधयत इति प्रतिपादितमेव। अन्यत्र शुद्धतत्त्वभुवनयोर्वाचकाविमौ। जपप्रकरणे पदैकादशिकायामपि दृश्येते शब्दाविमौ योगिनीहृदयस्वच्छन्दतन्त्रादिषु बहुधा व्याख्यातौ।

तन्त्रालोके तद्विवेके (१।७५-७७) च किरणशास्त्रप्रामाण्येन शिवस्य शून्यत्वं संसाध्य—"बिन्दुर्नादस्तथा शक्तिः शून्यत्वे परिकल्पिताः" इत्यादिना शून्यशिवतत्त्वाधिगतये बिन्दुनादयोरप्युपयोगः समर्थितः। बिन्दुनादात्मिका व्याप्तिश्च त्रिशिरोमतप्रामाण्येन तन्त्रालोके प्रदर्शिता—

बिन्दुनादात्मिका व्याप्तिः श्रीमत्त्रैशिरसे मते।
क्षेपाक्रान्तिचिदुद्बोधदीपनस्थापनान्यथ ॥

तत्संवित्तिस्तदापत्तिरिति संज्ञाभिशब्दिता ।
एतावती महाव्याप्तिर्मूर्तित्वेनात्र कीर्तिता ॥ इति ।
(३०।१२-१४)

तद्विवेके च—

क्षेपमाक्रमणं चैव चिदुद्बोधं च दीपनम् ।
स्थापनं चैव संवित्तिस्तदापत्तिस्तथैव च ॥
कारणक्रमयोगेन शास्त्रेऽस्मिन् सुरसुन्दरि ।
आधाराधेयभावेन मूर्तिः सप्तविधा स्मृता ॥ इति,
क्षेपस्तु कथितो बिन्दुराक्रान्तिर्नाद उच्यते ।
चिदुद्बोधः परावस्था दीपनं शक्तिरुच्यते ॥
स्थापनं व्यापिनी प्रोक्ता संवित्तिः समना स्मृता ।
उन्मना च तदापत्तिरित्येषा मूर्तिरुच्यते ॥

इति च ग्रन्थोद्धरणमुखेन सा व्याख्याता । विवरणमेतज्जपस्य पदैकादशिकापद्धतिमनुसरन् मन्त्राणां मूर्तिमुन्मीलयति ।

वागीश्वरी महामाया शुद्धाध्वन उपादानकारणमिति निबन्धारम्भ एवोक्तम् । अत्र च शिवस्य निमित्तकारणत्वं प्रतिपाद्यते, "शुद्धेऽध्वनि शिवः कर्ता" इति हि किरणवचनं तत्र प्रमाणम् । अशुद्धेऽध्वनि चानन्तस्य कर्तृत्वं मायायाश्चोपादानत्वमङ्गीक्रियते, "प्रोक्तोऽनन्तोऽसिते प्रभुः" इति, "मायाविक्षोभकोऽनन्तः" इति च वचनं तत्र प्रमाणम् । अशुद्धेऽध्वनि च परशक्ति-नाद-बिन्दु-सदाशिव-विद्यारूपः पञ्चस्कन्धः शुद्धोऽध्वा व्यापकत्वेन संस्थितः ।

तद्यथा—परमकारणं महामायारूपः सूक्ष्मो नादः कलां व्याप्नोति । इन्धिकादिपञ्चकलोपेतः स्थूलो नादः काल-नियति-विद्या-राग-पुरुषरूपाणि तत्त्वानि व्याप्नोति । निवृत्त्यादिकलाचतुष्टयसहितो बिन्दुश्चतुर्ग्रन्थिरूपप्रधान-गुण-बुद्धि-अहङ्कारतत्त्वानि व्याप्नोति । एतदन्तर्गतमहङ्कारतत्त्वं मनसा सह ज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियात्मकं करणदशकं व्याप्नोति । तद्विन्द्वन्तर्गतं बुद्धितत्त्वं धर्माधर्मादिभावांस्तदुपादानानि प्रत्ययांश्च व्याप्नोति । सदाशिवनाथः पृथिव्यादितन्मात्रपञ्चकाधिष्ठातृसद्योजातादिपञ्चमन्त्रतनुर्भूत्वा तन्मात्रपञ्चकं व्याप्नोति । मन्त्रेशास्तु सूक्ष्मदेहारम्भकभूतविशेषान् व्याप्नुवन्ति । मन्त्रास्तु स्थूलपृथिव्यादीनि व्याप्नुवन्ति । तथा च विद्येश्वरोभयात्मको विद्यास्कन्ध एकः, सदाशिवस्कन्धो द्वितीयः, बिन्दुस्कन्धस्तृतीयः, नादस्कन्धश्चतुर्थः, कारणस्कन्धः पञ्चम इति पञ्चस्कन्धः शुद्धाध्वेति मन्तव्यम् । तथा चोक्तं मृगेन्द्रे—

विद्या पञ्चाणुदेहाश्च बिन्दुर्नादोऽथ कारणम् ।
पञ्चस्कन्धः परो मार्गः क्व भावाः प्रत्ययाः स्थिताः ॥

इति प्रश्नस्योत्तरमुखेन—

नादः सूक्ष्मः कला कालरागयुग्मे सपूरुषे ।
स्थूलः पञ्चकलो नादः पञ्चतत्त्वाश्रयो मुने ॥
प्रधानादिचतुर्ग्रन्थिनिधिबिन्दुश्चतुष्कलः ।
गर्वे मनोमुखा देवा बुद्धौ भावादयः स्थिताः ॥
पञ्चमन्त्रतनुर्देवः स्थितस्तन्मात्रपञ्चके ।
सूक्ष्मभूतेषु मन्त्रेशा मन्त्राः स्थूलेषु संस्थिताः ॥ इति,
(विद्या० १३।१९५-१९८)

सादाशिवे पवित्राङ्गसकलादिपरिच्छदः ।
देवः सदाशिवो बिन्दौ निवृत्यादिकलेश्वराः ॥
नादे ध्वनिपतिः शक्तौ सर्वशक्तिमतां वरः ।
योनिर्विश्वस्य वागीशाः पतयः परतः शिवः ॥ इति,
(विद्या० १३।१६०-१६२)

भूमिप्राधानिकग्रन्थिविद्याबिन्दुकलादिषु ।
गुणकारा दशाद्याः स्युर्नादकोटेरधो मुने ॥ इति,
(विद्या० १३।१७७)

एवं मन्त्रेशमुख्येषु विशत्स्वभिमतं पदम् ।
विद्यामत्ति सदातत्त्वं तद्बिन्दुर्बैन्दवं ध्वनिः ॥
नादमत्ति परा शक्तिः शक्तिमीष्टे स्वयं हरः ॥
(विद्या० १३।१९१-१९२)

इति च तत्रत्यानि वचनानि प्रसङ्गेऽस्मिन्नवधेयानि । एतेषामर्थस्तत्रैव वृत्तौ दीपिकायां च द्रष्टव्यः ।

बिन्दुनादात्मकैर्देहैः शान्तैश्च शिवसम्भवैः ।
अतीतस्तु भवेद् देवो निरञ्जनः परः शिवः ॥

इति त्रिकसारवचनं चाऽत्र स्मर्तव्यम् ।

एवमत्र महामाया-कुण्डलिनी-नाद-बिन्दुशब्दा बहुधा व्याख्यायन्ते । क्वचन तेषां पर्यायता, अन्यत्र कार्यकारणभावः, इतरत्र च तेषां प्रत्येकं स्वतन्त्रं सर्वोपादानत्वं वर्ण्यते । मातृकासु, जपविधौ, नादानुसन्धानप्रक्रियायाम्, षडध्वान्तःपातिषु भुवनेषु च नाद बिन्दुशब्दौ बहुधा व्याख्यातौ । दिङ्मात्रमत्र प्रदर्शितम् । विस्तरस्त्वाकरेषु द्रष्टव्य इति शम् ॥



सात्वतीयो योगः

आगमग्रन्थेषु संहिताग्रन्थेषु च [1]ज्ञान-योग-क्रिया-चर्यात्मकः पादविभागो[2] दृश्यते, किन्तु त्रिरत्ननाम्ना प्रख्यातासु सात्वत-पौष्कर-जयाख्यासु पाञ्चरात्र-संहितासु तन्नास्ति। [3]अथापि ज्ञान-योग-क्रिया-चर्यापादेषु प्रतिपादिताः सर्वे विषयाः संक्षेपेण विस्तरेण वा प्रकरणबद्धा विप्रकीर्णा वा तासु विद्यन्त एव। सात्वतसंहितायां योगशास्त्रस्य प्रतिपादका अंशाः प्रायः सम्पूर्णे ग्रन्थे विप्रकीर्णा विद्यन्ते। तान् संगृह्यात्र किमप्युच्यते।

"वासुदेवेन सङ्कर्षणायोपदिष्टमेकायनश्रुतेः सूत्ररूपं भगवत्प्राप्त्येकोपायभूताभिगमनोपादानेज्यास्वाध्याययोगरूपकर्मविचारैः[4] परव्यूहविभवरूप-

---

१. अत्र २९ पृष्ठस्था प्रथमा टिप्पणी द्रष्टव्या।

२. अत्र २९ पृष्ठस्था द्वितीया टिप्पणी द्रष्टव्या।

३. अत्र २९ पृष्ठस्था तृतीया टिप्पणी द्रष्टव्या।

४ अभिगमनम्, उपादानम्, इज्या, स्वाध्यायः, योग इति पञ्चानां भगवत्कैङ्कर्यरूपाणां कर्मणां प्रत्यहमनुष्ठानार्थं प्रतिनियताः पञ्च कालाः शास्त्रेऽस्मिन् यतः सन्ति संविभक्ताः, अतः पञ्चरात्राह्वयमिदं शास्त्रमिति मन्तव्यम्। "तैरिष्टः पञ्चकालज्ञैर्हरिरेकान्तिभिर्नरैः" (१२।३३६।४६), "तत्रापि पञ्चभिर्यज्ञैः पञ्चकालानरिन्दम" (१२।३३७।३०) इत्येवं नारायणीयोपाख्यानेऽपि स्मर्यन्ते पञ्चकालाः पञ्चयज्ञा वा इमे। श्रूयते च शतपथब्राह्मणे (१३।६।१) पाञ्चरात्रसत्रम्। वैदिके वाङ्मये रात्रशब्दो वर्ततेऽहोरात्रस्य वाचकः। तदनुसारं पाञ्चरात्रसत्रमिदं पञ्चभिरहोरात्रैः सम्पादनीयं स्यात्। अत्र चैकमेवाहोरात्रं पञ्चसु कालेषु विभज्य तत्र भगवानिज्यते। कालसंकोचेऽस्मिन् किं कारणमिति न जानीमः, पाञ्चरात्रसंज्ञाप्रवृत्तिनिमित्तं त्वत्रैव निहितमिति वयं भणामः। "पञ्चकालरतश्चैव पञ्चरात्रार्थवित्तथा" (१६।९) इति जयाख्यवचने पञ्चकालपञ्चरात्रयोः पृथङ् निर्देशान्नैतत्संभवतीति पाञ्चरात्ररक्षासम्पादकः श्रीदुरैस्वामिमहोदयः स्वकीये संस्कृतोपोद्घाते (पृ० ३९) प्रतिपादयति। तन्न विचारचारु, पञ्चरात्रार्थविदेव पञ्चकालरतो भवतीत्येतत्प्रदर्शनाय तत्रोभयोरप्येतयोः पदयोः प्रयोगस्यावश्यकत्वात्, पञ्चरात्रशास्त्रं जानाति, तदनुरूपमाचरतीति जयाख्यवचनस्याभिप्रायत्वात्।

ब्रह्मविचारैश्च गर्भितं "पञ्चविंशतिलक्षणं सात्वतं तन्त्रम्" (पृ० १) इति हि भाष्यकारोऽलशिङ्गभट्टो ग्रन्थारम्भ एव वदति। सात्वतोऽयं क्रियामार्गः शुद्धमार्ग इत्यपि स प्रतिपादयति (पृ० ३)। एतच्च पाञ्चकालिकं धर्मानुष्ठानं भागवतस्य विहितम् (पृ० १०७)। शुद्धः क्रियामार्गो[२] हि कर्मज्ञानभक्तिप्रपत्तिनाम्नां चतुर्विधानां भगवत्प्राप्त्युपायानां मध्ये प्रथमः कर्मयोगनाम्नाऽप्यभिधीयते (पृ० ३०)। तदेतस्य पञ्चाङ्गस्य शुद्धस्य क्रियामार्गस्य विवरणमत्र षष्ठे परिच्छेदे विस्तरेणोपलभ्यते। योगस्तस्यान्तिममङ्गं भवति। सोऽयं योगोऽत्र "समुत्थायाऽर्धरात्रेऽथ" (६।१९३) इत्यादिना "ब्रह्म सम्पद्यते तदा" (६।२१४) इत्यन्तेन ग्रन्थेन षष्ठे, "मन्त्रमाराधयेद् येन विधिना" (१७।१५) इत्यादिना "हृदि विन्यसेत्" (१७।२७) इत्यन्तेन ग्रन्थेन सप्तदशेऽन्यत्र च यथाप्रसङ्गं वर्णितः। तथाहि—अर्धरात्रे समुत्थाय जितनिद्रो जितेन्द्रियः साधकः कमण्डलुस्थितेन वारिणा समाचम्य गुरुं देवं च नमस्कृत्य[३] अजिनासने समुपविश्यानिरुद्धाख्यादि-

१. पञ्चविंशतिलक्षणमिति विशेषणेन सात्वततन्त्रस्य पञ्चविंशतिपरिच्छेदात्मकत्वमेव भाष्यकारस्याभिप्रेतमिति निश्चप्रचम्। एवं च डॉ० देनियलस्मिथमहोदयस्यापूर्णेयं संहितेति कथनं नैवौचित्यपदवीं भजते ("ए डिस्क्रिप्टिव बिब्लिओग्राफी आफ द प्रिण्टेड टेक्स्ट्स आफ द पाञ्चरात्रागम" इत्यस्य ग्रन्थस्य प्रथमभागस्य ५३४-५३६ पृष्ठान्यवलोकनीयानि)।

२. "तान् सात्वते क्रियामार्गे मद्वाक्याद् याहि योजय" (१।१७) इति सात्वतवचनस्य अद्यावधि निवृत्तिपरायणान् मुनीन् सात्वतशास्त्रोदिते शुद्धे क्रियामार्गे प्रवृत्तिप्रवणे योजयेत्यभिप्रायो ज्ञेयः। क्रियामार्गोऽयं क्रियायोगपदेन पातञ्जलयोगसूत्रे व्याख्यातः— "तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः" (२।१) इति। अयम्—"समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च" (२।२) भवति। सात्वतप्रदर्शितोऽन्तर्यागो हि समाधिभावनयैव निष्पद्यते। यद्यपि—"क्रियायोगाः सर्वे संसृतिहेतवः" इति भागवतभावार्थदीपिकाकारवंशीधरोद्धृतवचनानुसारं सर्वे क्रियायोगाः संसृतिहेतवो भवन्ति, तथापि—"तन्त्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः" (१।३।८) इति श्रीमद्भागवतीयं साक्षाद्वचनमेतत् कर्मणामपि मोक्षप्रदत्वं साधयति। तथाहि व्याख्याकारः श्रीधरः— "कर्मणामेव मोचकत्वं यतो भवति तदाचष्टेत्यर्थः" इति व्याख्यातवान्। "कर्मणां मोक्षसाधनत्वम्" इति पदरत्नावलीकारो विजयध्वजः, "भगवत्सेवापरत्वेन मोचकत्वमेव भवति" इति च गिरिधरो बालप्रबोधिनीकारः। एवं च सात्वतोक्तकर्मणामपि मोक्षसाधनत्वं सुतरां सिद्ध्यति।

३. 'अजिनासने' इति "चेलाजिनकुशोत्तरम्" (६।११) इति भगवद्गीतावचनं स्मारयति।

मन्त्रचतुष्केण संहारलक्षणं न्यासं[1] कुर्यात्। आपादाज्जानुपर्यन्तमनिरुद्धाख्यम्, जानुमण्डलान्नाभ्यन्तं प्रद्युम्नाख्यम्, नाभेराकर्णदेशं साङ्कर्षणम्, आकर्णदेशाद् ब्रह्मरन्ध्रान्तं च वासुदेवाख्यमित्ययं वर्तते मन्त्रचतुष्टयस्य संहारक्रमेण न्यासविधिः। ततोऽभिमतेन पद्मासनादिनाऽऽसीनः स्वात्मनि चातुरात्मीयाभिमानं समाश्रयेत्। वक्षसा समं कायशिरोग्रीवं सन्धाय साधकेन स्वीया विनिमीलितप्राया दृग् नासाग्रगता, जिह्वा तालुतलस्था, दशनावली सान्तरे, ओष्ठपुटावीषल्लग्नौ च विधेयौ। द्वे बाहुकूर्परे नाभौ, हस्तौ च ऊरुमध्यप्रदेशयोर्वामदक्षिणक्रमेणाधरोत्तरयोगेन स्थापनीयौ। एवं स्वविग्रहं [2]योगपट्टेनाचलं सन्धार्य, अपानदेशं संकोच्य, अवर्णहीनेनालक्ष्यमूर्तिना [3]हार्णेन तमुपरिष्टाद् विकासयेत्। तेन च विषयान्तर्निविष्टं चित्तं समाहृत्य बुद्धिलीनं कुर्यात्। ततो मन्त्रैः सहात्मानमात्मना समादधीत।

---

१. अङ्गन्यास-करन्यासादयः सात्वतायां तत्र तत्र विवृताः। सप्तदशे परिच्छेदे तद्विवरणावसरे (पृ० २९५) भाष्यकारः—"व्यापारो मानसो ह्येष न्यासाख्यो यद्यपि स्मृतः। न बध्नाति स्थितिं सम्यक् तथापि क्रियया विना॥ कराधीना पुनः सा" (४।४-५), "नाडीदशकमाश्रित्य ता एवाङ्गुलयो मताः" (४।२२) इत्येवं पारमेश्वरसंहितावचनान्युदाहृत्य न्यासलक्षणमाह। आमगशास्त्रेषु तन्त्रशास्त्रेषु च न्यासानां महान् प्रपञ्चो विद्यते। मन्त्राक्षराणां पदानां सम्पूर्णस्य मन्त्रस्य च भावनाख्येन मानसेन व्यापारेण सह कराङ्गुलीनां यथायथं निर्दिष्टेष्वङ्गेषु योजनां विदधता साधकेन स्वकीयस्य देहस्य दिव्यत्वमापाद्यते।

२. योगस्य पट्टं वसनविशेषः, योगार्थं पट्टमिति वा यद्वस्त्रेण पृष्ठजानुबन्धनं भवति तत्। तल्लक्षणं यथा—पृष्ठजान्वोः समायोगे वस्त्रं वलयवद् दृढम्। परिवेष्ट्य यदूर्ध्वक्षुस्तिष्ठेत्तद् योगपट्टकम्॥" इति पाद्मे कार्तिकमाहात्म्ये द्वितीयेऽध्याये (शब्दकल्पद्रुमे, भा०४, पृ० ५६)। "योगाभ्यासार्थं पट्टम्। योगिधार्ये पट्टसूत्रभेदे। योगपदकमन्यत्र —त्रिविधं योगपदकमाद्यं व्याघ्राजिनोद्भवम्। द्वितीयं मृगचर्माढ्यं तृतीयं तन्तुनिर्मितम्॥ चतुर्मात्रप्रविस्तारं दैर्घ्येण यज्ञसूत्रवत्।" सिद्धान्तशेखरः। चतुर्मात्रं चतुरङ्गुलमात्रम्। वीरमि०" (वाचस्पत्ये भा० ६, पृ० ४७८०)।

३. "मध्यजिह्वे स्फारितास्ये मध्ये निक्षिप्य चेतनाम्। होच्चारं मनसा कुर्वंस्ततः शान्ते प्रलीयते॥" (श्लो० ८०) इति विज्ञानभैरवश्लोकेऽप्यनच्कहकारमात्रोच्चारणमुपदिश्यते। अस्य स्वरूपादिकं तत्रैव व्याख्यानेऽस्माभिः कृते तदुपोद्घाते (पृ० २७-३०) च द्रष्टव्यम्।

तत्रायं क्रमः—स्वहृदयकमलं तत्तत्पदभेदेन चातुरात्म्यैरधिष्ठितं स्मृत्वा जाग्रत्पदस्थेनानिरुद्धेन सह आत्मानमेकीभूतं ध्यायन् प्रत्यहं तन्मन्त्रं शतवारं जपेत्। एवं तन्मन्त्रजपसामर्थ्यात् तदीयं ज्ञानं माहात्म्यं च स्वस्मिन् भावयेत्। एवमेकं संवत्सरं यावद् योगाभ्यासे कृतेऽनिरुद्धतादात्म्यसमन्वितो भवति योगी। तदनन्तरमनिरुद्धं मन्त्रेण सह प्रद्युम्ने संहृत्य प्रद्युम्नोऽहमिति तादात्म्यभावनां कुर्वन् प्रत्यहं तन्मन्त्रं शतद्वयं जपन् पुनरेकं संवत्सरं नयेत्। एतेन प्रद्युम्नप्रभावो भवति। एवं रीत्या सङ्कर्षणमन्त्रं वासुदेवमन्त्रं स्वप्नव्यूहानिरुद्धादि वासुदेवान्तमन्त्रचतुष्टयं च प्रत्येकमेकैकं संवत्सरं जपवृद्धिक्रमेण तत्तादात्म्यभावनया सहाऽभ्यसन् तत्तन्मन्त्रं तत्तदुत्तरमन्त्रे उपसंहरन् सुषुप्तिव्यूहवासुदेवमपि तुर्यस्थाने स्थिते परात्परवासुदेवे उपसंहरन् तत्तादात्म्यभावनया तन्मन्त्रं ध्यातृध्येयाविभागेन यावत्तन्मयत्वं व्रजेत् तावदन्तं जपन् ततो [1]जपक्रियां त्यजेत्। एवमभ्यासाद् भगवद्भावमापन्नो योगी वेद्यवेदकभावरहिते समाधौ यदा स्थितिं लभते, तदा ब्रह्म सम्पद्यते[2]। ब्रह्मैव भवतीत्यर्थः। परमसाम्यं भजतीति यावत्। तदुक्तम्—

अनेन क्रमयोगेन जपवृद्ध्यन्वितेन तु॥
निखिलं चाप्यधीकुर्याद् मन्त्रवृन्दं पुरोदितम्।

---

१. जयाख्यायां (३२।११) योगाख्यानपटले, मृगेन्द्रादिषु च शैवागमेषु योगपादे (श्लो० ३) जपो योगाङ्गतया निर्दिश्यते। वाचिकः, उपांशुः, मानस इति त्रिविध एव जपः सर्वत्र प्रतिपाद्यते। अत्र तु—"वाचिकं क्षुद्रकर्मार्थमुपांशुः सिद्धिकर्मणि। मानसो मोक्षलक्ष्मीदो ध्यानात्मा सर्वसिद्धिकृत्॥" (३९।३५) इत्येवं लक्ष्मीतन्त्रप्रामाण्येन ध्यानात्मा चतुर्थः प्रकारोऽपि भाष्यकारेण जपस्य प्रदर्शितः (पृ० ८५), तस्य योगाङ्गता च व्याख्याता (पृ० ११५)। जयाख्यायां जपविधानाख्ये चतुर्दशे पटलेऽपि सोऽयं विषयो विस्तरेण सभेदोपभेदं भणितः।

२. अस्यां स्पष्टोक्तौ सत्यामपि—"मुद्रां बद्ध्वा स्मरेद् ध्यानं देवोऽहमिति भावयेत्" (१७।३६) इति सात्वतवचनोपबृंहके—"अहं स भगवान् विष्णुरहं नारायणो हरिः। वासुदेवो ह्यहं व्यापी भूतावासो निरञ्जनः॥ एवंरूपमहङ्कारमासाद्य सुदृढं मुने।" (११।४१-४२) इति जयाख्यवचने जागरूके सत्यपि, भाष्यकारः—"नैतावता जीवात्मपरमात्मनोः स्वरूपैक्यं शङ्कनीयम्" (पृ० २९६) इति वदति, पाञ्चरात्ररक्षाप्रामाण्येन च तत्समर्थयति। तदेतच्चिन्त्यम्, "शान्तात्मन्येकतां गतम्" (१९।११२) इत्यत्रापि तयोरेकत्वस्य स्पष्टं प्रतिपादनात्। "जायते तत्परं ब्रह्म वासुदेवाख्यमव्ययम्" (१९।१४०), "प्रकृत्या सह चाभ्येति विलयं ब्रह्मदीक्षया"

यावदाभाति भगवान् स्थाने पूर्वोक्तलक्षणे ॥
प्रलीनमूर्तिरमलो ह्यनन्तस्तेजसां निधिः ।
चिदानन्दघनः शान्तो ह्यनौपम्यो ह्यनाकुलः ॥
समाधायात्मनात्मानं तत्र त्यक्त्वा जपक्रियाम् ।
ध्यातृध्येयाविभागेन यावत् तन्मयतां व्रजेत् ॥
यदा संवेद्यनिर्मुक्ते[1] समाधौ लभते स्थितिम् ।
अभ्यासाद् भगवद्योगी ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥ (६।२१०-२१४)

मन्त्रात्मकस्य भगवत आराधनं चैवं विधीयते—स्नातो बद्धकचो मौनी शुद्धवासोऽर्घ्यपुष्पधृक् साधक आसने उपविश्य दहनाप्यायनात्मिकाभ्यां[2] धारणाभ्यां[3] प्राणायामान्वितां भूतशुद्धिं कुर्यात् । तद्यथा—केवलेन भावनासहितेन वा मन्त्रेण नाभिदेशस्थितं देवं ध्यात्वा कल्मषं संगृह्य वायुमार्गेण प्रथमप्राणायामान्त्यरेचकवायुमार्गेण निस्सृतं तं द्वादशान्तावधौ क्षिपेत् । निरस्तपापं मन्त्रेशं वातचक्रसमन्वितं द्वितीयप्राणायामपूरकवायुसहितं नासाग्रेण देहे सम्पूरयेत् ।

(१९।१८०) इत्यादिभिर्वचनैरप्ययमेव पक्षः समर्थितः । "वासुदेवः परा प्रकृतिः" (२।२।४२) इति ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यवचनेन, "इतस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् । जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥" इति श्रीमद्भगवद्गीतावाक्येन, "अभेदेनादिमूर्तेर्वै संस्थितं वटबीजवत्" (५।८१) इति सात्वतोक्तदृष्टान्तेनापि च वासुदेव एव सर्वेषां प्रकृतिरिति ज्ञायते । विषयश्चायम्—"निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति" (मुण्ड० ३।१३) इत्यादिभिः श्रुतिभिरप्युपपाद्यते । "बीजात्मा चिन्मयः पुमान्" (११।३५) इत्यत्र च सात्वतायां स्पष्टमेव तस्य चित्स्वरूपत्वमुच्यते ।

१. संवेद्यनिर्मुक्तः समाधिरयं षडध्वप्रकरणेऽपि (१९।११३) स्मर्यते । स च योगसूत्रप्रतिपादितादसम्प्रज्ञातसमाधेरभिन्न इति विभावनीयम् ।

२. तन्त्रान्तरेषु भूतशुद्धिप्रकरणे प्राणायामसाहाय्येन शोषदाहाप्याया उपदिश्यन्ते । अत्र तु दाहाप्यायात्मकं धारणाद्वयमेव वर्ण्यते (पृ० ३५६) । एवं चात्र शोषस्य दाह एवान्तर्भावो मन्तव्यः ।

३. धारणाद्वयमत्र वर्णितम्, धारणानां द्विषट्कं च वर्णाध्वविवेचके प्रकरणे दृश्यते । अत्र "पञ्चभिर्धारणाभिर्द्वाभ्यां वा शोधयेत्तनुम्" (३।१४३), "धारणापञ्चकं चैव संक्षिप्तं विहितं द्वयम्" (३।२२३) इत्येवं च धारणापञ्चकं पारमेश्वरे स्मर्यते । धारणाविषयकः प्रपञ्चः पारमेश्वरे तृतीयाध्याये, जयाख्यायां च समाधिख्यापने दशमे पटले द्रष्टव्यः ।

गतिरुद्धेन वायुना तृतीयप्राणायामकुम्भकेन च तं मन्त्रेशं हृदयस्थं ध्यायेत्। चित्तोपशमनार्थं वायुजयाय चायं प्राणायामोऽभ्यस्यते। अथ बहिः शनैः शनैः केवलं मारुतं क्षिपेत्। अन्त्यं रेचकं विनाऽन्येषामुत्तरोत्तरं यथाशक्ति कालह्रासं नित्यमेव समाचरेत्। अथ तप्तहाटकसन्निभं सहस्ररश्मिसंकाशं मन्त्रेशं द्वादशान्ते वृत्तमण्डलमध्यगं स्मृत्वा पञ्चतन्मात्रैर्मुक्तं स्वकं विग्रहं निर्दहेत्, दक्षिणाङ्घ्रेरङ्गुष्ठप्रान्तप्रदेशे[1] युगान्तहुतभुक्स्वरूपं ज्वालाशतसमावृतं शिखाक्षरं[2] ध्यात्वा तेन समन्ततः प्रज्वलन्तं स्वविग्रहं ध्यायेदिति भावः। तदनु देहजां ज्वालां मन्त्रनाथे लयं गतां भावयेत्, दिव्यं प्रशान्ताकारं तं मन्त्रनाथं च चेतसाऽधिष्ठाय स्वमन्त्रात् तन्मन्त्रप्रतिपाद्य[3]द्वादशान्तस्थितभगवतः सकाशान्निस्सृतेनामृतौघेन स्वकं विग्रहमासिञ्चेत्। ततः समन्त्रं तद्बिम्बं द्वादशाङ्गुलोपरि वृत्तमण्डलमध्यस्थं हृदि विन्यसेदिति।

योगस्य लक्षणं संहितायां कुत्रापि न निर्दिष्टम्। भाष्यकारेण पाञ्चरात्ररक्षादिशा शाण्डिल्य-पराशर-दक्ष-याज्ञवल्क्यवचनानि समुद्धरता तद्विहितम्। तत्र शाण्डिल्यमतेन—अयं परमात्मा ईदृशः, अयं जोवात्मा ईदृश इत्येवं तयोः सम्बन्धानुसन्धानमेव योगः। वश्यैरिन्द्रियैः सम्पन्ना बुद्धेर्ब्रह्मणि संस्थितिरपि योगपदेनोच्यते। पराशरमतेन आत्मप्रयत्नसापेक्षाया विशिष्टाया मनोगतेर्ब्रह्मणि संयोगो योग इत्यभिधोयते। सर्वभावविनिर्मुक्तस्य क्षेत्रज्ञस्य[4] ब्रह्मणि न्यास एव ध्यानं योगश्चेति दक्षः। मनो बाह्यवृत्तिरहितं कृत्वा क्षेत्रज्ञस्य ब्रह्मणि न्यास एव योग इति च याज्ञवल्क्यः। अत्र शाण्डिल्यस्य द्वितीयं पराशरोयं च लक्षणमेकविधम्। एवमेव दक्षस्य याज्ञवल्क्यस्य च लक्षणं समानमिति त्रिविधमत्र योगस्य लक्षणं प्रतिपादितं भवति—जीवात्मपरमात्मनोः सम्बन्धानुसन्धानं प्रथमम्,

---

१. एष विषयः—"कालाग्निना कालपदादुत्थितेन स्वकं पुरम्। प्लुष्टं विचिन्तयेदन्ते शान्ताभासस्तदा भवेत्॥" (श्लो० ५१) इति विज्ञानभैरवेऽपि वर्ण्यते। कालपदाद् दक्षिणपादाङ्गुष्ठात्। स्वकं पुरम् आत्मीयं पाञ्चभौतिकं शरीरमित्यर्थः।

२. शिखाक्षरं वह्निबीजमित्यर्थः।

३. द्वादशान्ते स्वमूर्ध्नो द्वादशाङ्गुलोपरीत्यर्थः" (पृ० २९४) इति भाष्यकारः। द्वादशान्तोऽयं द्विषट्कपदेनाप्यत्र (१८।५४) निर्दिश्यते। "द्विषट्कं धारणानां च" (१९।१५८) इत्यत्र तु द्विषट्कशब्दो द्वादशसंख्यापरामर्शकः। प्रकरणेऽस्मिन्नकारो हकारश्च द्वादशान्त इत्युच्यते। विषयोऽयमत्रैव (पृ० ४७) मूले टिप्पणीषु च वर्णितो द्रष्टव्यः।

४. क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः स्वरूपं भगवद्गीतायां त्रयोदशाध्याये निर्दिष्टमत्र स्वीकर्तव्यम्, न तु नवमे परिच्छेदे (श्लो० ३०) पिण्डबीजादिप्रकरणे प्रोक्तम्।

शुद्धस्य मनसो ब्रह्मणि संयोगात्मकं द्वितीयम्, बाह्यवृत्तिरहितस्य क्षेत्रज्ञस्य ब्रह्मणि योजनं च तृतीयमिति। अन्ततः परिष्कृतचित्तवृत्तेर्जीवात्मनः परमात्मनि योजनमित्येकमेव सर्वलक्षणसमुच्चायकं योगस्य लक्षणं परिनिष्पन्नं भवति।

परस्य भगवतोऽर्चनेऽष्टाङ्गयोगयुक्तानां हृद्यागनिरतात्मनां योगिनामेवाधिकारोऽत्र (२।७-८) निर्दिष्टः। तेन संहितेयमष्टाङ्गयोगस्य समर्थिकेति ज्ञायते। कानि तान्यङ्गानीति तु तेषां नाम न दृश्यते। जयाख्यायां तु योगाख्याने त्रयस्त्रिंशे पटले प्राणायाम-प्रत्याहार-ध्यान-धारणा-जप-योग-ऊह-समाधिभेदैरष्टाङ्गो योगो वर्णितः। एष च पातञ्जलादष्टाङ्गयोगाद्[1] भिद्यते।

आधारनाभिहृत्कण्ठाख्यचतुश्चक्रविशिष्टस्य नवद्वारस्य देहस्य(२।५८,६१), नाभिचक्र-हृत्पद्म-कन्दमूल-गलावट-भ्रूमध्य-ब्रह्मरन्ध्राख्यस्थानानाम् (२१।५१), अपान-कण्ठकूप-नाडी-ब्रह्मनाडी-मारुत-शशि-सूर्यप्रभृतिशब्दानां चात्र प्रयोगदर्शनात् कुण्डलिनीयोगस्य प्रारम्भिकं स्वरूपमप्यत्र दृग्गोचरीभवति।

अन्तर्यजनविधौ मन्त्रात्मकेनैव स्वरूपेण भगवानर्च्यत्वेनात्र निर्दिष्टः। मन्त्रप्रसादादेव साधको भगवतः स्वरूपसाक्षात्काराय ईष्टे। तदेवं चित्तशुद्धेः, जीवात्मनः परमात्मना सह संयोगस्य च प्रमुखं साधनं मन्त्र एवात्र समुपदिश्यत इति सात्वतसंहितेयं प्राधान्येन मन्त्रयोगस्य प्रतिपादिका। अत एव भूयसा प्रपञ्चेन चातुर्व्यूहचतुष्टयादीनां मन्त्रा अत्र समुपदिष्टाः। अथापि प्रसङ्गानुसारं तदितरस्यापि शास्त्रान्तरेषु प्रतिपादितस्य योगस्य यत्स्वरूपमत्रोन्मीलितम्, तदस्मिन् सटिप्पणीके निबन्धे संक्षेपेण व्याख्यातं विदुषां मोदाय भवेदिति शम्॥

---

१. मृगेन्द्रागमे योगपादेऽपि—"प्राणायामः प्रत्याहारो धारणा ध्यानवीक्षणे। जपः समाधिरित्यङ्गान्यङ्गी योगोऽष्टमः स्वयम्॥" (श्लो० ३) इत्येवमिमान्येव योगाङ्गानि निर्दिश्यन्ते। अत्र वीक्षणमभिवीक्षणम् ऊहस्तर्क इत्यनर्थान्तरम्। सप्त अङ्गानि, अङ्गी योगश्चाष्टम इति तु प्रतिपादनभङ्गिभेदः। अथवाऽस्ति जयाख्यायां किञ्चिदत्र वैशिष्ट्यम्। तत्र हि प्राकृतं पौरुषम् ऐश्वर्यं चेति योगभेदत्रयं प्रतिपाद्यते (३१।१३)। विवरणं चात्रापेक्षितम्। न च तद् दृश्यते मृगेन्द्रागमेऽपि। प्रकृतिसिद्धं प्राकृतम्, स्वाभाविकमिति यावत्, पुरुषकारेण उद्यमेन साधितं पौरुषम्, देवादीनामैश्वर्येण सिद्धमिति हि तेषां शब्दानामर्थः प्रतीयते।

षडङ्गो योगोऽपि वैष्णवशैवशाक्तादिष्वागमेषु, बौद्धशैवशाक्तेषु तन्त्रेषु च प्रतिपाद्यते। तस्य विवरणमस्माभिर्नित्याषोडशिकार्णवोपोद्घाते (पृ० ११७-११९), विज्ञानभैरवोपोद्घाते (पृ०३६-३८) च दत्तमिति विशेषजिज्ञासुभिस्तत एवावलोकनीयम्।

तान्त्रिकी वरिवस्या—तस्या भेदाश्च

बाह्याऽऽन्तरी चेति द्विविधा वरिवस्या तन्त्रशास्त्रेषु वर्ण्यते। तत्र बाह्यैः पुष्पधूपादिभिः स्वेष्टदेवतासमाराधनं बाह्यवरिवस्यापदेन, भावनाप्रवणेन चित्तेन च तस्याः समाराधनमान्तरवरिवस्यापदेन परिचीयते। कुलक्रमादिसम्प्रदायेषु स्वात्मदेवता समाराध्यते तत्तच्छास्त्रपद्धत्या। अयं चान्य एव प्रकारः पूजायाः। पूजायाः प्रकारत्रयमेतत्—

तव नित्योदिता पूजा त्रिभिर्भेदैर्व्यवस्थिता।
परा चाप्यपरा गौरि तृतीया च परापरा॥

प्रथमाऽद्वैतभावस्था सर्वप्रसरगोचरा।
द्वितीया चक्रपूजा च सदा निष्पाद्यते मया॥

एवं ज्ञानमये देवि तृतीया तु परापरा।
उत्तमा सा परा ज्ञेया ...... (३।२-४)

इत्येवं वर्ण्यते योगिनीहृदये परा-अपरा-परापराभेदेन। अत्र बाह्यपूजा अपरा, आन्तरवरिवस्या परा, स्वात्मदेवतासमाराधनं च परापरा पूजेति मन्तव्यम्।

त्रिविधैव पूजा

अत्र पराया उत्तमत्वमुद्घोष्यते। शक्तिसङ्गमतन्त्रे च देव्याः पूजाविषयके प्रश्ने शिवः—"विष्ठापूर्णे मृद्घटे तु बहिःशुद्धौ तु किं फलम्। अन्तःशुद्धिं समासाद्य बहिःशुद्धिं समाचरेत्॥" इति, "अन्तःपूजां समासाद्य बहिःपूजां समाचरेत्" (iv. ११।७४-७५,७९) इति निश्चिनोति। "यद्यद् बाह्यं वक्ष्यमाणं तत्तदान्तरमाचरेत्" इति वचनं स्मरंश्च योगिनीहृदयदीपिकाकारः—"एतेन बाह्यपूजां सर्वामप्यादावन्तः कुर्यादिति सूच्यते" (३।९०) इति निष्कर्षयति। अत एव—

न पूजा बाह्यपुष्पादिद्रव्यैर्या प्रथिताऽनिशम्।
स्वे महिम्न्यद्वये धाम्नि सा पूजा या परा स्थितिः॥

इत्येतादृशानि वचनानि प्रवर्तन्ते। यतो हि—

बालिकारचितवस्त्रपुत्रिकाक्रीडितेन सदृशं तदर्चनम्।
यत्र शाम्यति मनो न निर्मलस्फीतचिज्जलधिमध्यमाश्रितम्॥ इति,

पूजा होमः क्रमश्चर्या व्रतं शास्त्रनिषेवणम् ।
तपो ध्यानं जपः शौचं तत्त्वहीनस्य निष्फलम् ॥

इति च दिशा आन्तरवरिवस्यां विना निष्फलप्रायं भवति बाह्यमर्चनम् । अत एव शिवानन्दः—"पूजा विश्वस्य वेद्यस्य चिद्भूमिविश्रान्तिः" इति पूजालक्षणं वक्ति, भट्टगङ्गाधरस्तोत्रप्रामाण्येन च धूपगन्धदीपनैवेद्यरहस्यं स्फोरयति । अत एव च—"परमनिरावरणात्मनि रूपे यो दृढतरः परामर्शः । पूजनमेतदितीत्थं प्रभुणा निरणायि" इति पूजनलक्षणं महानयपद्धत्यां वर्ण्यते ।

ये ये भावा ह्लादिन इह दृश्याः सुभगसुन्दराकृतयः ।
तेषामनुभवकाले स्वस्थितिपरिपोषणं सतामर्चा ॥

इति च वक्ति प्रशस्तिभूतिपादः । यतो हि—

या या संविदुदारा यो योऽप्यानन्दसुन्दरो भावः ।
जगति यदद्भुतरूपं तत्तद् देव्यास्तवाकारः ॥

इति नीत्या सर्वं देवीमयमेव ।

योगो नान्यः क्रिया नान्या तत्त्वारूढा हि या मतिः ।
स्वचित्तवासनाशान्तौ सा क्रियेत्यभिधीयते ॥

इत्यागमशास्त्रवचनेऽपि क्रियापदं पूजापरमेव प्रत्येयम् । तच्च परामेव पूजां निर्दिशतीति बाढं सिद्ध्यति परापूजाया उत्तमत्वम् । अतश्च अपरायाः परापरायाश्च पूजाया योग्यतावाप्त्यर्थं पराया अभ्यासोऽतीवावश्यक इति विज्ञेयम् ।

उपर्युद्धृते योगिनीहृदयवचने निर्दिष्टा बाह्यचक्रपूजाऽपराख्या बाह्यवरिवस्यापदेनाख्यायते । पञ्चभूतमयैर्गन्धपुष्पादिभिर्बाह्यार्चनमिति दीपिकाकारः (३।११२) । ऋजुविमर्शिनीकारोऽपि (पृ० १३४) प्रपञ्चसारप्रामाण्येनैषां लक्षणमाह । पञ्चोपचारादिभेदैर्बहुधेयं भिद्यते ।

परापरा च पूजा—"एवं ज्ञानमये पूर्वोक्ताद्वैतभावनामये धाम्नि बाह्यस्य पृथगात्मकावरणार्चनरूपस्य कर्मणो ज्ञानमयताविश्रान्तिस्तृतीया परापरा पूजा । तदुक्तमभियुक्तैः—"प्रकाशैकघने धाम्नि विकल्पप्रसरादिकम् । निक्षिपाम्यर्चनद्वारा वह्नाविव घृताहुतीः ॥" (सु० वा० ३७) इत्येवं विवृताऽमृतानन्देन । अत्र परायाः परापरायाश्च पूजाया भेदः सावधानं सूक्ष्मेक्षिकया हृदयङ्गमीकरणीयः । तत्राशुद्धविकल्पानां शोधनाय परापराख्या पूजा प्रवर्तते । पराख्यायां च पूजायां

सर्वं शुद्धसंविन्मयमेव राजते। तदेतदुत्तरत्र स्फुटीभविष्यति। एवं च—"यद्यथोपनतमेव पूर्णतामादधाति हृदयङ्गमत्वतः। तत्तथैव परमेशपूजने योग्यमन्यदिह नास्ति लक्षणम् ॥" इति, "स्वात्मानं हि विहाय चेतनममुं कं पूजयेयुर्जडम्" इति च ज्ञानेन्दुकौमुदीवचनयोः, "इन्द्रियद्वारसंग्राह्यैर्गन्धाद्यै-रात्मदेवता। स्वभावेन समाराध्या ज्ञातुः सोऽयं महामखः ॥" इति मुख्याम्नायरहस्यविधिवचने, "आनन्दप्रसरः पूजा", "शिवशक्तिसमापत्त्या" इति त्रिकसारवचनयोः, "अहो स्वादुरसः कोऽपि" इति पूजनस्तोत्रवचने च परापराख्या पूजैव व्यावर्ण्यते।

महेश्वरानन्देन तु चाररावेत्यादिचिद्गगनचन्द्रिकाप्रामाण्येन चारो रावश्चरुर्मुद्रेति चतुर्विधा पूजा निर्दिष्टा। तथा हि—"तत्र चारः समयाचारः, रावो विमर्शः, चरुः प्रथमद्वितीयादिकम्, मुद्रा स्वात्मनः परमेश्वरत्वोपपादनाय स्वशरीरं प्रति कल्प्यमानः करचरणादिसन्निवेशविशेषो वेषधारणविशेषश्च। महती तु मुद्रा पर्यन्ततो राव एवान्तर्भवति। तत्र चतुर्ष्वपि पूजाक्रमेषु प्राधान्येन राव एवोपयुज्यते। अन्येषां तु पर्यन्ततस्तत्प्रयोजकतया परिग्रहणम्। तस्मात् स्वस्वरूपपरामर्श एव परमा पूजा। अन्यत् तु गन्धपुष्पधूपदीपाद्याडम्बरमात्रमिति तात्पर्यार्थः" (पृ० १०६) इति। अत्र विमर्शात्मकस्य रावस्य परमत्वं महेश्वरानन्दो वक्ति। चारस्य मुद्रायाश्चापराख्यायां बाह्यपूजायाम्, चरोश्च परापरायां पूजायां समावेशः कर्तुं शक्यत इति पूजायास्त्रैविध्यमेवात्र पर्यन्ततः प्रतिफलति।

त्रिकदर्शनेषु किल—आणव-शाक्त-शाम्भवाख्यास्त्रय उपायाः, चतुर्थी चानुपायप्रक्रिया स्वस्वरूपप्रत्यभिज्ञानसाधनतयोपवर्ण्यन्ते। तेषामप्यत्रैवान्तर्भावः कर्तुं शक्यते। तथाहि—केषाञ्चनाणवोपायानामपरायामन्येषां च परापरायाम्, शाक्तोपायस्य परापरायाम्, शाम्भवोपायस्यानुपायप्रक्रियायाश्च परायां समावेश इति। आणवोपायेषु केषुचित् प्राणचक्राद्यान्तरसाधनानां समुपयोगो भवति, शाक्तोपाये शाम्भवोपाये च क्वचन स्वात्मदेवताप्रीतये ललनामद्यमांसानि स्वीक्रियन्त इति तेषां परापराख्यायां पूजायामेव समावेशो भवितुमर्हति, न परायाम्। शाम्भवोपायपर्यन्तावस्थायामनुपायप्रक्रियायां च प्रविष्टो योगी प्रातिभज्ञानमन्तरा न किमपि बाह्यमान्तरं वा साधनमपेक्षत इति सत्यं तथाविधायां शाम्भवोपायप्रक्रियायामनुपायप्रक्रियायां च परा पूजा निष्पाद्यते। उपायचतुष्टयं चास्माभिरन्यत्र विवृतमिति नात्र प्रयत्यते। केवलं पूजात्रयमेव यथाशास्त्रं किञ्चिद्विस्तरेण वर्ण्यते।

अपरा पूजा

स्थानप्रकल्पनाख्यमाणवोपायं वर्णयताऽभिनवगुप्तेन—

स्थानभेदस्त्रिधा प्रोक्तः प्राणे देहे बहिस्तथा।
प्राणश्च पञ्चधा देहे द्विधा बाह्यान्तरत्वतः॥

मण्डलं स्थण्डिलं पात्रमक्षसूत्रं सपुस्तकम्।
लिङ्गं तूरं पटः पुस्तं प्रतिमा मूर्तिरेव च॥

इत्येकादशधा बाह्यं पुनस्तद्बहुधा भवेत्।
(तन्त्रा० ६।२-४)

इत्युक्तम्। अत्र—"पुस्तं लेपादिनिर्मिताऽऽकृतिः, मूर्तिर्गुर्वादिसम्बन्धिनी" इति जयरथः। एतेष्वेकादशबाह्यस्थानेषु स्वेष्टदेवतां प्रतिष्ठाप्य बाह्यैरेव पुष्पादिभिः कृतं समाराधनमपरा पूजा। "स्थण्डिलादुत्तरं तूरं तूरादुत्तरतः पटः" इति सिद्धयोगीश्वरीमते स्थण्डिलतूरपटानामुत्तरोत्तरं वैशिष्ट्यं प्रदर्श्यते। अत्रापि जयरथः—"स्थण्डिलं यागार्थं गृहीतो भूप्रदेशः। तूरं पात्रादावुत्कीर्ण आधारविशेषः" (२।४३) इत्येवं स्थण्डिलतूरशब्दौ व्याख्याति। तूरलक्षणं च सविधानं सिद्धातन्त्रतः संगृहीतं लुप्तागमसंग्रहे (भा० २, पृ० १९९-२००) द्रष्टव्यम्। "मण्डलं सारमुक्तं हि मण्डश्रुत्या शिवाह्वयम्" (तन्त्रा० ३७।२१) इत्यत्र मण्डलपदनिर्वचनं प्रदर्श्यते। "मण्डलमिति मण्डं शिवाह्वयं सारं लातीत्यर्थः" इति च तत्र जयरथः। अस्मिन् प्रसङ्गे—"सर्वार्चनं स्थण्डिले स्यान्न च तत्राधिवासनम्" इति हंसपारमेश्वरवचनम्, "अन्तर्लिङ्गं दृढं बद्ध्वा बहिर्लिङ्गं प्रपूजयेत्" इति सिद्धान्तवचनं च स्मरणार्हम्।

लुप्तागमसंग्रहस्य द्वयोरपि भागयोः संगृहीतेषु वचनेषु बाह्यार्चनसंबद्धा नैके विषयाः प्रतिपाद्यन्ते। दशदिक्पालपूजनेऽष्टदिक्षु तावदष्टौ दिक्पालाः पूज्यन्ते मण्डलादिषु। नवमदशमयोस्तु पूजनस्थानं कुत्रेति समस्या—

इन्द्रेशानदिशोर्मध्ये स्थानमन्यत् प्रकीर्तितम्।
नैर्ऋताम्बुदिशोर्मध्ये स्थानमन्यत् प्रकीर्तितम्॥

इति तत्त्वविमर्शिनीश्लोकेन समाधीयते। इन्द्रेशानदिशोर्मध्ये गगनाधिपतेः, नैर्ऋताम्बुदिशोर्मध्ये च पातालाधिपस्य पूजनं विधेयमिति तेन ज्ञायते। इन्द्रदिगत्र पूर्वा, अम्बुदिक् च पश्चिमा। "ततो मूले उत्तरतः" इति त्रिशिरोमतवचने नन्दिरुद्रगङ्गायमुनादीनां पूजनस्थानं निर्दिश्यते। एवमेव द्वारदेवताक्रमस्त्रिशिरोमते वामसिद्धान्तमतयोश्च प्रतिपादितः स्वच्छन्दोद्योते (२।२४-२५) वर्ण्यते।

पराख्यसंहितायां पञ्चगव्यविधानं दृश्यते। स्वच्छन्दतन्त्रवदेव (३।५४-५५) सात्वतसंहितायामपि (७।१०,१६।१३) पञ्चगव्यसंस्कारोऽवधानार्हः। अत्रत्यं भाष्यमपि द्रष्टव्यम्।

सिद्धान्तशैवपद्धत्या स्नानासनसन्ध्यातर्पणन्यासमुद्रादेहशुद्धिभूपरिग्रहाधिवासमण्डपार्घ्यपात्रसाध्यमन्त्रजपपूजाऽग्निकार्यादिविचारः किरण-निःश्वासोत्तर-पौष्कर-मतङ्ग-मयसंग्रह-रौरव-स्वायम्भुवादिवचनेषु द्रष्टुं शक्यते। शैवाद्यागमेषु क्रियाचर्यापादयोर्वर्तते बाह्यार्चनस्य महान् विस्तरः। पाशुपतीये पञ्चार्थ-प्रमाणेऽघोरमन्त्रव्याख्यानप्रसङ्गे—"नमस्कारः परित्यागः कार्यकारणलक्षणः" इति नमस्कारलक्षणं प्रदर्श्यते। वेदव्रतानि महायज्ञाश्च यज्ञसूत्रवचनयोः, अष्टाचत्वारिंशत्संस्काराश्च प्रायः सर्वेष्वागमेषु द्रष्टुं शक्यन्ते। विषयोऽयं परशुरामकल्पसूत्रद्वितीयसंस्करणद्वितीयपरिशिष्टे (३८६-३९५, ४२८-५४१) पृष्ठेषु वितानितस्तत्रैवावलोकनीयः।

परा पूजा

क्रमवासनावचनेष्वान्तरयजनपद्धत्या शोषण-करशुद्धि-उन्मज्जनानां स्वरूपं निदर्श्यते। ग्रन्थोऽयं साम्प्रतं सुभगोदयवासनानाम्ना मुद्रित उपलभ्यते। सम्पूर्णेऽस्मिन् ग्रन्थे चिद्विलासस्तवे च वासनामयी बाह्याभ्यन्तरपुष्पप्राणाद्यनपेक्षिणी सेयमान्तरवरिवस्या स्वे महिम्न्यद्वये धाम्नि प्रतिष्ठापनसमर्था वर्ण्यते। ज्ञानदीपविमर्शिन्यामधुनावध्यप्रकाशितायां च सन्ध्या-सूर्योपस्थानादिप्रकरणेषु सर्वेषु बाह्या आन्तराश्चोपचाराः प्रदर्श्यन्ते। तेषां स्वरूपमुदयाकरपद्धतिवचनेष्वपि द्रष्टुं शक्यते। विज्ञानभैरवस्य प्रारम्भिकेष्वन्तिमेषु च श्लोकेषु विशेषतो धारणाप्रतिपादकेषु च श्लोकेषु सामान्यतोऽनुपायप्रक्रियामुखेन परा पूजा विवृता। गीतानिष्यन्दे, भट्टनायकस्तोत्रे, पूर्वतन्त्रे च शक्ति-जप-यजन-लिङ्गादिपदानां तादृश एवार्थः स्फोर्यते। योगिनीहृदयप्रतिपादितं च परायाः पूजायाः स्वरूपमग्रे वक्ष्यते।

परापरा(वाम)पूजा

तन्त्रालोके पञ्चदशाह्निके ब्रह्मयामल-आनन्दशासन(आनन्देश्वर)-योगसंचार-निर्मर्यादशास्त्र - त्रिशिरोमत - निशाटन(निशिसंचार)- वीरावलीहृदय-मतभट्टारक-नन्दिशिखा-भर्गशिखा-आगमशासन-संकर्षिणीयामल-नवनित्याविधान-भूतक्षोभ-पञ्चामृत-देवीयामल-माधवकुल-ऊर्मिकुलप्रामाण्येन वामाचारप्रधानः पूजाविधिः प्रदर्शितः।

संसारवामाचारत्वात् सर्वं वामकरेण तु।
कुर्यात् तर्पणयोगं च देशिकस्तदनामया॥

वामशब्देन गुह्यं श्रीमतङ्गादावपीरितम्।
वामाचारपरो मन्त्री यागं कुर्यादिति स्फुटम्॥

श्रीमद्भर्गशिखाशास्त्रे तथा श्रीगमशासने।
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम्॥

तत्फलं कोटिगुणितमनामातर्पणात् प्रिये।
(१५।२७८-२८१)

इत्यत्र वामशब्दनिर्वचनपूर्वकमनामातर्पणस्य वैशिष्ट्यमाह। जयरथेनाप्यत्र—

वामं गुह्यं समाख्यातममृतं खेचरीप्रियम्।
रहस्यं सर्वभूतानां वामशब्देन कीर्त्यते॥

इत्येवं वामपदं व्याख्यातम्। संकर्षिणीयामल-नवनित्याविधान-द्वादशसाहस्र-श्रीमदानन्देश्वर-भूतक्षोभ-पञ्चामृतप्रामाण्येन चानामातर्पणं विवृतम्। सम्पूर्णेऽस्मिन्नाह्निके स्नानाष्टक-वीरविग्रहाष्टक-यागस्थान-यागद्रव्य-यागक्रम-न्यासमुद्रादिविधि-डामरयाग-कुण्डसंस्कार-योजनिका-शिवहस्त-आचार्यपुत्रकदेशिकदीक्षा-अष्टाचत्वारिंशत्संस्कार-अष्टाऽष्टकात्मकसमयप्रभृतयो विषया विवेचिताः। सर्वेषामेषां विनियोगोऽत्र प्रथमतोऽपरायाम्, अन्ततश्च परापरायां पूजायां स्वात्मदेवताप्रीतये विधीयते। इदं वचनद्वयं खलु विशेषतोऽवधेयमत्र—

जातिविद्याकुलाचारदेहदेशगुणार्थजान्।
ग्रहान् ग्रहानिवाष्टौ द्राक् त्यजेद् गह्वरदर्शितान्॥
तथा श्रीनिशिचारादौ हेयत्वेनोपदर्शितान्। इति,
(१५।५९५-५९६)

श्रीमदानन्दशास्त्रे च कथितं परमेष्ठिना।
निरपेक्षः प्रभुर्वामो न शुद्धया तत्र कारणम्॥

देवीतृप्तिर्मखे रक्तमांसैर्नो शौचयोजनात्।
द्विजान्त्यजैः समं कार्या………………॥ इति च।
(१५।६०१-६०३)

भास्कररायेणापि "वामावर्तेन पूजयेत्" (नि० षो० १।१७६) इत्यत्र, "सव्यापसव्यमार्गस्था" (ललितासहस्रनाम, श्लो० २२०) इत्यत्र च वामशब्दः

सुविशदं व्याख्यातः। तेन वामावर्तपूजनाऽनामातर्पणादिविधिवैशिष्ट्यवशात् शिवस्य वाममुखोद्गतत्वाच्च शास्त्रविशेषं विधिविशेषं च सूचयत्ययं शब्दः। "वामदक्षिण-तन्त्रादिष्वप्येतन्मयमेव सर्वं निर्वहति" (पृ० १७१) इति क्रमकेलिवचनं समुद्धरन् महेश्वरानन्दः क्रमकुलविधीनां वामदक्षादिष्वनुवर्तनमादिशति। अत एव चाभिनवगुप्तः—"अतः कुलक्रमोत्तीर्णत्रिकसारमतादिषु। मद्यकादम्बरीशीधुद्रव्या-देर्महिमा परम् ॥ (तन्त्रा० १५।१६९-१७०) इति वक्ति। "न नद्यो मधुवाहिन्यो न पलं पर्वतोपमम्। स्त्रीमयं न जगत् सर्वं कुतः सिद्धिः कुलागमे ॥" इति च वचनं तत्र जयरथः समुद्धरति।

परापरा(क्रमकुल)पूजा

श्रीभैरवकुलेऽप्युक्तं कुलपर्वप्रपूजने।
स्थण्डिलेऽग्नौ पटे लिङ्गे पात्रे पद्मेऽथ मण्डले ॥

मूर्तौ घटेऽस्त्रसंघाते धटे सूत्रेऽथ पूजयेत्।
स्वेन स्वेनोपचारेण सङ्करं वर्जयेदिति ॥

इति (तन्त्रा० २७।४५-४६) भैरवकुलवचने स्थानप्रकल्पनप्रकरणोक्तैकादश-स्थानापेक्षया किञ्चिद्वैलक्षण्यं दृश्यते। सङ्करं कथं वर्जनीयमित्यत्र प्रमाणतया जयरथस्तत्रैव—

गृहे गृहोद्भवैर्द्रव्यैः श्मशाने च तदुद्भवैः।
विधिवत् पूजनं कार्यं शबलं न समाचरेत् ॥

इति वचनं स्मरति। तदेतस्य शाबल्यस्य परिहाराय तन्त्रालोके एकोन-त्रिंशाह्निके—"अथ सर्वाप्युपासेयं कुलप्रक्रिययोच्यते" (२९।१) इत्यादिना विलक्षणः कुलयागः प्रतिपाद्यते।

सिद्धक्रमनियुक्तस्य मासेनैकेन यद् भवेत्।
न तद् वर्षसहस्रैः स्यान्मन्त्रौघैर्विविधैरिति ॥ (२९।३)

इत्येवं प्रक्रियाया अस्या अभिनवगुप्तो माहात्म्यं भणति।

सिद्धान्तादिषु तन्त्रेषु ये मन्त्राः समुदाहृताः।
वीर्यहीनास्तु ते सर्वे शक्तितेजोज्झिता यतः ॥

कौलिकास्तु महामन्त्राः स्वभावाद् दीप्ततेजसः।
स्फुरन्ति दिव्यतेजस्काः सद्यः प्रत्ययकारकाः ॥ (२९।२)

इति च तत्र जयरथः प्रमाणमुद्धरति।

कुलं च परमेशस्य शक्तिः सामर्थ्यमूर्ध्वता।
स्वातन्त्र्यमोजो वीर्यं च पिण्डः संविच्छरीरकम् ॥ (२९।४)

इत्येवं च कुलशब्दार्थस्तत्र व्यावर्ण्यते।

तादृग्रूपनिरूढ्यर्थं मनोवाक्कायवर्त्मना।
यद्यत् समाचरेद् वीरः कुलयागः स स स्मृतः ॥ (२९।६)

इति कुलयागलक्षणम्,

बहिः शक्तौ यामले च देहे प्राणपथे मतौ।
इति षोढा कुलेज्या स्यात् .... ॥ (२९।७)

इति च तस्य भेदानाह।

स्नानमण्डलकुण्डादि षोढान्यासादि यन्न तत्।
किञ्चिदत्रोपयुज्येत कृतं वा खण्डनाय नो ॥
षण्मण्डलविनिर्मुक्तं सर्वावरणवर्जितम्।
ज्ञानज्ञेयमयं कौलं प्रोक्तं त्रैशिरसे मते।
अत्र यागे च यद् द्रव्यं निषिद्धं शास्त्रसन्ततौ।
तदेव योजयेद् धीमान् वामामृतपरिप्लुतम् ॥
श्रीब्रह्मयामलेऽप्युक्तं सुरा शिवरसो बहिः।
तां विना भुक्तिमुक्ती नो .... (२९।८-११)
धीकर्माक्षगता देवीर्निषिद्धैरेव तर्पयेत्।
वीरव्रतं चाभिनन्देदिति भर्गशिखावचः ॥
(तन्त्रा० १२।१९-२०, परा० अभि०, पृ० २३५)
न विधिर्नार्चनक्रमः.............. (लुप्ता०, भा० २, पृ० २०५)

इतीमानि वचनानि चात्रावधेयानि।

श्रीमत्क्रमरहस्ये च न्यरूपि परमेशिना।
अर्घपात्रं यामधाम दीप इत्युच्यते त्रयम् ॥
रहस्यं कौलिके यागे तत्रार्घः शक्तिसंगमात्।
भूवस्त्रकायपीठाख्यं धाम चोत्कर्षभाक् क्रमात् ॥
दीपा घृतोत्था गावो हि भूचर्यो देवताः स्मृताः।
इति ज्ञात्वा त्रयेऽमुष्मिन् यत्नवान् कौलिको भवेत् ॥(२९।१४-१६)

इति हि कुलयागरहस्यम् । द्रव्याणि चात्र रत्नपञ्चकादीन्यभिप्रेतानि ।

देहस्थं च चरुं वक्ष्ये यत्सुरैरपि दुर्लभम् ।
शिवाम्बु रेतो रक्तं च नालाज्यं विश्वनिर्गमः ॥
(त० वि० २९।२००)

इत्यत्र रत्नपञ्चकम्,

रेतो हराम्बु पुष्पं च क्षारं नालाज्यकं तथा ।
पौरुषं क्षमाभवं छागं मोनजं शाकुनीयकम् ॥
पलाण्डुं लशुनं चैव द्रव्यद्वादशकं शुभम् ।
(त० वि० २९।१७)

इत्यत्र च द्रव्यद्वादशकं वर्ण्यते । "नन्दहेतुफलैर्द्रव्यैरर्घ्यपात्रं प्रपूरयेत्" (२९।२२) इत्येवं चात्रार्घ्यपात्रं पूर्यते । पात्रपूरणप्रकारश्च—

चरुकः सम्प्रदायश्च विज्ञानं मेलकं तथा ।
पूजाक्रमविधानं च योगिनीनां मुखे स्थितम् ॥

इति तत्रैव जयरथोद्धृतवचनानुसारेण गुरुमुखादेव बोद्धव्यः ।

उक्तं श्रीयोगसंचारे ब्रह्मचर्ये स्थितिं भजेत् ।
आनन्दो ब्रह्म परमं तच्च देहे त्रिधा स्थितम् ॥
उपकारि द्वयं तत्र फलमन्यत् तदात्मकम् ।
ओष्ठ्यान्त्यत्रितयासेवी ब्रह्मचारी स उच्यते ॥ इति,
(२९।९७-९८)

नो शान्तं नाप्युदितं शान्तोदितसूतिकारणं परं कौलम् ।
(२९।११७)

इति च कुलयागेतिकर्तव्यता परिसमाप्यते । कुलयागोऽयमादियाग इत्युच्यते । तद्यथा—

आदीयते यतः सारं तस्य मुख्यस्य चैष यत् ।
मुख्यश्च यागस्तेनायमादियाग इति स्मृतः ॥ (२९।१६४) इति ।

अयं च यागः—

श्रीवीरावलिहार्देशखमतार्णववर्तिषु ।
श्रीसिद्धोत्फुल्लमर्यादाहीनचर्याकुलादिषु ॥
(२९।१६५-१६६)

ग्रन्थेष्वेषु वर्णितः ।

कौलिकं शास्त्रं विद्यामन्त्रमुद्रामण्डलात्मना चतुष्पीठं भवतीति, तदप्यत्र सूच्यते (पृ० ११४)। अत्रैव मण्डल - शिवहस्त-करस्तोभ - कारण-षट्क - कारणाष्टक - सप्तविधजप - दीक्षाभिषेकादयो विषया वर्णिताः। दशमाह्निके वर्णितं पिण्डस्थाद्यवस्थापञ्चकं चात्र स्मारितम्, अष्टक-पदाभिप्रायश्च स्फोरितः। सर्वोऽयं विषयस्तत्र तद्विवेके च त्रिशिरोमत-ब्रह्मयामल - क्रमरहस्य - कुलक्रीडावतार - देवीपञ्चशतिका - कालीकुल - कुल-रत्नमाला-माधवकुल - देवीयामल - कुलक्रमोदय - योगसंचार - तन्त्रराजभट्टारक - सर्वाचारहृदय - तत्त्वरक्षाविधान- गमशास्त्र - वीरावली-निर्मर्यादशास्त्र-हृदयभट्टा-रक-खेचरीमत-योन्यर्णव-उत्फुल्लकमत-श्रीपञ्चाशिका - भोगहस्तक - पूर्वशास्त्र - आनन्देश्वर-तन्त्रसद्भाव-कुलगुह्वर-दीक्षोत्तरप्रामाण्येन वर्णितः।

"केवलो यामलो मिश्रश्चक्रयुग् वीरसंकरः" (तन्त्रा० २८।७९) इत्येवं पञ्चधा भेदितो मूर्तियागोऽपि कुलयाग एव। स च—

केवलः केवलैरेव गुरुभिर्मिश्रितः पुनः॥
साधकाद्यैः सपत्नीकैर्यामलः स द्विधा पुनः।
पत्नीयोगात् क्रयानीतवेश्यासंयोगतोऽथवा॥
चक्रिण्याद्याश्च वक्ष्यन्ते शक्तियोगाद् यथोचिताः।
तत्संयोगाच्चक्रयुक्तो यागः सर्वफलप्रदः॥
सर्वैस्तु सहितो यागो वीरसंकर उच्यते।

(तन्त्रा० २८।७९-८२)

इत्येवं तत्रैव व्याख्यायते। तदस्मिन् कुलयागे सर्वेषां प्रवेशो निषिद्धः। यदि कश्चन प्रविष्टस्तदा तस्य विचारो न विधेय इति पिचुशास्त्रे—"आदौ यत्नेन रक्षयेत्। प्रवेशम्, संप्रविष्टस्य न विचारं तु कारयेत्" इत्येवमुपदिश्यते। "प्रविष्टेऽन्तः सीधुरसे", "स्त्रियः सर्वेषु वर्णेषु" इति क्रमोदयवचनयोः, "मेयराशिमयं हव्यम्" इति श्रीपराक्रमवचने च कुलयाग एव वर्ण्यते।

अशेषतन्त्रसारं तु वामदक्षिणमाश्रितम्।
एकत्र मिलितं कौलं श्रीषडर्धकशासने॥
सिद्धान्ते कर्म बहुलं मलमायादिरूषितम्।
दक्षिणं रौद्रकर्माढ्यं वामं सिद्धिसमाकुलम्॥

इति (कुल)रत्नमालावचने च कौलमतस्य मतान्तरापेक्षया वैशिष्ट्यं प्रदर्श्यते।

बौद्धतन्त्रवर्णिता त्रिविधा पूजा

बौद्धतन्त्रेष्वपि बाह्या, आध्यात्मिकी (मनोमयी), गुह्या चेति पूजायाः प्रकारत्रयमवलोक्यते । अत्र बाह्याऽपरा, आध्यात्मिकी परा, गुह्यपूजा च परापरेति वक्तुं शक्यते । आत्मदेवताया यजनायैव हि सा समाचर्यते । अत्र सप्तविधाया एकादशप्रकाराया वाऽनुत्तरपूजायाः, चतुर्ब्रह्मविहारभावनायाश्च वर्तत आन्तरपरिशुद्धिः फलम् । इमानि भवन्त्यस्या अनुत्तरपूजाया अङ्गानि— पापदेशना, पुण्यानुमोदना, त्रिशरणगमनम्, मार्गाश्रयणम्, अध्येषणा, पुण्यपरिणामना, आत्मभावनिर्यातनं चेति । तत्रेमानि मन्त्रपदानि भवन्ति—

कायेन वाचा मनसा कृतं यत्पापं जिनानां पुरतो दिशामि ।
लोकत्रयाणां कुशलं तु सर्वं नित्यं प्रमोदादनुमोदयामि ॥

रत्नत्रयं यामि सदाहमत्र मार्गं जिनोक्तं शरणं श्रये च ।
सत्त्वार्थमत्रापि भवन्तु बुद्धाः सुताश्च तेषां सततं भवस्य ॥

तिष्ठन्तु यावत् स्थितिरेव तावन्निर्वान्तु मा ते पितरः प्रजानाम् ।
संदेशनां ते ननु तादृशीं वा धर्मस्य कुर्वन्तु महाप्रभावाः ॥

संसारसिन्धोः सहसापि सत्त्वाः पारं यथा यान्ति सुखं प्रभूतम् ।
पुण्यं प्रभूतं यदिहापि सर्वं संबोधये तत्परिणामयामि ॥

जिनेभ्यस्तत्सुतेभ्यश्च गुरुभ्यो जगतामहम् ।
आत्मानं सर्वभावेन निर्यातयामि सर्वदा ॥ इति ।

अयं च भवति सप्तविधानुत्तरपूजाप्रतिपादकः श्लोकः—

सर्वं पापमहं दिशामि परमं प्रीत्यानुमोदे शुभान्
आजन्मस्थितयेऽर्थये भगवतः सद्धर्मरत्नस्य च ।
रत्नानां त्रयमभ्युपैमि शरणं बोधौ दधे मानसं
तन्मार्गं च समाश्रये शुभविधीन् संबोधये नामये ॥

इतोऽतिरिक्तमत्र (पाप)अकरणसंवर-याचना-बोधिचित्तोत्पाद-चतुर्ब्रह्मविहारभावना-आशयविशुद्धि-अहङ्कारममकारत्यागानामप्युपदेशो विधीयते । तत्र पापदेशनापुण्यानुमोदनयोरकरणसंवरे, याचनाया अध्येषणायाम्, आशयविशुद्धेर्बोधिचित्तोत्पादस्य अहङ्कारममकारत्यागस्य च सप्तविधानुत्तरपूजाफले समावेशो विधातुं शक्यते । चतुर्ब्रह्मविहारभावनायाश्च परिगणना एकादशविधानुत्तरपूजायां विधेया ।

साधनमालायामेकादशविधानुत्तरपूजाया उल्लेखे सत्यपि तन्नामानि क्वापि नोपलभ्यन्ते, चतुर्ब्रह्मविहारभावनायाश्च विस्तरेण प्रतिपादनं तत्र दृश्यत इति पूर्वोक्तायां सप्तविधानुत्तरपूजायां चतुर्ब्रह्मविहारभावनां संमेल्य सा सम्पाद्यत इति वयं संभावयामः। सेयं चतुर्ब्रह्मविहारभावना मैत्री-करुणा-मुदिता-उपेक्षात्मिका—"मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्" (१।३३) इति पातञ्जले योगसूत्रे, "मैत्रीप्रमोदकारुण्य-माध्यस्थ्यानि च सत्त्व-गुणाधिक-क्लिश्यमानाऽविनेयेषु" (७।११) इति च जैनाचार्येण उमास्वातिना संदृब्धे तत्त्वसूत्रे वर्ण्यत इति वर्तते सम्प्रदायातीतं महत्त्वं चित्तविशोधनेऽस्याश्चतुर्ब्रह्मविहारभावनायाः।

चतुर्ब्रह्मविहारभावनानन्तरं शुद्धान्तःकरणो योगी सर्वधर्मप्रकृतिपरिशुद्धतां भावयति। तथाहि—सर्व एवामी धर्माः प्रकृत्या स्वरूपेण परिशुद्धाः, अहमपि प्रकृतिपरिशुद्ध इति भवति प्रकृतिपरिशुद्धतायाः स्वरूपम्। इमामेव सर्वधर्मप्रकृतिपरिशुद्धताम्—"ॐ स्वभावशुद्धाः सर्वे धर्माः स्वभावशुद्धोऽहम्" इति मन्त्रभावनया दृढीकरोति। सर्वधर्मप्रकृतिपरिशुद्धतामामुखीकृत्य योगी सर्वधर्मशून्यतां ध्यायात्। तत्रेयं शून्यता—मनोमात्रमेवेदं तेन तेनाकारेण प्रकाशात्मकं प्रतिभासते। यथा स्वप्ने नास्ति मनसो बाह्यं मनोग्राह्यम्, ग्राह्याभावाद् ग्राहकमपि मनो नास्ति, मताश्च मनःस्वरूपाः सर्वे धर्माः, एवं चात्राद्वैत-प्रकाशमात्रात्मकं सचराचरं जगदिति चिन्त्यते। इमामेव शून्यताम्—"ॐ शून्यताज्ञानवज्रस्वभावात्मकोऽहम्" इत्यमुना मन्त्रेणाधिगच्छति साधकः।

योगिनीहृदयप्रतिपादिता परा पूजा

प्रकाशविमर्शात्मकं सचराचरं जगदिति सिद्धान्तं च प्रत्यभिज्ञादर्शनानुयायिनोऽप्यङ्गीकुर्वते। प्रकाशविमर्शयोश्च चन्द्रचन्द्रिकयोरिवाभेद इति सत्यमद्वैत-प्रकाशमात्रात्मकमेव सर्वम्। अत्र पूज्यपूजकयोः पूजाद्रव्याणां चाभावात् प्रकाशात्मकमिदं तत्त्वं भावोपहारैरेव पूज्यते। इयमेव परा पूजा। निस्त्रैगुण्ये पथि विचरद्भिरेषा सम्पाद्यते। योगिनीहृदये तस्याः स्वरूपमेवमुपवर्ण्यते—

महापद्मवनान्तस्थे वाग्भवे गुरुपादुकाम्।
आप्यायितजगद्रूपां परमामृतवर्षिणीम्॥
संचिन्त्य परमाद्वैतभावनामदघूर्णितः।
दहरान्तरसंसर्पन्नादालोकनतत्परः॥
विकल्परूपसंजल्पविमुखोऽन्तर्मुखः सदा।
चित्कलोल्लासदलितसंकोचस्त्वतिसुन्दरः॥ इति।

"इन्द्रियप्रीणनद्रव्यैर्विहितस्वात्मपूजनः" इति तु परापरायाः स्वरूपमवगन्तव्यम्, अत्र बाह्यद्रव्याणामुपादानात्। अनन्तवासनामलिनितं हि चेतो विपथं धावति। विकल्पशोधनमन्तरा तस्य शुद्धिर्दुःशकेति वामकुलक्रमत्रिकादिषु वज्रयानतन्त्रेषु च स्वात्मदेवताप्रीणनप्रवणा अपूर्वा काचन पूजापद्धतिराविष्कृता, या हि सममेव पतनाय च समुन्नतये च प्रभवति। इन्द्रियप्रीणनमुखेन भावान् शोधयन्ती सा कल्याणाय कल्पते, विषयानुरागं वर्धयन्ती च पापाय। यदाह योगभाष्यकारः—"चित्तनदी नामोभयतोवाहिनी, वहति कल्याणाय वहति पापाय च" (१।१२) इति। अतः शाक्तोपायपद्धत्या परिशोधितानि शुद्धविकल्पात्मकानि तत्त्वान्येवात्रोपादेयानीति शम् ॥

•

शाक्तेषु तन्त्रेषु शक्तितत्त्वम्

सदसद्विभेदसूतेर्दलनपरा कापि सहजसंवित्तिः।
उदिता त्वमेव भगवति जयसि जयाद्येन रूपेण ॥

तन्त्रालोकीये विवेके जयरथोद्धृतेऽस्मिन् हस्तनयवचने, "जयाद्या गुह्यशक्तयः" इत्यागमीये वचने च जयाद्या गुह्यशक्तयो भेददृष्टेर्विदलनपरायाः सहजसंवित्ति-स्वरूपाया भगवत्याः पराम्बाया विलास इत्युद्घोष्यते। अत्र जयरथः—"आद्य-वर्णकलाचतुष्टयात्मना जयाद्येन रूपेण" इति प्रथमोद्धरणं व्याख्यातवान्, तत्र प्रमाणत्वेनागमवचनं चोद्धृतवान्। "अथ ब्रह्म परं शुद्धमादिवर्णत्वमागतम्" इत्यादिके ह्यागमवचने प्रतिपाद्यते यत् परं ब्रह्म आदिवर्णस्याकारस्य अनुत्त-राख्यस्य स्वरूपं धत्ते। तस्य ब्रह्मणः पराख्याः शक्तयः—अम्बिका-ज्येष्ठा-रौद्री-वामाभिधाः, परापराः शान्ति-विद्या-प्रतिष्ठा-निवृत्तिनाम्न्यः, अपराश्च जयाद्या गुह्यशक्तयः कीर्त्यन्ते। ततो जयरथः—"अयं च प्रथममेताभिरेव कामरूपे चरुकप्रदानेनानुगृहीत इति गुरवः" इत्याह। अयं चेत्यनेन प्रकरणानुरोधात् क्रमस्तोत्रकारः परामृश्यते। एताभिरित्यनेन च जयाद्या गुह्यशक्तयः परामृश्यन्ते। "चतुरात्मा जयादिभेदेन" (त० वि० १।११०), "चतुष्कमिति सिद्धादि जयादि वा" (त० वि० २१।५१) इत्यत्रापि जयरथो जयादिशक्तिचतुष्टयं स्मरति। का एता जयाद्याः शक्तयः ?

जया च विजया चैव अजिता चापराजिता।
चतुःशक्तिसमोपेतं चत्वरं मातृकोद्भवम् ॥ (३।१७-१८)

इति कौलज्ञाननिर्णयप्रकाशितायां ज्ञानकारिकायां चत्वरनिरूपणश्लोके वर्णितास्ताः स्युः।

जया च विजया चैव जयन्ती चापराजिता।
सिद्धा रक्ताऽलम्बुषा च उत्पला चेति देवताः ॥
सर्वासामेव मातॄणामष्टावेतास्तु नायिकाः।
इत्यष्टैश्वर्ययुक्तास्ता मातरो रौद्रचेष्टिताः ॥
वामस्रोतोद्भवा एतास्तुम्बुरुं रुद्रमाश्रिताः।
(नि० पू० १९।२०-२१,२४-२५)

इत्येवं चाष्टौ जयाद्या मातरो योगवासिष्ठे वर्ण्यन्ते। "जयानाम्नी लक्ष्मीसखी" (५।३१।४८) इति च तत्र टीकाकार आह। पाञ्चरात्रागमे जयाख्या संहिता

वर्तते। तत्र—"लक्ष्मीः कीर्तिर्जया माया देव्यस्तस्याश्रिताः सदा" (६।७७) इत्येवं चतस्रो देव्यः स्मर्यन्ते। तत्रैव (२७।९९-१५०) जयायाः सख्यो जयन्ती-विजया-अपराजिता-सिद्धाख्या वर्ण्यन्ते। "जया लक्ष्मीस्तथा कीर्तिर्माया वै दिक्षु ता यजेत्" (१३।८) इति नेत्रतन्त्रेऽपि दृश्यते। "लक्ष्मीं राजकुले जयां रणभुवि" (श्लो० १७) इति लघुस्तवे तयोः साहचर्य स्मर्यते। "जया त्वं विजया चैव संग्रामे च जयप्रदा" (६।१६) इति महाभारते विराटपर्वणि, "कात्यायनि महाभागे करालि विजये जये" (२३।६) इति भीष्मपर्वणि च सा स्तूयते। "वराहशैले तु जया" (७।३०।६२) इति च देवीभागवते पठ्यते। षोडशमातृकासु च जयाया नाम दृश्यते। "देव्याख्य इति महा-घोराजयादिभेदेषु" (१३।४०) इति नेत्रतन्त्रोद्योते निर्दिष्टो जयाभेदः कश्चन तत्स्वरूपप्रतिपादक आगमः स्यात्। वीणाशिखाख्ये वामस्रोतोभवे तन्त्रे तुम्बुरोर्जयाद्याश्चतस्रः शक्तयो वर्ण्यन्त इति हालैण्डदेशवासी विद्वान् डॉ० तून-गान्द्रियानमहोदयः सूचयति। ग्रन्थोऽयं साम्प्रतं प्रकाशित उपलभ्यते। अत्र ९४-११८ श्लोकेषु तुम्बुरुरूपधारी भगवान् शिवस्तस्य चतस्रो जयाद्याः शक्तयश्च कथं नाम समाराध्यन्त इति सम्यग् वामस्रोतोऽनुविधायिन्या पद्धत्या वर्ण्यते। एता नेत्रतन्त्रेऽपि तस्मिन्नेव प्रकरणे स्मर्यन्ते। एवं च जयाद्येन रूपेणोदिता भेदवाददलिनी सहजसंवित्तिस्वरूपिणी भगवती क्रमदर्शनरहस्यभूताऽत्र स्तूयते।

शक्तिपारम्यवादिनः शाक्ता उच्यन्ते। संविदेव भगवती स्वान्तःस्थितं जगद् बहिः प्रकाशयतीति हि शाक्तदर्शनरहस्यम्। वामकेश्वरदर्शने त्रिपुराभि-धाना परा संविदेव परं ब्रह्मेत्युच्यते। तन्मते हि देशकालाकारैरनियन्त्रितस्वभाव-त्वान्महत्त्वोपेता त्रित्वावस्थितसमस्तधर्मपूरणी चिदानन्दघनस्वात्मपरमार्था स्पृह-णीयतया हृदयहारिणी संविदेव महात्रिपुरसुन्दरीपदाभिलप्या।

त्रिमूर्तिसर्गाच्च पुराभवत्वात् त्रयीमयत्वाच्च पुरैव देव्याः।
लये त्रिलोक्या अपि पूरकत्वात् प्रायोऽम्बिकायास्त्रिपुरेति नाम॥
शिवशक्त्याख्यसंज्ञेयं तत्त्वत्रितयपूरणात्।
त्रिलोकजननी चाथ तेन सा त्रिपुरा स्मृता॥

इतीमौ त्रिपुरापदनिर्वचनप्रतिपादकौ श्लोकौ प्रसिद्धौ। सोऽयं शक्ति-पारम्यपक्षो नित्याषोडशिकार्णवे चतुर्थे पटले—"त्रिपुरा परमा शक्तिराद्या जातादितः प्रिये" (४।४) इत्यारभ्य, "एवं देवी त्र्यक्षरा तु महात्रिपुर-सुन्दरी" इत्यन्तं सम्यग् व्याख्यातः, अस्माभिश्च "त्रैपुरं दर्शनम्" इति शीर्षकेण नित्याषोडशिकार्णवस्य उपोद्घाते (पृ० ८३-९०) सम्यग् विवृत इति विशेष-जिज्ञासुभिस्तत एव द्रष्टव्यः।

भगवती त्रिपुराभट्टारिका तन्त्रसारेऽभिनवगुप्तेन नित्यापदेनोक्ता (पृ० २७), तदुपासकाश्च तत्रैव नित्यातन्त्रविदः (पृ० १८७) इत्युच्यन्ते । "शृङ्गाटं नाम त्रिकोणम्" (११४०, ५१) इत्यमृतानन्दः । "शृङ्गाटाकारतां गता" (नि० षो० ४।९), "यदोल्लसति शृङ्गाटपीठात्" (नि० षो० ४।१२) इत्यत्र भगवती त्रिपुरैव शृङ्गाटाकारेण परिणमत इति बहुधा व्याख्यायते शिवानन्दादिभिः । विद्यानन्दोद्धृते सिद्धनाथपादवचने (पृ० २०५) मध्यबिन्दुरनच्कपदेन रेखात्रयं च कुलोदय-कुलव्याप्ति-कुलौघपदैर्व्याख्यायते । तत्र मध्यबिन्दौ महात्रिपुरसुन्दरी, कोणेषु च त्रिषु कामेश्वरी-वज्रेश्वरी-भगमालिन्योऽधिवसन्ति ।

एवं सत्यपि क्रमदर्शनस्यैव मुख्यं शाक्तत्वं प्रतिपाद्यते । तदत्र शक्तिस्वरूपं तावत् प्रथमं विविच्यते । "शक्तिश्च शक्तिमांश्चैव पदार्थद्वयमुच्यते । शक्तयोऽस्य जगत् कृत्स्नं शक्तिमांस्तु महेश्वरः ॥" श्लोकोऽयमेकत्र रहस्यशास्त्रवचनत्वेनापरत्र च सर्वमङ्गलाशास्त्रवचनत्वेन समुट्टङ्क्यते, अमृतानन्देन च तन्त्रान्तरवचनत्वेन समुद्ध्रियते । यतो ह्यत्र शक्तिशक्तिमतोर्भेदः प्रतिपाद्यते । "शक्तिश्च शक्तिमद्रूपाद् व्यतिरेकं न वाञ्छति । तादात्म्यमनयोर्नित्यं वह्निदाहिकयोरिव ॥" (श्लो० ३) इति बोधपञ्चदशिकावचने च तयोरभेदो निदर्श्यते । द्वैतदृष्ट्याऽद्वैतदृष्ट्या च तदनयोरुभयोरपि मतयोः सङ्गतिः सुसाधा ।

विमर्शः परमा शक्तिरिति कालिकाक्रमे, परबोधरूपस्य विमर्शः परमा शक्तिरिति कालीकुले, विमर्शः सर्वं कर्तुं क्षम इति परामते, विमृशन्ती चिदिति बृहस्पतिपादवचने च विमर्शपदं शक्तिपरत्वेन परतत्त्वपरत्वेन च व्याख्यातम् । क्रमदर्शने संविद्रूपा काली परमं तत्त्वमभिधीयते । चतुराज्ञाकोशभूता त्रिपुराभिधाना परा संविदेव परं ब्रह्म इति च ऋजुविमर्शिनी-सुभगोदय-वरिवस्यारहस्यकारादयः । "कुलं शक्तिः समाख्याता, सा च नित्या" इति नित्यातन्त्रविदः । अत्र नित्यापदेन भगवती त्रिपुरसुन्दरी समभिधीयते । "तत्त्वनिर्मुक्तदेहस्य केवलस्य चिदात्मनः । य उदेति महानन्दः सा शक्तिर्वैष्णवी परा ॥" (१०।६९) इति जयाख्यावचने वैष्णवी शक्तिरपि संवित्स्वरूपैव जेगीयते । वर्तते चास्य विषयस्य महान् विस्तरो लक्ष्मीतन्त्रे । एवं च शाक्तदर्शनेषु शक्तेः पारम्यमभिप्रेयत एव, अन्यत्रापि तस्याः परब्रह्ममहिषीत्वेन व्यवहारो निराबाधं प्रसरति । तत्र च शक्तिशक्तिमतोर्भेदः, भेदाभेदः, अभेदश्च यथाक्रमं स्वीक्रियते तेषु तेषु द्वैत-द्वैताद्वैत-अद्वैतवादिषु तन्त्रागमदर्शनेषु ।

शक्तिरेकैव शाङ्करीति मालिनीतन्त्रे । मालिनीविजये (४।५-८) पुनरिच्छाज्ञानक्रियाख्यास्तिस्रः शक्तयो लक्षिताः । मन्त्रवार्त्तिकटीकायामपि तासां

स्वरूपं निदर्श्यते। परासूक्ते तावदिच्छाशक्तेः स्वरूपं वर्ण्यते, ज्ञानसंबोधे च ज्ञानशक्तिः स्तुता। परा, परापरा, अपरा – इति तिस्रः शक्तयस्त्रिकदर्शनेऽङ्गीक्रियन्ते। तथाहि स्तुतास्ता एवं तन्त्रालोके—

स्वातन्त्र्यशक्तिः क्रमसंसिसृक्षा क्रमात्मता चेति विभोर्विभूतिः।
तदेव देवीत्रयमन्तरास्तामनुत्तरं मे प्रथयत्स्वरूपम्॥ (१।५)

इति। अम्बिका, ज्येष्ठा, रौद्री, वामा चेति चतस्रः शक्तयः परायाः; शान्तिः, विद्या, प्रतिष्ठा, निवृत्तिरिति चतस्रः परापरायाः; जयाद्याश्चतस्रो गुह्यशक्तयश्च अपरायाः शक्तेर्विस्तर इति तन्त्रालोकविवेकधृतागमवचने—"अथ ब्रह्म परं शुद्धम्" इत्यादिना प्रदर्श्यते। वामादयश्चतस्रः शक्तयश्च मध्यबिन्दुशृङ्गाटाधिष्ठात्र्यः, परावागादिस्वरूपाश्च त्रैपुरतन्त्रेष्वपि विवृताः। "औन्मुख्यमिच्छा ज्ञानं च क्रियेत्येतच्चतुष्टयम्। स्पन्दनं देवदेवस्य बोधभैरवरूपिणः॥" इति पूजारहस्यवचने च बोधभैरवरूपिणः स्पन्दात्मकस्य देवदेवस्य औन्मुख्यमित्याद्याश्चतस्रः शक्तयो वर्णिताः।

काल्या द्वादश, त्रयोदश, षोडश, सप्तदश च भेदाः क्रमदर्शनेषु वर्ण्यन्ते। षोडश नित्या नित्याषोडशिकार्णवादौ प्रसिद्धाः। सप्तदशी देवी लाद्यादिशास्त्रे, अष्टादशो च कला त्रिंशिकाविवृतौ प्रदर्श्यंते। तन्त्रसद्भाव-सर्ववीरभट्टारकप्रभृतिग्रन्थेषु डाकिनी-डामरी-शाबरीप्रभृतयो विविधाः शक्तयो वर्ण्यन्ते। स्मृतिर्ज्ञानमपोहनमिति तिस्रः शक्तयः—"मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च" (१५।१५) इति भगवद्गीतावचनेन, "स्यादेकश्चिद्वपुर्ज्ञानस्मृत्यपोहनशक्तिमान्" (१।३।७) इति प्रत्यभिज्ञाकारिकाप्रामाण्येन च महेश्वरानन्देनेत्थं व्याख्याताः—"एतेन परमेश्वरस्य ज्ञानस्मृत्यपोहनशक्तित्रितयवत्त्वेन विश्वव्यवहर्तृत्वं व्याख्यातम्" (पृ० १३५) इत्युपक्रम्य, "इत्याख्याताः स्फुटं ज्ञानस्मृत्यपोहनशक्तयः॥" (पृ० १३६) इत्यन्तम्। एताश्च ज्ञानस्मृत्यपोहनशक्तय ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिकाकारेण भट्टोत्पलेन चतुर्थपञ्चमषष्ठाह्निकेषु सम्यग् विवृता इति विशेषजिज्ञासुभिस्तत एवावलोकनीयाः। एवं च स्पष्टमेतद् यदद्वैतवादिदर्शनेषु शाक्तेषु नित्यात्रिकक्रमकुलादिषु शक्तिपारम्यपक्ष एव पुरस्क्रियत इति। यथोक्तं प्रद्युम्नभट्टेन—"यस्या निरुपधिज्योतीरूपायाः शिवसंज्ञया। व्यपदेशः परां तां त्वामम्बां नित्यमुपास्महे॥" इति। तत्र क्रमागमग्रन्थानामुपदेष्ट्री भगवती, भगवांश्च प्रष्टेति सत्यं क्रमदर्शनस्यैव नूनं मुख्यं शाक्तत्वम्॥

शक्तिसंगमतन्त्रे शाङ्करदशनामिसम्प्रदायः

शक्तिसंगमतन्त्रस्य चतुर्थो भागश्छिन्नमस्ताखण्डाख्यः। ग्रन्थस्यास्य काली-तारा-सुन्दरीनामधेयास्त्रयः खण्डा बडौदा-नगरस्थगायकवाड़शोधसंस्थानतः प्रकाशिताः, चतुर्थः खण्डश्च न चिरात् प्रकाशयिष्यते। पङ्क्तीनामासां लेखकेनैव चतुर्थोऽयं खण्डः सम्पाद्य प्रेषितः, मुद्रणं च ग्रन्थस्यास्य साम्प्रतं प्रचलति। तत्राष्टमे पटले ६०-११५, २१७-२१८ श्लोकेषु शाङ्करदशनामिसम्प्रदायस्य, भगवतः शङ्कराचार्यस्य, तत्प्रधानशिष्याणां मठादीनां च परिचयो विद्यते। तदेवात्र प्रस्तूयते।

उत्पत्स्यमानरूपो हि सम्प्रदायः प्रतन्यते।
कलौ पापसमाकीर्णे नान्ये योगा महेश्वरि॥
आम्नायाश्चैव पूर्वोक्ता गोपितव्या महेश्वरि।
वक्ष्यमाणो महेशानि प्रकाश्यः सर्वजन्तुषु॥
कलौ युगे तु सम्प्राप्ते जम्बुद्वीपे महेश्वरि।
खण्डे भारतसंज्ञे तु श्रीशैलगिरिगह्वरे॥
परिधावीवत्सरे तु सप्तम्यां शनिवासरे।
उद्दण्डवर्षातीते तु दिननित्योदये शिवे॥
सकारोदयवेलायां मध्याह्ने शाङ्करे गृहे।
बौद्धोत्सादनकार्यार्थं शङ्करो मर्त्यरूपधृक्॥
ह्यवतीर्णो महेशानि पञ्चप्रेतसमन्वितः। (८।६०-६५)

इत्येवं तत्र वर्णितो भगवतः शङ्कराचार्यस्य अवतारक्रमः। पञ्चप्रेतांशिनश्च—"शङ्करस्तु मुखं देवि चत्वारः परितः पदम्" (८।७४) इत्येवं तत्र प्रतिपादिताः। तेषु शङ्कराचार्यो भगवान् साक्षात् शिवावतारः। अस्य पूर्वस्यां दिशि पूर्वाम्नायः, गोवर्धनो मठः, भोगवारः सम्प्रदायः, वनाश्रमपदयोश्च स्थितिर्वर्तते। अत्र जगन्नाथो देवता, पुरुषोत्तमं क्षेत्रम्, विमला देवी, तीर्थं च महोदधिरस्ति। बलभद्रप्रभाचार्यौ रक्षकौ स्तः। महाविद्या भुवनेशो, सृष्टिरूपी मन्त्रयोगश्च षट्त्रिंशत्तन्त्रसमन्वितो राजते।

दक्षिणस्यां दिशि दक्षिणाम्नायः, शृङ्गेरी मठः, भूवाराख्यः सम्प्रदायः, सरस्वती पुरी भारती चेति पदत्रयम्, भारती देवी, रामेश्वराभिधं च क्षेत्रं

राजते। आदिवराहरूपी देवता, महाचोलनिवासिनी कामाक्षी श्रीत्रिपुरसुन्दरी देवी, शृङ्गी ऋषिः, आचार्यश्च पृथ्वीधरो वर्तते। तुङ्गभद्रा तीर्थम्, कमला देवता शिवकाञ्ची-विष्णुकाञ्चीनिवासिनी। सिद्धचेतनाख्यो भक्तियोगः स्थिति-रूपी पञ्चविंशतितन्त्रयुक्तो वर्तते।

पश्चिमायां दिशि पश्चिमाम्नायः, शारदामठः, कीरवारः सम्प्रदायः, तीर्थाश्रमाख्ये च पदे स्तः। द्वारकाख्यं क्षेत्रम्, ईश्वरो देवता, देवी च भद्रकाली विराजते। ब्रह्मा तत्र प्रतिष्ठितः। विश्वरूप आचार्यः, गङ्गास्वरूपिणी गोतमी चात्र तीर्थमभिप्रेतम्। संहाररूपी कर्मयोगः पञ्चसप्ततितन्त्रैः समुपबृंहितोऽत्राधिकृतः। विद्या चात्र श्रीत्रिपुराम्बिका स्वीकृता।

उत्तरस्यां दिशि उत्तराम्नायः, ज्योतिर्मठः, बन्दवारः सम्प्रदायः, गिरि-पर्वत-सागराख्यं पदत्रयम्, बदरिका क्षेत्रम्, सर्वसिद्धिप्रदा पूर्णगिरिर्देवता, मन्त्रशास्त्रविशारदस्त्रोटक आचार्यः, अलकनन्दा तीर्थम्। बौद्धशास्त्रविडम्बका महाचीना रक्षकाः, तारा अधिष्ठात्री देवता, ज्ञानयोगः, नन्दकश्चात्र ब्रह्मचारी वर्तते।

ऊर्ध्वायां दिशि ऊर्ध्वाम्नायः, सुमेरुपीठम्, विज्ञानं पदम्, कैलाससंज्ञकं क्षेत्रं राजते। अत्र काश्मीरः सम्प्रदायो वर्तते। निरञ्जनो देवता, माया देवी, ईश्वर आचार्यः, मानसं सरश्च तीर्थं राजते। दक्षिणा काली विद्या राज-योगश्चात्र प्रतिष्ठितः। महापद्मागमानां पारवेत्ता शिवः स्वयमत्र निवसति।

एवं पञ्च प्रेतांशान् निर्वर्ण्य तत्र—"अयमेको महेशानि कलौ क्वापि भविष्यति" (८।९६) इति, "चतुर्भिः सह शिष्यैश्च शङ्करोऽवतरिष्यति" (८।९८) इति चोक्त्वा, "शङ्करः शङ्करः साक्षाद् व्यासो नारायणो हरिः" (८।९८) इति व्यक्तमुक्तम्। ततश्च नारदः, दत्तात्रेयः, बृहत्सेनः, जैगीषव्यः, कश्यपः, वसिष्ठः, रथाङ्गः, शौनकः, कण्वः, शातातपश्चेति दशावताराः शङ्करस्य वर्णिताः। ततः ज्ञानकाण्डम्, क्रियाकाण्डम्, धर्मकाण्डम्, योगकाण्डम्, भावकाण्डमिति काण्डपञ्चकं निर्वर्ण्य ज्ञानयोगः, राजयोगः, लययोगः, हठयोगः, मन्त्रयोगश्चेति योगपञ्चकं च परिगणय्य भाव-क्रियाभेदेन मन्त्रयोगो द्विधा वर्णितः। ततश्च—

सरस्वती भारती च पर्वतारण्यसागराः।
गिरिः पुरो वनस्तीर्थश्चाश्रमो दशमः स्मृतः॥
दशनामक्रमेणोक्तं पञ्चकं दशकं भवेत्। (८।१०४-१०५)

इति शाङ्करदशनामिसम्प्रदायस्तत्र स्पष्टं प्रतिपादितः। आनन्दसरस्वती, इन्द्रसरस्वती, चैतन्यः, प्रकाशः, स्वरूपानन्दः, अपरः, परः, सप्तप्रज्ञः, प्रसादकः, नित्यः, सत्यः, चिद्घनः, कैवल्यः, विश्वरूपः, विराट्, विलासः, शाश्वतः, कलहट्टः, गोमुखः, विज्ञानवल्लभ इत्यादयोऽपि भेदास्तत्र वर्णिता विद्यन्ते। तेषु दशनामिसम्प्रदायः केरलसम्प्रदायान्तर्गतः, तदन्यश्च गौडसम्प्रदायेऽन्तर्भूतः। केरलो दक्षिणः, गौडश्च सम्प्रदायो वामः प्रोच्यते। तत्र केरलो वेदमार्गस्थो निगमान्तर्गतः, वामश्च मार्ग आगमप्रतिपादितो वर्तते। प्रकरणमेतदेवमुपसंहृतं तत्र—

एते संक्षेपतः प्रोक्ता ब्रह्मात् सादान्तकं शृणु।
कलौ युगे शङ्करो हि ह्यवतीर्णो महेश्वरि॥
शङ्करश्च महेशानि हस्तामलक एव च।
सुरेश्वरस्ततः प्रोक्तस्तोटकस्तदनन्तरम्॥
पद्मपादः पञ्चमः स्यात् पञ्चप्रेतानुकल्पनम्।
मुख्या परम्परा देवि मया प्रोक्ता हिताय च॥
विच्छिन्ना तु ततो भूयात् पुनः सा वै भविष्यति।
शङ्करस्य तु योगेन भविष्यति स्फुटं शिवे॥
इति संक्षेपतः प्रोक्तं दक्षिणामूर्तिसंमते।
(८।१११-११५)

सोऽयं विषयो भङ्ग्यन्तरेण प्रतिपादितो ग्रन्थेऽस्मिन् ३८ पृष्ठेऽपि द्रष्टव्यः। अत्र स्मरणीयमेतद् यच्चतुर्थे खण्डेऽपि शङ्करो दिव्यसाम्राज्यदीक्षित (८।७३) इति, दिव्यौघद्वारतः प्रकाशत्वं गतः (८।९६) इति चोच्यते। एवं चात्र प्रथमे खण्डे स्थापिता तिथिः शङ्करावतारस्य, चतुर्थे खण्डे प्रकाशिता तिथिश्च तन्त्रावतारस्य मन्तव्या॥

पुराणवर्णिताः पाशुपता योगाचार्याः

हरदत्तविरचिता गणकारिका [1]भासर्वज्ञरचितया रत्नटीकया सह बड़ौदा-नगरस्थगायकवाड़शोधसंस्थया प्रकाशिता। लकुलीशपाशुपतमतस्यायं ग्रन्थः। अत्र परिशिष्टरूपेण विशुद्धिमुनिविरचितं यमप्रकरणम् आत्मसमर्पणं च, अज्ञातकर्तृकः कारणपदार्थः, रुद्रनामानि, आचार्यहरिभद्रकृतस्य षड्दर्शन-समुच्चयस्य,[2] राजशेखरसूरिकृतस्य षड्दर्शनसमुच्चयस्य च पाशुपतमत-संबद्धोंऽशः, सर्वदर्शनसंग्रहस्थं नकुलीशपाशुपतमतदर्शनम्, कारवणमाहात्म्य-मित्येते स्वल्पकाया ग्रन्था अपि प्रकाशिता विद्यन्ते। तत्र विशुद्धिमुनिकृते आत्मसमर्पणे श्वेतादिलकुलीशान्तानामष्टाविंशतिसंख्याकानां योगाचार्याणां नामानीमानि दृश्यन्ते—

श्वेतः सुतारो दमनः सुगोत्रः कङ्क एव च।
लोकाक्षिजैगीषव्यौ च तथैव दधिवाहनः॥
ऋषभो मुनिरुग्रश्च चित्रार्थालिश्च गौतमः।
वेदशिरा गोकर्णश्च गुहावासिशिखण्डिनौ॥
जटामाली चाट्टहासो दारुको लाङ्गली तथा।
श्वेतः शूल्यथ दण्डी च सहिष्णुः सोमशर्मकः॥
लकुलीशश्चावतारा अष्टाविंशतिसंख्यकाः। इति।

योगाचार्याणामेषां नामानि पाठभेदेन सह [3]स्कन्दपुराणस्य माहेश्वर-खण्डान्तर्गतकौमारिकाखण्डस्य ४० तमेऽध्यायेऽपि सन्ति। अन्यत्राष्टाविंशति-

---

१. गणकारिका भासर्वज्ञकृतिरिति तत्सम्पादकस्य मतं डॉ० सुरेन्द्रनाथदासमहोदयेन (ए हिस्ट्री आफ इण्डियन फिलासफी, भा. ५, पृ. ११-१२), डॉ. कान्तिचन्द्र-पाण्डेयमहोदयेन (शैवदर्शनबिन्दुः, पृ. ३१) च खण्डितम्।

२. आचार्यहरिभद्रसूरिणा श्लोकात्मकः षड्दर्शनसमुच्चयाख्यो ग्रन्थो रचितः। तत्र गुणरत्नकृतं व्याख्यानं विद्यते। अत्र व्याख्याग्रन्थस्यांशविशेषः संगृहीत इति विभावनीयम्।

३. अत्र निबन्धे स्कन्दपुराण-वायुपुराण-लिङ्गपुराणानां मोरसंस्करणस्य, कूर्मपुराणस्य मोरसंस्करण-काशीराजन्याससंस्करणयोः, शिवपुराणस्य च काशीपण्डितपुस्तकालय-संस्करणस्य उपयोगः कृतः। आ. आत्मसमर्पणम्, कू. कूर्मपुराणम्, कूका. कूर्म-पुराणकाशीराजन्याससंस्करणम्, लि. लिङ्गपुराणम्, वा. वायुपुराणम्, शिवा. शिवपुराणवायवीयसंहिता, शिश., शिवपुराणशतरुद्रसंहिता, स्क. स्कन्दपुराणम्, इति च संकेतपरिचयो बोध्यः।

संख्याकानामेषां शिवयोगिनां प्रत्येकं चत्वारः शिष्या इत्याहृत्य ११२ संख्याकानां शिष्याणां नामावली वर्तते। शिवपुराणे सैषा नामावली स्थलद्वये दृश्यते। एका तृतीयस्याः शतरुद्रसंहितायाश्चतुर्थे पञ्चमे चाध्याये, अपरा च सप्तम्या वायवीयसंहिताया उत्तरभागस्य नवमेऽध्याये। तत्र प्रथमा नामावली वायुपुराणस्य २३ तमाध्यायानुसारिणी, अपरा च लिङ्गपुराणस्य सप्तमाध्यायस्थां नामावलीमनुसरति। "अद्य ब्रह्मणोऽह्नि द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे" इति प्रत्यहं सन्ध्यावन्दनकाले वयं भणामः। तत्र प्रथमस्यां नामावल्यां प्रतिद्वापरयुगं प्रादुर्भूतानां वेदव्यासानाम्, प्रतिकलियुगं प्रादुर्भूतानां योगाचार्याणां च नामावली[1] संयुक्ता वर्तते विस्तृता सविवरणा, अपरा च नामावली केवलं योगाचार्याणामेव। सैषा द्वितीया नामावली कूर्मपुराणेऽपि दृश्यते। सौभाग्यादस्माकमस्य पुराणस्य परिष्कृतं संस्करणं काशीराजन्यासमुद्रितं समुपलभ्यते। अस्मिन् संस्करणे पूर्वविभागीयैकपञ्चाशेऽध्याये वर्तते सैषा नामावली। ततः पूर्वतने चाध्याये वेदव्यासावताराः परिगणिताः। अस्य संस्करणस्य विषयसंवादाख्ये द्वितीये परिशिष्टे व्यासावताराणां[2] पुराणान्तरेषु वर्णितानां स्थलनिर्देशो वर्तते,[3] योगाचार्यावताराणां च

---

१. अत्र शिवपुराणीयशतरुद्रसंहिताया इमे श्लोका विशेषतोऽवधेयाः सन्ति—"वैवस्वतेऽन्तरे सम्यक् प्रोक्ता हि परमात्मना। योगेश्वरावताराश्च सर्वावर्तेषु सुव्रताः। व्यासाश्चैवाष्टविंशत्या द्वापरे द्वापरे विभो। योगेश्वरावताराश्च प्रारम्भे च कलौ कलौ॥ ˙˙ संख्यया द्वादशाधिक्यशतं च गणिता बुधैः॥" (५।५१-५६) इति। तत्रैव वायवीयसंहितोत्तरभागेऽपि—"एते वाराहकल्पेऽस्मिन् सप्तमस्यान्तरे मनोः। अष्टाविंशतिराख्याता योगाचार्या युगक्रमात्॥ शिष्याः प्रत्येकमेतेषां चत्वारः शान्तचेतसः। श्वेतादयश्च रुष्यान्तास्तान् ब्रवीमि यथाक्रमम्॥" (९।६-७) इति, "एते शिष्या महेशस्य योगाचार्यस्वरूपिणः। संख्या च शतमेतेषां सह द्वादशसंख्यया॥ सर्वे पाशुपताः सिद्धा भस्मोद्धूलितविग्रहाः। सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञा वेदवेदाङ्गपारगाः॥" (९।२१-२२) इति च।

२. व्यासावताराणां नामावलीष्वपि क्वचन वैभिन्न्यं दृश्यते। योगाचार्यनामावलीपरीक्षणमेव प्रकृतनिबन्धस्य विषय इति न साऽत्र परामृश्यते।

३. शिवपुराण-लिङ्गपुराणयोरपि दृश्यते व्यासावतारनामावलीति न सार्वात्म्येन स्थलनिर्देशो विहित इति प्रतिभाति। आगमसंहितातन्त्रादिग्रन्थेषु पुराणेषु च समुपलभ्यन्ते समानविषयकाः समानानुपूर्वीकाः श्लोकाः। स्थलानामीदृशानां प्रामाणिकी सर्वाङ्गपूर्णा च विषयानुक्रमणी निर्मीयेत चेत् तुलनात्मकमनुशीलनमतीव

पुराणान्तरेषु वर्णितानां स नास्ति। अतो यदस्माभिरुपलब्धं[1] तदाधारेणैव २८ योगाचार्याणाम्, ११२ संख्याकानां तच्छिष्याणां च नामावली सपाठभेदं समुपस्थाप्यते समालोच्यते च। द्विविधामपि नामावलीं समुपस्थापयत्सु निर्दिष्ट-पुराणश्लोकेषु वर्तते वक्तृश्रोत्रादिप्रयुक्तं महद्वैषम्यमिति, मा भूच्च वृथा निबन्ध-कलेवरवृद्धिरिति तत्रत्याः श्लोका नात्र संगृह्यन्ते।

२८ योगाचार्याः

१. श्वेतः। "भविष्यामि शिखायुक्तः[2] श्वेतो नाम महामुनिः। हिमवच्छिखरे रम्ये छागले पर्वतोत्तमे॥" (४।६-७) इत्येवं शिवपुराणीयशतरुद्र-संहितायाम्, वायुपुराणे (२३।११५-११६) च प्रथमस्य योगाचार्यस्य परिचयो वर्तते। अत्र हिमवच्छिखरेषु छागलाख्यस्य पर्वतोत्तमस्य स्थितिर्भौगोलिकै-राधुनिकैर्गवेषणीया। छगलाण्डं नाम ज्ञानेन्द्रियभुवनं शैवसिद्धान्तग्रन्थेषु[3]

परिष्कृतं स्यात्। प्रत्येकं पुराणस्य पाठपरिष्कारात्मकसंस्करणवत् सम्पूर्णस्य पुराणवाङ्मयस्य पाठपरिष्कारोऽपि परस्परसाहाय्येन कर्तुं शक्यते।

१. योगाचार्यनामावली डॉ० सुरेन्द्रनाथदासगुप्तेन पूर्वोक्ते ग्रन्थे स्थलद्वये (पृ० ६, ७०) चर्चिता। तत्र (पृ० ६) टिप्पण्यामन्यैर्विद्वद्भिः संगृहीता नामावली विनैव नामनिर्देशं स्मर्यते। साम्याभावाच्च नामावलीयं कल्पनाप्रसूतेति (मिथिकल) च स निष्कर्षयति। तेन नास्या नामावल्याः परीक्षायै प्रयासो विधेय इति तस्याभिप्रायः प्रतीयते। पौराणिकीषु सर्वासु घटनासु किमपि तथ्यं पिहितमिति चास्माकीनो विश्वासः। एष विश्वास एव प्रवर्तयत्यस्मानस्यां नामावलीपरीक्षायाम्। पाशुपतसूत्र-सम्पादकेन श्रीमताऽनन्तकृष्णशास्त्रिणा रचित उपोद्घातोऽप्यत्र द्रष्टव्यः। विशेषत-स्तस्याद्यानि पृष्ठानि।

२. शिवायुक्त इति शिश. पाठोऽशुद्धो मन्तव्यः, अग्रिम एव श्लोके "शिष्याः शिखायुक्ताः" (४।७) इति पाठदर्शनात्। "शिवे युक्ताः" (२३।११६) इति तु वा. पाठः। तत्रापि शिखायुक्ता इत्यनेनैव पाठेन भवितव्यम्। श्वेतमुनेर्हि द्वितीयस्य शिष्यस्य श्वेतशिख इति नाम दृश्यते। अष्टमस्य दधिवाहनाख्यस्य योगाचार्यस्य च शिष्यः पञ्चशिखो भवति। शिखिनः, मुण्डिनः, जटिनश्चेति त्रिविधा मुनयो भवन्ति। तत्र पाशुपता एते योगाचार्याः शिखिनः स्युः।

३. अस्मदीये तन्त्रयात्राख्ये निबन्धसंग्रहे—"वैष्णवेषु तदितरेषु चागमेषु षड्ध्वविमर्शः" इति शीर्षको निबन्धो द्रष्टव्यः (पृ० २७)। वामदेवः, श्वेतः, लोकाक्षः, सुहोत्रः, गौतमः, दधिवाहः, ऋषभः, गोकर्णः, शिखण्डी, जटी, माली, उग्रः, भृगुः, शिखी, शूली, सुपालनः, अट्टहासः, दारुकः, लाङ्गली, लकुलेश इत्येतानि-नामानि-योगाचार्य-नामावलीमनुकुर्वन्ति।

वर्ण्यते। स्वच्छन्दतन्त्रे (१०।१०४६-१०६१) गुणतत्त्वे गुरुपङ्क्तित्रयं वर्ण्यते। तत्र श्वेतादीनां नामानि व्युत्क्रमेण पठितानि दृश्यन्ते। प्रथमस्यास्य योगाचार्यस्य श्वेत इत्येव सार्वत्रिकं नाम। नात्र पाठभेदः क्वचन दृश्यते। श्वेतमुनेरुपाख्यानं महाभारते[1] (आदि० १।२३३, शान्ति० १५३।६८, अनु० ११५।६६, १५०।५२), लिङ्गपुराणे (पू० २९-३० अ०), पराख्ये तन्त्रे च समुपलभ्यते। अन्यत्रापि स्यादेतत्। "निवृत्तिमार्गं सुदृढं वर्तयिष्ये कलाविह" (शिश० ४।१६), "निवृत्तिपथवर्धनः" (शिश० ४।२५), "निवृत्तिपथवृद्धये" (शिश० ४।३५), इत्यादिवचनदर्शनादेते योगाचार्या निवृत्तिमार्गपरायणा आसन्निति प्रतीयते। [2]प्रवृत्तिपरायणान् मुनीन् निवृत्तिमार्गे प्रवर्तयितुं श्वेतो महामुनिर्दारुवनं जगामेति लिङ्गपुराणीयं (१।२९।७-८) कथानकमप्यस्य मतस्य पोषकम्। ब्रह्मसूत्रव्याख्याता श्रीकण्ठो नानागमविधायिनं श्वेतं[3] स्मरति। एवं च मुनिरयं पाशुपतमतस्य प्रवर्तकः प्रथमो योगाचार्य इति मन्तव्यम्।

---

१. महाभारते आदिपर्वणि (१।२२५-२३८) सुहोत्रः काक्षीवान्, औशिजः, दमनः, युवनाश्वः, श्वेतः, कङ्कः, बलबन्धुः, निरामर्दः, केतुशृङ्ग इत्येते राजानो वर्ण्यन्ते। एतानि च नामानि योगाचार्याणामपि दृश्यन्ते। क्षत्रियः पाशुपतपद्धत्या शिवं समाराधयेदिति वामनपुराणं वदति (६।८६-९१)। तेन पाशुपताचार्येषु क्षत्रियनाम्नां संगतिर्बाढं सिद्धयति।

२. "तान् सात्वते क्रियामार्गे मद्वाक्याद् याहि योजय" (१।७) इति पाञ्चरात्रीयसात्वतसंहितावचनस्य अद्यावधि निवृत्तिपरायणान् मुनीन् सात्वतशास्त्रोदिते शुद्धे क्रियामार्गे प्रवृत्तिप्रवणे योजयेत्यभिप्रायो भवति। "तृतीयमृषिसर्गं च देवर्षित्वमुपेत्य सः। तन्त्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः॥" (१।३।८) इति भागवतपद्यव्याख्याने श्रीधरः—"कर्मणामेव मोक्षकत्वं यतो भवति तदाचष्टेत्यर्थः" इत्याह। "प्रवृत्तिलक्षणश्चैव धर्मो नारायणात्मकः" (३४७।८३) इत्येवं च महाभारते नारायणीयोपाख्याने प्रतिपाद्यते। तेन पाशुपतो धर्मो निवृत्तिलक्षणः, पाञ्चरात्रधर्मश्च प्रवृत्तिलक्षणः सिद्धयति। सांख्ययोगाचार्यः पञ्चशिखो महाभारते (शान्ति० २१८।११) पञ्चस्रोतसि निष्णातः पञ्चरात्रविशारदश्च वर्ण्यते। तेनोभयधर्माभिज्ञः स इति सिद्धयति। पशुपतेः शिवस्य पञ्चवक्त्रेभ्यः पञ्चस्रोतस्सु शिवागमाः प्रवर्तन्त इति च स्मर्तव्यमत्र।

३. "नमः श्वेताभिधानाय नानागमविधायिने" इति विद्यते तत्रत्यं मङ्गलाचरणचतुर्थपद्यम्। अत्र श्रीकण्ठभाष्यव्याख्याकारोऽप्पयदीक्षितो वक्ति—"अनेन श्लोकेन शिवशास्त्रप्रचारणार्थं शिवावताररूपाणामष्टाविंशतेर्योगाचार्याणामाद्याय

२.**सुतारः**। एतदेव सार्वत्रिकं नाम। कूका. इत्यत्र तु सुभान इति नाम मूले स्थापितम्।

३. **दमनः**। मदनः—शिवा.कू.लि., तारणः—स्क.। दमनाख्यो ब्रह्मर्षिर्महाभारते (वन० ५३।६–८) श्रूयते।

४. **सुहोत्रः**। सुगोत्रः—आ., सुहोत्री—वा.। सुहोत्रनामकः प्राचीनो नृपतिर्ऋषिश्च महाभारते (आ० १।३२६, वन० २६।२४) वर्ण्यते।

५. **कङ्कः**। कङ्कणः—कू. कूका. स्क.। कङ्कनामकः प्राचीनो नृपतिर्महाभारते (आदि० १।२३३) दृश्यते।

६. **लोकाक्षिः**। लौगाक्षिः—शिवा., लोकाख्यः—स्क.। ७५ संख्याकः शिष्योऽपि लोकाक्षिर्वर्तते। तत्रापि लौगाक्षिरिति पाठान्तरं दृश्यते।

७. **जैगीषव्यः**। "योगं संदृढयिष्यामि महायोगविचक्षणः। काश्यां गुहान्तरे संस्थो दिव्यदेशे कुशास्तरिः॥" (शिश० ४।२८) इत्येवं सप्तमस्य योगाचार्यस्य जैगीषव्यस्य वर्णनं दृश्यते। वाराणस्यां काशीगुहा प्रसिद्धा। तस्मिन् दिव्यदेशे कुशास्तरण एष योगाचार्यः प्रादुर्भूत इत्यनेन ज्ञायते। [1]ब्रह्मसभायां राजमानो जैगीषव्यो महर्षिर्महाभारते सभापर्वणि (११।२४) वर्ण्यते। जैगीषव्यदेवलयोः संवादो महाभारते शल्यपर्वणि (५०।५३-५५) जैगीषव्यासितयोस्तत्रैव शान्तिपर्वणि (२२९।३ ४) दृश्यते, योगसूत्रव्यासभाष्ये (३।१८) च आवट्यजैगीषव्यसंवादो वर्ण्यते।

८. **दधिवाहनः**। दधिवाहः—शिवा. कूका.। दधिवाहनाख्यः प्राचीनो नृपतिर्महाभारते (शान्ति. ४९।८०) दृश्यते।

९. **ऋषभः**। वृषभः—कूका., ऋभतः—शिश., एष पाठस्त्वशुद्धः प्रतिभाति। महाभारते (वन. ११०।८, सभा. ११।२४, शान्ति. १२५-१२८ अ.) ऋषभाख्यस्य महर्षेः परिचय उपदेशादिकं च वर्तते।

श्वेताचार्यायापि नमस्कारः क्रियते। अस्मिन् पक्षे 'नानागमविधायिने' इत्यस्य 'नानाविधपाशुपताद्यागमनिर्मात्रे' इत्यर्थः" इति। तेन च योगाचार्येष्वाद्यस्य श्वेतस्य नानागमनिर्मातृत्वं सिद्धयतीति नेयं नामावली कल्पनामात्रप्रसूतेति विभावनीयं विपश्चिद्भिः।

१. महाभारते सभापर्वणि (११।१९-२४) भृगुः, अत्रिः, वसिष्ठः, गौतमः, अङ्गिराः, च्यवनः, सनत्कुमारः, देवलः, जैगीषव्यः, ऋषभ इत्येते ऋषयो ब्रह्मसभामुपतिष्ठन्त इति वर्ण्यते।

१०. भृगुः । दशमस्य योगाचार्यस्य मुनिरिति नाम बाहुल्येन दृश्यते । मुनिर्धर्म इति स्क. पाठः, भृगुरिति तु कू. कूका. पाठः । "हिमवच्छिखरे रम्ये भृगुतुङ्गे[१] नगोत्तमे । नाम्ना भृगोस्तु शिखरं तस्मात् तच्छिखरं भृगुः ॥ तत्रापि मम पुत्राश्च भृग्वाद्याः श्रुतिसंमताः ॥" (शिश. ५।१-२, वा. २३।१४८-१४९) इत्येवमस्य वर्णनदर्शनाद् भृगुरित्येवास्य योगाचार्यस्य नाम स्वीकर्तव्यम् । अस्याचार्यस्य श्रुतिसंमतेषु चतुर्षु शिष्येषु प्रथमस्य भृङ्गस्यात्र निर्दिष्टस्य नाम न क्वचन दृश्यत इति पाठ एव परीक्षणीयः । महर्षेर्भृगोर्विस्तृतः परिचयो महाभारते द्रष्टव्यः ।

११. उग्रः । एकादशस्य उग्राख्यस्य योगाचार्यस्य नाम शिश. इत्यत्र स्पष्टं न ज्ञायते, किन्तु तस्य प्रादुर्भावस्थली गङ्गाद्वारमिति तत्र निर्दिष्टम् । उग्रा—वा. इति त्वशुद्धः पाठः । पुरुषतत्त्वे स्थितमुग्राख्यं भुवनं शैवागमेषु वर्ण्यते । उग्राख्यः शिष्योऽपि ५४ संख्याको द्रष्टव्यः । प्रजापतेः कवेः पुत्र उग्रो महाभारते (अनु. ८५।१३३) दृश्यते ।

१२. अत्रिः—अत्रिवर्णने "हेमकञ्चुकमासाद्य" इति शिश. पाठः, "हेमकं वनमासाद्य" इति च वा. पाठः । द्वादशत्रयोदशयोगाचार्ययोर्नामनी चित्रार्थालिश्च—आ. इत्येवं दृश्येते । अत्र च स्पष्टं न किमपि ज्ञायते । ५३ संख्याकः शिष्योऽपि तन्नाम्नैव प्रसिद्धः । ब्रह्मर्षिरत्रिश्च महाभारतपुराणादिषु प्रथित एव ।

१३. बलिः । बलिः, बालिर्वा महामुनिर्बालखिल्याश्रमे गन्धमादने पर्वतोत्तमे प्रादुर्भूत इति शिश. वा. इत्याभ्यां ज्ञायते । बालिः—कू. बली—कूका., सुपालकः—शिवा., सुबालकः—लि., सबालकः—स्क. । [२]युधिष्ठिर-सभायां विद्यमानो बलिर्नाम ऋषिर्महाभारते (सभा. ४।१०) वर्ण्यते ।

१४. गौतमः । आङ्गिरसे वंशे गौतमवने प्रादुर्भूत एष योगाचार्य इति शिश. वा इत्याभ्यां ज्ञायत । अत्र पाठान्तरं नास्ति । ८४ संख्याकः शिष्योऽपि गौतमः । महाभारतादिषु विवरणं द्रष्टव्यम् ।

---

१. भृगोः, भृगुतीर्थस्य, भृगुतुङ्गस्य नगोत्तमस्य च वर्णनं महाभारतेऽपि बहुषु स्थलेषु वर्तते ।

२. महाभारते सभापर्वणि (४।१०-१८) देवलः, सत्यः, बलिः, बकः, दाल्भ्यः, सुमन्तुः, जैमिनिः, भालुकिः, भृगुः, काक्षीवान्, औशिजः, गौतम इत्येते मुनयो युधिष्ठिरसभायामासन्निति वर्ण्यते ।

१५. **वेदशिराः** । एष योगाचार्यः सरस्वत्या उत्तरे भागे हिमवत्पृष्ठवर्तिनि वेदशीर्षाख्ये नगोत्तमे प्रादुर्भूतः । वेदशीर्षा—कूका., वेदशीर्षः—लि., वेददर्शी—कू, वेदशीर्णः—स्क. । वेदशिरा नाम प्राचीन ऋषिर्महाभारते (शान्ति. ३३६।८) दृश्यते ।

१६. **गोकर्णः** । सुपुण्ये गोकर्णवने गोकर्णस्य प्रादुर्भावो वर्ण्यते शिश. वा. इत्युभयोः स्थलयोः । अत्र पाठान्तरं न दृश्यते । गोकर्णं नाम आकाशतत्त्वभुवनं शैवागमेषु वर्ण्यते । तीर्थरूपेण तपोवनरूपेण च महाभारते बहुषु स्थलेषु वर्ण्यते ।

१७. **गुहावासी** । "हिमवच्छिखरे शुभे ॥ महालये महोत्तुङ्गे शिवक्षेत्रं हिमालयम् । सिद्धक्षेत्रं महापुण्यं भविष्यति महालयम् ॥" (शिश. ५।१८-१९, वा. २३।१७४-१७५) इत्येवं शिश. वा. इत्यत्र महालयाख्यं स्थानमस्य योगाचार्यस्य प्रादुर्भावस्थलत्वेन निर्दिष्टम् । गुहावासः—कू. कूका. पाठान्तरम् ।

१८. **शिखण्डी** । हिमवच्छिखरे सिद्धिक्षेत्रे महापुण्ये शिखण्डी नाम पर्वतः, सिद्धनिषेवितं शिखण्डिनो वनं च राजते । तत्रैव शिखण्डयाख्यस्य योगाचार्यस्य प्रादुर्भावो वर्ण्यते पूर्वोक्तयोरुभयोरपि स्थलयोः । ईश्वरतत्त्वे स्थितमेतन्नामकं भुवनं शिवागमेषु श्रूयते । शिखण्डभृत्—लि. स्क., शिखण्डधृक्—कू. । शिखया मयूरपिच्छेन वा विशिष्टः सम्बन्धो योगाचार्याणामित्यनेन नाम्नाऽपि ज्ञायते ।

१९ **जटामाली** । हिमवच्छिखरे रम्ये यत्र जटायुर्नाम पर्वतो विराजते, तत्रैव जटामालिनो योगाचार्यस्य प्रादुर्भावः । यजमाली—कू, जटी माली—शिश. ।

२०. **अट्टहासः** । हिमवत्पृष्ठे देवदानवयक्षेन्द्रसिद्धचारणसेवितो महागिरिरट्टहासो नाम राजते । अट्टहासप्रिया जनास्तत्र निवसन्ति । तत्रैवास्य योगाचार्यस्य प्रादुर्भावः । अट्टहासाख्यं नाम वायुतत्त्वभुवनं शैवागमेषु स्मर्यते । अत्र पाठान्तरं नास्ति ।

२१. **दारुकः** । महति देवदारुवने दारुवने वा दारुकाख्यस्य योगाचार्यस्य प्रादुर्भावः । दारुकं नाम कर्मेन्द्रियभुवनं शैवागमेषु द्रष्टव्यम् । दारुणः—स्क. इति पाठान्तरम् ।

२२. **लाङ्गली** । "तदाऽप्यहं भविष्यामि वाराणस्यां महामुनिः ॥ नाम्ना वै लाङ्गली भीमो यत्र देवाः सवासवाः । द्रक्ष्यन्ति मां कलौ तस्मिन्[१] भवं चैव हलायुधम् ॥" (शिश. ५।३०-३१ वा २३।१९९-२००) इत्येवं वर्ण्यतेऽयं योगाचार्यः । लाङ्गुली—शिवा. ।

---

१. तस्मिन्नवतीर्णं हलायुधम्—वा. ।

२३. महाकालः । "गिरौ कालञ्जरे शुभे ॥ तत्र कालं जरिष्यामि तदा गिरिवरोत्तमे । तेन कालञ्जरो नाम भविष्यति स पर्वतः ॥" (शिश. ५।३३-३४, वा. २३।२०३-२०४) इत्येवमस्य योगाचार्यस्य प्रादुर्भावस्थलं वर्ण्यते । अस्याचार्यस्य श्वेत इति नाम शिश वा. आ. कूका. इत्येवं बहुषु स्थलेषु दृश्यते । प्रथमस्य योगाचार्यस्य तच्छिष्यस्य चाप्येतदेव नाम वर्तते । तत्तु उपर्युक्तेन विवरणेन सह न घटत इति नास्माभिर्मुख्यत्वेन स्थाप्यते । महाकाल इत्येव नाम तद्वर्णनं सार्थकयति । महाकायमुनिः—लि., महायामो मुनिः—कू, संयमी—स्क. इत्येतानि पाठान्तराणि चास्य विशेषणतया योजनीयानि । ६७ संख्याकः शिष्योऽपि महाकायाख्यो वर्तते । महाकालाख्यं तेजस्तत्त्वभुवनम्, कालञ्जरं नाम ज्ञानेन्द्रियभुवनं च शैवागमेषु द्रष्टव्यम् । कालञ्जरं निकषा सिद्धान्तशैवागमाः[१] प्रसृतिं लेभिरे, यत्र हि योगाचार्यस्य त्रयोविंशतितमस्य प्रादुर्भावः समजायतेति परोक्षणसापेक्षोऽयं विषयः । शिवपार्षदत्वेन (सभा. १०।३४), ज्योतिर्लिङ्गत्वेन (वन. ८२।४९) च महाभारते महाकालो वर्ण्यते ।

२४. शूली । शूली नाम महायोगी योगिवन्दिते नैमिषे समजायत । नैमिषं नाम जलीयं भुवनं शैवागमेषु वर्ण्यते । नैमिषारण्यं च पुराणप्रवचनपीठत्वेन प्रथितम् ।

२५. डिण्डिमुण्डीशः । दण्डीमुण्डीशः—शिवा., दण्डी—आ., डिण्डी—कूका., दण्डी मुण्डीश्वरः—लि. शिश. वा., डिण्डमुण्डीश्वरः—कू., डिण्डीजुण्डीश्वरः—स्क. इतोमानि पाठान्तराण्यत्र दृश्यन्ते । डिण्डिमुण्डिरिति जलीयं भुवनं स्वच्छन्दतन्त्रे (१०।८५४) वर्ण्यते । तेन डिण्डिमुण्डीश इत्येव नाम प्रधानत्वेनात्र स्थाप्यते ।

२६. सहिष्णुः । भद्रवटं पुरम्, पुण्यं रुद्रवटं वा प्राप्य सहिष्णुः समजायत । सविष्णुः—शिवा., मुण्डी सहिष्णुः—कूका. इति पाठद्वयमप्यशुद्धम् ।

---

१. "निःशेषशास्त्रसदनं किल मध्यदेशः" (तन्त्रा. ३७।३८) इत्यभिनवगुप्तो वक्ति । "तदा श्रीकण्ठनाथाज्ञावशात् सिद्धा अवातरन् ॥ त्र्यम्बकामर्दकाभिख्यश्रीनाथा अद्वये द्वये । द्वयाद्वये च निपुणाः क्रमेण शिवशासने ॥....अतश्चार्धचतस्रोऽत्र मठिकाः सन्ततिक्रमात् ।" (तन्त्रा. ३६।११-१४) इति च स एवाह । आमर्दकतीर्थम्, शङ्खमठिका, त्र्यम्बक(तेरम्बि)मठिका च तदनुसारमुक्तस्य त्रिविधस्य शिवशासनस्य प्रसारस्थलानि वर्तन्ते । एतानि च झाँसीनगरं परितः पूर्वमवस्थितान्यासन्नित्याधुनिका ऐतिहासिका वदन्ति । कालञ्जरतीर्थस्यापि तत्रैवावस्थितिर्वर्तते ।

२७. सोमशर्मा। प्रभासतीर्थमासाद्य सोमशर्मा प्रादुर्भूतः। नास्ति पाठान्तरमत्र। प्रभासं नाम जलतत्त्वभुवनं शैवागमेषु वर्ण्यते। प्रभासतीर्थं च "सौराष्ट्रे सोमनाथं च" इत्यादिना वर्णितं प्रभासपट्टनमेव।

२८. लकुलीशः। "तदाऽप्यहं भविष्यामि योगात्मा योगमायया। लोकविस्मापनार्थाय ब्रह्मचारिशरीरकः॥ श्मशाने मृतमुत्सृज्य दृष्ट्वा कायमनामयम्। ब्राह्मणानां हितार्थाय प्रविष्टो योगमायया॥ दिव्यां मेरुगुहां पुण्यां त्वया सार्धं च विष्णुना। भविष्यामि तदा ब्रह्माँल्लकुली नाम नामतः॥ कायावतार[1] इत्येवं सिद्धक्षेत्रं परं तदा।" (शिश. ५।८५-४८, वा. २३।२२०-२२३) इत्येवं वर्ण्यतेऽयमन्तिमो योगाचार्यः शिश. वा. इत्यनयोः स्थलयोः। स्थलमेतत् साम्प्रतं गुजरातराज्ये बड़ौदानगरं निकषा 'कारवण' नाम्ना प्रथितमस्ति। लकुलीश्वरः—शिवा., लकुली—शिश., नकुली—वा., नकुलीश्वर—कू., नकुलीशः—कूका.। शास्त्रेषु नकुलीशः, लकुलीश इत्युभयविधमपि नाम समुपलभ्यते, तथापि लकुटपाणिरयं शिवावतारो लकुलीशनाम्नैव ज्ञातव्यः। एष एवाचार्यो लकुलीशपाशुपतमतस्य प्रवर्तकः, पाशुपतसूत्राणां प्रणेता। पाशुपतेषु योगाचार्येष्वयमन्तिम इति पाशुपतमतप्रस्थापकोऽप्ययमेवाचार्य इति केषाञ्चनाधुनिकानां मतं भ्रान्तिविजृम्भितमिति मन्तव्यम्।

योगाचार्याणामेषां ११२ शिष्याः

वामनपुराणस्य षष्ठाध्यायस्य ८६-९१ श्लोकेषु हरार्चकानां चत्वारो भेदा वर्णिताः शैव-पाशुपत-कालवदन-कापालिकाख्याः, चातुर्वर्ण्येन चैषां सम्बन्धः स्थापितः। ब्राह्मणः शैवमतेन, क्षत्रियः पाशुपतक्रमेण, वैश्यः कालास्यपद्धत्या, शूद्रश्च कापालिककर्मणा शिवं समुपासीतेति तस्याभिप्रायः प्रतीयते। अत्रापि प्रत्येकं योगाचार्यस्य चत्वारः शिष्याः श्रूयन्ते। किमेषामपि चातुर्वर्ण्येन कश्चनः सम्बन्धः समस्ति ? नास्य प्रश्नस्योत्तरं क्वापि दृश्यते। गवेषणीयं तत्। योगाचार्याणां केषाञ्चन आविर्भावस्थलादिकं वर्ण्यते पुराणेषु। शिष्याणां तु तादृशं विवरणं क्वापि न दृश्यते। केवलं नामावली वर्तते। पाठभेदपुरस्सरं सात्र समुपस्थाप्यते यावदुपलब्धपरिचयसहिता।

१. श्वेतः। प्रथमस्य त्रयोविंशतितमस्य च योगाचार्यस्य कुत्रचिन्नामैतद् दृश्यते। प्रथमस्य श्वेताख्यस्य योगाचार्यस्य प्रथमः शिष्योऽपि तन्नामक एवेति

---

१. कायारोहणमित्येवं-वा.।

सर्वत्र परिदृश्यमानं पाठान्तररहितं नामैतत् कामपि समस्यां समुपस्थापयति। दूरस्थे शिष्ये भवतु नाम नाम्नः पुनरावृत्तिः। अत्र तु साक्षाच्छिष्ये सा दृश्यते।

२. **श्वेतशिखः**। शिखः—वा. श्वेतशिखण्डी—लि.।

३. **श्वेताश्वः**। श्वेतास्यः—कूका.। ७१ संख्याकस्य शिष्यस्य श्यावाश्वः श्यावास्य इति वा नाम दृश्यते। कालास्य इति च शिवार्चकेषु तृतीयस्य नाम।

४. **श्वेतलोहितः**।

५. **दुन्दुभिः**।

६. **शतरूपः**।

७. **ऋचीकः**। हृषीकः—शिवा. शिश. लि.। पाठान्तरेषु ७० संख्याकः शिष्योऽपि ऋचोकः श्रूयते। ऋचीको महर्षिर्महाभारते बहुषु स्थलेषु वर्ण्यते।

८. **केतुमान्**। ८३ संख्याकः शिष्योऽप्येतन्नामक एव। युधिष्ठिरसभायां विद्यमानं नृपतिद्वयं महाभारते (सभा. ४।२७, ३२) इत्यत्र दृश्यते। नास्ति पाठान्तरम्।

९. **विशोकः**। विकोशः—शिवा.। महाभारते कश्चन केकयराजकुमार एतन्नामको वर्ण्यते (द्रोण. ८२।३)।

१०. **विकेशः**। विशोषः—शिश.।

११. **विपाशः**। विशापः—वा. कूका., विपापः—शिश., विशाखः—कू.।

१२. **पापनाशनः**। शापनाशनः—वा. कू. कूका., पाशनाशनः—लि.।

१३. **सुमुखः**। कश्चन नृपतिर्महाभारते (सभा. ५१।७ दाक्षिणात्ये पाठे) वर्ण्यते।

१४. **दुर्मुखः**। नास्ति पाठारन्तम्।

१५. **दुर्दमः**। दुर्गमः—शिवा.। दुदर्भः—शिश.।

१६. **दुरतिक्रमः**। नास्ति पाठान्तरम्। सात्वतसंहितायां (१०।२६) सिद्धदशकेषु दुरतिक्रमः पठ्यते।

१७. **सनत्कुमारः**। महातपस्वी योगाचार्यो भगवान् सनत्कुमारो ब्रह्मसभायां ब्रह्माणमुपासत इति महाभारते (सभा. ११।२३) वर्ण्यते। एतत्संबद्धा अन्या अपि कथास्तत्रैव द्रष्टव्याः। दाल्भ्यः—कू. कूका. पाठान्तरम्। युधिष्ठिरसभायां विद्यमानो महर्षिर्दाल्भ्यो महाभारते (सभा. ४।११) द्रष्टव्यः।

१८. सनकः । सनः—वा. कूका. ।

१९. सनन्दनः । सनन्दः—शिवा. लि. ।

२०. सनातनः । युधिष्ठिरसभायां विद्यमानो महर्षिर्महाभारते (सभा. ४।१६) वर्ण्यते ।

२१. सुधामा । षष्ठस्य लोकाक्षेः, त्रयोदशस्य च बलेर्योगाचार्यस्य द्वौ द्वौ शिष्यौ समाननामानौ स्तः । अत्र ४९ संख्याकस्य शिष्यस्य नाम द्रष्टव्यम् ।

२२. विरजाः । विरजः—वा. । ५२ सख्याकः शिष्योऽप्येतन्नामक एव । प्रजापतेः कवेः पुत्र एतन्नामको महाभारते (अनु. ८५ । १३३) द्रष्टव्यः ।

२३. शङ्खपाद् । शङ्खः—शिवा., शङ्खपाणी—कू., संजयः—शिश. । शङ्खपात्रजः—कूका. इति पाठोऽशुद्धः । शङ्खपादज इति पाठेन तत्र भाव्यम् । तदैव शिष्यसंख्यापूर्तिः संजायेत । वर्तते च स पाठस्तत्र टिप्पण्याम् ।

२४. अजः । अण्डजः—शिवा. वैरजः—लि., रवः—वा., विजयः—शिश. । अजनामक ऋषिगणो महाभारते (शान्ति. २६।७) सूच्यते ।

२५ सारस्वतः । एतन्नामकः प्राचीन ऋषिर्महाभारते (शल्य. ५१।३, ७-११४, वन. ८५।४६, शान्ति. २०८।३१) द्रष्टव्यः ।

२६. मेघः । मोघः—कू., योगीशः—शिश., सुमेधः—वा. । महाभारते (अनु. १५०।४५) तु योगाख्यः कश्चन ऋषिर्वर्ण्यते ।

२७. मेघवाहः । घनवाहः—कूका., धनवाहः—कू. वसुवाहः—वा. ।

२८ सुवाहनः । सुवाहकः—शिवा. ।

२९. कपिलः । सुप्रथितः सांख्याचार्यः ।

३०. आसुरिः । सुप्रथितः सांख्याचार्यः ।

३१. पञ्चशिखः । सुप्रथितो योगाचार्यः । महाभारते (शान्ति. २१८।११) अयमाचार्यः पञ्चस्रोतसि निष्णातः पञ्चरात्रविशारदश्च वर्ण्यते ।

३२. बोढुः । वाष्कलः—शिवा. लि., वाग्बलिः—वा., शाल्वलः—शिश. ।

३३. पराशरः । पराशरो महर्षिर्वसिष्ठपौत्रत्वेन प्रथिततमः ।

३४. गर्गः । गार्ग्यः—वा. । महाभारते (शान्ति. ३१८।५९-६३) वर्णितोऽस्योपदेशो द्रष्टव्यः ।

३५. भार्गवः । पञ्चशिखशिष्यत्वेन [1]सांख्यकारिकामाठरवृत्तौ (७१का.) वर्ण्यते ।

३६. अङ्गिराः । गिरिशः—शिवा. । ब्रह्मणो मानसपुत्रेषु परिगण्यते । महाभारतादिषु विवरणं समुपलभ्यते ।

३७. बलबन्धुः । चलबन्धुः—कू. । महाभारते (आदि. १।२३७) प्राचीनः कश्चन नृपतिर्बलबन्धुनामकः । अन्येषामपि योगाचार्याणां नामान्यत्र दृश्यन्ते ।

३८. निरामित्रः । नरोमित्रः—शिश. । महाभारते (आदि. १।२३७) बलबन्धुना सह निरामर्द इति नाम दृश्यते ।

३९. केतुश्रृङ्गः । महाभारते (आदि. १।२३७) उक्ताभ्यां नामभ्यां सह पठ्यते ।

४०. तपोधनः । ८८ संख्याकः शिष्योऽप्येतन्नामकः पाठान्तरेषु दृश्यते ।

४१. लम्बोदरः । पाठभेदो न दृश्यते ।

४२. लम्बः । प्रलम्बकः—शिश. ।

४३. लम्बाक्षः । लम्बात्मा—शिवा., विक्रोशः—कू. ।

४४. लम्बकेशकः । केशलम्बः—शिश., लम्बकः शुकः—कू. इति त्वशुद्धः पाठः ।

४५. सर्वज्ञः ।

४६. समबुद्धिः ।

४७. साध्यः ।

४८. सत्यः । सर्वः—शिवा. लि. वा., शर्वः—शिश. । युधिष्ठिर-सभायां राजमान ऋषिर्महाभारते (सभा. ४।१०) सत्याख्यो वर्ण्यते ।

४९. सुधामा । २१ संख्याकः शिष्योऽप्येतन्नामक एव । उभयत्रापि पाठभेदो न दृश्यते ।

---

१. भार्गवः, उलूकः, वाल्मीकिः, हारीतः, देवलश्चेति मुनयः पञ्चशिखशिष्यत्वेन तत्र वर्णिताः । तेषु भार्गवः, उलूकः, देवलश्चेति नामत्रयमत्राप्यस्ति । सांख्यकारिका-व्याख्यायां युक्तिदीपिकायां च अक्षपादः, आसुरिः, ऋषभेश्वरः, कणादः, कपिलः, कश्यपः, गौतमः, पञ्चशिखः, भृगुः, वसिष्ठः, बाद्धलिः, सनकः, सनत्कुमारः, सनन्दनः, सनातन इत्येते आचार्याः स्मर्यन्ते । तत्र ऋषभ एव ऋषभेश्वरः, वाग्बलिरेव बाद्धलिरिति वयमुत्पश्यामः ।

५०. कश्यपः । काश्यपः—लि. कू. शिश. कूका. । काश्यपः ६१ संख्यायामपि वर्तते । तत्रापि कश्यप इति पाठान्तरम् । तेनात्र कश्यपस्तत्र च काश्यप इति नाम स्थाप्यते । कश्यपः काश्यपश्च महाभारतादिषु पृथक्तया वर्ण्येते ।

५१. वसिष्ठः । वासिष्ठः—लि., वर्षिष्ठः—शिश. ।

५२. विरजाः । २२ संख्याकः शिष्योऽपि । तत्रत्यं विवरणं द्रष्टव्यम् ।

५३. अत्रिः । १२ संख्याकस्याचार्यस्याप्येतदेव नाम ।

५४. उग्रः । ११ संख्याकस्याचार्यस्याप्येतदेव नाम । देवसदः—लि., दवशदः—शिश., उग्रतपाः—वा. इति पाठान्तराणि । पुरुषतत्त्वे स्थितमुग्राख्यं भुवनं शैवागमेषु द्रष्टव्यम् ।

५५. श्रवणः । श्रावणः—वा. ।

५६. श्रविष्ठकः । सुवैद्यकः—कू., श्रविष्टकः—वा. श्रविष्कटः—शिश. ।

५७. कुणिः । १०९ संख्याकस्य शिष्यस्य कुणिक इति नाम । अत्र पाशुपतसूत्रसम्पादकस्य उपोद्घातस्थिता (पृ. ३) टिप्पणी द्रष्टव्या । कुणिरेव आर्यभट इति तस्याभिप्रायः ।

५८. कुणिबाहुः । कुणिगर्गनामकः कश्चन ऋषिर्महाभारते (शल्य. ५२।३) वर्ण्यते ।

५९. कुशरीरः ।

६०. कुनेत्रकः ।

६१. काश्यपः । कश्यपः—लि. कू. कूका. । ५० संख्यायामपि पाठान्तरे दृश्यते तदेतन्नाम ।

६२. उशनाः । भृगोः पुत्रस्य शुक्राचार्यस्य नामान्तरम् । महाभारते (आदि. ६५।३६) द्रष्टव्यम् ।

६३. च्यवनः । भृगोः पुत्रस्य च्यवनस्योपाख्यानं भारतादिषु द्रष्टव्यम् ।

६४. बृहस्पतिः । महर्षेरङ्गिरसः पुत्रस्य बृहस्पतेरुपाख्यानादिकं भारतादिषु वर्ण्यते ।

६५. उतथ्यः । उच्चास्यः—कू. । महर्षेरङ्गिरसो मध्यमः पुत्रः । महाभारते (आदि. ६६।५, शान्ति ९०-९१ अ., अनु. १५४।११,२२ २८) परिचयोपदेशादिकं दृश्यते ।

६६. वामदेवः । वामदेवः प्रथितो महर्षिरितिहासपुराणादिषु वर्ण्यते । मायातत्त्वे स्थितं वामदेवाख्यं भुवनं शैवागमेषु द्रष्टव्यम् ।

६७. **महाकायः** । महाकालः—शिवा. कू., महायोगः—लि. शिश. । २३ संख्याकस्याचार्यस्य विवरणमत्र द्रष्टव्यम् ।

६८. **महालयः** । महानिलः—शिवा. कूका., महानिलिः—कू., महाबलः—लि. शिश. । महालयं नाम आकाशतत्त्वभुवनं शैवागमेषु द्रष्टव्यम् ।

६९. **वाचश्रवाः** । वाजःश्रवा—कू., वाचस्रवा—वा.

७०. **सुवीरः** । सुपीकः—कूका., सुधीकः—लि., सुकेशः—कू., रुचीकः—शिश., ऋचीकः—वा. । ७ संख्याकः शिष्योऽपि ऋचीकनामा वर्तते ।

७१. **श्यावाश्वः** । श्यावास्यः—शिश., श्यावकः—शिवा. लि. । तृतीयस्य शिष्यस्य विवरणमप्यत्र द्रष्टव्यम् ।

७२. **यतीश्वरः** । सुपथीश्वरः—कूका., सुपरथीश्वरः—कू., दृढव्रतः—वा., संयताश्वकः—कूका. पाठान्तरम् । दृढव्रतो ब्रह्मर्षिर्महाभारते (शान्ति. २०८ । २८-२९) वर्ण्यते । यतिश्च विश्वामित्रपुत्रस्तत्रैव (अनु. ४।५८) दृश्यते ।

७३. **हिरण्यनाभः** । हिरण्यनामा—शिवा. । हिरण्यनाभ इति नाम महाभारते (शान्ति. १२९।१४९) दृश्यते ।

७४. **कौशल्यः** । कौशिल्यः—वा. ।

७५. **लोकाक्षिः** । लौगाक्षिः—लि., अकाक्षुः—कू., लोकाक्षी—शिश., काक्षीवः—वा. । गौतमस्य ऋषेः पुत्रः काक्षीवान् महाभारते (सभा. ४।१७, १७।२२, २१।५ वर्ण्यते । षष्ठ आचार्योऽपि लोकाक्षिरिति नामधेयः ।

७६. **कुथुमिः** । कुथुभिधः—क., प्रधिमः—शिश. ।

७७. **सुमन्तुः** । महर्षेर्व्यासस्य शिष्यो महाभारते (आदि. ६३।८९, सभा. ४।११, शान्ति. ४७।५) वर्णितो द्रष्टव्यः ।

७८. **जैमिनिः** । महर्षेर्व्यासस्य शिष्यस्तत्रैव (आदि. ५३।६, ६७।८९, सभा. ४।११, शान्ति. ४७।६) वर्ण्यते । वर्चरी—कूका., बर्बरिः—शिश., बर्बरी—लि. ।

७९. **कबन्धः** । कुबन्धः—शिवा., सुबन्धुः—वा. ।

८०. **कुशिकन्धरः** । कुशकन्धरः—शिवा., कुशिकन्धरः—शिश. ।

८१. **प्लक्षः** ।

८२. **दार्भायणिः** । दाल्भ्यायणिः—लि., दर्वायणिः—कू., दाक्षायणिः—वा. ।

८३. **केतुमाली ।** केतुमान्—शिश. शिवा. कू. कूका. लि. । ८ संख्याकः शिष्योऽपि केतुमान् । तेनात्र केतुमालीति नाम स्थाप्यते भेदावगमाय ।

८४. **गौतमः ।** गोपनः—लि., बकः—वा. । युधिष्ठिरसभायां बको नाम ऋषिरासीदिति महाभारते (सभा. ४।११) द्रष्टव्यम् । १४ संख्याक आचार्योऽपि गौतमः । तेनात्र बक इति नाम स्थापनीयम् ।

८५. **भल्लवी ।** भल्लवः—शिश., भल्लाची—कू., भल्लावी—लि., तुल्यार्चिः—वा., भल्लापी—कूका., कलापी—कूका. पाठान्तरम् । युधिष्ठिर-सभायां विद्यमानेषु ऋषिषु भालुकिरिति नाम दृश्यते (सभा. ४।१५) । तेन तदेव नामात्र स्वीकर्तव्यम् ।

८६. **मधुपिङ्गः ।** मधुपिङ्गाक्षः—वा. ।

८७. **श्वेतकेतुः ।** उपनिषन्महाभारतादिषु प्रसिद्धो महर्षिः ।

८८. **तपोनिधिः ।** शिवा. शिश. वा. इत्यत्र नाम न दृश्यते । तपोधनः—कू. । ४० संख्याकः शिष्योऽपि तपोधनः । तत्र पाठभेदो नास्तीत्यत्र तपोनिधिरिति नाम स्थापितम् ।

८९. **उशिजः ।** उशिकः—लि. शिश , उषिधा—कू., ऊषिजः—वा. । औशिजनामकः प्राचीनो नृपतिर्मुनिश्च महाभारते (आदि. १।२२६, सभा. ४।१७) वर्ण्यते ।

९०. **बृहदश्वः ।** बृहदुक्थः—वा कूका., बृहद्रक्षः—कू. । महाभारते बृहदश्वः (वन. २६।२४-२५, ५२।४१-५०), बृहदुक्थः (वन. २२०।१८) इति नामद्वयमपि वर्तते ।

९१. **देवलः ।** युधिष्ठिरसभायां राजमानो महर्षिर्महाभारते (सभा. ४।१०) वर्ण्यते ।

९२. **कविः ।** कपिः—कूका. । महर्षेर्भृगोः पुत्रो भारते (आदि. ६६।४२) दृश्यते ।

९३. **शालिहोत्रः ।** मुनिरयं महाभारते (आदि. १५४।१५, १८; वन. ७१।२७, ८३।१०७) इत्यत्र वर्ण्यते । अश्वविद्यायां प्रवीण आसीदयम् ।

९४. **अग्निवेश्यः ।** अग्निवेशः—शिश. लि., सुवेषः शिवा. । अग्निवेशः (आदि. १२९।३९-४०, १३८।९), अग्निवेश्यः (वन. २६।२३) इत्युभयमपि नाम भारते दृश्यते ।

९५. **युवनाश्वः ।** युवनाश्वत्रयी महाभारते वर्णिता शब्दानुक्रमणीतो ज्ञातव्या ।

९६. **शरद्वसुः** । गौतमगोत्रीयो महर्षिः शरद्वान् भारते (आदि. ६३।१०७, १२९।२-२२) वर्णित इतोऽभिन्न एव स्यात् ।

९७. **छागलः** । श्वेताख्यस्य प्रथमस्याचार्यस्य विवरणं द्रष्टव्यम् । छगलाण्डं नाम ज्ञानेन्द्रियभुवनं शिवागमेषु वर्ण्यते ।

९८ **कुण्डकर्णः** । कुम्भकर्षश्यः—वा. । कुण्डनामक ऋषिर्भारते (आदि. ५३।८) दृश्यते ।

९९. **कुम्भः** । कुन्तः—कू., कूष्माण्डः—शिश. ।

१००. **प्रवाहकः** । प्रबाहुकः—वा., प्रवर्हकः—कूका. पाठान्तरम् ।

१०१. **उलूकः** । १०७ संख्याकः शिष्योऽप्येतन्नामक एव । उभयत्रापि पाठान्तरं च न दृश्यते । विश्वामित्रस्य पुत्र एतन्नामक ऋषिर्भारते (अनु.४।५१, शान्ति. ४७।११) वर्ण्यते ।

१०२. **विद्युतः** । वैद्युतः—वा., कूका. पाठान्तरेऽपि ।

१०३. **मण्डूकः** । शाद्वलः—कूका., शाद्रकः—कू., शम्बूकः—शिश., शर्वकः—वा. । ४८ संख्याकस्य शिष्यस्य पाठान्तरेषु शर्व इति नाम दृश्यते ।

१०४. **आश्वलायनः** ।

१०५. **अक्षपादः** । न्यायदर्शनप्रवर्तक आचार्यः ।

१०६. **कणादः** । वैशेषिकदर्शनप्रवर्तक आचार्यः । कुमारः—लि. कू. शिश. कूका. ।

१०७. **उलूकः** । १०१ संख्याकः शिष्योऽप्येतन्नामक एव ।

१०८. **वत्सः** । वसुवाहनः—कू., वृषवाहनः—कूका. पाठान्तरम् ।

१०९. **कुशिकः** । कुलिकः—शिवा., कुणिकः—कू. । ५७ संख्याकस्य शिष्यस्य कुणिरिति नाम वर्तते । कुशिक ऋषिर्महाभारते (आदि. ८।२५, उद्योग. ८३।२७) वर्ण्यते । स लकुलीशशिष्यात् कुशिकाद् भिन्न एव मन्तव्यः, पराग्भवत्वात् ।

११०. **गार्ग्यः** । गर्गः—शिशु. शिवा. कूका., गर्भः—लि. । ३४ संख्याकः शिष्योऽपि गर्गनामको विद्यत इत्यत्र गार्ग्य इति मुख्यं नाम स्थापितम् । यद्यपि महाभारते दृश्यते तन्नाम, तथापि लकुलीशशिष्यस्यास्य तद्भिन्नतैव मन्तव्या ।

१११. **मित्रः** । मित्रकः—शिवा. वा., कूका. ।

११२. कौरुष्यः । रुष्यः—शिवा., ऋष्यः—कूका., रुरुः—कू., रुष्टः—वा., तौरुष्यः—शिश. । "श्वेतादयश्च रुष्यान्ता" (शिवा. ९।७) इत्यत्रापि रुष्य इत्येव पाठो दृश्यते ।

एवमत्र २८ योगाचार्याणाम्, ११२ तच्छिष्याणां च परिचयः पर्यवसितः । इतः परं जैनग्रन्थेषु वर्णिता लकुलीशादिविद्यागुर्वन्ता अष्टादशावताराः प्रासङ्गिकतया समुपस्थाप्यन्ते ।

अष्टादशावताराः

हरिभद्रकृतषड्दर्शनसमुच्चयव्याख्यात्रा गुणरत्नेन द्वितीयाधिकारेऽष्टादशावतारा एवं वर्णिताः—"तस्य (ईश्वरस्य) चाष्टादशावतारा अमी—१. नकुलीशः, २. कौशिकः, ३. गार्ग्यः, ४. मैत्र्यः, ५. कौरुषः, ६. ईशानः, ७. पारगार्ग्यः, ८. कपिलाण्डः, ९. मनुष्यकः, १०. कुशिकः, ११. अत्रिः, १२. पिङ्गलः, १३. पुष्पकः, १४. बृहदार्यः, १५. अगस्तिः, १६. सन्तानः, १७. राशीकरः, १८. विद्यागुरुश्च" इति । राजशेखरकृते षड्दर्शनसमुच्चयेऽपि तान्येतानि नामानि दृश्यन्ते । तत्र १०. अपरकुशिकः, १२. पिङ्गलाक्षः, १४. बृहदाचार्य इति नामसु विशेषः । अन्यत् सर्वं समानम् । पाशुपतसूत्रप्रस्तावनारम्भेऽपि नामान्येतानि परिगण्यन्ते । तत्र ४. मैत्रेय इति नाम्नि विशेषः । राशीकर एव कौण्डिन्यः पाशुपतसूत्रभाष्यकार इति च तत्र प्रदर्शितम् ।

अत्र नकुलीशोऽन्तिमो योगाचार्यः । कौशिकः, गार्ग्यः, मैत्र्यः, कौरुष इति च तस्य चत्वारः शिष्या इति न केवलं पूर्वोक्तविवरणतः, अपि तु शिलाशासनादिभ्यश्च[1] ज्ञायते । अत्र नाम्नि वैशिष्ट्ये सत्यपि क्रमे नैव वैमत्यम् ।

इदं त्वत्र चिन्तनीयम्—अष्टाविंशतियोगाचार्याणामिव अष्टादशावताराणां क्रमोऽङ्गीकर्तव्यः, उतान्तिमस्य योगाचार्यस्य लकुलीशस्य कुशिकादयश्चत्वारः साक्षाच्छिष्याः स्वीकर्तव्याः । यद्यन्तिमः पक्षः स्वीक्रियते, तर्ह्यन्येषां क्रमः कीदृश इति न निश्चेतुं शक्येत । तेनैवं समाधेयम्—लकुलीशावतारपरम्परावदन्येषु युगेष्वपि योगाचार्याणां प्रत्येकं महती शिष्यपरम्पराऽवर्तत । तत्र पुराणेषु प्रत्येकं चत्वार एव शिष्या वर्णिताः । ते च न साक्षाच्छिष्याः, किन्तु शिष्यपरम्पराप्रतीकभूता इति ।

---

१. डॉ० कान्तिचन्द्रपाण्डेयविरचितः "शैवदर्शनबिन्दुः" इत्याख्यो ग्रन्थोऽत्र द्रष्टव्यः (पृ. २८-२९) ।

तदयं लकुलीशादिविद्यागुर्वन्तानामष्टादशावताराणां क्रमः पुराणागम-शिलाशासनादिप्रामाण्येन स्थिरीकरणीयः। लकुलीशस्य, तस्य चतुर्णां शिष्याणां चोल्लेखः सोमनाथमन्दिरसमुपलब्धे शिलाशासने वर्तते। सप्तदशस्य राशीकरस्य कौण्डिन्यापराभिधस्य पाशुपतसूत्रभाष्यं समुपलभ्यते। विद्यागुरुश्च[1] प्रमाणस्तुति-अनुभवस्तोत्ररचयितुर्विद्याधिपतितोऽभिन्न एव स्यात्। अन्येषां मध्यवर्तिनामवताराणां परिचयः समुपलब्धव्यः।

श्रुतिषु, पुराणेषु, आगमेषु, चिकित्साशास्त्रेषु च योगाचार्याणामेषां नामानि चरितानि च कीर्तितानि स्युः। तेषामन्वेषणे सारल्यं स्यादिति धिया सर्वान्तेऽत्राक्षरानुक्रमण्या योगाचार्याणां तच्छिष्याणां च नामावली दीयते। पाठान्तरेषु समुपलब्धानामशुद्धानां शुद्धानां च सर्वेषां पाठानां सममेवात्र संकलनं कृतमित्यवधेयम्। कूका. टिप्पणीस्थितानि पाठान्तराणि, अष्टादशावतारनामानि च न सन्त्यत्र। अत्र आ. इत्यनेन योगाचार्यः, शि. इत्यनेन च तच्छिष्योऽभिप्रेतः। संख्या च पूर्वोक्तं क्रमं सूचयति।

योगाचार्याणां तच्छिष्याणां च नामानुक्रमणी

७५ अकाक्षुः (शि.)
१०५ अक्षपादः (शि.)
९४ अग्निवेशः (शि.)
९४ अग्निवेश्यः (शि.)
३६ अङ्गिराः (शि.)
२४ अजः (शि.)
२० अट्टहासः (आ.)
२४ अण्डजः (शि.)
१२ अत्रिः (आ.)
५३ अत्रिः (शि.)
१०४ आश्वलायनः (शि.)
३० आसुरिः (शि.)
११ उग्रः (आ.)
५४ उग्रः (शि.)
५४ उग्रतपाः (शि.)
६५ उच्चास्यः (शि.)
६५ उतथ्यः (शि.)
१०१ उलूकः (शि,)
१०७ उलूकः (शि.)
६२ उशनाः (शि.)
८९ उशिकः (शि.)
८९ उषितः (शि.)
८९ उषिधा (शि.)
८९ ऊषिजः (शि.)
७ ऋचीकः (शि.)
७० ऋचीकः (शि.)
९ ऋषभः (आ.)
११२ ऋष्यः (शि.)
५ कङ्कः (आ.)
५ कङ्कणः (आ.)
१०६ कणादः (शि.)
५२ कपिः (शि.)
२९ कपिलः[1] (शि.)
७९ कबन्धः (शि.)
८५ कलापी (शि.)
९२ कविः (शि.)
५० कश्यपः (शि.)
७५ काक्षीवः (शि.)
५० काश्यपः (शि.)
६१ काश्यपः (शि.)
८० कुक्षिकन्धरः (शि.)
५७ कुणिः (शि.)

---

१. लुप्तागमसंग्रहद्वितीयभागस्य उपोद्घातेऽस्मदीये विद्याधिपतेस्तस्य द्वयोः स्तोत्रयोश्च परिचयः प्रेक्षणीयः।

३७ बलबन्धुः (शि.)
१३ बलिः (आ.)
१३ बलो (आ.)
१३ बालिः (आ.)
९० बृहदश्वः (शि.)
९० बृहदुक्थः (शि.)
९० बृहद्रक्षः (शि.)
६४ बृहस्पतिः (शि.)
८५ भल्लवः (शि.)
८५ भल्लवी (शि.)
८५ भल्लाची (शि.)
८५ भल्लापी (शि.)
८५ भल्लावी (शि.)
३५ भार्गवः (शि.)
१० भृगुः (आ.)
१०३ मण्डूकः (शि.)
३ मदनः (आ.)
८६ मधुपिङ्गः (शि.)
८६ मधुपिङ्गाक्षः (शि.)
६७ महाकायः (शि.)
२३ महाकायमुनिः (शि.)
२३ महाकालः (आ.)
६७ महाकालः (शि.)
६८ महानिलः (शि.)
६८ महानिलिः (शि.)
६८ महाबलः (शि.)
२३ महायाममुनिः (शि.)
६७ महायोगः (शि.)
६८ महालयः (शि.)
१११ मित्रः (शि.)
१११ मित्रकः (शि.)
१० मुनिः (आ.)

२६ मेघः (शि.)
२७ मेघवाहः (शि.)
२६ मोघः (शि.)
१९ यजमाली (आ.)
७२ यतीश्वरः (शि.)
९५ युवनाश्वः (शि.)
२६ योगीशः (शि.)
२४ रवः (शि.)
७० रुचीकः (शि.)
११२ रुरुः (शि.)
११२ रुष्टः (शि.)
११२ रुष्यः (शि.)
२८ लकुली (आ.)
२८ लकुलीशः (आ.)
२८ लकुलीश्वरः (आ.)
४२ लम्बः (शि.)
४४ लम्बकेशकः (शि.)
४३ लम्बाक्षः (शि.)
४३ लम्बात्मा (शि.)
४१ लम्बोदरः (शि.)
२२ लाङ्गलो (आ.)
२२ लाङ्गुली (आ.)
६ लोकाक्षिः (आ.)
७५ लोकाक्षिः (शि.)
७५ लोकाक्षी (शि.)
६ लोकाख्यः (आ.)
६ लौगाक्षिः (आ.)
७५ लौगाक्षिः (शि.)
१०८ वत्सः (शि.)
५१ वर्षिष्ठः (शि.)
५१ वसिष्ठः (शि.)
२७ वसुवाहः (शि.)

१०८ वसुवाहनः (शि.)
३२ वाग्बलिः (शि.)
६९ वाचस्रवाः (शि.)
६९ वाचःश्रवा (शि.)
६९ वाजःश्रवा (शि.)
६६ वामदेवः (शि.)
३२ वाष्कलः (शि.)
५१ वासिष्ठः (शि.)
१० विकेशः (शि.)
९ विकोशः (शि.)
४३ विक्रोशः (शि.)
२४ विजयः (शि.)
१०२ विद्युतः (शि.)
११ विपापः (शि.)
११ विपाशः (शि.)
२२ विरजः (शि.)
२२ विरजाः (शि.)
५२ विरजाः (शि.)
११ विशाखः (शि.)
११ विशापः (शि.)
१० विशेषः (शि.)
९ विशोकः (शि.)
९ वृषभः (आ.)
१०८ वृषवाहनः (शि.)
१५ वेददर्शी (आ.)
१५ वेदशिराः (आ.)
१५ वेदशीर्णः (आ.)
१५ वेदशीर्षः (आ.)
१५ वेदशीर्षाः (आ.)
१०२ वैद्युतः (शि.)
२४ वैरजः (शि.)
३२ वोढुः (शि.)

पुराणानां नूनमागममूलकत्वम्

रामचरितमानसकारः 'सन्त'-विरुदालङ्कृतः श्रीमान् तुलसीदासो ग्रन्थारम्भे नानापुराणनिगमागमसंमतत्वं स्वग्रन्थस्य प्रज्ञापयति। अत्र निगम-शब्दो वैदिकं वाङ्मयम्, आगमशब्दश्च तन्त्रागमशास्त्रं सूचयति। शब्दयोरनयोः प्रवृत्तिविषये वर्तते मतानैक्यं शास्त्रकाराणाम्। "इतरेष्वागमाद् धर्मः" (१।८२) इति मनुस्मृतिश्लोके आगमपदेन वेदो गृह्यत इति तद्भाष्यकारो मेधातिथिराह। निगमपदेन च वेदस्य ग्रहणं भवतीति निरुक्ते बहुषु स्थलेषु समुट्टङ्क्यते "इत्यपि निगमो भवति" इति वाक्यपुरस्सरम्। "आगमः खल्वपि—ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च" इति च पस्पशाह्निके महाभाष्यकारः पतञ्जलिः। भर्तृहरिरपि—"शिष्टेभ्य आगमात् सिद्धाः" (१।२७), "न चागमादृते धर्मः" (१।३०), "आगमस्तमुपासीनः" (१।४१), "न जात्वकर्तृकं कश्चिदागमं प्रति-पद्यते" (१।१३३), "प्रणीतो गुरुणाऽस्माकमयमागमसंग्रहः" (२।४९०), "भिन्नै-रागमदर्शनैः" (२।४९२), "पुराणैरागमैर्विना" (२।४९३) इत्येवं बहुषु स्थलेषु प्रयुङ्क्ते तदागमपदम्। अत्र टीकाकारा आगमपदेन ऋषिप्रणीतानां शास्त्राणाम्, निगमपदेन चापौरुषेयानां वेदानां ग्रहणं कुर्वन्ति। अमुमर्थमागमाचार्यस्तान्त्रिक-प्रवरः काश्मीरकः श्रीमदभिनवगुप्तोऽप्युररीकरोतीव। स हि[1]—"वेद्यं धर्माद्युपायं निश्चितं गमयतीति निगमो वेदः" इति निगमपदस्य व्युत्पत्तिमाचष्टे।

आगमपदस्य तु तेन किञ्चिद् भिन्नं व्याख्यानं प्रस्तुतम्। तद्यथा तन्त्रा-लोके—"इह तावत् समस्तोऽयं व्यवहारः पुरातनः। प्रसिद्धिमनुसन्धाय सैव चागम उच्यते॥" (३५।१-२) इति, "प्रसिद्धिश्चाविगानोत्था प्रतीतिः शब्द-नात्मिका" (३५।१९) इति च। अपि च—"आगमो हि नामायं शब्दनसंक्रान्ति-शरीरः। यथाह भगवाननन्तः[2]—"परत्र स्वबोधसंक्रान्तये शब्देनोपदिश्यते"

---

१. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी (भा० १, पृ० १५) द्रष्टव्या।

२. अभिनवगुप्तेन तन्त्रालोके (२८।३१३) अनन्तकारिका स्मर्यते। भगवता शेषेण पृथ्व्याधारभूतेन सोपदिष्टा। सा परमार्थसारनाम्ना सांख्य-वेदान्त-वैष्णवदर्शनग्रन्थत्वेन प्रसिद्धा सटीका मुद्रितोपलभ्यते। तदाधारेणाभिनवगुप्तः परमार्थसाराख्यं शैवग्रन्थं जग्रन्थ। तत्र तृतीये श्लोकेऽभिनवगुप्तोऽनन्तकारिकामेव आधारकारिकानाम्ना स्मरति, "स्वशास्त्रे चाप्यहीशानो विश्वाधारधुरन्धरः" (२८।३०९) इति च स

(पृ० ८९), "स च यो यस्य हृदये निरूढिमागतः स एव" (पृ० ९६), "नहि बुद्धो नाम नियतः कश्चित्, अपि तु भावनाबलप्रतिलब्धक्षणिकादिदृढविमर्शः। तस्य क्षणिकादिभावनोपदेशी गुरुः पूर्वबुद्धः, तस्याप्यन्य इति क्रमेणानियतवक्तृत्वात् पारमेश्वरविमर्शमयतैव वस्तुतः। एवं चतुर्विंशतितत्त्वभावनाभावितः कपिलो मन्तव्यः। अत एव सर्वागमा अनादय एव" (पृ० ९७-९८) इति च स एवागमपदं[1] विवृणोति। एवं च [2]सांख्य-योग-पाञ्चरात्र-पाशुपतादिशास्त्राणामागमपदाभिलप्यत्वमिति बाढमत्र साधयितुं शक्यते।

"आगतं शिववक्त्रेभ्यो गतं च गिरिजामुखे। मतं च वासुदेवस्य तस्मादागममुच्यते॥ निर्गतं गिरिजावक्त्राद् गतं च गिरिशश्रुतौ। मतं च वासुदेवस्य तस्मान्निगममुच्यते॥" श्लोकद्वयमेतदागमनिगमलक्षणप्रतिपादकं बहुषु ग्रन्थेषूद्धृतं दृश्यते। क्वत्यमिति तु न ज्ञायते। लक्षणमेतदङ्गीकृत्यैव कुलचूडामणिग्रन्थस्य कुलचूडामणिनिगम इति नाम ख्याप्यते। परन्तु नैतत् प्राचीनाचार्यसंमतम्। न च दृश्यते तादृशो विभागः प्राचीनेषु क्रमसम्प्रदायग्रन्थेषु, येषां किल उपदेष्ट्री भवति कालो कालसङ्कर्षिणी। नात्र कुत्रापि निगमपदप्रयोगो लब्धप्रसरः, किन्तु सर्वेऽपीमे ग्रन्था आगमाख्यामेव धारयन्ति। तस्मात् सम्पूर्णं तान्त्रिकं वाङ्मयमागमपदेन, वैदिकं च निगमपदेन बोध्यते। पूर्वोक्तानि श्रीमदभिनवगुप्तवचनान्यप्यत्रैवानुगुणानि। अत्रैव चार्थे निबन्धेऽस्मिन् निगमागमशब्दौ प्रयुक्तौ मन्तव्यौ।

पुराणानां प्राचीनतमं स्वरूपं साम्प्रतमनुमानप्रमाणेनैव कल्पयितुं शक्यते। तच्च नास्य निबन्धस्य परिधिपतितमिति वर्तमानानामष्टादशमहापुराणानां स्वरूपमेव समालोचनीयताकोटिमाटीकते। एषामेव च नूनमागममूलकत्वमिति सिषाधयिषितं नः।

पुराणानां वेदार्थोपबृंहकत्वमिति विद्वद्भिः साधु चिन्तितं चिन्त्यते च, किन्तु कुत्रापि किल तेषामागमार्थोपबृंहकत्वं संग्राहकत्वं वा नैव चिन्त्यते।

तन्त्रालोकेऽनन्तं सादरं स्मरति। महाभाष्यकारः पतञ्जलिरपि शेषावतारभूत इत्यनन्तनाम्ना स एवात्र स्मृत इति प्रतीयते। अतो महाभाष्ये गवेषणीयमेतद् वचनम्। पातञ्जलयोगसूत्राणामपि कर्ता भगवान् शेषावतारभूतोऽनन्तः पतञ्जलिरेवेति भारतीया परम्परा। तत्र योगभाष्ये व्यासकृते (१।७) आनुपूर्व्या तदिदं वाक्यं समुपलभ्यते।

१. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिन्यामेव तृतीये भागे सर्वमेतदवलोकनीयम्।

२. शास्त्राणामेषां प्रामाण्यादिकमनुपदमेव चिन्त्यते।

अस्माभिः[1] "आगम आणि तन्त्रशास्त्र" इति शीर्षके मराठीभाषानिबद्धे निबन्धेऽग्निपुराणस्य ३९-७० अध्याया [2]हयशीर्षपञ्चरात्रस्य आदिकाण्डस्य २-४४ पटलान्, ७१-१०६ अध्यायांश्च [3]सोमशम्भुकृतकर्मकाण्डक्रमावल्याम् (पृ० ३१-१८६) उद्धृतान् लोलावतीशिवागमश्लोकाननुकुर्वन्तीति प्रतिपादितमासीत्। तथा हि—"हयशीर्षः प्रतिष्ठार्थं देवानां ब्रह्मणेऽब्रवीत्" (३८।५१) इत्येवं किलाग्निपुराणे विष्ण्वाराधनप्रकरणमिदमारभ्यते। हयशीर्षपञ्चरात्रं च हयशीर्षेण ब्रह्मणे समुपदिष्टम्। तत्रत्ये आदिकाण्डीये द्वितीये पटले पञ्चविंशतिपाञ्चरात्रसंहितानामथ च भागवतसंहितानां नामानि प्रदर्श्यन्ते। अग्निपुराणे (३९।२-५) च पञ्चविंशतिपाञ्चरात्रसंहितानामेव नामानि संगृहीतानि, न भागवतसंहितानाम्। अहिर्बुध्न्यसंहितासम्पादकः शर्मण्यदेशीयो डॉ० ओटो-श्रादरमहोदयस्तस्य ग्रन्थस्य स्वकीयायां भूमिकायां[4] भागवतसंहितानां नामान्यपि पाञ्चरात्रसंहितासु परिगणितवान्। तन्नोचितमित्यग्निपुराणस्य प्रकरणेनानेन साधु सिद्ध्यति।

"स्कन्दायेशो यथा प्राह प्रतिष्ठार्थं तथा शृणु" (७०।९) इत्येवमग्निपुराणे शिवाराधनप्रकरणमारभ्यते। "अथ संक्षेपतो दृष्टं [5]लीलावत्यां शिवागमे" (पृ०

१. पुण्यपत्तनस्थ(पूना)वेदशास्त्रोत्तेजकसभया शताब्दीस्मारकग्रन्थत्वेन प्रकाशित "प्राचीन भारतीय विद्येचे पुनर्दर्शन" इत्याख्ये ग्रन्थे (पृ० १८१-१९६) द्रष्टव्योऽयं निबन्धः।

२. हयशीर्षपञ्चरात्रस्य आदिकाण्डस्य भागद्वयात्मकं संस्करणं "वारेन्द्र रिसर्च सोसाइटी" इति संस्थया बंगलादेशीयराजशाहीनगरस्थया सन् १९५२, १९५६ इति वत्सरयोः प्रकाशितम्।

३. अस्य ग्रन्थस्य साम्प्रतं संस्करणत्रयमुपलभ्यते। देवकोट्टैनगरतः १९३१ ई० वर्षे प्रकाशितं प्रथमम्, काश्मीरग्रन्थावल्यां १९४७ ई० वर्षे प्रकाशितं द्वितीयम्, पांडीचेरीतश्च भागत्रयेषु (१९६३, १९६८, १९७७ ई०) प्रकाशितं तृतीयम्। अत्र काश्मीरसंस्करणपृष्ठसंख्या द्रष्टव्या।

४. "इण्ट्रोडक्शन टू दि पाञ्चरात्र एण्ड दि अहिर्बुध्न्यसंहिता" (पृ० ५-११) इत्याख्यस्तस्य ग्रन्थोऽवलोकनीयः।

५. लीलावत्याख्यः शिवागमः शिवागमोपागमसूचीषु न दृश्यते। पांडीचेरीसंस्करणेऽप्यस्य परिचयो नैव दत्तः। डॉ. आर.सी. हाजरामहोदयः "स्टडीज इन उपपुराणाज" इत्यस्य ग्रन्थस्य प्रथमे भागे (पृ० १३) एकाम्रपुराणीयोपपुराणनामावल्यां लीलावतीपुराणं निर्दिशति, द्वितीये च भागे (पृ० ६२६-६२७) नाद्याप्यस्य कुत्राप्युद्धरणादिक-

३१) इति च कर्मकाण्डक्रमावलीकारो भणति। अग्निपुराणप्रामाण्येन कर्मकाण्ड-क्रमावलीवचनेन चानेन लीलावत्याख्यः शिवागमः स्कन्दायेशेन समुपदिष्ट इत्यायाति। सोमशम्भुना कर्मकाण्डक्रमावली ११३० वैक्रमे वत्सरे समाप्तिं गमितेत्युभयोरग्निपुराणकर्मकाण्डक्रमावल्योराधारभूतो ग्रन्थो लीलावत्याख्यः शिवागम इत्यकामेनापि मन्तव्यम्।

वैरोचनीये[1] प्रतिष्ठालक्षणसारसमुच्चये —

प्रतिष्ठाकल्पकौमारं किरणं पिङ्गलामतम्।
देव्यामतं मयं नन्दि प्रतिष्ठापारमेश्वरम्॥
भास्करं लिङ्गकल्पं च विद्यापुराणवातुलम्।
शक्राख्यं वामदेवं च द्विधा पैतामहं तथा॥
बाणगर्गमतं याम्यं हंसाख्यं वैश्वकर्मकम्।
प्रतिष्ठातन्त्राण्येतानि शिवोक्तान्येकविंशतिः॥ (२।१७९-१८१)

इत्येवमेकविंशतिसंख्याकानां शिवोक्तानां प्रतिष्ठातन्त्राणां नामानि प्रदर्शितानि। सर्वाण्येतानि प्रतिष्ठातन्त्राणि शिवागमेषु तदुपागमेषु वा, क्वचन उपपुराणेषु वा समाविशन्ति।

न वेदे त्रिविधं लिङ्गं न च प्रासादलक्षणम्।
न द्वारं मण्डपादिश्च स्थापनं न शिवादिके॥ (२।१५६)

इति च तत्रैव प्रोच्यते। तेन त इमे विषयाः पुराणेष्वागमेभ्यो गृहीता इति स्वीकार्यम्।

न वेदे ग्रहसंचारो न शुद्धिः कालबोधिनी।
तिथिवृद्धिक्षयो वापि न पर्वग्रहनिर्णयः॥
इतिहासपुराणैस्तु कृतोऽयं निर्णयः पुरा।
यन्न दृष्टं हि वेदेषु तत्सर्वं लक्ष्यते स्मृतौ॥
उभयोर्यन्न दृष्टं हि तत्पुराणैः प्रगीयते।
(बृ० ना० २।२४।१९-२१)

इति च स्वयं पुराणान्यपि वर्णयन्ति।

मुपलभ्यत इति वक्ति। शिवधर्म-शिवधर्मोत्तरप्रभृतीनामुपपुराणानां नामान्युपागमेषु दृश्यन्ते। तेन केषाञ्चनोपागमानामुपपुराणेषु समजायत समावेशो गच्छता कालेनेति वक्तुं शक्यते।

१. वैरोचनशिवाचार्यविरचितोऽयं ग्रन्थो भागद्वयात्मको नेपालराजकीयपुस्तकालयतः २०२३, २०२५ वैक्रमाब्दयोः प्रकाशितः।

अथ तन्त्रविधिं वक्ष्ये पुराणेष्वपि गीयते ।
तन्त्रे चैव प्रतिष्ठां च कुर्यात् पुण्यतमेऽह्नि ॥ (२।१।११।१)

इत्यादिना भविष्यपुराणेऽपि वृक्षारामवापीकूपतडागादीनां[1] प्रतिष्ठा तन्त्रानुसारेणैव वर्णिता ।

द्विविधं कर्म भवति—इष्टं च पूर्तं चेति । तत्रेष्टं ज्योतिष्टोमादिकं वैदिकं कर्म आमुष्मिकम् । पूर्तं च वृक्षारामवापीकूपतडागादीनां निर्माणमैहिकफलदं कर्म । "धर्मो द्विविधः—इष्टः, पूर्तश्चेति । तत्रेष्टो वैदिकः, पूर्तस्तान्त्रिकः" (श्लो० १९) इति तत्त्वप्रकाशव्याख्याकारः[2] कुमारदेवो भणति । तेन पूर्तकर्मणां पुराणेषु कृतो विस्तारस्तन्त्रागमाननुसरतीति प्रासादमूर्तिनिर्माणप्रतिष्ठादयः, वापीकूपतडागादिनिर्माणप्रतिष्ठादयश्च विषया नूनमिदम्प्रथमतया तन्त्रागमेष्वेव वर्णिता इत्यङ्गीकार्यम् ।

त्रिपदार्थं चतुष्पादं महातन्त्रं प्रचक्षते ।
भोगमोक्षक्रियाचर्याह्वयाः पादाः प्रकीर्तिता ॥ (१।६३।१३)

इत्यपि बृहन्नारदीये दृश्यते । पति-पशु-पाशात्मकपदार्थत्रयप्रतिपादका ज्ञान-(विद्या)-योग-क्रिया-चर्याख्यपादचतुष्टयात्मकाः शैवागमा भवन्तीति मनीषिणामतिरोहितमेतत् । तेन बृहन्नारदीयेऽस्मिन् श्लोके भोगपदस्य स्थाने योगपदेन भाव्यम् । सम्पूर्णोऽयमध्यायोऽशुद्धिभूयिष्ठः शैवागमीयतत्त्वप्रकाशादिग्रन्थसाहाय्येन शोधयितुं शक्यते । अत्र केचन श्लोकाः सद्योज्योतिःशिवाचार्यग्रन्थेषु भोगकारिकादिष्वष्टप्रकरणनाम्ना[3] मुद्रितेषु समुपलभ्यन्ते । कूर्मपुराणे उत्तरे भागे

१. चित्रकूट(चित्तौड़)दुर्गं निकषा घोसुण्डीनामके ग्रामे समुपलब्धे प्राचीने ब्राह्मीलिप्युत्कीर्णे शिलाशासने सशिलाप्राकारा वाटिका वासुदेवसङ्कर्षणाभ्यां समर्पितेति वर्ण्यते । सात्वतसंहिता च पाञ्चरात्रीया निर्दिशति—"यः सप्राकारमारामं संप्रयच्छति वै विभोः । नानापुष्पफलोपेतं वापीद्रुमसमाकुमम् ॥ साब्जतोयाशयोपेतं नक्रखङ्गसमन्वितम् । स नन्दनवने भोगान् भुक्त्वा यात्यच्युतालयम् ॥" (२५। ३६६-३३७) इति । सात्वतसंहिताया उपोद्घातोऽस्मदीयोऽत्र द्रष्टव्यः (पृ० ७) ।

२. कुमारदेवोऽयं गुर्जरदेशे चालुक्यराज्यसंस्थापकस्य मूलराजस्य नृपतेः (१०९० ई.) गुरुः कुमारशिवः प्रतीयते, येन हि सिद्धपुरे सहस्रौदीच्यानुदीचीतः समाहूय स्मार्तधर्मप्रतिनिधिभूतो रुद्रमहालयाख्यो देवप्रासादः प्रतिष्ठापितः ।

३. देवकोट्टै(?)सालपुरीशिवागमसिद्धान्तपरिपालनसंघेन प्रथमे भागे तत्त्वप्रकाश-तत्त्वसंग्रह-तत्त्वनिर्णयाख्याः सव्याख्या ग्रन्थाः १९२३ ई. वर्षे, द्वितीये च भागे रत्नत्रय-भोग-

वर्तते ईश्वरगीता नाम। सा शैवागमसिद्धान्तान् सार्वात्म्येनानुसरति। तत्त्वप्रकाशटीकाकारः कुमारदेवस्तां प्रमाणत्वेनोद्धरति। पुराणागमयोः सान्निध्यं तेनानुमातुं शक्यते। तत्त्वप्रकाशव्याख्याकारः शैवोऽघोरशिवाचार्यः—

अद्वैतवासनाविष्टैः सिद्धान्तज्ञानवर्जितैः।
व्याख्यातोऽत्रान्यथाऽन्यैर्यत् स ततोऽस्माकमुद्यमः॥

इति स्वव्याख्यानारम्भे भणति। अत्र स कुमारदेवकृतां टीकां स्मरतीव। स्मार्तदृष्टिर्हि कुमारदेवस्य व्याख्यायां जागरूका विद्यते, यतो हि स आगमशास्त्राणीव श्रुतिपुराणवचनान्यपि प्रमाणीकरोति। पञ्चदेवोपासनपरा एषैव दृष्टिः पुराणेष्वपि जागर्तितराम्। शिवनारायणयोरैक्यवत् तत्र शक्ति-स्कन्द-गणेश-सूर्यादीनामुपासना तथैव वर्णिता, यथा हि प्रपञ्चसार-शारदातिलकप्रभृतिषु तान्त्रिकेषु ग्रन्थेषु दृश्यते। अग्निपुराणादिषु सविशेषम्, अन्यत्रापि सेयं दृष्टिः सर्वत्र प्रोन्मीलिता। एतेन सिद्ध्यति यत् पुराणानां न केवलं वेदार्थोपबृंहकत्वम्, अपि त्वन्येऽपि विषया अत्र संकलिताः, ये हि वेदेषु नोपलभ्यन्ते। ते च बाहुल्येन तन्त्रागमीया इति नूनं पुराणानामागमानुवर्तित्वमिति को नामाऽत्र सन्देहस्यावसरोऽवशिष्यते।

उपपुराणेषु कृतभूरिपरिश्रमो डॉ० आर० सी० हाजरामहोदयः[1] पुराणेषु तान्त्रिकप्रभावं चिन्तितवान्। स पाञ्चरात्रसंहिताः शैवागमांश्चात्रैवान्तर्भावयतीति तदुचितमेव, किन्तु तन्त्राणां ब्राह्मणविरोधित्वमवैदिकत्वं चेत्यादिप्रतिपादनं तत्कृतं नैवास्मभ्यं रोचते। भारतीये वाङ्मये विरोधपरिहारप्रवणायां समन्वयात्मिकायां दृष्टौ जागरूकायां ब्राह्मण-बौद्ध-जैनादयो विभागा भगवतो महाकालस्य कलनात्मिकां वृत्तिमेव सूचयन्ति। सर्वासामासां दृष्टीनां विस्तारकाः प्रायो ब्राह्मणा एव सन्ति। तेन केवलं वैदिकवाङ्मयस्य कृते कृतो ब्राह्मणशब्दप्रयोगो भारतीये समाजे विद्वेषोत्पादक इव, संकोचोन्मीलक इव भवतीति साहित्येतिहासे भ्रान्तिभरितोऽयं शब्दः सर्वथा प्रयोगानर्ह इति विशेषतोऽवधेयोऽयं विषयो विपश्चिद्भिः।

कारिका-नादकारिका-मोक्षकारिका-परमोक्षनिरासकारिकाख्याश्च सव्याख्या ग्रन्थाः १९२५ ई० वर्षे वाणीविलासमुद्रणालये मुद्राप्याऽष्टप्रकरणनाम्ना प्रसिद्धिमानीताः। अत्र प्रथमचतुर्थषष्ठान् विहाय शिष्टाः सर्वे ग्रन्थाः सद्योज्योतिःशिवाचार्यप्रणीताः सन्ति। शिवदृष्टिकारसोमानन्दतोऽपि प्राचीन एष आचार्यः।

१. स्टडीज इन दि पुराणिक रिकार्ड्स ऑन हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स (अ० ५, पृ० २६०-२६४)।

बादरायणीये ब्रह्मसूत्रें तर्कपादे सांख्य-योग-पाञ्चरात्र-पाशुपतादिमताना-मवैदिकत्वमुद्घोष्यते। महाभारते च शान्तिपर्वणि नारायणीयोपाख्याने—

सांख्यं योगः पाञ्चरात्रं वेदाः पाशुपतं तथा।
ज्ञानान्येतानि राजर्षे विद्धि नानामतानि वै॥ (३४९।६४)

इत्येवं सर्वेषां प्रामाण्यमूरीक्रियते। "स्वयंप्रामाणान्येतानि न हातव्यानि हेतुभिः" इति हि तत्रत्यस्योत्तरार्धस्य पाठान्तरं दृश्यते। कृतान्तपञ्चकस्यैतस्य प्रामाण्यप्रतिपादकानि भूयांसि वचांसि पुराणागमेषु धर्मशास्त्रटीकानिबन्धेषु च समुपलभ्यन्ते। महाभारते पूर्वोक्त एव प्रकरणे मतानामेषां प्रवक्तार एवं निर्दिष्टाः—

सांख्यस्य वक्ता कपिलः परमर्षिः स उच्यते।
हिरण्यगर्भो योगस्य वेत्ता नान्यः पुरातनः॥
अपान्तरतमाश्चैव वेदाचार्यः स उच्यते।
प्राचीनगर्भं तमृषिं प्रवदन्तीह केचन॥
उमापतिर्भूतपतिः श्रीकण्ठो ब्रह्मणः सुतः।
उक्तवानिदमव्यग्रो ज्ञानं पाशुपतं शिवः॥
पाञ्चरात्रस्य कृत्स्नस्य वेत्ता तु भगवान् स्वयम्। इति।
(३४९।६५-६८)

सर्वेषामेषां मतानां प्रामाण्यं च तत्रैवं निर्दिश्यते—

सर्वेषु च नृपश्रेष्ठ ज्ञानेष्वेतेषु दृश्यते।
यथागमं यथाज्ञानं निष्ठा नारायणः प्रभुः॥ इति।
(३४९।६८-६९)

भगवद्गीता च सांख्यं योगम् उपनिषदः पाञ्चरात्रं च सम्यग् व्याख्यातीति को नाम विद्वान् न जानीते। एकान्तभावोपपादकमेकायनं धर्ममेव प्राधान्येन प्रतिपादयति सेत्यपि केचन वदन्ति। शिवपुराणे[१] श्रौतः स्वतन्त्रश्चेति द्विविधः शिवागमः प्रतिपाद्यते। तत्र श्रौतः शतकोटिप्रविस्तरः, यत्र पाशुपतं व्रतं ज्ञानं च वर्ण्यते। एवं च सांख्ययोगयोरिव पाञ्चरात्रपाशुपतमतयोरपि प्रामाण्ये न कश्चन विसंवादो महाभारतपुराणादिषु। पुराणेषु यथा केषाञ्चन मतानां मोहकत्वमुक्तम्, तथैव तत्र—"मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते" (पद्म० ६।२६३।७१)

१. वायुसंहितायाः पूर्वभागे (२३।११) द्रष्टव्यमेतत्।

इत्यप्युच्यते । तेनार्थवादन्यायेन संगमनीयानि तादृशानि पुराणवचनानि । शाक्तागमेषु समुपबृंहिता भगवत्यास्त्रिपुरसुन्दर्याः श्रीचक्रस्य च वरिवस्या शाङ्करेषु मठेषु सबहुमानं प्रवर्तत इति जानन्त्येव मनीषिणः ।

पाञ्चरात्रपाशुपतमतयोः प्राचीनताविषये डॉ॰ आर॰ जी॰ भाण्डारकर-डॉ॰ हेमचन्द्ररायचौधरीप्रभृतिभिर्विद्वद्भिर्विचारितम् । कृतान्तपञ्चकमुपजीव्यैव रामायणमहाभारतयोर्वर्तमानानां महापुराणानां च प्रवृत्तिः समजायतेति तत्र तत्र सिद्धान्तानामेषां समासेन व्यासेन चोपवर्णनदर्शनादङ्गीकर्तव्यम् । तेन ८०० ई॰ वर्षेभ्यः पूर्वं पुराणेषु तान्त्रिकः प्रभावो नैव दृश्यत इत्युक्तिर्नैव क्षोदक्षमा । न केवलं मन्त्रन्यास-अभिचारकर्म-यन्त्रमण्डपनिर्माणादय एव तान्त्रिका आगमिका वा विषयाः, यावत् पूर्वोद्धृतप्रतिष्ठालक्षणसारसमुच्चयवचनप्रामाण्येन प्रासादमूर्ति-निर्माणप्रतिष्ठादयो विषया इदम्प्रथमतया तत्रैव प्रतिपादिताः । दृश्यन्ते च त इमे विस्तरेण वर्णिता विविधेषु पुराणेषु । डॉ॰ हाजरामहोदयः स्वयमपि वराहादि-पुराणनिर्दिष्टान् पाञ्चरात्रशैवागमान् तद्विषयांश्च निर्दिशति । साम्प्रतिका ऐतिहासिकास्तन्त्रागमशास्त्राणां प्रवृत्तिमष्टमशताब्दीपरवर्तिनीं साधयन्ति । तेषामेवात्र प्रभावः प्रतीयते ।

कृष्णयजुर्वेदसंहितारण्यकयो रुद्रस्याघोरवामदेवादिपञ्चमुखानां भस्मोद्धूलनादिविधीनां च दृश्यते तादृगेव स्वरूपम्, यादृशं हि प्रतिपादितं पाशुपतसूत्र-कारेण लकुलीशेन । स हि रुद्रस्याघोरादिस्वरूपपञ्चकप्रतिपादिकां पञ्चाध्यायीं प्रणीतवान्, तत्र प्रत्यध्यायं क्रमशः कार्य-कारण-योग-विधि-दुःखान्तांश्च दार्शनिक-पद्धत्या व्याख्यातवान् । भाष्यकारः कौण्डिन्यस्तानि सूत्राणि व्याकरोति । लाकुलाः, मौसुलाः, कारुकाः, वैमलाश्चेति चतुर्विधाः पाशुपताः स्वच्छन्दादिशास्त्रेषु वर्ण्यन्ते, व्याख्यातारश्च तेषां स्वरूपं विशदयन्ति । लकुलीशशिष्यो मुसुलेन्द्रो हृदय-प्रमाणाख्यं ग्रन्थं संदृब्धवानिति [1]रामकण्ठप्रामाण्येन प्रतीयते । "श्रीलकुलीश-शिष्येण मुसुलेन्द्रेण कारोहणस्थानावतीर्णेन चापरेण क्षेमेशब्रह्मस्वामिप्राप्तिहेतु-क्रियाबहुलाः स्वे स्वे शास्त्रे व्रतविशेषा उक्ताः" इति च[2] क्षेमराजो वक्ति । पाशुपताद्यागमनिर्दिष्टाः केचन विषयाः साम्प्रतिकैतिहासिकदृष्ट्या प्राचीने [3]वायु-

---

१. परमोक्षनिरासकारिकाव्याख्यानं (श्लो॰ ३) तस्य द्रष्टव्यम् ।

२. स्वच्छन्दतन्त्रं (१०।११३४-३५) तद्व्याख्यानं चात्रावलोकनीयम् ।

३. वर्णाश्रमकृतैर्धर्मैर्विपरीतं क्वचित् समम् ॥ श्रुत्यर्थैरध्यवसितं पशुपाशविमोक्षणम् । सर्वेषामाश्रमाणां तु मया पाशुपतं व्रतम् ॥ उत्पादितं शुभं दक्ष सर्वपापविमोक्षणम् । (३१।२९४-२९६) इत्यत्र पाशुपतव्रतस्य पशुपाशविमोचनपूर्वकपतित्वसम्पादकत्वं वर्ण्यते ।

पुराणे समुपलभ्यन्ते । तेनाष्टमशताब्दीतः पूर्वं तन्त्रागमशास्त्राणां प्रवृत्तिर्नासीदिति [1]विकल्पप्रायमिदं वचः । अग्निपुराण-गरुडपुराणयोरिवान्येष्वपि पुराणेषु तन्त्रागमशास्त्रीयाणि प्रकरणानि समानामानुपूर्वीमनुसरन्ति समुपलभ्येरन्निल्येतदर्थं प्रयतमानैरस्माभिर्भवितव्यम् । पौराणिका हि पुराणान्तरेभ्यः शास्त्रान्तरेभ्यो वा गृहीतानि प्रकरणान्यानुपूर्व्या केवलं संबोधनादिपदपरिवर्तनपुरस्सरं परिगृह्णन्तीति पूर्वमेवाग्निपुराणप्रामाण्येन प्रपञ्चितम् ।

इदमत्रावधेयम्—पुराणानि निगमागमोभयमूलकानीति सुनिश्चितम्, किन्तु तत्र निगमाख्याया वैदिक्या दृष्टेरेव प्राधान्यं दरीदृश्यते । तत्र हि वेदानां परमं प्रामाण्यम्, वर्णाश्रमव्यवस्थायाश्च सार्वात्म्येन स्वीकार इत्यत्र नास्ति संशीति[2]लवलेशोऽपि ।

शैवागमा वैष्णवागमाश्च परस्परं विरोधमुखेन प्रवर्तन्ते । आगमीयोऽयं दोषः पुराणेषु न दृश्यते । पुराणेषु शैववैष्णवादिविभागे जागरूके सत्यपि सर्वत्राव्याहतं शिवनारायणयोरैक्यं प्रतिपाद्यते । पुराणानां सात्त्विकत्वादिविभागः—"रजोजुषे जन्मनि, सत्त्ववृत्तये स्थितौ, प्रजानां प्रलये तमःस्पृशे" इति कादम्बरीकारमहाकविबाणभणितिसरण्या व्याख्येयः । यथा एकमेव ब्रह्म कृत्यभेदेन समाख्याभेदमनुभवतीव, तथा पुराणान्यपि सात्त्विकादिविभागवन्ति भवन्ति । नात्राधरोर्ध्वीभावः कश्चित् । तेन वामन-वराह-कूर्मादिविष्ण्ववतारनामाङ्कितानि पुराणानि सात्त्विकानि, तत्र च विष्णोरेव महिमा गीयत इति प्रायोवादमात्रम् । एवं च कूर्मपुराणं पूर्वं वैष्णवमासीत्, अधुना तत्र शैवोपादानानां प्राबल्यं संजातमित्येवंप्राया[3] उक्तयो नैवोचिताः प्रतीयन्ते । बृहन्नारदीये पूर्वभागे ६३ तमेऽध्याये पाशुपतं ज्ञानं वर्ण्यते, किन्तु तस्य प्रकरणस्योपक्रम एवं क्रियते—

शृणु नारद वक्ष्यामि तन्त्रं भागवतं तव ।
यज्ज्ञात्वाऽमलया भक्त्या साधयेद् विष्णुमव्ययम् ॥ (६३।१२)

---

१. "शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः" (१।९) इति हि योगसूत्रे विकल्पलक्षणमुच्यते ।

२. "नलिनीपत्रसंहत्यां सूक्ष्मसूच्यभिवेधने । दले दले तु यः कालः स कालो लववाचकः ॥" (१।२९) इत्येवं प्रपञ्चसारे लववाचकस्य सूक्ष्मतमस्य कालस्य लक्षणं वर्ण्यते ।

३. डॉ॰ हाजरामहोदयः पूर्वोक्ते ग्रन्थे कूर्मपुराणविवरणप्रसङ्गे (पृ॰ ६४) प्रतिपादयत्येतत् ।

अत्र पाशुपतं तन्त्रं भागवतनाम्ना, भगवान् शिवश्च विष्णुनाम्नाऽभिधीयते। शिवनारायणयोरैक्यप्रतिपादिका सैषा दृष्टिर्न केवलं कूर्मपुराणे, महाभारतादिष्वन्येषु पुराणेषु च सर्वत्राप्रतिहता विराजते।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥ (६।५।७४)

इत्येवं षड्भिरेभिर्गुणैरन्वितो भगवानित्युच्यते विष्णुपुराणे, व्यूहवासुदेवश्च पाञ्चरात्रागमेषु।

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य॥ (१२।१३)

इति च माहेश्वरं षाड्गुण्यं वर्ण्यते वायुपुराणे। भक्तिस्तोत्रकारोऽवधूतसिद्धोऽपि गायति—

ऐश्वर्यमप्रतिहतं सहजो विरागस्तृप्तिर्निसर्गजनिता वशितेन्द्रियेषु।
आत्यन्तिकं सुखमनावरणा च शक्तिर्ज्ञानं च सर्वविषयं भगवँस्तवैव॥ इति।

वैष्णव्यां शैव्यां च दृष्टौ समन्वयाधायकः काश्मीरक उत्पलवैष्णवः—"भेदः सर्वज्ञतादीनां ज्ञानादीनां च नास्त्यमी" (पृ० १०३) इत्यादिना स्पन्दप्रदीपिकायां शैवेषु सर्वज्ञतादिषु, वैष्णवेषु ज्ञानादिषु च गुणेषु सामञ्जस्यमुन्मीलयति। सेयं सामञ्जस्यापादिका दृष्टिः पुराणेष्वपि सर्वत्राव्याहता प्रसरतीत्यनुपदमेवोक्तम्। अस्यां स्थितौ पुराणेषु शैववैष्णवादिसम्प्रदायदृष्टीनामुद्भावनं बुद्धिविलसितप्रायमेव मन्तव्यम्।

लाकुलादिशास्त्राणां[1] मोहकत्वमित्यत्र ब्रह्मसूत्रतर्कपादव्याख्यातॄणां प्रभावः, मायावादमसच्छास्त्रमित्यत्र च दाक्षिणात्यानां वैष्णवानां प्रभावोऽन्वेषणीयः। मायावादस्यासच्छास्त्रत्वं नाद्याप्यूरीक्रियते, यद्यप्याधुनिकास्तत्र बौद्धदर्शनप्रभावं गवेषयन्ति। एवमेत्र पाञ्चरात्रपाशुपताद्यागमानां मोहकत्वं नाद्यापि केनाप्यङ्गीक्रियते, प्रत्युत तेषु पुराणेषु स्मृतिनिबन्धेषु च तत्रत्या विषया व्यूहवाद-षाड्गुण्यवादादयो विधिमुखेनैव वर्णिताः।

शैवशाक्ताद्यागमान्तर्गतानां कौलिकादिमतानां मोहकत्वं प्रत्युतावश्यमेवाङ्गीकार्यम्। सत्यं कौलमतप्रायं वज्रयानमारूढा बौद्धा मोहग्रस्ता भगवतो

---

१. "अन्यानि चैव शास्त्राणि लोकेऽस्मिन् मोहनानि तु। वेदवादविरुद्धानि मयैव कथितानि तु॥ वामं पाशुपतं सोमं लाकुलं चैव भैरवम्।" (२।२७।१४५-१४६) इत्यादिना कूर्मपुराणादिषु।

बुद्धस्योपदेशान् सर्वथा विस्मृत्य विलयं गता भारते वर्षे। "जुगुप्सितं धर्मकृतेऽनुशासतः स्वभावरक्तस्य महान् व्यतिक्रमः" (१।५।१५) इति भागवतीये पद्ये कौलिकेषु वज्रयानीयेषु च तन्त्रेषु प्रदर्शिता [1]अर्घ्यनिष्पादनमुखा विधयः समालोचिता इव दृश्यन्ते। अत एव धर्मशास्त्रीयनिबन्धकारेण वल्लालसेनेन केषाञ्चन पुराणोपपुराणादीनामपि प्रामाण्यं श्रौते स्मार्ते च कर्मणि हेतुप्रदर्शनपुरस्सरं सर्वथा परिहृतम्।

एतेन सर्वेषां शाक्ततन्त्राणामप्रामाण्यमर्वाचीनत्वं वा न साधयितुं शक्यते। ब्रह्माण्डपुराणान्ते वर्तमानस्य ललितोपाख्यानस्य खिलभागत्वं भवतु नाम। मत्स्यपुराणे (१३।२६-५४) देवीभागवते च स्थलद्वये (७।३०।५५-८४; ७।३८।५-३१) स्थापिताऽष्टोत्तरशतपीठनामावली मध्यभागसंनिविष्टा नैव तथा कल्पयितुं शक्यते। मार्कण्डेयपुराणे[2] देवीमाहात्म्यम्, कूर्मपुराणे च देव्या अष्टोत्तरसहस्रनामस्तोत्रं तदङ्गभूतमेव मन्तव्यम्। सप्तशतीपाठाङ्गतया स्वीकृतस्य कीलकस्तोत्रस्य विशुद्धज्ञानदेहायेत्याद्यः श्लोकः श्लोकवार्त्तिकस्य भट्टकुमारिलकृतस्य मङ्गलश्लोकतां धत्ते। "सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये" (११।७) इत्यादिको दुर्गासप्तशतीश्लोकः ६०८ ई० वत्सराङ्किते दधिमती(मातृ)-शिलालेखे "देवीं दधिमतीं विज्ञापयति" इत्युक्त्वा समुट्टङ्क्यते। षष्ठशताब्दीभवेन महाकविना सुबन्धुना[3] वासवदत्तायाम्—"भिक्षुकीव तारानुरागरक्ताम्बरधारिणी भगवती सन्ध्या समदृश्यत" इत्येवं बौद्धानां देवी भगवती तारा स्मर्यते। उदयपुरस्थे पुरातत्त्वसंग्रहालये संरक्षिते ४९० ई० वर्षे समुत्कीर्णे उदयपुरमण्डलान्तर्गते 'छोटी सादड़ी' इत्याख्यस्थानसमीपवर्तिनि गिरौ चित्रकूट-(चित्तौड़)दुर्गं निकषा वर्तमाने भ्रमराम्बामन्दिरस्य गर्भगृहे

---

१. उभयसामरस्यसमुत्थः कुण्डगोलकाख्यो द्रव्यविशेषोऽर्घ्यत्वेनात्र परिकल्प्यते (तन्त्रालोकविवेके, १५।१६६)। स्वयम्भुकुसुमादीनि चात्र पूजायामुपादीयन्ते। जुगुप्सितानि तान्येतानि कर्माणि।

२. "अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः" (१।७४) इति दुर्गासप्तशतीपद्येऽर्धमात्राया अनुच्चार्यत्वमुच्यते। प्रणवादिपिण्डमन्त्रेषु स्थितानामर्धचन्द्रादिसमनान्तानां ध्वनीनामर्धमात्रात्मकत्वमनुच्चार्यत्वं च शैवशाक्तागमेष्वेव सविशेषं प्रतिपाद्यते। तेन तत्प्रतिपादकानां तन्त्राणां दुर्गासप्तशतीतः पूर्वं स्थितिरवश्यमेव स्वीकार्या।

३. "दी कल्ट आफ तारा" (पृ० ७) इत्याख्यो ग्रन्थ एतदर्थं द्रष्टव्यः।

स्थापिते[1] शिलालेखे भगवती भ्रमराम्बा स्तूयते, या हि भ्रामरीति नाम्ना दुर्गासप्तशत्यां (११।५५) स्मृता। एवं च पुराणेषु शैवाः, वैष्णवाः, शाक्ताश्च आगमाः प्रायः प्रामाण्यमुखेनैवोपन्यस्ता इत्येव युक्तियुक्तं प्रतिभाति।

न चेदं पुराणरचनाकार्यं पाञ्चरात्र-पाशुपत-शाक्ताद्यागमानुयायिभिः कृतम्। वैदिके वाङ्मये परमश्रद्धालुभिरागमानुशीलनपरायणैरसाम्प्रदायिकैः पौराणिकैः स्मार्तधर्मप्रतिष्ठाप्रवणैः शिवनारायणयोरैक्यमित्येवंप्रायां समन्वयात्मिकां दृष्टिमुन्मीलयद्भिस्तदिदं महत्कार्यं सम्पादितम्। अत्र वायुपुराणस्य कानिचन वचनानि विशेषतोऽवधेयानि सन्ति—"पुराणं संप्रवक्ष्यामि ब्रह्मोक्तं वेदसंमितम्। धर्मार्थन्यायसंयुक्तैरागमैः सुविभूषितम्॥" (१।११) इति, "योगधर्मा बहुविधाः सांख्या भागवतास्तथा।" ब्राह्मं शैवं वैष्णवं च सौरं शाक्तं तथार्हतम्। षड् दर्शनानि चोक्तानि स्वभावनियतानि च॥" (१०४।१४,१६) इति, "नातः परतरं किञ्चिन्निगमागमयोरपि" (१०४।५४) इति च। वायुपुराणसदृशानां प्राचीनानां पुराणानामेभिर्वचनैस्तेषां निगमानुवर्तित्वमिव आगमानुसारित्वमपि नूनं सुतरां सिद्ध्यति॥

●

१. शिलालेखस्य परिचयः "एपिग्राफिया इण्डिका" इत्याख्यपत्रिकायाः ३० वर्षीये चतुर्थेऽङ्के १२०-१२७ पृष्ठेषु प्राप्तव्यः।

क्रमदर्शनस्यैव नूनं मुख्यं शाक्तत्वम्

शक्तिपारम्यवादी भट्टप्रद्युम्नः—"यस्या निरुपधिज्योतीरूपायाः शिवसंज्ञया। व्यपदेशः परां तां त्वामम्बां नित्यमुपास्महे॥" इत्येवं परामम्बां स्तुवन् तत्त्वगर्भे षट्त्रिंशत्तत्त्वानां संविच्छक्तिप्रसरमात्रत्वमङ्गीकरोति। एवं च शाक्तेषु दर्शनेषु संविदभिधानं परं ब्रह्म। तत एव सर्वं प्रवर्तते। संविदेव भगवती स्वान्तःस्थितं विश्वं बहिरवभासयतीति हि शाक्तदर्शनरहस्यम्। वामकेश्वरदर्शने यथा त्रिपुराभिधाना[1] महासंविदेव परं ब्रह्मेत्युच्यते, एवमेव [2]क्रमदर्शने क्षेप-ज्ञान-प्रसंख्यान-गति-नादरूपाणि पञ्चकृत्यानि कुर्वती काली एव परं तत्त्वम्। तदुक्तं तन्त्रालोके—"क्षेपो ज्ञानं च संख्यानं गतिर्नाद इति क्रमात्॥ स्वात्मनो भेदनं क्षेपो भेदितस्याविकल्पनम्। ज्ञानं विकल्पः संख्यानमन्यतो व्यतिभेदनम्॥ गतिः स्वरूपारोहित्वं प्रतिबिम्बवदेव यत्। नादः स्वात्मपरामर्शशेषता तद्विलोपनात्। इति पञ्चविधामेनां कलनां कुर्वती परा। देवी काली तथा कालकर्षिणी चेति कथ्यते॥ मातृसद्भावसंज्ञाऽस्याः""""। वामेश्वरीति शब्देन प्रोक्ता श्रीनिशि-संचरे॥" (४।१७३-१७८) इति। "श्रयेत् स्वातन्त्र्यशक्तिं स्वां सा श्रीकाली परा कला" इति श्रीनाथपादवचने, "या सा शक्तिः परा सूक्ष्मा व्यापिनी निर्मला शिवा। शक्तिचक्रस्य जननी परानन्दाऽमृतात्मिका॥ महाघोरेश्वरी चण्डा सृष्टिसंहारकारिका। त्रिवहं त्रिविधं त्रिस्थं बलात् कालं प्रकर्षति॥" इति वाजसनेयतन्त्रवचने च सैव स्तूयते। क्रमागमग्रन्थानां शक्तिः समुपदेष्ट्री श्रोता च शिव इति सत्यं क्रमदर्शनस्यैव मुख्यं शाक्तत्वम्।

"द्वादशाराावियोगेन देवीं द्वादशधा यजेत्" इत्यागमवचने द्वादशविधा, "त्रयोदशविधा[3] काली विज्ञेया नामभेदतः" इति तन्त्रराजभट्टारके च

---

१. नित्याषोडशिकार्णवस्यास्मदीय उपोद्घातोऽत्र (पृ० ८३-९०) द्रष्टव्यः।

२. डॉ. नवजीवनरस्तोगीविरचिते "क्रम तान्त्रिसिज्म ऑफ काश्मीर" इत्यभिधेये ग्रन्थे क्रमसम्प्रदायस्य ग्रन्थ-ग्रन्थकाराणां च विशिष्टः परिचयो द्रष्टव्यः।

३. "परामर्शात्मकत्वेन विसर्गाक्षेपयोगतः॥ इयत्ताकलनाज्ज्ञानात् ताः प्रोक्ताः कालिकाः क्वचित्॥ श्रीसारशास्त्रे चाप्युक्तं मध्य एकाक्षरां पराम्। पूजयेद् भैरवात्माख्यां योगिनीद्वादशावृताम्॥" (३।२५३-२५४) इति तन्त्रालोके, "परां त्वेकाक्षरां मध्ये शङ्खकुन्देन्दुसुन्दराम्। चतुर्भुजां चतुर्वक्त्रां योगिनीद्वादशावृताम्॥" इति तत्रैवोद्धृते त्रिकसारवचने चायमेवार्थो निर्दिश्यते।

त्रयोदशविधा काली वर्णिता। "यत् सृष्टिस्थितिसंहाररक्तैश्च यममृत्युभिः। रुद्र-मार्तण्डपरमादित्यकालाग्निरुद्रकैः॥ पदैश्च समहाकालैः कालीशब्दान्तयोजितैः। महाभैरवचण्डोग्रघोरकालीपदं नयेत्॥" इत्यागमवचने, "सृष्टिकाली च संहारे सृष्टौ सा परमेश्वरी। स्थितिकाली तथा घोरा ततः संहार-कालिका॥ रक्तकाली चर्वयन्ती रक्तौघमविभेदतः। सुकाली यमकाली च मृत्युकाली भयावहा॥ भद्रकाली तथा चान्या परमादित्यकालिका। मार्तण्डकाली कालाग्निरुद्रकालमहोल्बणा॥ महाकालकुले काली महाभैरवकालिका।" इति च तन्त्रराजभट्टारके तासां नामानि दृश्यन्ते। सार्धशतिकेऽपि—"द्वादशारं महाचक्रं रश्मिरूपं प्रकीर्तितम्। नाम चैव प्रवक्ष्यामि रश्मीनां तु यदास्थितम्॥ सृष्टिः स्थितिश्च संहारो रक्तकाली तथैव च। स्वकाली यमकाली च मृत्युकाली तथैव च॥ रुद्रश्च परमार्कश्च मार्तण्डश्च ततः परः। कालाग्निरुद्रकाली च महाकालाभिधा पुनः॥ महाभैरवशब्दश्च घोरशब्दस्ततः परः। चण्डकालीपदं चान्ते त्रयोदश उदाहृताः॥" इत्येवं तासां नामानि वर्ण्यन्ते। तन्त्रालोकविवेक-धृतेषु क्रमसद्भाव-क्रमस्तोत्र-पञ्चशतिकेषु तासां लक्षणानि प्रदर्शितानि। क्रमसद्भावे च—"षोडशातः समासेन शृणुष्वेकमना हर। सा सत्ता लीयते यत्र काली द्व्यष्टकला स्मृता॥ सप्तदशी तु सा काली विद्धि सर्वार्थकारिका।" इत्येवं षोडशधा सप्तदशधा च विभक्ता काली वर्ण्यते।

[1]क्रमदर्शनमेतत् प्राधान्येन त्रिकदर्शनमनुसरतीति महेश्वरानन्दो भाषते—"श्रीमहार्थत्रिकदर्शनयोर्नात्यन्तं भेदप्रथा" (म० प०, पृ० ९२) इति। कौल-दर्शनतोऽप्यस्य नात्यन्तं वैलक्षण्यमित्यप्युक्तं तेनैव—"अस्यामर्थस्थितिः सैव या सर्वत्र कुलागमे। किन्तु शब्दस्य शय्यान्या नात्यन्तं सा विभिद्यते॥" (म० प०, पृ० १९२) इति।

इयांस्तु विशेषः—त्रैपुरं हि दर्शनं कौलमतमनुवर्तते। तत्र त्रिशक्ति-त्रिचक्र-त्रिधाम-त्रिबीज-त्रितत्त्व-त्रिगुण-त्रिकोण-त्रिमूर्तिप्रभृतीनां त्रित्वसंख्या-विशिष्टानां सर्वेषां पदार्थानां जननी त्रिपुरा प्रोच्यते। एवमेव त्रिकदर्शनमपि त्रित्वसंख्याप्रियम्। तथा हि [2]सिद्धा-नामक-मालिनीति विख्याततन्त्रत्रयाश्रि-तत्वात्, पर-परापर-अपररूपत्रिकप्रतिपादकत्वात्, तदन्तर्गतस्य त्रिकत्रयस्य—शिव-शक्ति-तत्सामरस्यरूपस्य, शिव-शक्ति-नररूपस्य, परा-अपरा-परापरादेवी-

---

१. "ककारः क्रोधरूपस्तु मकारो मङ्गलो भवेत्। क्रोधे तु मङ्गलं कुर्यात् क्रमः कालक्रमो भवेत्॥" इत्येवं क्रमपदव्युत्पत्तिर्वर्णिता क्रमसिद्धौ।

२. अत्रास्मत्सम्पादितस्य विज्ञानभैरवस्य १ पृष्ठस्था १ टिप्पणी द्रष्टव्या।

रूपस्य—च व्याख्यायां प्राधान्येन प्रवृत्तत्वात्, भेद-भेदाभेद-अभेदरूपस्य त्रिप्रकारस्यापि ज्ञानस्य दार्शनिकदिशा स्पष्टीकरणाच्चेदं त्रिकदर्शनतया प्रख्यायते। अत एव—"त्रिकं पराशक्तित्रयाभिधायकं शास्त्रम्" (त० वि०, १।१०६) इति वक्ति जयरथः।

त्रैपुरे सम्प्रदाये संकेतपद्धतिं योगिनीहृदयं[1] चानुसरन्तः शिवानन्द-विद्यानन्द-अमृतानन्दप्रभृतय आचार्या [2]अनाख्यं तुरीयं समष्टिस्वरूपं वा तत्त्व-मेकमधिकं परिगणय्य धाम-तत्त्व-पीठ-लिङ्ग-शक्ति-बीजादिकस्य चातुर्विध्यमङ्गी-कुर्वन्ति। "क्रमः चतुष्टयार्थः" (त० वि० १।१०६) इति च जयरथो भणति। क्रमस्त्र्यर्थः, चतुष्टयार्थः, पञ्चार्थ इति त्रयः पक्षा डॉ० रस्तोगीग्रन्थे (पृ० १०-१३,७२) टिप्पणीषु प्रदर्शिताः। तत्राद्यं पक्षद्वयं पूर्वोक्तमतद्वयमनुसरति। तन्त्रालोके तद्विवेके च [3]क्रमश्चतुष्टयार्थ इत्येष पक्षो व्याख्यातो दृश्यते।

महेश्वरानन्दादिभिस्तु लकुलीशपाशुपतदर्शनवत् पदार्थपञ्चकस्य तद्भिन्न-प्रकृतिकस्य प्रतिपादकतया क्रमदर्शनं व्याख्यायते। तद्यथा—क्रमदर्शनाभ्युपगताः

---

१. नित्याषोडशिकार्णव-योगिनीहृदययोर्भिन्नशास्त्रत्वमस्माभिर्योगिनीहृदयस्यानुप्रास्ताविके (पृ० १-२), नित्याषोडशिकार्णवस्य उपोद्घाते (पृ० ११-१२) च सप्रमाणं साधितम्। नित्याषोडशिकार्णवे पदार्थानां त्रित्वम्। योगिनीहृदये च पदार्थानां चतुष्ट्वं प्रविविच्यते। अतोऽप्यनयोर्भेदोऽवसेयः।

२. "व्यपदेशमलभमाना (संवित्) सर्वत्रैवाव्यपदेश्येति, अनामकेति, अनाख्येति चोद्घुष्यते" (त० वि० ४।१२५, पृ० १३३) इत्येवं जयरथोऽनाख्यपदं व्याख्याति। "अनाख्यमित्याख्याशून्यमुच्यते। आख्या च पश्यन्त्यादिस्थूलवाक्त्रितयस्वभावा" इति, "अशून्यं शून्यकल्पं च तत्त्वं किमपि शाम्भवम्" इति, "अकथ्यं वा त्रयातीत-मुपचारेण गीयते" इति च महेश्वरानन्दः (पृ० १००)। "एकीभावतया सर्वमनाख्यायां यदा स्थितम्। अक्रमस्तु तदा ज्ञेयः प्रोत्तीर्णः सर्वतोमुखः ॥" इत्यागमवचने चानाख्यातत्त्वे सर्वमत्र तिष्ठत इति प्रतिज्ञायते। "अनाख्यं शक्तिरूपम्" इति च क्रमसद्भावे।

३. "सृष्टिक्रमं तु प्रथममवतारं द्वितीयकम्। संहारं तु तृतीयं स्यादनाख्येयं चतुर्थकम् ॥" इति माधवकुलवचनमत्र प्रमाणम् (तन्त्रा० ११।२९, पृ० ४१)। देवीयामल-प्रामाण्येन परा-परापरा-अपरा-परातीता(संकर्षिणी)नाम्न्यश्चतस्रो देव्यस्तन्त्रा-लोके (३।७०; १५।३३५-३३८) तद्विवेके च विवृताः। अर्थरत्नावल्यां विद्यानन्देन क्रमचतुष्कपक्षः क्रमसम्प्रदायश्च तत्र तत्र व्याख्यायते। तन्त्रालोकधृते (२९।१४-१६) क्रमरहस्ये च कौलिको यागविधिर्वर्ण्यते।

परतत्त्वस्य स्फुरणधारा व्योमवामेश्वरी-खेचरी-दिक्चरी-गोचरी-भूचरीनाम्न्यः पञ्च। परशक्तयः सृष्टि-स्थिति-संहार-अनाख्य-भासारूपाः[1] पञ्च। वाग्भेदाः परा-सूक्ष्मा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरीरूपाः पञ्च। क्रमेणार्च्यदेवताचक्राणि श्रीपीठ-पञ्चवाह-नेत्रत्रय-वृन्दचक्र-गुरुपङ्क्तिरूपाणि पञ्च। परतत्त्वस्वरूपत्वेन तदभेदेन विद्यमानाः शक्तयश्चित्-आनन्द-इच्छा-ज्ञान-क्रियारूपाः पञ्च। इयं पञ्चकविचारधारा मौलिकस्य काल्याः क्षेप-ज्ञान-प्रसंख्यान-गति-नादरूप-कृत्यपञ्चकविचारस्य प्रभावात् प्रसूतेति प्रतीयते। पाशुपतं हि पदार्थपञ्चक-मष्टगणेषु विभक्तं भिन्नप्रकृतिकमेव।

त्रिविधानां चतुःसंख्याकानां पञ्चप्रकाराणां चैषां पदार्थानां व्याख्यान-मुखेनैव प्रवर्तते त्रिपुरा-त्रिक-क्रमदर्शनानां वैशिष्ट्यम्। किञ्च, "यत्पीठ-चक्रार्पितपञ्चवाहप्रकाशमानन्दखमूर्तिचक्रम्। अष्टाष्टचक्रं प्रविराजते तद् गुरुक्रमौघं सचतुष्टयार्थम्॥" इति महाम्नायोक्तिमुद्धरन् महेश्वरानन्दः—"श्री-पीठपञ्चवाहनेत्रत्रयवृन्दचक्राणि स्मरत। स्मरत च गुरूणां पङ्क्ति पञ्च च शक्तीः सृष्टिप्रमुखाः॥" (गा० ३६) इत्यादिगाथाव्याख्यानमुखेन—"धाममुद्रावर्ण-कलासंविद्भावस्वभावतः। पाताऽनिकेतदृष्ट्या च वृन्दचक्रं प्रकाशितम्॥" इति वचनं च स्मरन् क्रमदर्शनवैशिष्ट्यं विशेषतः प्रकटयतीति तत् तत्रैव द्रष्टव्यम्। अस्माभिश्च शाक्तदर्शनपरिभाषाकोशे हिन्दीभाषामये त इमे शब्दा व्याख्याताः।

इदं हि क्रमदर्शनरहस्यम्—समस्तेभ्यः परिच्छिन्नस्वभावेभ्यः शिवान्तेभ्य-स्तत्त्वेभ्यो यदुत्तीर्णमपरिच्छिन्नसंविन्मात्ररूपं तदेव परमार्थः। तद् वस्तुव्यव-स्थापनम्, तद् विश्वस्य ओजः, तेन प्राणिति विश्वम्। तदेव चाहम्। ततो विश्वो-त्तीर्णो विश्वात्मा चाहमिति। स चायं शुद्धो विकल्पो मायान्धानां नोत्पद्यते, सत्तर्का-दीनामभावात्। शाम्भवदृढशक्तिपाताविद्धाश्च सदागमादिक्रमेण विकल्पान् संस्कृत्य परं स्वरूपं प्रविशन्ति। तत्रातिदृढशक्तिपाताविद्धस्य स्वयमेव सांसिद्धिकतया सत्तर्क

---

१. भासा नाम सृष्ट्यादिकृत्याक्रान्तविश्ववैचित्र्यव्यवहारगर्भिणी सर्वोत्तीर्णा सर्वानु-ग्राहिणी च पारमेश्वरी चिच्छक्तिः" (पृ० १०१) इत्येवं भासातत्त्वं महार्थ-मञ्जरीपरिमले पादुकोदयादिप्रामाण्येन व्यावर्ण्यते। अस्य विस्तृतं विवरणमत्रैव "स्वातन्त्र्यशक्तिर्भासा" (पृ० २२-२३) इत्यत्र द्रष्टव्यम्। निरोधानुग्रहयोरनाख्या-भासयोश्च परस्परं सम्बन्धो महार्थमञ्जरीपरिमले (पृ० ५१) समवलोकनीयः।

उदेति, योऽसौ देवीभिर्दीक्षित इत्युच्यते, अन्यस्य त्वागमक्रमेणेति व्यवस्था। न चात्र सत्तर्कात् शुद्धविद्याप्रकाशरूपादृतेऽन्यद् योगाङ्गं साक्षादुपायः, [1]तपः-प्रभृतेर्नियमवर्गस्य, अहिंसादेश्च यमप्रकारस्य, पूरकादेः प्राणायामवर्गस्य वेद्यमात्रनिष्ठत्वेन क इव संविदि व्यापारः। प्रत्याहारोऽपि करणभूमिमेव सातिशयां कुर्यात्। ध्यानधारणासमाधयोऽपि यथोत्तरमभ्यासक्रमेण निर्वर्त्यमाना ध्येयवस्तु-तादात्म्यं ध्यातुर्वितरेयुः। अभ्यासश्च परे तत्त्वे संविदात्मनि स्वस्वभावे न सम्भव-त्येव। अतः पारिशेष्यात् सत्तर्क एव तत्र साक्षादुपायः। स एव च शुद्धविद्या।

स च बहुप्रकारतया संस्कृतो भवति। तद्यथा—यागो होमो जपो व्रतं योग इति। तत्र भावानां सर्वेषां परमेश्वर एव स्थितिः, नान्यद् व्यतिरिक्त-मस्तीति विकल्परूढिसिद्धये परमेश्वर एव सर्वभावार्पणं यागः। सर्वे भावाः परमेश्वरतेजोमया इति रूढविकल्पप्राप्तये परमेशसंविदनलतेजसि समस्तभाव-विलापनं होमः। उभयात्मकपरामर्शोदयार्थं बाह्याभ्यन्तरादिप्रमेयरूपभिन्नभावा-नपेक्षयैव एवंविधं तत् परं तत्त्वं स्वस्वभावभूतमित्यन्तःपरामर्शनं जपः। सर्वत्र सर्वदा निरुपायपरमेश्वराभिमानलाभाय परमेश्वरसमताभिमानेन देहस्यापि घटादेरप्यवलोकनं व्रतम्। इत्थं विचित्रैः शुद्धविद्यांशरूपैर्विकल्पैर्यदनपेक्षितविकल्पं स्वाभाविकं परमार्थतत्त्वं प्रकाशते, तस्यैव सनातनतथाविधप्रकाशमात्रतारूढये तत्स्वरूपानुसन्धानात्मा विकल्पविशेषो योगः।

तत्र परमेश्वरः पूर्णसंवित्स्वभावः। पूर्णतैवाऽस्य शक्तिः, कुलम्, सामर्थ्यम्, ऊर्मिः, हृदयम्, सारम्, स्पन्दः, विभूतिः, त्रीशिका, काली, कर्षणी, चण्डी, वाणी, भोगः, दृक्, नित्या—इत्यादिभिरागमभाषाभिस्तत्तदन्वर्थप्रवृत्ताभिरभिधीयते। शक्तयश्चासंख्येयाः। यद्विश्वं ता अस्य पूर्णसंवित्स्वभावस्य शक्तयः। ताः कथमुपदेष्टुं शक्याः? एवम्—तिसृषु हि शक्तिषु विश्वं समाप्यते। यया इदं शिवादिधरण्य-न्तमविकल्प्यसंविन्मात्ररूपतया बिभर्ति च पश्यति च भासयति च परमेश्वरः, साऽस्य परा शक्तिः। यया च दर्पणहस्त्यादिवद् भेदाभेदाभ्यां साऽस्य परापरा शक्तिः। यया परस्परविविक्तात्मना भेदेनैव साऽस्य अपरा शक्तिः। एतत् त्रिविधं

१. "अहिंसा सत्यमस्तेय ...... प्राणायामो निरर्थकः॥ प्राणायामो न कर्तव्यः शरीरं येन पीड्यते। ...... तदेषा धारणाध्यानसमाधित्रितयी पराम्। संविदं प्रति नो किञ्चिदुपयोगं समश्नुते॥" (४।८७-९५) इत्येवं तन्त्रालोकेऽपि वर्ण्यतेऽयं विषयः। वीरावलीग्रन्थोऽत्र प्रमाणीक्रियते। मृगेन्द्रवृत्तियोगपादधृते सर्वज्ञानोत्तरे तु त्रिविधः प्राणायामो व्याख्यातः। अत्रत्यो मूलग्रन्थोऽपि (पृ० २०) द्रष्टव्यः। तान्त्रिकी प्राणापानप्रक्रिया च योगाङ्गत्वेन वर्णितात् प्राणायामात् किञ्चिद्विलक्षणेव दृश्यते।

स्वरूपं याऽऽत्मन्येव क्रोडीकारेणानुसन्धानात्मना ग्रसते, साऽस्य भगवती परैव मातृसद्भावकालकर्षिण्यादिशब्दान्तरनिरुक्ता। ता एताश्चतस्रः शक्तयः स्वातन्त्र्यात् प्रत्येकं त्रिधैव वर्तन्ते सृष्टौ स्थितौ संहारे चेति द्वादश भवन्ति।

तथाहि—१. संवित् पूर्वमन्तरेव भावं कलयति, २. ततो बहिरपि स्फुटतया कलयति, ३. तत्रैव रक्तिमयतां गृहीत्वा ततस्तमेव भावमन्तरुपजिहीर्षया कलयति, ४. ततश्च तदुपसंहारविघ्नभूतां शङ्कां निर्मिणोति च ग्रसते च, ५. ग्रस्तशङ्कांशं भावभागमात्मन्युपसंहारेण कलयति, ६. तत उपसंहर्तृत्वं ममेदं रूपमित्यपि स्वभावमेव कलयति, ७. तत उपसंहर्तृस्वभावकलने कस्यचिद्भावस्य वासनात्मनाऽवस्थितिं कस्यचित्तु संविन्मात्रावशेषतां कलयति, ८. ततः स्वरूपकलनानान्तरीयकत्वेनैव करणचक्रं कलयति, ९. ततः करणेश्वरमपि कलयति, १०. ततः कल्पितं मायीयं प्रमातृरूपमपि कलयति, ११. संकोचविकासोन्मुखविकासग्रहणरसिकमपि प्रमातारं कलयति, १२. ततो विकसितमपि रूपं कलयति। इत्येता द्वादश भगवत्यः संविदः प्रमातॄन् एकं वाप्युद्दिश्य युगपत् क्रमेण द्विशस्त्रिश इत्यादिस्थित्याप्युदयभागिन्यश्चक्रवदावर्तमाना बहिरपि मासकलाराश्यादिक्रमेणान्ततो वा घटपटादिक्रमेणापि भासमानाश्चक्रेश्वरस्य स्वातन्त्र्यं पुष्णन्त्यः श्रीकालीशब्दवाच्याः। कलनं च गतिः क्षेपो ज्ञानं गणनं भोगीकरणं शब्दनं स्वात्मलयीकरणं च।

एवं च पूर्वोक्ते यागादियोगान्तपञ्चके प्रत्येकं बहुप्रकारं निरूढिर्यथा यथा भवति, तथैवाचरेत् शुद्धविकल्पोदयं यावत्। न च [1]भक्ष्याभक्ष्यशुद्धयशुद्धयादिविवेचनया वस्तुधर्मोज्झितया कल्पनामात्रसारया स्वात्मा खेदनीयः। नहि शुद्धिर्वस्तुनो रूपं नीलत्ववत्, अन्यत्र तस्यैवाशुद्धिचोदनात्। तस्माद् वैदिकात् प्रभृति पारमेश्वरसिद्धान्ततन्त्रकुलोच्छुष्मादिशास्त्रोक्तोऽपि यो नियमो विधिर्वा निषेधो वा, सोऽत्र यावदकिञ्चित्कर एव मन्तव्यः।

एवमत्र संक्षेपेण क्रमदर्शनस्य विशिष्टाः सिद्धान्ताः समुपस्थापिताः। विशेषजिज्ञासुभिस्तन्त्रालोकचतुर्थाह्निकमहार्थमञ्जरीप्रभृतयो ग्रन्था अवलोकनीयाः। शक्तिपारम्यवादिनां क्रमदर्शनानुयायिनामागमग्रन्थानां काली कालसंकर्षिणी भवत्युपदेष्ट्री। शिवश्चात्र शिष्यस्थानीयः प्रश्नानुपस्थापयतीति सत्यं मुख्यं शाक्तत्वमस्यैव दर्शनस्येति शम्॥



१. कुलक्रमदृष्टिमवलम्ब्य कृता शुद्धयशुद्धिव्यवस्था विधिनिषेधमीमांसा चास्मदीये लुप्तागमसंग्रहीये उपोद्घाते (पृ० २१४-२१५) द्रष्टव्या।

आगमीयं दर्शनम्

काशीस्थः कश्चिद् दार्शनिकप्रवरो दर्शनगोष्ठीसमायोजको द्वित्रिवर्षेभ्यः पूर्वं मामवोचत्—यद्यपि नास्ति तन्त्रागमवाङ्मये काचन दार्शनिकी वार्ता, तथापि भवता तत्र समागन्तव्यमिति। दर्शनशास्त्रस्य प्रचलिताः काश्चन शाखाः शास्त्रार्थबहुलाः समधीयानैरेतादृशैर्विपश्चिद्भिर्न दृष्टः स्यात् सायणमाधवीयः सर्वदर्शनसंग्रहः, यत्र किल नकुलीशपाशुपतदर्शनम्, प्रत्यभिज्ञादर्शनम्, शैवदर्शनं च संगृहीतम्। काश्मीरस्य प्रत्यभिज्ञादर्शनस्य गरिमाणं को नाम न जानीते साम्प्रतिको दार्शनिको भारतीयस्य दार्शनिकवाङ्मयस्य तुलनात्मिकया ऐतिहासिकया च दृष्ट्याऽनुशीलनमाचरन्। वस्तुतस्तु तन्त्राणां कापि दार्शनिकी महनीयता नास्तीति डॉ० कीथमहोदयो भणति। तन्मतमनुसरन् म०म०पी०वी० काणेमहोदयोऽपि स्वीयस्य धर्मशास्त्रेतिहासस्य तन्त्रशास्त्रीये प्रकरणे सायणमाधवबन्धुभ्यां सर्वदर्शनसंग्रहे तान्त्रिकदर्शनविषये न किमप्युक्तमिति लिखति। मतमेतदस्माभिः "आगम आणि तन्त्रशास्त्र" (आगम और तन्त्रशास्त्र)[1] इति शीर्षके मराठी-हिन्दी-भाषानिबद्धे निबन्धे तन्त्रागमशास्त्रयोः पार्थक्यनिरसनपूर्वकं समालोचितम्।

तथाहि—सात्वतसंहिता पाञ्चरात्रीया सात्वततन्त्रमिति, पाद्मसंहिता च पाद्मतन्त्रमिति नाम्नाऽपि प्रथिता वर्तते। लक्ष्मीतन्त्रं पाञ्चरात्रागमस्यैव ग्रन्थः। सिद्धान्तशैवीयो मृगेन्द्रागमो मृगेन्द्रतन्त्रमिति, मतङ्गपारमेश्वरागमश्च मतङ्गपारमेश्वरतन्त्रमिति नाम्ना प्रसिद्ध्यति। सर्वासां तन्त्रागमशाखाप्रशाखासिद्धान्तानां संग्राहकोऽभिनवगुप्तप्रणीतो ग्रन्थस्तन्त्रालोकनाम्ना प्रथते। आगमनाम्ना तन्त्रनाम्ना वा प्रथितेषु ग्रन्थेषु प्रायः समाना एव विषयाः प्रतिपादिताः सन्ति। शाक्ततन्त्राणि शाक्तागमनाम्नाऽपि संबोध्यन्ते। वैदिकी तान्त्रिकी चेति द्विविधा श्रुतिः स्मृतिपुराणादिषु प्रख्याता। अत्र तान्त्रिकशब्दः सम्पूर्णस्य आगमिकस्य तान्त्रिकस्य च वाङ्मयस्य संग्राहक इत्येकप्रकृतिकं सम्पूर्णमिदं वाङ्मयमागमनाम्ना तन्त्रनाम्ना वा यथेच्छं संबोधयितुं शक्यते।

---

१. एतन्नामको ग्रन्थो द्रष्टव्यः (पृ० २०-२१)। परिमल प्रकाशन, शक्तिनगर, दिल्ली, सन् १९८४।

पाञ्चरात्रपाशुपतमतयोः प्राचीनताविषये न कश्चन विवादः प्रवर्तते। शाक्तागमानां प्रत्नताविषयोऽप्यस्माभिः पूर्वोक्त एव निबन्धे सुविचारितः। वैदिकं वाङ्मयम्, पाञ्चरात्रपाशुपतमते, जैनबौद्धमते, पौराणिकं वाङ्मयम्, सन्तसाहित्यं चेति वर्तते भारते वर्षे शास्त्रीयस्य वाङ्मयस्य विकासक्रमः। सांख्यं योगः पाञ्चरात्रं वेदाः पाशुपतं मतं चेति कृतान्तपञ्चकस्य सर्वत्राप्रतिहतं प्रामाण्यमूरीक्रियते। [1]कबीरवाणीष्वपि तन्त्रागमीया दृष्टिरेव सर्वत्राऽनारतं स्पन्दते। निदर्शनतया मालिनीविजयोत्तरतन्त्रस्य वचनानीमानि द्रष्टव्यानि—

नात्र शुद्धिर्न चाशुद्धिर्न भक्ष्यादिविचारणम्।
न द्वैतं नापि चाद्वैतं लिङ्गपूजादिकं न च॥
न चापि तत्परित्यागो निष्परिग्रहतापि वा।
सपरिग्रहता वापि जटाभस्मादिसंग्रहः॥
तत्त्यागो न व्रतादीनां चरणाचरणं च यत्।
क्षेत्रादिसंप्रवेशश्च समयादिप्रपालनम्॥
परस्वरूपलिङ्गादि नामगोत्रादिकं च यत्।
नास्मिन् विधीयते किञ्चिन्न चापि प्रतिषिध्यते॥
विहितं सर्वमेवात्र प्रतिषिद्धमथापि वा।
तत्त्वे चेतः स्थिरीकार्यं सुप्रयत्नेन योगिना।
तच्च यस्य यथैव स्यात् स तथैव समाचरेत्॥
तत्त्वे निश्चलचित्तस्तु भुञ्जानो विषयानपि।
न संस्पृशेत दोषैः स पद्मपत्रमिवाम्भसा॥
विषापहारिमन्त्रादिसंनद्धो भक्षयन्नपि।
विषं न मुह्यते तेन तद्वद् योगी महामतिः॥
(१८।७४-८१)

तन्त्रागमवाङ्मये आन्तरवरिवस्यायाः, भावशुद्धेरेव प्राधान्यं प्रतिपाद्यते। शक्तिसंगमतन्त्रे—

विष्ठापूर्णे मृद्घटे तु बहिःशुद्धौ हि किं फलम्।
अन्तःशुद्धिं समासाद्य बहिःशुद्धिं समाचरेत्॥ (४।११।७४)

---

१. "सन्त कबीर के प्रेरक तत्त्व" इति शीर्षकोऽस्मदीयो निबन्धो द्रष्टव्यः। सत्याचार्य प्रकाशपति साहेब अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० २२-२६, वाराणसी, सन् १९८६।

इत्येवमन्तःकरणशुद्धेरेव प्राथम्यं वर्णितम्। विज्ञानभैरव-संकेतपद्धति-तन्त्रालोकादिवचनेषु विषयस्यास्य विस्तरो वर्तते। विभिन्नासु भारतीयासु भाषासु कवयद्भिः सिद्ध-नाथ-सन्तादिपदाभिधेयैः, सूफीनाम्ना प्रसिद्धैरिस्लामधर्मानुयायिभिश्च विचारकैर्भारतीयां तन्त्रागमसरणिमनुसृत्यैव सर्वमेतन्निबद्धमिति श्रद्धेयचरणानां श्रीश्रीगोपीनाथकविराजमहोदयानां स्थापना शनैः शनैः साम्प्रतिकैः सुधीभिरप्यङ्गीक्रियत इति प्रसन्नताया अयं विषयः।

तन्त्रागमीयं हि दर्शनं न शुष्कं तर्कमाश्रयते। "तर्को योगाङ्गमुत्तमम्" (१७।१८) इति मालिनीविजयोत्तरवचने शास्त्रानुमोदितस्यैव तस्योत्तमत्वमुद्घोषितम्। स हि तर्कः—"मनुष्या वा ऋषिषूत्क्रामत्सु देवानब्रुवन् को न ऋषिर्भविष्यतीति। तेभ्य एतं तर्कमृषिं प्रायच्छन्" (१३।१२) इत्येवं निरुक्तकारेण यास्केन मुनिना, "आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना। यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः॥" (१२।१०६) इत्येवं मनुना च प्रशंसितः। "तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्नाः" (३।३२।६५) इति महाभारतवचनम्, "तर्काप्रतिष्ठानात्" (२।१।१) इति बादरायणीयं सूत्रम्, "यत्नेनानुमितोऽप्यर्थः कुशलैरनुमातृभिः। अभियुक्ततरैरन्यैरन्यथैवोपपाद्यते॥" (१।३४) इति वाक्यपदीयकारभर्तृहरिवचश्च निरागमान् पुरुषोत्प्रेक्षामात्रनिबन्धनान् तर्कानेव परामृशन्ति, नागमानुमोदितान्। वेदशास्त्राद्यनुमोदितायां च तर्कसरण्याम्—"सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" (१।१) इति तत्त्वार्थसूत्रपद्धत्या सम्यग्दर्शनस्य सम्यग्ज्ञानस्य सम्यक्चारित्रस्य च समानमानं महत्त्वं वर्तते। सम्यग्दर्शनज्ञानयोः सत्त्वेऽपि सम्यक्चारित्राभावादेव साम्प्रतिकाः केचन भारतीयास्तार्किका वेदान्तिनः "कलौ वेदान्तिनो भान्ति फाल्गुने बालका इव" इत्याभाणकं चरितार्थयन्ति।

तन्त्रागमग्रन्थेषु किल नूनं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणां सिद्धये ज्ञानयोगक्रियाचर्याख्याश्चत्वारः पादाः समुपवर्ण्यन्ते। तत्र सम्यग्दर्शनसिद्धये ज्ञान-(विद्या)पादः, सम्यग्ज्ञानसिद्धये योगपादः, सम्यक्चारित्रस्य सिद्धये च क्रियाचर्यापादौ समुपदिश्यन्ते। पादविभागाभावेऽपि शैव-शाक्त-वैष्णव-बौद्धादिषु सर्वेषु तन्त्रेषु त इमे विषयाः सर्वत्र समुपलभ्यन्ते। अत्र च यद्यपि सम्यक्चारित्रप्रतिपादकयोः क्रियाचर्यापादयोरेव प्राधान्यं विस्तरश्च, एवं सत्यपि यथोचिता दार्शनिकी दृष्टिरपि सर्वत्र समुन्मीलितैव। न केवलं स्पन्दप्रत्यभिज्ञात्रिकदर्शनेषु, शैवागमेष्वपि द्वैतवादिषु सिद्धान्ताख्येषु शाक्तागमेषु च वर्तते विशिष्टो दार्शनिकोंऽशस्तत्रत्येषु विद्यापादेष्वन्यत्र च। अष्टप्रकरणनाम्ना मुद्रितेषु ग्रन्थेषु वर्तन्ते

पञ्च ग्रन्थाः सद्योज्योतिःशिवाचार्यस्य, यो हि शिवदृष्टिकारेण सोमानन्देनापि सादरं स्मृतः। तस्यैव कृतिर्नरेश्वरपरीक्षा भट्टरामकण्ठकृतव्याख्यानयुता कश्मीरग्रन्थमालायां प्रकाशिता। समुपलभ्यते च भोजनृपतिरचितस्तत्त्वप्रकाशः कुमारदेवाघोरशिवाचार्यकृताभ्यां वृत्तिव्याख्यानाभ्यां समुपेतः। एतदाधारेणैव सायणमाधवाभ्यां सर्वदर्शनसंग्रहे शैवदर्शनं संगृहीतम्। कुमारदेवकृते तत्त्वप्रकाशव्याख्याने नरेश्वरपरीक्षाव्याख्याने च रामकण्ठकृते तन्त्रागमविदुषां गहना दार्शनिकी दृष्टिस्तर्कपद्धतिश्चावलोकयितुं शक्येते।

नकुलीशपाशुपतदर्शनेऽपि भूयांसः सूत्र-भाष्य-कारिकाप्रधाना ग्रन्थाः सन्ति मुद्रिताः। अस्य दर्शनस्य प्रवर्तको वर्तते पुराणपठितेष्वष्टाविंशतियोगाचार्येष्वन्तिमो लकुलीशो नाम। तस्य शिष्या लाकुलाः, मौसुलाः, वैमलाः, कारुकाश्चेति नामभिः प्रख्याताः क्षेमराजादिभिः काश्मीरैर्विद्वद्भिः सूच्यन्ते। कारोहणतीर्थावतीर्णेन लकुलीशशिष्येण मुसुलेन्द्रेण हृदयप्रमाणनामा ग्रन्थो रचित आसीदिति परमोक्षनिरासकारिकाव्याख्यायां रामकण्ठो भाषते। प्रपञ्चसार-शारदातिलक-नित्याषोडशिकार्णवादिष्वपि दार्शनिकानि तत्त्वानि विव्रियन्ते। त्रिपुरा-क्रम-कुल-त्रिकतन्त्रेषु नित्याषोडशिकार्णवादिषु शाक्तसम्प्रदायीया महनीया दार्शनिकी विशिष्टा पद्धतिर्विवृता। एवं च नास्ति तन्त्राणां कापि दार्शनिकी महनीयतेति मुधैव भाषितम्।

वस्तुतस्तु पाश्चात्यो विद्वान् जान-उडरफमहोदयस्तत्सहयोगिनश्च भारतीया विद्वांस इदम्प्रथमतया साम्प्रतिके काले तान्त्रिकवाङ्मयस्य प्रकाशकाः प्रचारकाश्च सन्ति। एभिः प्रकाशितं वाङ्मयं दृष्ट्वैव संस्कृतसाहित्येतिहासकारः शर्मण्यो विद्वान् श्रीमान् विण्टरनित्जः पुराणतन्त्रशास्त्रयोरनुशीलनं नैव रुचिरमिति वक्ति। एतादृशाः प्रवादास्तु म० म० पी० वी० काणेमहोदयेन सम्यगुत्तरिताः, किन्तु ते "प्रायेण हि सिद्धान्तप्रियो लोकः" इति क्षेमराजोक्तिम्, "यद्यप्यस्ति त्रिकालज्ञस्त्रैलोक्याकर्षणक्षमः। तथापि लौकिकाचारं मनसाऽपि न लङ्घयेत्॥" इति शक्तिसंगमतन्त्रवचनं च स्मारयन्ति। केचन तान्त्रिका लौकिकाचारं निरस्य स्वेच्छाचारमाचरन्ति स्म। ते च दानसागरकारेण वल्लालसेनेन प्रतिक्षिप्ताः। तेन हि सम्पूर्णं तान्त्रिकं वाङ्मयं सममेव बौद्धमतेन समाजोपेक्षाकुक्षिनिक्षिप्तमभूत्। पाशुपत-पाञ्चरात्रादीनि मतान्यवैदिकानीति प्रवादप्रकर्षश्च क्षते क्षारमिव प्रावर्तत। अनयोपेक्षया शनैः शनैस्तान्त्रिके वाङ्मये विकृतिः पदमधात्। विकृतिमापन्नं तादृशं तान्त्रिकं वाङ्मयं दृष्ट्वैव साम्प्रतिकानां पाश्चात्यानां तदनुवर्तिनां भारतीयानां च प्रावादुकानामुक्तयस्तादृशाः प्रचरन्ति।

पाञ्चरात्रादिवैष्णवागमेभ्यो रामानुजादीनां वैष्णवाचार्याणां दर्शनानि, पाशुपतशैवागमेभ्यश्च शैवदर्शनानि प्रसृतानीत्यत्र को नाम सचेता विवदेत। पाञ्चरात्रोपजीवत्वमुभयोरपि रामानुजमाध्वमतयोः समानो धर्म इति भणति सर्वदर्शनसंग्रहकारः। सात्वतसंहिता-जयाख्यसंहिता-अहिर्बुध्न्यसंहिता-लक्ष्मी-तन्त्रादिषु प्रतिपादिता दार्शनिकी सरणिरेव वैष्णवाचार्यैः सम्यग् विस्तार्यते। श्रीकण्ठभाष्यव्याख्याता श्रीमानप्पयदीक्षितो सद्योज्योतिःशिवाचार्यस्य मोक्षकारिकाम्, रौरववार्त्तिककारबृहस्पतिपादवचनं च समुद्धरति। सद्योज्योतिः-शिवाचार्यः, बृहस्पतिपादश्च शैवागमानामाद्यौ व्याख्याताराविति भट्टरामकण्ठो मोक्षकारिकाव्याख्यानारम्भे भाषते—

याभ्यां प्रकाशितं वर्त्म सिद्धान्ते सिद्धभावतः।
गुरूणामपि तौ वन्द्यौ सद्योज्योतिर्बृहस्पती॥ इति।

एवं च नास्ति तन्त्राणां कापि दार्शनिकी महनीयतेति यत्किञ्चिदेतत्।

स्थूणानिखननन्यायेन तन्त्रागमानां दार्शनिकी महनीयता सप्रमाणमत्र प्रसाध्यते तत्र तत्र विप्रकीर्णान् सिद्धान्तान् संगृह्य संक्षेपेण।

वैष्णवीयेषु वैखानसागमेषु विष्णु-पुरुष-सत्य-अच्युत-अनिरुद्धाख्य-पञ्च-व्यूहरूपेण भगवानर्च्यते। अत्र विष्णुरादिमूर्तिपदेन, पुरुषादयश्च चतुर्मूर्तिपदे-नाभिधीयन्ते। पञ्चमूर्तय एताः पञ्चवीरपदेनाप्युच्यन्ते। वैखानसाः पद्मकोश-प्रतीकाशे महति विश्वस्यायतने हृदये प्रज्वलद्वैश्वानरशिखामध्यस्थं परमात्मानं नारायणापराभिधं श्रीविष्णुमेवाक्षरं ब्रह्मेति विदुः। तदेतद् ब्रह्म निष्कलेन सकलेन च स्वरूपेण राजते। श्रीश्च भवति तस्य शक्तिः। सा च नित्या आद्यन्त-रहिताऽव्यक्तरूपिणी विष्णोः संकल्पाच्च प्रवर्तते।

पाञ्चरात्रीयायां जयाख्यसंहितायाम्, अहिर्बुध्न्यसंहितायाम्, लक्ष्मीतन्त्रे च सात्वतसंहितायां संक्षेपेण प्रतिपादिता दार्शनिकी सरणिरेव समुपबृंहिता। तत्र हि—"त्रिविधेन प्रकारेण परमं ब्रह्म शाश्वतम्। आराधयन्ति ये तेषां रागस्तिष्ठति दूरतः॥" (१।२३) इति परब्रह्मणस्त्रिविधां सत्तां संसूच्य—"षाड्गुण्यविग्रहं देवं भास्वज्ज्वलनतेजसम्। सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षि-शिरोमुखम्॥ परमेतत् समाख्यातमेकं सर्वाश्रयं प्रभुम्।" (१।२५-२६) इत्येवं परब्रह्मणः स्वरूपमत्र वर्णितम्। तदनु—"एतत्पूर्वं त्रयं चान्यज्ज्ञानाद्यैर्भेदितं गुणैः॥ विद्धि तद्व्यूहसंज्ञं सन्निःश्रेयसफलप्रदम्॥" (१।२६-२७) इत्येवं वासुदेव-सङ्कर्षण-प्रद्युम्न-अनिरुद्धाख्यस्य व्यूहचतुष्टयस्य स्वरूपं निरूप्य, "गुणानुवृत्तिभेदेन

युक्तं ज्ञानादिभिर्गुणैः। नानाकृतिं च तद्विद्धि वैभवं भुक्तिमुक्तिदम् ॥" (१।२७) इति संक्षेपेण विभवस्वरूपं व्याख्यातम्।

तत्त्वत्रयव्याख्यानधृतविष्वक्सेनसंहितायां तु परब्रह्मणः पर-व्यूह-विभव-अन्तर्यामि-अर्चावतारभेदेन पञ्चप्रकारत्वमुपदिश्यते। तथैवोपपादितमेतत् तत्त्वत्रये तद्व्याख्याने च। यतीन्द्रमतदीपिकाकारश्रीनिवासदासादयो रामानुज-सम्प्रदायानुयायिनः श्रीवैष्णवास्तदेतद् पञ्चविधं परं ब्रह्मैवोपासते। "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥" (१८।६१) इति भगवद्गीतोक्त्याऽन्तर्यामिस्वरूपस्य ब्रह्मणः सत्त्वं सिद्ध्यत्येव। "सर्वत्रगोऽसि भगवन् किल यद्यपि त्वामावाहयामि हि यथा व्यजनेन वायुम्। गूढो यथैव दहनो मथनादुपैति आवाहितोऽपि हि तथा त्वमुपैषि चाऽर्चाम् ॥" (२५।१२१) इति सात्वतसंहितावचनमप्यर्चावतारस्य सत्तां सूचयति।

तत्र सततोदितया नित्योदिताऽपरनामधेयया दशया युक्तः परवासुदेव इति, शान्तोदितया च दशया युक्तो व्यूहवासुदेव इत्युच्यते। परवासुदेवे षाड्गुण्यं स्तिमितं व्यूहवासुदेवे च प्रबुद्धमवतिष्ठते। शान्तोदितो व्यूहवासुदेवः षाड्गुण्यमहिम्ना यथायथं शान्तेषु चतुर्षु गुणेषु प्रबुद्धयोश्च द्वयोर्द्वयोर्गुणयोः साहाय्येन क्रमशः सङ्कर्षण-प्रद्युम्न-अनिरुद्धाख्यानि त्रीणि रूपाणि धत्ते। एवं च परब्रह्मणश्चातुरात्म्यं निष्पन्नं भवति व्यूहाख्यम्। चातुरात्म्यं चैतज्जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुर्याख्येषु चतुर्षु पदेष्ववतिष्ठते। तत्र तुर्यपदस्थिते परब्रह्मणि चातुरात्म्यं स्तिमितं भवतीत्येकमूर्तिपदेन तदुच्यते, एकेनैव च मन्त्रेण तदाराधनं क्रियते। सुषुप्तिस्वप्नजाग्रत्पदेषु च चातुरात्म्यस्य प्रबुद्धत्वात् तदाराधनाय पृथक् पृथक् चत्वारो मन्त्रा विनियुज्यन्ते। तदेतच्चातुरात्म्यसमाराधनमस्माभिः सात्वतसंहिताया उपोद्घाते (पृ० २२-२९) विस्तरेण विवेचितमिति तत एवावलोकनीयम्। अत्रापि (पृ० २९-३६) संक्षेपेण द्रष्टव्यम्।

जीवानां संसारखेदनिवृत्त्यर्थं वासुदेवादिचतुष्टयमेव प्रत्येकं त्रिधा विभक्तं भवति। तद्यथा—वासुदेवः केशव-नारायण-माधवरूपेण, सङ्कर्षणो गोविन्द-विष्णु-मधुसूदनरूपेण, प्रद्युम्नस्त्रिविक्रम-वामन-श्रीधररूपेण, अनिरुद्धश्च हृषीकेश-पद्मनाभ-दामोदररूपेण व्यक्तचक्रादिलाञ्छनैः सह भगवदेकान्तिनां पोषकत्वेन शाश्वतीमभिव्यक्तिमभ्येति। एतच्च द्वादशविधं स्वरूपमहिर्बुध्न्ये व्यूहान्तरपदेन निरुच्यते (५।४६)। द्वादशव्यूहान्तराणीमानि द्वादशमासाधिपतित्वेन व्याख्यायन्ते पुराणेष्वागमेषु च।

अहिर्बुध्न्यसंहितायामेकोनचत्वारिंशद्विभवदेवाः प्रतिपादिताः—"त्रिंशच्च नव चैवैते पद्मनाभादयो मताः" (५।५७) इति। सात्वतसंहितायां (९।७७-८३) त्वष्टत्रिंशत्संख्याकास्ते वर्णिताः। अत्र सात्वतसंहिताभाष्यकारेण अलशिङ्ग-भट्टेन—"पद्मनाभादयोऽष्टत्रिंशद्विभवदेवाः, तेषामधिपतिर्विशाखयूपस्त्वेकः। तेन सहैकोनचत्वारिंशद्देवा इत्यभिप्रायेण त्रिंशच्च नव चैवैत इत्युक्तम्" (पृ० १८५) इति व्यवस्था दत्ता।

तेषु विभवदेवेषु "लोकनाथस्तु शान्तात्मा" (सा० सं० ८।८१) इत्येवं सविशेषणं लोकनाथो वर्ण्यते। "शान्तात्मेति लोकनाथस्य विशेषणम्" (पृ० १८४) इति हि तद्भाष्यकारः। द्वादशे परिच्छेदेऽस्य ध्यानमेवं वर्ण्यते—"लोकनाथं विशालाक्षं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ वरसिंहासनारूढं ध्यायेन्मीलित-लोचनम्। पद्मासनेनोपविष्टं पद्मगर्भोपमद्युतिम् ॥ करुणाविष्टबुद्धिं च शङ्खपद्मकराङ्कितम्। ज्ञानवैराग्यसद्धर्ममार्गत्रयनिदर्शकम् ॥" (१२।१०८-११०) इति। "अस्य रूपान्तरं बुद्धावतार इति बोध्यम्" (पृ० २३९) इत्युक्त्वा तद्भाष्यकारः पौष्करसंहितावचनमेवं समुद्धरति—"लोकेश्वरः शान्ततनुर्बौद्धं यस्यापरं वपुः। नियन्ता बुद्धिधर्माणां हिंसादोषस्य दूषकः ॥" (३६।२२६) इति। अस्य स्थानं च पौष्करप्रामाण्येनैव प्रदर्शयति—"मगधामण्डले विप्र ! महाबोधधराश्रितः। संस्थितो लोकनाथात्मा देवदेवो जनार्दनः ॥" (३६।३५९-३६०) इति। एवं च पाञ्चरात्रसंहितासु बुद्धस्य भगवतो विभवावतारत्वं वर्ण्यत इत्यत्र नास्ति संशीतिलेशोऽपि। पुराणेषु च भगवतो बुद्धस्य दशावतारेषु परिगणनं क्रियत इति जानन्त्येव सुधियः। न केवलं वैष्णवदर्शनेषु, वैष्णवेषु पुराणेष्वपि पाञ्चरात्रागमीयसिद्धान्तानामुपबृंहणं द्रष्टुं शक्यते।

शिवपुराणे द्विविधः शिवागमः प्रदर्शितः—श्रौतः स्वतन्त्रश्चेति। तत्र स्वतन्त्रः शिवागमो दशधाऽष्टादशधा च विभक्तः कामिकादिसमाख्याभिः प्रसिद्धः। स्वतन्त्रोऽयं शिवागमः सिद्धान्तपदवाच्यः। "सिद्धान्तशब्दश्च पङ्कजा-दिपदवद् योगरूढ्या शिवप्रणीतेषु कामिकादिषु दशाष्टादशसु तन्त्रेषु प्रसिद्धः" (पृ० ५) इति रत्नत्रयोल्लेखिन्यामघोरशिवाचार्यः, "शैवशब्देन अनुत्तीर्ण-पदप्रापकं कैरणादिसिद्धान्तशास्त्रमुच्यते" (११।७४) इति च क्षेमराजः स्वच्छन्दोद्योते निर्वक्ति। श्रौतस्तु शतकोटिप्रविस्तरः, यत्र पाशुपतं व्रतं ज्ञानं चोच्यते। क्रियातपोजपध्यानदानात्मकानि पञ्च पर्वाणि भवन्ति तत्र। तदिदं शास्त्रं चत्वार ऋषयः संक्षिप्योपदिशन्ति रुरु-दधीचि-अगस्त्य-उपमन्युनामानः।

धौम्याग्रजेनोपमन्युना श्रीकृष्णायोपदिष्टं पाशुपतं ज्ञानं महाभारते वायुसंहितायां उत्तरभागे च संगृहीतं विद्यते।

पाशुपतशास्त्रस्य न कोऽप्यागमग्रन्थः साम्प्रतमुपलभ्यते। किन्तु विशुद्धमुनिकृते आत्मसमर्पणे श्वेतादिलकुलीशान्तानामष्टाविंशतिपाशुपतयोगाचार्याणां नामावली दृश्यते। अष्टाविंशतियोगाचार्याणां प्रत्येकं चत्वारः शिष्याः श्रूयन्ते॥ संहृत्य द्वादशोत्तरशतं (११२) शिष्या भवन्ति। सर्वेषामेषां नामानि शिवपुराणादिषु वर्णितान्यास्माकीने "पुराणवर्णिताः पाशुपता योगाचार्याः" इति शीर्षके निबन्धे पुराणपत्रिकामुद्रिते विवेचितानि द्रष्टव्यानि। पाशुपतयोगाचार्येष्वन्तिमो लकुलीशस्तन्नाम्ना प्रसिद्धस्य पाशुपतमतस्य प्रवर्तको मन्तव्यः। लकुलीशपाशुपतदर्शनं च पञ्चधा नवधा च ज्ञातव्यम्। तत्र यामुनाचार्येणागमप्रामाण्ये कारणं कार्यं विधिर्योगो दुःखान्त इति पञ्चधा भिन्ना पाशुपतप्रक्रिया संक्षेपेणैवं व्याख्याता—

उपादानं निमित्तं च व्याख्यातं कारणं द्विधा।
निमित्तकारणं रुद्रस्तत्कला कारणान्तरम्॥

मह्यन्तं महदादि कार्यमुदितं तद्वद् विधिर्गीयते
गूढाचारमुखश्मशानभसितस्नानावसानः परः।
योगो धारणमुच्यते हृदि धियामोङ्कारपूर्वं तथा
दुःखान्तो हि मतोऽपवर्ग इति ते पञ्चापि संकेतिताः॥

आत्यन्तिकी दुःखनिवृत्तिर्दुःखान्तशब्देनोक्ता। तामेव निश्शेषवैशेषिकात्मगुणोच्छेदलक्षणां मुक्तिं मन्यन्ते" (पृ० ९५-९६) इति। इदमत्रावधेयम्—अत्रत्यं दुःखान्तपदव्याख्यानं मुक्तिलक्षणं च न्यायवैशेषिकमतयोः प्रातिनिध्यमाचरति, न लकुलीशपाशुपतमतस्य, सर्वदर्शनसंग्रहे—"अन्यत्र दुःखनिवृत्तिरेव दुःखान्तः, इह तु पारमैश्वर्यप्राप्तिश्च" (पृ० ६४) इत्येवं तत्पदव्याख्यानदर्शनात्। पाशुपतसूत्रपञ्चार्थभाष्ययोश्चास्य विस्तरो द्रष्टव्यः।

नवधा भिन्ना च पाशुपतप्रक्रिया गणकारिकायामष्टश्लोकात्मिकायां सूचिता। गणकारिकाव्याख्यायाम्, सर्वदर्शनसंगृहीते नकुलीशपाशुपतदर्शने, शैवदर्शनबिन्दौ च नवगणस्यास्य विस्तृतं व्याख्यानम्, योगविधेर्मोक्षस्य च स्वरूपमवलोकनीयम्। नवगणस्य वेत्ता आचार्योऽपवर्गमधिगच्छति सच्छिष्ये च तद्योग्यतामादधाति।

परा चैवापरा च विद्या उपनिषत्सु श्रूयते। शैवं ज्ञानमपि परापरभेदाद् द्विविधं भवति। तत्र परमवबोधरूपम्, अपरं च कामिकादितन्त्रस्वरूपम्। अव-

बोधरूपं ज्ञानं शिवस्य शक्तिरेव। सा च द्विविधा—समवायवर्तिनी परिग्रहवर्तिनी च। तत्र समवायवर्तिन्यपि द्विविधा—बोधरूपा, क्रियारूपा चेति। तत्र बोधरूपा सर्वार्थपरिच्छेत्त्री। क्रियारूपा च द्विविधा—अनुग्रहरूपा, तिरोधानरूपा चेति। परावबोधरूपं ज्ञानमपरज्ञानरूपशब्दोपारूढमेवार्थेषु प्रवर्तते। निष्कलाच्छिवादवबोधरूपं ज्ञानमेव प्रथमं नादरूपत्वेन प्रसृतम्। पश्चात् सदाशिवरूपात् तन्त्राकारतां प्राप्तमपरं ज्ञानमेव सिद्धान्तनाम्ना प्रथते। एतच्च त्रिपदार्थं चतुष्पादं च भवति।

पतिपशुपाशाख्यास्त्रयः पदार्था यस्मिन् सन्ति प्रतिपादितास्तत्त्रिपदार्थम्, विद्याक्रियायोगचर्यारूपाश्चत्वारः पादा यस्मिंस्तच्चतुश्चरणं तदेतच्छिवशास्त्रम्। तत्र पशूनामस्वतन्त्रत्वात् पाशानामचैतन्यात् तद्विलक्षणस्य पत्युः प्रथममुद्देशः। चेतनसाधर्म्यात् पशूनां तदानन्तर्यम्। अवशिष्टानां पाशानामन्ते विनिवेश इति। दीक्षायाः परमपुरुषार्थहेतुत्वात् तस्याश्च पशुपाशेश्वरस्वरूपनिर्णयोपायभूतेन मन्त्रमन्त्रेश्वरादिमाहात्म्यनिश्चायकेन ज्ञानेन विना निष्पादयितुमशक्यत्वात् तदवबोधरूपस्य विद्यापादस्य प्राथम्यम्। अनेकविधसाङ्गदीक्षाविधिप्रदर्शकस्य क्रियापादस्य तदानन्तर्यम्। योगेन विना नाभिमतप्राप्तिरिति साङ्गयोगज्ञापकस्य योगपादस्य तदुत्तरत्वम्। विहिताचरणनिषिद्धवर्जनरूपां चर्यां विना योगोऽपि न निर्वहतीति तत्प्रतिपादकस्य चर्यापादस्य चरमत्वमिति विवेकः। तदत्र सर्वप्रथममुद्दिष्टः पतिपदार्थः प्रतिपाद्यते।

सर्वज्ञः सर्वकर्ता सर्वव्यापी सततोदितो नित्यमुक्तः पतिरचेतनस्य जडस्य मायादेर्महामायाप्रमुखस्य जगतः प्रवृत्तिजनकतया सिद्ध्यति। यस्य दृक्क्रियात्मकमैश्वर्यं स्वाभाविकं राजते, स ज्ञानक्रियात्मकशक्तिद्वययुक्तः स्वतन्त्रः प्रभुः शिवः पतिरित्युच्यते। अस्य पत्युः शरीरं स्वशक्तिकिरणात्मकमेव भवति। स च निष्कम्पोऽचलमूर्तिमान्। द्विधा हि आत्मनां मूर्तिः—चला, अचला चेति। तत्र चला तत्त्वभौवनशरीरात्मिका, अचला तु ज्ञानक्रियास्वभावा। तत्रायं पतिरचलमूर्तिमान् न तु भौवनशरीरयुक्तः। सैषाऽचलमूर्तिलक्षणा शक्तिः सर्वोत्कृष्टा परमाण्वादेरप्यतिसूक्ष्मा सर्वदिग्गता अमृतात्मिका प्रध्वस्तावरणा शान्ता आद्यन्तशून्याऽस्य पत्युः शरीरत्वेनोपचर्यते। स पतिर्वपुषो हस्तपादादिशरीरस्याविद्यमानत्वाद् यद् यत् कृत्यं सृष्टिस्थितिसंहारनिग्रहानुग्रहात्मकं करोति, तस्मिन् कृत्येऽस्य पत्युः शरीरं पञ्चकृत्योपयोगिना वपुषा पञ्चब्रह्मरूपेण शाक्तेन शरीरेण कल्पितं भवति। तदुक्तं मृगेन्द्रे—

तद्वपुः पञ्चभिर्मन्त्रैः पञ्चकृत्योपयोगिभिः।
ईशतत्पुरुषाघोरवामाद्यैर्मस्तकादिकम् ॥ (वि० ३।८)

इति। पत्युरस्य च शक्तिरेव करणम्, तयैव तत्तत्क्रियानिष्पादनात्। यथा लोकेऽमूर्तोऽपि कालः क्षणमुहूर्तादिकः षड्ऋतुरूपः स्वस्वोचितपुष्पफलादीनां प्रतिक्षणं द्रव्यपरिपाकस्य बाल्ययौवनादेश्च साधकः कर्ता प्रख्यायते, एवममूर्तोऽपि शिवः कार्यं क्षित्यङ्कुरादिकं जगत् स्वकीययेच्छाशक्त्या निर्मिमीते।

अत्र प्रपञ्चस्य ईश्वरो निमित्तकारणम्, शक्तयः सहकारिकारणम्, बिन्दुरुपादानकारणं भवति। तत्रापि शुद्धेऽध्वनि शिवस्य निमित्तत्वं बिन्दोरुपादानत्वम्, अशुद्धेऽध्वनि तु अनन्तस्य निमित्तत्वं मायायाश्च उपादानत्वं वेदितव्यम्। शिवशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्याख्यानि पञ्च तत्त्वानि शुद्धानि, मायादिपृथिव्यन्तानि चैकत्रिंशत्तत्त्वान्यशुद्धान्यभिधीयन्ते। स चेश्वरो जगज्जन्मस्थितिध्वंसतिरोधानविमुक्त्याख्यानि कृत्यानि करोति।

अत्र जगच्छब्देन जन्मवज्जन्तुचक्रमुच्यते। तस्य जन्म शिवस्यैकं कृत्यम्। स्वसृष्टस्य सर्वलोकस्य पुरुषार्थप्रसिद्धये व्यापारप्रसिद्धये नियोजनं स्थापनं द्वितीयं कृत्यम्। स्थित्यन्ते शुद्धाशुद्धाध्वभोगसाधनतनुकरणभुवनादीनां बिन्दुमायात्मककारणे विलयनद्वारा भवाध्वभ्रमणश्रान्तानां संसारिणां विश्रामायावस्थापनं तृतीयं कृत्यम्। अयमेव च ध्वंसः प्रलय इत्युच्यते। त्रिविधोऽयं प्रलयो मतङ्गपारमेश्वरे विद्यापादे पञ्चविंशे पटले विस्तरेण प्रतिपादितः। तत्र महाप्रलये माया-पुरुष-शिवव्यतिरेकेण सर्वेषामुपसंहारो भवति। तदुक्तं तत्त्वप्रकाशे—

> माया पुरुषः शिव इत्येतत् त्रितयं महार्थसंहारे।
> अवशिष्यते पुनस्तत् प्रवर्तते पूर्ववत् सृष्टौ॥ (श्लो० ६९)

तिरोभावः पाशानुग्रहेण पशूनां यथानुरूपाद् भोगादप्रच्युतिश्चतुर्थं कृत्यम्। अयमेव संरक्षणाख्ययाऽन्यत्रोक्तः। विमुक्तिश्चानुध्यानमनुग्रहः पाशतिरोधानेनाणूनां परापरमोक्षदानम्। तत्रापरमोक्षः षड्विधः, परस्त्वेकविध इति सप्तप्रकारोऽयं मोक्षो मतङ्गपारमेश्वरे (यो० ५।६३-६७) वर्णितः। इदमनुग्रहरूपं कृत्यं शिवः सृष्टिकाले संहारकालेऽपि च करोतीति मृगेन्द्रे (वि० ५।२-३) प्रतिपाद्यते। पौष्करे तु प्रत्ययकालेऽपि शिवस्य पञ्चकृत्यानि प्रवर्तन्त इति निर्दिष्टम्। एवंप्रकारकस्य पतिस्वरूपस्यावबोधेन पाशेभ्यो विमुच्यन्ते पशवः।

शरीरव्यतिरिक्तोऽनश्वरो नित्यो न तु बौद्धानामिव क्षणिकः, व्यापी न तु जैनानामिव शरीरमात्रपरिमाणः, विभिन्नोऽनेको न तु वेदान्तिनामिवैकः,

समलो मलेन सहितोऽज्ञानेनावृतोऽजडो ज्ञानक्रियास्वभावः, स्वार्जितस्य धर्माधर्मात्मकस्य कर्मणः फलभोक्ता, धर्माधर्मात्मकस्य कर्मणः सम्पादयिता, अल्पज्ञो न तु सर्वज्ञः, ईश्वरेण प्रेरितश्च भोगं मोक्षं च भुञ्जानः पुरुषो जीवात्मा पशुरित्युच्यते शैवागमेषु। विज्ञानाकलप्रलयाकलसकलभेदात् पशुरयं त्रिविधो भवति। तत्र प्रथमो विज्ञानयोगसंन्यासैर्भोगेन वा कर्मक्षये सति कलादिभोगबन्धस्याभावात् केवलमलमात्रयुक्तो विज्ञानाकल इति व्यपदिश्यते। द्वितीयस्तु प्रलयेन कलादेरुपसंहारान्मलकर्मयुक्तः प्रलयाकल इति व्यवह्रियते। तृतीयश्च मलमायाकर्मात्मकबन्धत्रयसहितः सकल इति संलप्यते।

मल-तिरोधानशक्ति-महामाया(बिन्दु)-माया-कर्माणि पञ्चापि पुरुषबन्धकतयाऽस्मिन् शास्त्रे पाशपञ्चकत्वेन प्रसिद्धानि। यदुच्यते—"मलः कर्म महामाया मायोत्थमखिलं जगत्। तिरोधानकरी शक्तिः पाशत्वेनार्थपञ्चकम्॥" इति। तत्र पाशत्वं नाम शिवानन्दाभिव्यक्तिविरोधित्वम्। तच्चाणवमलस्याच्छादकतया, तिरोधायकशक्तेस्तु तत्प्रेरकत्वेन, बिन्दुमायाकर्मणामपि भोगभोग्यसम्पादनद्वारा वैषयिकसुखादिजनकत्वेन च बोध्यम्। तत्र चत्वारः पदार्था जडरूपाः, तिरोधायकशक्तिस्तु चिद्रूपाऽपि पाशानुग्राहकत्वात् पाश इत्युपचर्यते। प्रथमो मलाख्यः पाश आणवनाम्नाऽपि प्रसिद्ध्यति। अस्य चाणवोक्तिर्विभोरात्मनोऽणुत्वसम्पादनात्। अत्र महामायामनुपादाय पाशचतुष्टयं मृगेन्द्रागमादिषु वर्ण्यते। तिरोधायकशक्तेरपि पाशत्वमौपचारिकमेव। अत एव मल-कर्म-मायारूपस्त्रिविध एव पाशः स्वायम्भुवागमे वर्णितः—"मायेयमाणवं कार्म चैतावदणुबन्धनम्" इति। "अथात्ममलमायाख्य" इत्यादिके रौरवस्वायम्भुववचनेऽपि पाशत्रयमेव निदर्श्यते। प्रयोगमञ्जरीकारेणापि त्रय एव पाशाः स्वीकृताः। मलपदेनाणवं मलं संगृह्य कर्ममायापदाभ्यां सह मलपदं च संयोज्य आणव-मायीय-कार्माख्यास्त्रयो मलाः प्रतिपाद्यन्ते त्रिकादिदर्शनेषु। अत्रापि केवलाणवमलयुक्तो विज्ञानाकलः, आणवकार्ममलसंवलितः प्रलयाकलः, त्रिविधमलसंयुक्तश्च सकल इति त्रिविधः पशुः प्रतिपादित एव। शाक्तदर्शनेष्वपि मलत्रयमेतत् प्रतिपाद्यते।

एतेषां पाशानामसंस्पर्शे शिवसाम्यरूपं मोक्षं क्रमेणायमात्मा प्राप्नोति। अस्यां स्थितावपि स शिवात् पृथगेव सन्तिष्ठते। अतो मोक्षेऽपि पशोः शिवात् पृथक् सत्तास्वीकाराद् द्वैतमिदं दर्शनम्। आत्मा यदा कर्मसाम्यमलपरिपाकाभ्यां युज्यते, तदा तस्मिन्ननुग्रहाख्या पारमेश्वरी शक्तिः पतति। शक्तिपात इति समाख्यया तदागमेषु परिचीयते। तत्र कर्मसाम्यं नाम समवेतयोर्विरुद्धफलयोः

पुण्यरूपयोरपुण्यरूपयोः पुण्यापुण्यरूपयोर्वा युगपत् फलौन्मुख्यम् । इदं च तिरोधानशक्तिनिवर्तनद्वाराऽनुग्रहशक्तिनिपाते हेतुः । अस्य च शक्तिपातस्य संसारविद्वेषमुमुक्षाशिवभक्त्यादीनि चिह्नानि । एतैश्चिह्नैरञ्चितं संजातशक्तिपातं शिष्यं विलोक्य गुरुस्तं दीक्षयति, षडध्वशुद्धिमुखेन क्रियाकलापेन तस्य मलान् विशोधयति । शैवेषु वैष्णवेषु चागमेषु कर्मणां भोगहेतुत्ववत् कर्मसाम्यावस्थायां मोक्षहेतुत्वमपि स्वीक्रियते । आचार्यशिष्ययोरुभयोरपि सम्बन्धसम्पादकोऽत्र शिवस्वरूपो मन्त्र एवाभिमन्यते । शक्तिपातसमन्वितो हि शिष्यो देशिकमनुप्राप्य दीक्षाक्षपितकल्मषो निर्मलः सन् शिवसाम्यं लभते । शिवस्येव जीवानामपि सार्वज्ञ्यादिकं पूर्वमेवास्ते । किन्तु संसारदशायां मलरुद्धं सन्न प्रकाशते । मुक्तौ तु मलविगमेनाभिव्यज्यते । तस्मात् स्वीयगुणाभिव्यक्त्या शिवसाम्यमिति सिद्धान्तशैवा अभिव्यक्त्या शिवसाम्यमङ्गीकुर्वते ।

"दशाष्टादशवस्वष्टभिन्नं यच्छासनं विभोः । तत्सारं त्रिकशास्त्रं हि तत्सारं मालिनीमतम् ॥" (१।१८) इति तन्त्रालोकेऽभिनवगुप्तो वक्ति । मालिनीमते च—"उच्चारकरणध्यानवर्णस्थानप्रकल्पनैः । यो भवेत् स समावेशः सम्यगाणव उच्यते ॥ उच्चाररहितं वस्तु चेतसैव विचिन्तयन् । यं समावेशमाप्नोति शाक्तः सोऽत्राभिधीयते ॥ अकिञ्चिच्चिन्तकस्यैव गुरुणा प्रतिबोधतः । जायते यः समावेशः शाम्भवोऽसावुदाहृतः ॥" (२।२१-२३) इत्येवं समावेशमुखेन आणव-शाक्त-शाम्भवोपायानां स्वरूपं निर्दिष्टम् । सोऽयं विषयस्तन्त्रालोके द्वितीयादिद्वादशाह्निकपर्यन्तमतीव विस्तरेण, तन्त्रसारे (पृ० ८-११४) नातिविस्तरेण, महार्थमञ्जरीपरिमले (पृ० १३८-१५३) च संक्षेपेणानुपायप्रक्रियया सह वर्णितो द्रष्टव्यः ।

अत्र तदुपायचतुष्टयलभ्यं परतत्त्वस्वरूपं त्रिपुरा-क्रम-कुल-त्रिकसाधारणं विशिष्टं च निरूप्यते । शैवेषु शाक्तेषु चाद्वैतागमदर्शनेषु प्रकाशशब्दः शिवतत्त्ववाचकत्वेन, विमर्शशब्दश्च शक्तितत्त्ववाचकत्वेन प्रसिद्धः । शिवपारम्यवादिनः शैवाः, शक्तिपारम्यवादिनः शाक्ता उच्यन्ते । तत्र शाक्ते सम्प्रदाये षडध्वान्तःपाति षट्त्रिंशत्तत्त्वातीतं ब्रह्म संविद्रूपम्, शैवे तु सम्प्रदाये परमशिवस्वरूपम् । भट्टप्रद्युम्नेन तत्त्वगर्भे षट्त्रिंशत्तत्त्वानां संविच्छक्तिप्रसरमात्रत्वमङ्गीक्रियते । एवं च शाक्तेषु दर्शनेषु संविदभिधानं परं ब्रह्म । तत एव सर्वं प्रवर्तते । संविदियं शैवैरपि नापलपितुं शक्या । अत एवोक्तमभिनवगुप्तेन प्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिन्याम्—"इह भावानां सत्त्वमसत्त्वं वा व्यवतिष्ठमानं संविद्विश्रान्तिमन्तरेण नोपपद्यते । संविद्विश्रान्ता हि भावाः प्रकाशमाना भवन्ति । प्रकाशमानता चैषां

संविदभेद एव। प्रकाश एव संविद् यतः।""तदमी प्रकाश एव तावत् विश्रान्ता भावाः। प्रकाशश्च विमर्शशून्यो न भवति।""संविदो विमर्शपर्यन्तत्वात्" (भा० १, पृ० ४-६) इति। अत्र तेन शिवपारम्यानुसारं संविदः प्रकाशविमर्शात्मकत्वं साध्यते। शाक्तं तु दर्शने संविदः षट्त्रिंशत्तत्त्वातीतत्वात् प्रकाशविमर्शात्मकस्य शिवशक्तिरूपस्याद्यस्य तत्त्वद्वयस्यापि तत्प्रसरमात्रत्वमेव सिद्धयति। अत एव योगिनीहृदय-ऋजुविमर्शिन्यादिषु तत्र तत्र मन्त्र-मातृका-मुद्रा-चक्रादीनां संविदात्मकत्वमेव प्रदर्श्यते।

देशकालाकारैरनियन्त्रितस्वभावत्वान्महत्त्वोपेता त्रित्वावस्थितसमस्तधर्मपूरणी चिदानन्दघनस्वात्मपरमार्था स्पृहणीयतया हृदयहारिणी संविदेव महात्रिपुरसुन्दरीपदाभिलप्या देवता त्रैपुरे दर्शने। संविदेव भगवती स्वान्तःस्थितं विश्वं बहिः प्रकाशयतीति हि शाक्तदर्शनरहस्यम्। सोऽयं शक्तिपारम्यपक्षो नित्याषोडशिकार्णवे चतुर्थे पटले—"त्रिपुरा परमा शक्तिराद्या जातादितः प्रिये" (४।४) इत्यादिना "एवं देवो त्र्यक्षरा तु महात्रिपुरसुन्दरी" (४।१८) इत्यन्तेन ग्रन्थेन सम्यग् व्याख्यातः। यदाधृत्य "शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि" (सौ० ल० १) इत्यादीनि स्तुतिवचांसि प्रसरन्ति।

एवं च वामकेश्वरदर्शने त्रिपुराभिधाना परा संविदेव परब्रह्मेत्युच्यते। "त्रिमूर्तिसर्गाच्च पुराभवत्वात् त्रयीमयत्वाच्च पुरैव देव्याः। लये त्रिलोक्या अपि पूरकत्वात् प्रायोऽम्बिकायास्त्रिपुरेति नाम॥" इति, शिवशक्त्यात्मसंज्ञेयं तत्त्वत्रितयपूरणात्। त्रिलोकजननी चाथ तेन सा त्रिपुरा स्मृता॥" इति च त्रिपुरानिर्वचनप्रतिपादकौ श्लोकौ प्रसिद्धौ। त्रिपुरापदस्य नानाविधा निरुक्तयो दृश्यन्ते। तत्र त्रिशक्ति-त्रिचक्र-त्रिधाम-त्रिबीज-त्रितत्त्व-त्रिगुण-त्रिकोण-त्रिमूर्तिप्रभृतीनां त्रित्वसंख्याविशिष्टानां सर्वेषामेव पदार्थानां जननी सा निरुच्यते।

एवमेव त्रिकदर्शनमपि त्रित्वसंख्याप्रियम्। तथाहि—सिद्धा-नामकमालिनीतिविख्याततन्त्रत्रयाश्रितत्वात्, पर-परापर-अपररूपत्रिकप्रतिपादकत्वात्, तदन्तर्गतस्य त्रिकत्रयस्य शिवशक्तितत्सामरस्यरूपस्य, शिवशक्तिनररूपस्य, परा-अपरा-परापरादेवीरूपस्य च व्याख्यायां प्राधान्येन प्रवृत्तत्वात्, भेद-भेदाभेद-अभेदरूपस्य त्रिप्रकारस्यापि ज्ञानस्य दार्शनिकदृशा स्पष्टीकरणाच्चेदं त्रिकदर्शनतया प्रख्यायते।

त्रैपुरे सम्प्रदाये सङ्केतपद्धतिं योगिनीहृदयं चानुसरन्तः शिवानन्दविद्यानन्द-अमृतानन्द-भास्कररायप्रभृतय आचार्या अनाख्यं तुरीयं समष्टि-

स्वरूपं वा तत्त्वमेकमधिकं परिगणय्य धाम-तत्त्व-पीठ-लिङ्ग-शक्ति-बीजादिकस्य चातुर्विध्यमङ्गीकुर्वन्ति। "क्रमः चतुष्टयार्थः" (त० वि० १।१०६) इति च जयरथो भणति। क्रमस्त्र्यर्थः, चतुष्टयार्थः, पञ्चार्थ इति त्रयः पक्षा डॉ० नवजीवनरस्तोगी-ग्रन्थे (पृ० १०-१३, ७२) टिप्पणीषु प्रदर्शिताः। तत्राद्यं पक्षद्वयं पूर्वोक्तमतद्वय-मनुसरति। तन्त्रालोके तद्विवेके च क्रमश्चतुष्टयार्थ इत्येष पक्षो व्याख्यातः।

महेश्वरानन्दादिभिस्तु लकुलीशपाशुपतदर्शनवत् पदार्थपञ्चकस्य तद्भिन्नप्रकृतिकस्य प्रतिपादकतया क्रमदर्शनं व्याख्यायते। तद्यथा—क्रमदर्शना-भ्युपगताः परतत्त्वस्य स्फुरणधारा व्योमवामेश्वरी-खेचरी-दिक्चरी-गोचरी-भूचरीनाम्न्यः पञ्च। परशक्तयः सृष्टि-स्थिति-संहार-अनाख्या-भासारूपाः पञ्च। वाग्भेदाः परा-सूक्ष्मा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरीरूपाः पञ्च। क्रमेणार्च्यदेवता-चक्राणि श्रीपीठ-पञ्चवाह-नेत्रत्रय-वृन्दचक्र-गुरुपङ्क्तिरूपाणि पञ्च। परतत्त्व-स्वरूपत्वेन तदभेदेन विद्यमानाः शक्तयश्चित्-आनन्द-इच्छा-ज्ञान-क्रियारूपाः पञ्च। इयं पञ्चकधारा मौलिकस्य काल्याः क्षेप-ज्ञान-प्रसंख्यान-गति-नादरूप-कृत्यपञ्चकविचारस्य प्रभावात् प्रसूतेति प्रतीयते। पाशुपतं हि पदार्थपञ्चक-मष्टगणेषु विभक्तं भिन्नप्रकृतिकमेव।

त्रिविधानां चतुःसंख्याकानां पञ्चप्रकाराणां चैषां पदार्थानां व्याख्यान-मुखेनैव प्रवर्तते त्रिपुरा-त्रिक-क्रमदर्शनानां वैशिष्ट्यम्। किञ्च, "यत्पीठचक्रार्पित-पञ्चवाहप्रकाशमानन्दखमूर्तिचक्रम्। अष्टाष्टचक्रं प्रविराजते तद् गुरुक्रमौघं सचतुष्टयार्थम्॥" इति महाम्नायोक्तिमुद्धरन् महेश्वरानन्दः—"श्रीपीठपञ्च-वाहनेत्रत्रयवृन्दचक्राणि स्मरत। स्मरत च गुरूणां पङ्क्ति पञ्च च शक्तीः सृष्टिप्रमुखाः॥" (गा० ३६) इत्यादिगाथाव्याख्यानमुखेन—"धाममुद्रावर्ण-कलासंविद्भावस्वभावतः। पाताऽनिकेतदृष्ट्या च वृन्दचक्रं प्रकाशितम्॥" इति वचनं च स्मरन् क्रमदर्शनवैशिष्ट्यं विशेषतः प्रकटयतीति तत् तत्रैव द्रष्टव्यम्।

कौलागमे चानुत्तरमेव परमं तत्त्वम्। अनुत्तरा च परा प्रतिभा परावाग-परपर्याया वर्तते तस्य शक्तिः। प्रकाशविमर्शयोरिवानयोः सामरस्यमद्वयत्वं चोपेयते। अत एवानुत्तराभिधमिदं षट्त्रिंशत्तत्त्वातीतं सप्तत्रिंशं तत्त्वम्। अनुत्तरः शिवोऽत्र कुलाकुलपदाभ्यां सूच्यते, तेन सामरस्यमापन्ना च शक्तिः कौलिकीत्यभिधीयते। तदुक्तं तन्त्रालोके—"अकुलस्यास्य देवस्य कुलप्रथन-शालिनी। कौलिकी सा परा शक्तिरवियुक्तो यया प्रभुः॥" (३।६७) इति, "नौम्यनुत्तरनाथस्य रश्मिचक्रमहं सदा। शिवशक्तीति विख्यातं परापरफलप्रदम्॥

यत्रोदितमिदं चित्रं विश्वं यत्रास्तमेति च। तत्कुलं विद्धि सर्वज्ञ शिवशक्तिविवर्जितम् ॥" इति च तद्व्याख्याने विवेके। अस्यानुत्तरतत्त्वस्य विशिष्टं स्वरूपमभिनवगुप्तकृते परात्रीशिकाव्याख्याने द्रष्टव्यम्।

तदेतेषु त्रिपुरा-त्रिक-क्रम-कुलदर्शनेष्वद्वयवादिषु बन्धमोक्षयोर्नास्ति काचन वास्तविकी सत्ता। तथाहि—"वस्तुस्थित्या न बन्धोऽस्ति तदभावान्न मुक्तता" इत्यात्मसप्तत्याम्, "बन्धनं बन्धकृद् बध्यस्त्रिष्वप्येको न भिद्यते। स्वविकल्पकृतैर्बन्धैर्बध्यते त्वनिशं जगत् ॥" इति च स्वस्वभावसंबोधने श्रूयते। "नान्यत्र गमनं स्थानं मोक्षोऽस्ति सुरसुन्दरि। अज्ञानग्रन्थिभेदो यः स मोक्ष इति कथ्यते ॥" इति च सर्वज्ञभैरवे। "नान्यत्र गत्या मोक्षोऽस्ति सोऽज्ञानग्रन्थिकर्तनात्। तच्च संविद्विकासेन श्रीमद्वीरावलीपदे ॥" इति वीरावलीवचनं चात्रानुसन्धेयम्। शैववैष्णवयोरुभयोरपि परमार्थसारयोः—"मोक्षस्य नैव किञ्चिद् धामास्ति न चापि गमनमन्यत्र। अज्ञानग्रन्थिभिदा स्वशक्त्यभिव्यक्तता मोक्षः ॥" (श्लो० ६०) इत्युक्तिरवलोक्यते। तत्र वैष्णवे परमार्थसारे—"अज्ञानमयग्रन्थेर्भेदो यस्तं विदुर्मोक्षम्" (श्लो० ७३) इत्युत्तरार्धपाठः।

तदेतद्विशालं दार्शनिकं वाङ्मयं विस्मृतिगर्ते निपतितमिव, विद्वद्भिरुपेक्षितमिव साम्प्रतमास्ते। येन हि विना बौद्धमहायानवज्रयानशाखयोः, जैनधर्मस्य, पौराणिकधर्मस्य च विकासक्रमो नैव याथार्थ्येन ज्ञातुं शक्यते। बौद्धजैनधर्मयोः स्वरूपपरिवर्तने पौराणिकधर्मस्य प्रतिष्ठायां च कियान् वर्तते नाम आगमिकस्यास्य वाङ्मयस्य प्रभाव इति नाद्यावध्यवधारितम्। दक्षिणे भारते वैष्णवानां शैवानां च भक्तानाम्, उत्तरे भारते सिद्धानां नाथानामन्येषां च प्रभुभक्तानाम्, इस्लाममतानुवर्तिनां सूफीभक्तानां च वाङ्मयस्याध्ययनं साम्प्रतं वेदान्तस्य पौराणिकधर्मस्य वा छत्रच्छायायां विधीयते। किन्तु शाङ्कराद्वैतमपहाय वेदान्तस्य सर्वाः शाखा वैष्णवैः शैवैश्चागमैः प्रभाविताः, वैष्णवानां शैवानां सिद्धानां नाथानां च वाङ्मयं तानेतानागमग्रन्थानेव सार्वात्म्येनानुसरतीति इदम्प्रथमतया श्रद्धेयैः कविराजमहोदयैर्मौखिकेषूपदेशेषु निबन्धेषु च वितानितम्। सूफीमतमपि शाङ्कराद्वैतदर्शनापेक्षया प्रत्यभिज्ञादर्शनमद्वैतवादिनं शाक्तं च दर्शनं वस्तुतोऽनुधावतीति ते प्रत्यपीपदन्। वज्रयानसहजयानकालचक्रयानानां शाक्तदर्शनानुस्यूततामपि ते निर्दिष्टवन्तः। वेदोत्तरकालीनस्य सम्पूर्णस्य भारतीयस्य वाङ्मयस्य तैर्निर्धारितेनानेन पथा परिशीलनं नितान्तमपेक्षितम् ॥

तन्त्रशास्त्राणां सामयिक उपयोगः

विशालस्य भारतीयवाङ्मयवटवृक्षस्य सन्ति सुदृढं प्ररूढाः शाखा-प्रशाखाः। तासु तन्त्रशास्त्रशाखामधिरुह्य वयमत्र विचाराय समवेताः स्मः। प्रस्तुतेऽस्मिन् निबन्धे न कश्चन शास्त्रीयो गवेषणाभरितो वा विषयश्चर्च्यत इति शीर्षकावलोकनेनैव ज्ञातं स्यात् श्रीमद्भिः। विविधदेश-वेशभूषा-भाषा-धर्म-वर्ग-वादाद्युपाधिभिर्विभाजितो मानव-समाजः कथं नाम सुखेन शान्त्या च जीवेत् परमाण्वस्त्रभोत्या त्रासित इति वर्तते साम्प्रतिकी विषमा समस्याऽस्माकं समक्षम्। सति समये समाधानमस्या अपेक्षितमिति तदेवात्र विचार्यते तन्त्रशास्त्र-सरण्या। प्रत्नेऽप्यस्मिन् शासने पिहितानि वर्तन्ते साम्प्रतिकमानवीयसमस्यानां समाधानबीजानीति तान्यत्र प्रकाश्यन्ते।

सर्वप्रथमं तावदस्माभिः परिधिरस्य शास्त्रस्य नूनं निर्धारणीयः। त्रिविभागं चतुष्पादं खलु शासनमेतत्। संहितापदेन परिगृहीता वैष्णवागमाः, आगम-पदेन संगृहीताः शैवागमाः, तन्त्रपदाभिलप्यानि च शाक्तानि, शैवानि, बौद्धानि तन्त्राणीति भिन्नान्येतानि शास्त्राणीति प्रतिपाद्यते कैश्चन विपश्चिद्भिः। मतमेतदविचारितरमणोयमिति साधितमस्माभिरिदम्प्रथमतया मराठीभाषायां प्रकाशिते [1]"आगम आणि तन्त्रशास्त्र" इत्याख्ये निबन्धे। वस्तुतस्तु संहिता-गमतन्त्रपदाभिलप्यं त्रिविभागमिदं सम्पूर्णं तान्त्रिकं वाङ्मयं शैवाद्यागमेषु विद्या-क्रिया-योग-चर्याख्येषु चतुर्षु पादेषु प्रतिपादितान् सर्वान् विषयान् पादभेदेना-भेदेन वा क्वचन नामभेदेन वा वर्णयतीति नात्र काचन विचिकित्सा। एवं च [2]वैखानस-पाञ्चरात्र-भागवतभेदभिन्ना वैष्णवागमाः, पाशुपत-सिद्धान्त-कालामुख-कापालिक-कौल-प्रत्यभिज्ञा-वीरशैवादिभेदभिन्नाः शैवागमाः, नानाविद्योपासा-विधायकाः शाक्तागमाः, क्रियाचर्यायोगानुत्तरभेदभिन्ना बौद्धागमाः, पद्मावत्यादि-समुपासाविधायका जैनागमाश्च सर्वे एते तन्त्रशास्त्रपदाभिलप्या अपि भवन्ति।

---

१. पुण्यपत्तनस्थ(पूना)वेदशास्त्रोत्तेजकसभया १९७८ ई० वर्षे प्रकाशिते "प्राचीन भारतीय विद्येचे पुनर्दर्शन" इत्याख्ये ग्रन्थे १८१–१९६ पृष्ठेषु प्रकाशितोऽयं निबन्धः। अस्य हिन्दीरूपान्तरम् "आगम और तन्त्रशास्त्र" इत्याख्ये ग्रन्थे (पृ० १–२५) द्रष्टव्यम्।

२. "पाञ्चरात्रं भागवतं तथा वैखानसाभिधम्" नित्याषोडशिकार्णवसेतुबन्धे (पृ० ५) भास्कररायेण समुद्धृतम्।

तदेतस्यागमशास्त्रस्य तन्त्रशास्त्रपदाभिलप्यस्य विशालं वाङ्मयमास्ते, इति जानीमो वयम्। पाञ्चरात्रस्य पाशुपतस्य च मतस्य प्राचीनताविषये [1]डॉ० आर० जी० भाण्डारकर डॉ० हेमचन्द्ररायचौधरी[2]-महोदयाभ्यां सम्यग् विचारितम्। प्राचीने बौद्धवाङ्मये[3] समुपलभ्यते पाञ्चरात्राणां पाशुपतानां च आचाराणां समुल्लेखो यत्र तत्र। शतपथब्राह्मणे (१३।६।१) पाञ्चरात्रसत्रं वर्ण्यते। छान्दोग्योपनिषदि (७।१।२) श्रुता एकायनविद्या पाञ्चरात्रागमस्यैव नामान्तरम्। महाभारते नारायणीयोपाख्याने स्फुटमेवोच्यते—

सांख्यं योगः पाञ्चरात्रं वेदाः पाशुपतं तथा।
ज्ञानान्येतानि राजर्षे विद्धि नानामतानि वै॥ इति।
(३४९।६४)

अत्रैव (३४९।६५-६८) सांख्यस्य कपिलः, योगस्य हिरण्यगर्भः, वेदानामपान्तरतमाः, पाशुपतस्य श्रीकण्ठः, पाञ्चरात्रस्य च स्वयं भगवान् वक्तेति प्रतिपाद्यते। अन्यत्राप्युच्यते—

सांख्यं योगः पाञ्चरात्रं वेदाः पाशुपतं तथा।
स्वयंप्रमाणान्येतानि न हातव्यानि हेतुभिः॥ इति।

पाञ्चरात्रमतानुयायी राजा वसुरुपरिचरोऽहिंसकेन सत्रेण नारायणमीडयामासेति महाभारत एव नारायणीयोपाख्याने[4] वर्णितम्। प्राचीनतमेषु शिलाशासनेषु[5] पाणिन्यादिग्रन्थेषु च समुल्लिखिता वासुदेवोपासना इतिहासज्ञैरप्यङ्गीकृता तदेतस्यैव धर्मस्याङ्गम्। कृष्णशुक्लयजुर्वेदयोः [6]शतरुद्रियाध्याये वर्ण्यते रुद्रस्य महिमा। अत्र रुद्रः स्तेनानां तस्कराणां शूद्राणामतिशूद्राणां चाप्याराध्यतया वर्णितः। [7]कृष्णयजुर्वेदसंहितारण्यकयो रुद्रस्या-

१. "वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड अदर माइनर रिलीजस सिस्टम्स" इत्याख्ये ग्रन्थे।

२. "अर्ली हिस्ट्री आफ दि वैष्णव सेक्ट" इत्याख्ये ग्रन्थे।

३. धम्मपदे १४१ गाथा द्रष्टव्या।

४. शान्तिपर्वणि ३३६ अध्याये १०-११ श्लोकौ द्रष्टव्यौ।

५. वैष्णविज्म०, पृ० ३-४

६. तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाण्डे पञ्चमः प्रपाठकः, माध्यन्दिनसंहितायां षोडशोऽध्यायश्च।

७. मैत्रायणीयसंहितायां २।९।१, २।९।१०; तथा तैत्तिरीयारण्यके १०।४३–४७ स्थलं द्रष्टव्यम्।

घोरवामदेवादिपञ्चस्वरूपाणां भस्मोद्धूलनादिविधेश्च दृश्यते तादृगेव स्वरूपम्, यादृशं हि वर्ण्यते पाशुपतसूत्रकारेण। श्रीकण्ठः पाशुपतमतस्याद्यः प्रवक्तेत्यनुपदमेव प्रदर्शितेन महाभारतवचनेन सिद्ध्यति।

ताविमौ पाञ्चरात्रपाशुपतमतावेव परवर्तिनो वैष्णवस्य शैवस्य च धर्मस्य आधारस्तम्भौ। बौद्धजैनधर्मयोराविर्भावात् प्राग् आभ्यां भारतीयायां संस्कृतौ वैदिके धर्मे चावश्यकं संशोधनं परिवर्तनं च सम्पादितम्। तदेवं कुर्वद्भ्या-मप्याभ्यां बौद्धानां जैनानामिव च न वैदिको धर्मः सर्वथा प्रत्याख्यातः, किन्तु तत्प्रामाण्याङ्गीकारमुखेनैव तत्र किमप्यौज्ज्वल्यमाहितम्। अस्मिन् प्रसङ्गे वसोरुपरिचरस्योपाख्यानं[1] निदर्शनतया समुपस्थापयितुं शक्यते, यत्र हि नारायणोपासकस्य गगनविहारसामर्थ्यवतस्तस्य हिंसकयागसमर्थनेन तत्सामर्थ्यनाशः समुपवर्णितः।

पाञ्चरात्रं पाशुपतं च वाङ्मयमागमपदाभिलप्यं भवति। तदनेन वाङ्मयेन न केवलं वैदिके धर्मे, अपि तु कालपरिपाकेन बौद्धधर्मेऽपि परिष्कारः सम्पादितः। तेन हि तत्र महायानशाखा प्रसूतिं लेभे। अपि च, तदनुप्राणिता एव सन्ति मूर्ति-स्थापत्य-चित्र-संगीतादिकाः कलाः। विद्या-क्रिया-योग-चर्याख्येषु चतुर्षु पादेषु प्रायो विभक्तानि सन्त्यागमशास्त्राणि। विद्यापादे ज्ञानस्य (दर्शनस्य), क्रियाचर्यापादयोः प्रसङ्गतः कलानाम्, योगपादे च योगस्य विधिर्वर्णितः। परवर्तिनां शैवानां शाक्तानां बौद्धादीनां च तन्त्राणां विकासभूमिरागमशास्त्रमेव। फलत आगमशास्त्राणि तन्त्रशास्त्राणि चेति नार्थान्तरम्।

डॉ० रामकृष्णगोपालभाण्डारकरमहोदयेन स्वकीये ग्रन्थे न केवलं वैष्णवस्य शैवस्य च मतस्य, अपि तु शाक्त-गाणपत्य-सौर-स्कान्दसम्प्रदायानामपि स्वरूपपरिचय उपस्थापितः। ततः परं यद्यपि वैष्णवानां शैवानां शाक्तानां बौद्धानां चागमेषु तन्त्रेषु च पृथक् पृथगनुशीलनं समजायत, तथापि सर्वेषामेवैषां तान्त्रिकाणां सम्प्रदायानां परस्परानुस्यूततायां तावन्नावहितं कैश्चिदपि विपश्चिद्भिः। साम्प्रतं सर्वेषामागमशास्त्राणां तन्त्रशास्त्राणां च समन्वयात्मकस्या-नुशीलनस्य समारम्भः श्रीमद्भिः श्रद्धेयचरणैर्महामहोपाध्याय-पण्डितगोपीनाथ-कविराजमहोदयैरक्रियतेति प्रायो जानन्त्येव विद्वांसः।

प्राक्तने वैदिके धर्मे कदाचन वर्णाश्रमव्यवस्थाया हिंसाबहुलानां यागादीनां च प्राबल्यमासीत्। औपनिषद-तान्त्रिक-बौद्ध-जैन-सिद्धान्तैः प्रवृत्तेरस्याः प्रति-

१. महाभारते शान्तिपर्वणि नारायणीयोपाख्याने ३३७।१-१७

रोधोऽक्रियत। गच्छता कालेन औपनिषदाः सिद्धान्ता वैदिके ज्ञानकाण्डे समावेशमापुः, बौद्ध-जैन-दृष्टिभ्यां च सर्वथा वेदस्याप्रामाण्यमुद्घोषितम्। तदनयोर्मध्यवर्तिन आसन् तान्त्रिका विचाराः। [1]महाभारतकालादारभ्य महिम्नस्तोत्रकर्तुः पुष्पदन्तस्य कालं यावद् भारतीये वाङ्मये वेद-सांख्य-योग-पाञ्चरात्र-पाशुपत-शास्त्राणां समानं प्रामाण्यमभिप्रेतमासीत्। रामायणे, महाभारते, भगवद्गीतासु, पुराणेषु च मतानामेषां परस्परं समन्वयः समजायत। परवर्तिभिर्धर्मशास्त्र-निबन्धकारैरपि वेदमनु स्मृतिवत् तन्त्रशास्त्राणां प्रामाण्यमूरीकृतम्। वैष्णव-शैव-शाक्तागमसदृशी योगस्योपासनायाश्च विशिष्टा पद्धतिर्बौद्धेषु जैनेषु च विकासमाप। सर्वेष्वेतेषु मौलिकाः सिद्धान्ताः समाना एव। साम्प्रतिकेषु भारतीयेषु सभ्यता-संस्कृति-धर्मेषु वैदिकविधीनामपेक्षया तन्त्रशास्त्रपद्धतीनां वर्तते महीयान् प्रभाव इत्यङ्गीकर्तव्यमेव।

तन्त्रशास्त्रमिति प्राचीनाया भारतीयायाः संस्कृतेः काचन विशिष्टा पद्धतिः। प्रागैतिहासिकीषु संस्कृतिषु तस्या मूलमामनन्ति मनीषिणः। अथर्ववेदे यजुर्वेदे च तस्याः प्राचीनं स्वरूपमवलोक्यते। ऐतरेयारण्यकादिषु—"अकारो वै सर्वा वाक्" (२।३।६), "अ इति ब्रह्म" (२।३।८) इत्यादिप्रतिपादनं शैव-शाक्तबौद्धतन्त्रेषून्मीलितं मातृकास्वरूपं स्मारयति। वैदिकवाङ्मये वैष्णवानां शैवानां च सिद्धान्तानामुल्लेखो वर्तत इति साधयन्त्येव विद्वांसः, किन्तु तैः पाञ्चरात्र-पाशुपतशब्दावप्रयुज्य तत्स्थाने वैष्णव-शैवशब्दौ प्रयुज्येते। वस्तुतस्तु पराक्कालिकाविमौ शब्दौ पौराणिकीं संस्कृतिमभिव्यञ्जयतः। पुराणेषु किल न कस्यापि नूतनस्य दर्शनस्य सिद्धान्तस्य वा प्रतिपादनं विद्यते, किन्तु वेद-योग-सांख्य-पाञ्चरात्र-पाशुपतमतानामथ च बौद्धानां जैनानां चाप्युत्कृष्टविचाराणाम्, तदानीं प्रसृतानां शाक्त-गाणपत्य-स्कान्द-सौर-सम्प्रदायानां च सिद्धान्तानां समन्वयमुखेन भारतीयायाः संस्कृतेर्नूतनं स्वरूपं तत्रोन्मीलितम्। विभिन्नेषु मतेषु सम्प्रदायेषु चाविरोधापादनमेव पुराणानां प्रमुखं प्रयोजनम्। तदनयैव दृशा पुराणानामनुशीलने समाचरिते भारतीयानां धर्माणां संस्कृतेश्चैतिहासिकं स्वरूपमधिगन्तुं शक्यते। न केवलं पुराणानामपि तु वैष्णव-शैव-शाक्त-योग-वेदान्ताद्युपनिषदामप्यनयैव पद्धत्याऽनुशीलनमुचितम्। पुराणेषु साम्प्रदायिकोपनिषत्सु च समये समये भारतीयायां संस्कृतौ प्रादुर्भूतानां नूतनानां स्रोतसां तस्या अनारतं प्रवहता प्रवाहेण संयोजनस्यैव प्रयासः समवलोक्यते। हालैण्ड-देशीयेन प्रथितेन विदुषा डॉ० जे० गोण्डामहोदयेन स्वकीये "चेंज एण्ड कन्टीन्युइटी इन इण्डियन रिलीजन" इत्याख्ये ग्रन्थे तदेतत् तत्त्वं सम्यगुन्मीलितम्।

---

१. "आगम और तन्त्रशास्त्र" इत्यत्र ९-१० पृष्ठयोः प्रमाणवचनानि द्रष्टव्यानि।

तान्त्रिकत्रामुपासनायां दीक्षितस्य मानवमात्रस्याधिकारो वर्तते। नह्यत्र वर्णाश्रमादिकृत: कोऽपि प्रतिबन्ध:। एतद्दृष्ट्या छान्दोग्योपनिषदस्य शास्त्र-स्यातीव साम्यं धत्ते। अत्र हि सत्यकामस्य जाबालस्य (४।४), महीधरस्य ऐतरेयस्य (३।१६), रैक्वजानश्रुतेश्चोपाख्यानानि (४।१-२) तमिमं तान्त्रिकं सिद्धान्तमेव पोषयन्ति। देवकीपुत्रस्य घोराङ्गिरस्य च संवाद: सत्यमेव पाञ्चरात्रसिद्धान्तान् स्मारयति। अत्रोल्लिखिता (७।१।२) एकायनविद्या पाञ्चरात्रश्रुतेरेवापरं नामेति पूर्वमुक्तमेव। अत्र वर्णिता ध्रुवा स्मृतिरेव रामानुजीये वेदान्ते भक्तिप्रपत्तिशब्दाभ्यां व्याख्याता। श्रीमद्भगवद्गीता[1] पाञ्चरात्रमतानुप्राणितेति साधयन्ति विद्वांस:। "विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता: समदर्शिन:॥" (५।१८) इति, "स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्" (९।३२) इति च तत्र प्रतिपाद्यते। लकुलीशपाशुपतमतव्यवस्थापकोऽष्टाविंशतिपाशुपतयोगाचार्येष्व-न्तिमो लकुलीश: कायावरोहणतीर्थे लब्धजन्मा ऐतिहासिक: पुरुषो द्वितीय-शताब्दीभव इति निर्धारयन्ति विद्वांस:[2]। "सर्वदेवमय: काय:"[3] इति सिद्धान्तं स प्रतिष्ठापयति। तदनुप्राणितान्येव पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्यावबोधकानि वचनानि श्रूयन्ते। पिण्डब्रह्माण्डयोरभेदापादनाय वर्तते काचन आन्तरयजन-प्रक्रिया तान्त्रिकी। उपर्युक्ता आगमतन्त्राणां सर्वा: शाखाप्रशाखा भगवद्गीताया लकुलीशस्य च तानेतान् सिद्धान्तानुपजीवन्ति।

सर्वाण्यागमतन्त्रशास्त्राणि बाह्यशुद्धेरपेक्षयाऽऽन्तरशुद्धिं प्रशस्ततरां मन्वते। मानसिकवेगानां रागद्वेषलोभमोहकामक्रोधादीनां विशोधनाय समनुष्ठी-यते तदिदमान्तरं यजनम्। शिवानन्दामृतानन्दभास्कररायप्रभृतीनां सुभगोदय-वासना-सौभाग्यहृदयस्तोत्र-चिद्विलासस्तव-वरिवस्यारहस्यादिषु विज्ञानभैरव-संकेतपद्धतिप्रभृतिग्रन्थेषु च तदेतस्या आन्तरवरिवस्याया: स्वरूपमुन्मील्यते। बौद्धतन्त्रेष्वपि पापदेशना-पुण्यानुमोदना-पुण्यपरिणामना-त्रिशरणगमन-आत्म-

---

१. लोकमान्यबालगंगाधरतिलकविरचितस्य गीतारहस्यस्य उपोद्घाते "भागवत धर्म का उदय और गीता" इत्याख्यं प्रकरणं द्रष्टव्यम्।

२. डॉ० कान्तिचन्द्रपाण्डेयविरचितस्य "शैवदर्शनबिन्दु:" इत्याख्यस्य ग्रन्थस्य २७-२९ पृष्ठानि द्रष्टव्यानि।

३. सर्वदेवमय: काय: सर्वप्राणिष्विति स्फुटम्।
श्रीमद्भिर्नकुलेशाद्यैरप्येतत् सुनिरूपितम्॥ (तन्त्रालोके, १५।६०४)

भावनिर्यातन-अध्येषण-बोधिचित्तोत्पादनाख्यसप्तविधानुत्तरपूजारूपेण आध्यात्मिकी पूजा निष्पाद्यते। चतुर्ब्रह्मविहारभावना, सर्वधर्मप्रकृतिपरिशुद्धता, सर्वधर्मशून्यताभावना च तस्या आन्तरपूजाया एवाङ्गम्। बौद्धतन्त्रेषु वर्णिता चतुर्ब्रह्मविहारभावना पातञ्जलयोगसूत्रे—"मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्" (१।३३) इत्येवमिदम्प्रथमतया चित्तप्रसादनोपायतया वर्ण्यते। एतदभिप्रायकं वचनं जैनाचार्येण उमास्वातिना संदृब्धे तत्त्वार्थसूत्रेऽपि (७।११) दृश्यते। "वाग्विशुद्धः" (५।२७) इति च वर्तते पाशुपतं सूत्रम्। वाग्विशुद्धिश्चित्तविशुद्धिश्च कस्य नाम नाभिप्रेता।

अपि चाभिनवगुप्ताचार्यस्तन्त्रालोके—"इह तावत् समस्तोऽयं व्यवहारः पुरातनः। प्रसिद्धिमनुसन्धाय सैव चागम उच्यते॥" (३५।१-२) इति, "प्रसिद्धिश्चाविगानोत्था प्रतीतिः शब्दनात्मिका" (३५।१९) इति चागमपदव्युत्पत्तिं प्रदर्शयति, ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिन्यां च सर्वागमानां प्रामाण्यमित्थमुपपादयति—"आगमो हि नामायं शब्दनसंक्रान्तिशरीरः। यथाह भगवाननन्तः—"परत्र स्वबोधसंक्रान्तये शब्देनोपदिश्यते" (भा० ३, पृ० ८९), "स च यो यस्य हृदये निरूढिमागतः स एव" (भा० ३, पृ० ९६), "नहि बुद्धो नाम नियतः कश्चित्। अपि तु भावनाबलप्रतिलब्धक्षणिकादिदृढविमर्शः। तस्य क्षणिकादिभावनोपदेशी गुरुः पूर्वबुद्धः, तस्याप्यन्य इति क्रमेणानियतवक्तृकत्वात् पारमेश्वरविमर्शमयतैव वस्तुतः। एवं चतुर्विंशतितत्त्वभावनाभावितः कपिलो मन्तव्यः। अत एव सर्वागमा अनादय एव" (भा० ३, पृ० ९७-९८), इति, "यथाह वराहमिहिरः—विष्णोर्भागवता मगाश्च सवितुः शम्भोः सभस्मद्विजाः, मातॄणामथ मातृमण्डलविदो विप्रास्त्वथ ब्रह्मणः। शाक्याः सत्त्वहिताय बुद्धवपुषो नग्नास्तथैतार्हताः, यैर्यो देव उपास्यते स्वविधिना तैस्तस्य कार्या क्रिया॥" (भा० ३, पृ० १००) इति च। एवं च विश्वस्मिन् प्रवर्तमानानां धर्माणामाकरग्रन्था आगमपदाभिलप्याः, सर्वे च भावनाबललब्धप्रातिभज्ञाना धर्मोपदेष्टार आप्तपदाभिलप्या भवितुमर्हन्तीति नात्र संशीतिलवलेशोऽपि मनसि धार्यः।

[1]"तस्मादात्मैव देवता", "[2]स्वात्मैव देवता प्रोक्ता ललिता विश्वविग्रहा" इति च बौद्धेषु शाक्तेषु च तन्त्रेषु दृश्यते। प्रकाशो देवतात्मकः

---

१. प्रज्ञोपायविनिश्चयसिद्धौ, ५।३३

२. महार्थमञ्जरीपरिमले, पृ० ११९, तन्त्रराज(कादिमत)तन्त्रे ३५।१३ च।

[1]इत्यद्वयवज्रो भणति। प्रत्यभिज्ञादर्शने च प्रकाशविमर्शात्मकः स प्रतिपाद्यते। तथाहि—"प्रकाशलक्षणः स्वात्मा। ... स एव हि अहंभावात्मा विमर्शः। प्रकाशरूपता ज्ञानम्। तत्रैव स्वातन्त्र्यात्मा विमर्शः क्रिया। विमर्शश्चान्तःकृतप्रकाश इति विमर्श एव परावस्थायां ज्ञानक्रिये।......सर्वथा तु विमर्श एव ज्ञानम्" (ई०प्र०वि०वि०, भा० १ पृ० ४२३-४२४) इति, "प्रकाश एव संविदां परमार्थः" (ई०प्र०वि०वि०, भा० २, पृ० ४३३), "इह भावानां सत्त्वमसत्त्वं वा व्यवतिष्ठमानं संविद्विश्रान्तिमन्तरेण नोपपद्यते। संविद्विश्रान्ता हि भावाः प्रकाशमाना भवन्ति। ...प्रकाश एव संविद्यतः" (ई०प्र०वि०वि०, भा० १, पृ० ४-५), "प्रकाशस्वातन्त्र्यमिह बोधसंवेदनादिशब्दवाच्यम्" (ई०प्र०वि०वि०, भा० १, पृ० ८२) इत्यादिना प्रकाशस्य संविद्बोधसंवेदनादिशब्दवाच्यत्वमभिधाय "प्रकाशात्मकः शिवः" (तन्त्रा० १।५२) इति, "सा (देवता) च युक्तिपर्यालोचनायां स्वात्मसंवित्स्फुरत्तामात्रस्वरूपेति प्रकाश एव विश्वोपास्या देवता" (म० प० प०, पृ० ४-५) "स्वात्मैव देवता" (म० म० प०, पृ० ११९) इति च सबलं तत्र प्रतिपाद्यते। परतत्त्वस्य परिभाषामेनां मन्ये चार्वाक आधुनिको वैज्ञानिकश्च नैव प्रतिषेधेताम्।

"मुक्तिरेकेन जन्मना" इति सिद्धान्तं च शैव-शाक्त-बौद्धतन्त्राणि मानयन्ति। तथाहि—"यत्तीर्थिकैर्जगति जन्मभिरप्रमेयैर्नासाद्यते पदमिति स्वमतेषु गीतम्। तच्चैकजन्मिकमिति ब्रुवता निगृह्य तेषां त्वया ननु कृतश्चरणः शिरस्सु॥" (श्लो० ३०) इति तत्रभवानवधूतसिद्धः प्राह भक्तिस्तोत्रे। मुक्तिरेकेन जन्मनेति शिवधर्मे, इहैकभविको मोक्ष इति च शिवधर्मोत्तरे पठ्यते। "अस्मिन्नेकेन जन्मना" (४।५८), "अनेन जन्मना सिद्धिं यः कश्चिदभिवाञ्छति" (५।६) इति गुह्यसिद्धौ, "चण्डरोषपदं धत्ते जन्मन्यत्रैव योगवित्" इति च चण्डमहारोषणतन्त्रे षष्ठे पटले। साम्प्रतं मोहम्मदीयाः, खीष्टमतानुयायिनः, अन्ये च केचन न मानयन्ति जन्मान्तरव्यवस्थाम्। एकेनैव जन्मना मुक्तिं वर्णयद्भिस्तदेतैस्तन्त्रागमवचनैरीदृशानां सिद्धान्तानां सामञ्जस्यमापादयितुं शक्यते।

प्रत्यभिज्ञादर्शने जनस्याप्युपकारमिच्छता भट्टोत्पलेन आगमेषु द्वैतवादमपास्य, ब्रह्मवादेऽविद्यां मायाशक्तीकृत्य, विज्ञानाद्वयवादमात्मेश्वराभिप्रायेण निरूप्य सुगमः पन्थाः प्रदर्शितो दुःखनिवृत्तेः[2]। तद्वदेवाधुना तन्त्रागमीयां

---

१. अद्वयवज्रसंग्रहे, पृ० ५७

२. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिन्यां तृतीये भागे ४०५ पृष्ठमवलोकनीयम्।

समतादृष्टि शुद्धयशुद्धिव्यवस्थां विधिनिषेधमीमांसां चावलम्ब्य, जात्यादिदुराग्रहान् दूरीकृत्य, सत्तर्कस्वानुभवयोर्गरीयस्त्वं च स्वीकृत्य सम्पूर्णोऽपि मानवो लोक एकस्मिन् नीडे संघटयितुं शक्यते।

तन्त्रालोकेऽभिनवगुप्तेन स्मृतं तद्विवेके महार्थमञ्जरीपरिमले चोद्धृतं त्रिकशासनस्य श्लोकद्वयं समता सर्वदेवानामित्यादिकामष्टविधां समतां प्रतिपादयति। समताष्टकमार्गोऽयं शक्तिसङ्गमतन्त्रे (II.१८।२१) सूच्यते। सर्वभावानां वृत्तीनां दृष्टीनां द्रव्याणां भूमिकानामोवल्लीनां देवानां वर्णानां च समता तत्र समताष्टकमार्गपदेनोक्ता। तस्मिन् मार्गे प्रविष्टो हि जनः समतामिमामष्टविधां भावयति। तदस्यां समतादृष्टौ बाधका भवन्ति पाशा आग्रहा वा। तन्त्रालोके एव—"जातिविद्याकुलाचारदेहदेशगुणार्थजान्। ग्रहान् ग्रहानिवाद्यौ द्राक् त्यजेद् गह्वरदर्शितान्॥ तथा श्रीनिशिचारादौ हेयत्वेनोपदर्शितान्॥" (१५।५९५-५९६) इत्यत्र जात्यादिप्रयुक्ता ग्रहा आग्रहा वा निरूपिताः। "घृणा शङ्का भयं लज्जा जुगुप्सा चेति पञ्चमी। कुलं जातिश्च शीलं चेत्यष्टौ पाशाः प्रकीर्तिताः॥" इति च पाशाष्टकं कुलार्णव(१३।९०)पठितं महार्थमञ्जरीपरिमले (पृ० १४५), योगिनीहृदयदीपिकायां (१।७२) च वर्ण्यते। तदेतेषु ग्रहाष्टकेषु पाशाष्टकेषु वा जातिग्रहस्य शङ्कायाश्च वैशिष्ट्येन वर्णनं दृश्यते।

"ब्राह्मणोऽहं मया वेदशास्त्रोक्तादपरं कथम्। अनुष्ठेयमयं जातिग्रहः परनिरोधकः॥" (१५।५९७), "संवित्स्वभावे नो जातिप्रभृतिः कापि कल्पना" (१५।५९९) इत्यादिना तन्त्रालोके निशिचार-कुलगह्वर-स्वच्छन्दतन्त्र-आनन्दशासन-नकुलेशादिप्रामाण्येन, परात्रीशिकाव्याख्यायां च—"जातीनां च ब्राह्मणादीनां नास्ति स्थितिः, कल्पितत्वात्" (पृ० २३७) इत्यादिना जात्याग्रहः समालोच्यते, मोक्षधर्म-मुकुटसंहिता-स्वच्छन्दतन्त्रादीनां वचनानि चात्र प्रमाणत्वेनोपादीयन्ते। क्षेमराजो भैरवागमानां जात्युद्धारकत्वं वर्णयति (स्व० उ० २।१३६), महेश्वरानन्देन च ब्राह्मणचाण्डालादिव्यवस्थापरित्यागार्थमागमः स्वानुभवश्च प्रमाणीक्रियते (म० म० प०, पृ० १४५)। अपि च, विकल्पात् शङ्का जायते। सा च बन्धरूपिणी भवति। विकल्पजां शङ्कां विहाय नह्यन्यः कश्चन बन्धो नाम। विकल्पायासयुक्तस्य शङ्काशीलस्य श्रेयसी गतिः कदापि न भवितुमर्हतीति सा यत्नेन परित्याज्येति तन्त्रालोके (१२।१८-२५), परात्रीशिकाविवृतौ (२३५-२३६) च प्रतिपाद्यते। "अज्ञानात् शङ्कते लोकस्ततः सृष्टिश्च संहृतिः" इति सर्ववीरवचने शङ्काया एव जननमरणकारणत्वं वर्ण्यते। अत एव क्रमसद्भावे "शङ्काशून्यो भवेत् सदा" इत्युपपाद्यते, "निःशङ्कः सिद्धिमाप्नोति" इति च

तत्त्वार्थचिन्तामणौ। सर्ववीरभट्टारकेऽपि पेयापेयमित्यादिना शङ्काकारणानि निरस्य "इच्छामुत्पादयेदात्मा कथं शङ्का विधीयते" इत्येवं शिष्यः प्रबोध्यते। शङ्काया अस्या निरासायैव तन्त्रागमेषु विधिनिषेध-भक्ष्याभक्ष्य-शुद्धयशुद्धिविषयका विचारा प्रतन्यन्ते।

महेश्वरानन्दः—"तत्र सन्ध्योपास्त्यादौ विधिः, कलञ्जभक्षणादौ निषेधश्चेत्युच्यते। तत्र किं तज्ज्ञानमात्रेण ते प्रवर्तन्ते निवर्तन्ते च, उत स्वेच्छानुगुण्यात्? यदि ज्ञानमात्रेण, सन्ध्यानुपासकः कलञ्जभक्षको वा न कश्चिदुपलभ्येत। यदि तु स्वेच्छानुगुण्यात्, तदाऽनुष्ठातॄणां रुचिमेव विधिनिषेधावनुवर्तेते इत्यर्थो भवति। ततश्च तेषां सन्ध्योपासनादावर्थे यत्र रुचिस्तत्र विधिः, यत्र वा कलञ्जभक्षणादौ न रुचिस्तत्र निषेध इत्यनया भङ्ग्या सन्ध्योपासनादावेवारुचिश्चेत् तत्र निषेधः, कलञ्जभक्षणादावेव चेद् रुचिस्तत्र च विधिरित्यर्थतत्त्वनिश्चयः स्यात्" (म० म० प०, पृ० २१-२२) इत्येवं विधिनिषेधमीमांसामातनोति। अत्र प्रमाणतया सः—"त्यागः शक्यक्रियो यस्य स हेय इति निश्चयः। त्यक्तुं न शक्यते यच्च तदुपादेयमित्यपि॥" इति संवित्प्रकाशवचनम्, "प्रामाणिकी विधिनिषेधकथा यदि स्यात् पर्यन्ततः परम एव शिवः प्रमाणम्। सर्वोत्तरः स खलु तत्र विधि निषिद्धे कर्तुं क्षमेत विहिते च विभुर्निषेधम्॥" इति संविदुल्लासश्लोकं च समुपस्थापयति। अत्र संवित्प्रकाशे प्रयुक्ते हेयोपादेयपदे विधिनिषेधार्थके मन्तव्ये। अत एव—"न च भक्ष्याभक्ष्य-शुद्धयशुद्धयादिविवेचनया वस्तुधर्मोज्झितया कल्पनामात्रसारया स्वात्मा खेदनीयः। नहि शुद्धिर्वस्तुनो रूपं नीलत्ववत्, अन्यत्र तस्यैवाशुद्धिचोदनात्। तस्माद् वैदिकात् प्रभृति परमेश्वरसिद्धान्ततन्त्रकुलोच्छुष्मादिशास्त्रोक्तोऽपि यो नियमो विधिर्वा निषेधो वा, सोऽप्यत्र यावदकिञ्चित्कर एव मन्तव्यः" (पृ० ३१-३२) इत्यभिनवगुप्तीया तन्त्रसारोक्तिः संगच्छते। सर्वेऽपीमे विषया बौद्धतन्त्रेष्वपि वर्ण्यन्त इति नातिचित्रम्।

सत्तर्कस्वानुभवयोराधारेणैव सर्वमेतन्निर्णेतुं शक्यते। तन्त्रालोके मालिनीविजय(१७।१८)प्रामाण्येन "तर्को योगाङ्गमुत्तमम्" (४।१५) इति सविशेषं प्रतिपाद्यते। तत्रैव (१।१०६) स्वसंवित्-सत्तर्कौ प्रमाणीक्रियेते। तदनयोः सत्तर्कस्वानुभवयोः स्वरूपं तन्त्रालोके (४।३४-८६) द्रष्टव्यम्। तत्रैव "किरणायां यदप्युक्तं गुरुतः शास्त्रतः स्वतः" (४।४१) इत्यादिना, "त्रिप्रत्ययमिदं ज्ञानं गुरुतः शास्त्रतः स्वतः" (४।७८) इत्यन्तेन ग्रन्थेन किरणागम-पूर्वशास्त्र-परात्रीशिका-ब्रह्मयामल-निशाटनादिप्रामाण्येन स्वपरामर्शस्य प्रामाण्योत्कर्ष उद्घोष्यते। अत्र—"तत्रोत्तरोत्तरं मुख्यं पूर्वपूर्व उपायकः" (४।४२) इति ग्रन्थं

व्याकुर्वाणो जयरथ आह—"तत्र उत्तरोत्तरं मुख्यं विवक्षितम्। यथा गुरुतः शास्त्रम्, ततोऽपि स्वपरामर्शः"""गुरुः शास्त्रे उपायः, तदपि स्वपरामर्शे। एवम्—"उपादायापि ये हेयास्तानुपायान् प्रचक्षते" इत्याद्युक्तयुक्त्या गुरुशास्त्रयोरुपायत्वादमुख्यत्वमिति स्वपरामर्शस्यैव प्रामाण्यम्" (पृ० ४५-४६) इति। अत एव—"संविद्व्यापार एवैका युक्तिः सर्वत्र साधनी। भोगे वाऽप्यथवा मोक्षे" इति मुकुटसंहिता प्रतिपादयति। "शास्त्रार्थैर्बुद्ध्यते नात्मा गुरोर्वचनतो न च। बुद्ध्यते स्वयमेवैष स्वबोधवशतः स्वतः॥" (नि० पू० ४१।१५) इति योगवासिष्ठेऽपि वर्ण्यते।

"प्रायो हि मैथुने मद्ये मांसे च परिदृश्यते। आसक्तिः सर्वभूतानाम्" इति महार्थमञ्जरीपरिमल(पृ० ११६)धृतमहानयप्रकाशदिशा, "यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः" (अ० १०३।३०) इति वाल्मीकिरामायणवचनानुसारं च तथाविधानां जनानां कृते स्वात्मदेवतायाः प्रीत्यर्थमलिपिशितपुरन्ध्रीणां स्वीकारो भवतु नाम, किन्तु "निवृत्तिस्तु महाफला" (५।५६) इति मनुवचनप्रवणेन जनेन प्रत्यभिज्ञादर्शनप्रतिपादितायां विश्वाहन्तायामस्याद्वयदर्शनस्य विनियोगो विधेयः। एवं च वैदिकेषु वर्णाश्रमाचारेषु जातिग्रहं शङ्कां च किञ्चिदिव शिथिलीकृत्य, तान्त्रिकमीष्ट्यान्त्यत्रितयसेवनं योगशास्त्रात् पृथक्कृत्य, बाह्यार्चापेक्षयाऽन्तरवरिवस्यां प्रधानीकृत्य, अहन्ताप्रवणं दर्शनं च विश्वाहन्तायां विनियोज्याऽस्मिन्नेव जन्मनि सिद्ध्येदेष जन इति हि वर्तते तन्त्रशास्त्रमनुशीलयतामस्माकमुद्घोषः। एष एव च तन्त्रशास्त्राणां सामयिक उपयोगः।

निबन्धमिममुपसंहरन्तो वयं किञ्चिदिव विवक्षामः। सर्वानेतान् विषयान् परिशील्य, स्वस्वधर्मसंस्कृतिदेशकालानुगुणं तत्र सामञ्जस्यमापाद्य चास्माभिरेकस्या विश्वसंस्कृतेर्निर्माणाय प्रयतनीयम्। एतदन्तरा परस्पराविश्वासग्रस्तेऽस्मिन् जगति न स्थापयितुं शक्यतेऽखण्डैक्यम्। प्रथमं द्वैतदृष्टिमवलम्ब्य "परस्परदेवो भव" इत्युपनिषत्कल्पवाक्यदिशा परस्परं समुद्भूतमविश्वासमलमपास्य श्रद्धाभरितेन जनेन चित्तशुद्धिर्विधेया, तदनु चाद्वैतसरणिमनुसरता तेन विश्वाहन्ताप्रवणेन भाव्यम्। तदैव नूनं संयुक्तराष्ट्रसंघसदृशानां विश्वसंस्थानानां सार्थक्यं सम्पद्येत, तद्द्वारा विश्वस्मिन् राजनैतिकमैक्यं स्थाप्येत, विश्वनागरिकतायाः साम्प्रतं प्रसृता उच्चावचा भेदाश्च निरस्येरन्। देशकालादिभेदेषु सत्स्वपि मानवी विचारधारा सममेव सर्वत्र प्रवर्तते। यूनानदेशीयानां भारतीयानां च विदुषां विचारसाम्यं तदस्य निदर्शनम्। सम्पूर्णस्य विश्वस्य प्राचीने आधुनिके च वाङ्मये साम्यमीदृशमवलोकयितुं शक्यते। एतदर्थं

सम्पूर्णमपि विश्ववाङ्मयं देशधर्मादिसीमा अतीत्य कालक्रमेण प्रसृतमिति निश्चित्य, गौणीकृत्य सम्प्रदायान्, देशपदस्य स्थानार्थतामङ्गीकृत्य, तदनुसारिणं च कालक्रमं प्रधानीकृत्याध्येतव्यम्। तदैव मानवमनसो विकासक्रमः सम्यक् स्फुटीभवेत्। कालक्रमेण देश(स्थान)क्रमेण च विकसत्सु भारतीयेषु वैदिक-बौद्ध-जैनवाङ्मयेषु वर्ततेऽद्भुतं साम्यम्। तत्र गजनिमीलिकामाचरद्भिर्विद्वद्भिः सम्प्रदायाधृतमेवानुशीलनमाचर्यते। फलतस्तैरेकस्मिन्नेव धर्मे कथं विभिन्ना दृष्टयः प्रतिफलिता इति प्रश्नस्य नैव सम्यक् समाधानं कर्तुं शक्यते। अतः संकीर्णां सम्प्रदायदृष्टिमधरीकृत्य परलोकचिन्तां च किञ्चिदिव शिथिलीकृत्य वर्तमानस्यैव लोकस्य परिष्कारायाद्यावधि समुपार्जितस्य सम्पूर्णस्य मानवीयज्ञानस्य सदुपयोगो विधातव्यः। अखण्डाया मानवसंस्कृतेस्तदैव विकासो जायेत। राज्य-राष्ट्र-भाषा-जाति-सम्प्रदायादिखण्डेषु विभक्तो मानवस्तदैव संघबद्धो भवेत्, राष्ट्राणां विभाजनप्रक्रिया तदैवावरुद्ध्येत, विभिन्नेषु भूखण्डेषु स्थितानि राष्ट्राणि चैकीकृतानि स्युः। यूरोपीया जना विषयेऽस्मिन्नग्रेसरा भवन्तु नामेति किल वर्ततेऽस्माकं मनोरथ इति शम्॥

देवो भूत्वा यजेद् देवान्

वचनमिदं बहुषु तन्त्रग्रन्थेषु पाठभेदपुरस्सरमुपलभ्यते। "देवो भूत्वा देवानप्येति" इति च बृहदारण्यकोपनिषदि चतुर्थाध्यायीये प्रथमे ब्राह्मणे बहुशः श्रूयते। अपि च, शतपथब्राह्मणे दर्शपूर्णमासप्रकरणारम्भे यजमानः—"इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि" (१।१।१।४) इति, अन्ते च—"य एवास्मि सोऽस्मि" (१।९।३।२३) इति वक्ति। "अनृतं वै मनुष्याः सत्यं देवाः" (१।१।१।४) इति च तत्रैव व्याक्रियते। एवं च मनुष्यभावं परित्यज्य देवभावं चाङ्गीकृत्य यजमानो यज्ञयागादिषु प्रवर्तेतेति तस्याभिप्रायो व्यक्तीभवति, अनुष्ठानसमाप्तौ च यजमानः पुनर्मनुष्यभावमयत इति च। एतदर्थम्—"स वै सत्यमेव वदेत" (१।१।१।५) इत्येतावानेव तत्रोच्यते, नाधिकं किञ्चित्। स्वयमिष्टदेवस्वरूपो भूत्वा देवानाराधयेत—इति किल सर्वस्यास्य वचनजातस्याभिप्रायः। पूजकः कथं नाम देवस्वरूपो भवितुमर्हतीति जिज्ञासायां शास्त्रेषु भूतशुद्धिप्राणप्रतिष्ठयोर्विधानं दरीदृश्यते।

भूतशुद्धिः

तत्र कुम्भकप्राणायामेन मूलाधारात् कुण्डलीं परदेवतां बिसतन्तुतनीयसीं समुत्थाप्य ब्रह्मरन्ध्रगतां स्मृत्वा हृदयस्थं जीवं प्रदीपकलिकाकारं गृहीत्वा सुषुम्णामार्गेण ब्रह्मरन्ध्रं गत्वा ॐ हं सः सोऽहमिति मन्त्रेण जीवं ब्रह्मणि संयोजयेदिति हि [1]भूतशुद्धेः संक्षिप्ततमः प्रकारः। भूतशुद्धेर्लक्षणं च—"शरीराधारभूतानां भूतानां यद् विशोधनम्। अव्यक्तब्रह्मसम्पर्काद् भूतशुद्धिरियं स्मृता॥" इत्येवं वर्ण्यते। "भूतशुद्धिं विना कर्म क्रियते यज्जपादिकम्। तत्सर्वं निष्फलं यस्मात् तस्मात् तां पूर्वमाचरेत्॥" इति वचनेन च पूजाविधाविदम्प्रथमतया तस्या अनुष्ठानमावश्यकमिति प्रतिपाद्यते। शरीराधारभूतानां भूतानां विशुद्धये क्रमः कीदृश आश्रयणीय इति जिज्ञासायां सविनियोगः स एवं प्रदर्श्यते—

---

१. तन्त्रसंग्रहतृतीयभागे संकलिते भूतशुद्धितन्त्रे सप्तदशपटलसमाप्तौ संक्षेपेण भूतशुद्धिविवरणं दृश्यते (पृ० ६२५)। ईशानशिवगुरुदेवपद्धतिप्रथमभागे भूतशुद्धिरात्मशुद्धिश्च विवृता (पृ० ९७-१०१)। प्रपञ्चसारसदृशेषु ग्रन्थेषु धर्मशास्त्रीयनिबन्धेषु च संक्षेपविस्तराभ्यां भूतशुद्धिप्राणप्रतिष्ठे विव्रियेते।

शरीरस्यात्मा ऋषिः, प्रकृतिश्छन्दः, परमात्मा देवता, शरीरभूतशुद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ॐ पृथिवीबीजमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः, पृथिवी देवता पृथ्वीभूतशुद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। पादादिजानुपर्यन्तं [1]पृथ्वीस्थानं चतुरस्रं पीतवर्णं सबिन्दुकं लँबीजसहितं ध्यायेत्। तदुक्तम्—

पादादिजानुपर्यन्तं भूतत्त्वं तत्र मण्डलम्।
पार्थिवं चतुरस्रं च लँबीजं वज्रलाञ्छितम्॥
पीतवर्णं च तं ध्यात्वा बीजोच्छ्रितेन वा पुनः।
भावितेन च तेनैव पृथिवीं प्राग् विशोधयेत्॥ इति।

ॐ वरुणबीजमन्त्रस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, वरुणो देवता वारुणीभूतशुद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। जान्वादिनाभिपर्यन्तं वरुणमण्डलं धनुषाकारं शुभ्रवर्णं सबिन्दुकं वँबीजसहितं ध्यायेत्। तदुक्तम्—

जान्वादिनाभिपर्यन्तमापस्तत्त्वं द्वितीयकम्।
वारुणं मण्डलं तत्र धनुर्वद् बिन्दुलाञ्छितम्॥
वँबीजं शुक्लवर्णं तद्ध्यात्वाऽऽपस्तेन शोधयेत्। इति।

ॐ वह्निबीजमन्त्रस्य कश्यप ऋषिः, जगतीच्छन्दः, जातवेदोऽग्निर्देवता आग्नेयभूतशुद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। नाभ्या आरभ्य हृदयपर्यन्तं त्रिकोणमग्निमण्डलं सबिन्दुकं रँबीजसहितं ध्यायेत्। तदुक्तम्—

नाभेर्हृदयपर्यन्तं तेजस्तत्त्वं तृतीयकम्।
मण्डलं वह्निसंज्ञं तत् त्रिकोणं पद्मलाञ्छितम्॥
रँबीजं रक्तवर्णं तद् ध्यात्वा तेजस्तु शोधयेत्। इति।

ॐ वायुबीजमन्त्रस्य किष्किन्ध ऋषिः, बृहतीच्छन्दः, वायुर्देवता वायव्याख्यभूतशुद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। हृदयादारभ्य भ्रूमध्यपर्यन्तं वायुमण्डलं वर्तुलं धूम्रवर्णं सबिन्दुकं यँबीजसहितं ध्यायेत्। तदुक्तम्—

हृदयादिभ्रुवोरन्तं वायुतत्त्वं चतुर्थकम्।
वायव्यं मण्डलं तत्र वर्तुलं स्वस्तिकान्वितम्।
कृष्णवर्णं च यँबीजं ध्यात्वा वायुं विशोधयेत्॥ इति।

---

१. अन्यत्रापि सर्वेषु तन्त्रेषु पृथिव्यादिभूतानां मण्डलाकारवर्णबीजादिकमेवमेव वर्ण्यते।

ॐ आकाशबीजमन्त्रस्य रुद्र ऋषिः, त्रिष्टुप् छन्दः, परमात्मा देवता आकाशाख्यभूतशुद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। भ्रूमध्यादारभ्य ललाटपर्यन्तमाकाशमण्डलं नोरूपमवर्णं सबिन्दुकं हँबीजसहितं ध्यायेत्। तदुक्तम्—

भ्रूमध्याद् ब्रह्मरन्ध्रान्तं व्योमतत्त्वं च पञ्चमम्।
हँबीजं निर्मलं ध्यात्वा तेनैव व्योम शोधयेत्॥ इति।

एवं पञ्चभूतानि विशोध्य तानि यथाक्रमं स्वस्वकारणेषु विलापयेत्। तद्यथा—

एवं भूतानि संचिन्त्य प्रत्येकं प्रविलापयेत्।
भुवं जले जलं वह्नौ वह्निं वायौ नभस्यमुम्॥
विलाप्य खमहङ्कारे महत्तत्त्वेऽप्यहङ्कृतिम्।
महान्तं प्रकृतौ मायामात्मनि प्रविलापयेत्॥ इति।

तत आत्मानं पुरुषं परब्रह्मणि प्रविलापयेत्। प्रविलाप्य च—

अहं देवो न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं निर्विकल्पस्वभाववान्॥

इत्येवमात्मानं परब्रह्मस्वरूपं विभाव्य देहे पापपूरुषं ध्यायेत्। तद्यथा—

शुद्धसच्चिन्मयो भूत्वा चिन्तयेत् पापपूरुषम्।
वामकुक्षिस्थितं कृष्णमङ्गुष्ठपरिमाणकम्॥
विप्रहत्याशिरोयुक्तं कनकस्तेयबाहुकम्।
मदिरापानहृदयं गुरुतल्पकटीयुतम्॥
[1]तत्संयोगिपदद्वन्द्वमङ्गप्रत्यङ्गपातकम्।
उपपातकरोमाणं रक्तश्मश्रुविलोचनम्॥
खड्गचर्मधरं क्रुद्धं पूरुषं कज्जलप्रभम्। इति।

एवं पापपूरुषं ध्यात्वा जलमादाय—"यँ इति वायुबीजस्य किष्किन्ध ऋषिः, जगतीच्छन्दः, वायुर्देवता; रँ इत्यग्निबीजस्य कश्यप ऋषिः, त्रिष्टुप् छन्दः, अग्निर्देवता; वँ इति वरुणबीजस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः, त्रिष्टुप् छन्दः, वरुणो

१. ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह॥ (११।५४)
इति मनुस्मृतौ वर्णितानि पञ्चपातकान्यत्र स्मर्यन्ते। संयोगिपदं संसर्गार्थकमवगन्तव्यम्।

देवता पापपूरुषस्य शोषणे दाहने प्लावने च विनियोगः" इति संकल्प्य यँ इति वायुबीजं पूरकेण षोडशवारं जपित्वा तद्बीजोत्थवायुना पापपूरुषं शोषितं विभावयेत्। रँ इति वह्निबीजं कुम्भकेन चतुष्षष्टिवारं जपित्वा तद्बीजोत्थाग्निना तद् भस्मीभूतं विभावयेत्। वँ इति वरुणबीजं रेचकेन द्वात्रिंशद् वारं जपित्वा पापपूरुषभस्म प्लावयेत्—इति हि वर्तते प्रथमः कल्पः। अपरत्र तु—

[1]रमित्यक्षरसंयुक्तं त्रिकोणं वह्निमण्डलम्।
रुद्रवारं जपित्वा तु निर्दहेत् पापपूरुषम्॥

इति मतान्तरमनुसृत्य सर्वाण्यपि बीजानि एकादशवारं जपित्वा शोषणादिविधिरुच्यते। शोषदाहाप्लावानां निरूपणं प्राणायामप्रसङ्गेन [2]प्रपञ्चसारादिष्वपि दृश्यते। तत्र महार्थमञ्जरीकारेण—

शोषो मलस्य नाशो दाह एतस्य वासनोच्छेदः।
आप्लावनं तनूनां ज्ञानसुधासेकनिर्मिता शुद्धिः॥

इतीयं स्वीया गाथा स्वोपज्ञायां परिमलव्याख्यायामेवं विवृता—"अर्चकानां ह्यर्चनोपक्रम एव काचिदलौकिकता सम्पाद्या। सा च मलोपलेपप्रक्षयादौ पर्यवस्यति। तत्र तदीयानां शरीराणां शोषो नाम तदायत्तस्य मलस्य संसाराङ्कुरकारणभूतस्याज्ञानस्य कर्शनमेवाख्यायते। दाहश्च नाम तेषां प्रस्तुतस्यैव मलस्य या वासना संस्कारसारतयाऽवस्थानम्, तद्व्युदासस्वभावो भवति। एवमाप्लावनमप्यज्ञानव्यपोहाविनाभावोद्भूतं स्वरूपलाभक्षणाह्लाददायित्वादमृतायमानं यज्ज्ञानं स्वात्मावबोधस्तत्प्रसरधारावाहिकोपकल्पिता शुद्धिः पवित्रीकरणमिति" (पृ० १११) इति। आभिर्हि शोषदाहाप्लावप्रक्रियाभिस्तेजोमयः पुण्यात्मकः सकलपुरुषार्थसाधको निरस्तकिल्बिषो देवताराधनयोग्यो दिव्यो देहः साधकेनावाप्यते। तत्र च प्राणप्रतिष्ठाविधिः सम्पादनीयो भवति।

---

१. सगर्भस्यास्य प्राणायामस्य बहवः प्रकारास्तन्त्रागमीयेषु योगपादेषु, योगशास्त्रेषु, पुराणेषु च वर्ण्यन्ते।

२. अथवा शोषणदाहनप्लावनभेदेन शोधिते देहे।
पञ्चाशद्भिर्मात्राभेदैर्विधिवत् समायमेत् प्राणान्॥ (१९।२५)

प्राणप्रतिष्ठा

[1]आचम्य प्राणानायम्य जलमादाय संकल्पं कुर्यात्—अस्य श्रीप्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ऋषयः, ऋग्यजुःसामानि च्छन्दांसि, जगत्सृष्टिकारिणी प्राणशक्तिर्देवता, आँ बीजं ह्रीं शक्तिः क्रौं कीलकं मम प्राणप्रतिष्ठापने विनियोग इति। एवं विनियोगं विधाय ततो न्यासान् विदधीत—

ब्रह्मविष्णुमहेश्वरऋषिभ्यो नमः शिरसि। ऋग्यजुःसामच्छन्दोभ्यो नमो मुखे। जगत्सृष्टिकारिणीप्राणशक्तिदेवतायै नमो हृदये। आँ बीजाय नमो गुह्ये। ह्रीं शक्तये नमः पादयोः। क्रौं कीलकाय नमः सर्वाङ्गे॥ अँ कं खं गं घं ङं आं पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशात्मने अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। इं चं छं जं झं ञं ईं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने तर्जनीभ्यां नमः। उं टं ठं डं ढं णं ऊं त्वक्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणात्मने मध्यमाभ्यां नमः। एं तं थं दं धं नं ऐं वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने अनामिकाभ्यां नमः। ओं पं फं बं भं मं औं वचनादानगतिविसर्गानन्दात्मने कनिष्ठिकाभ्यां नमः। अं यं रं लं वं शं षं सं अः मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तविज्ञानात्मने करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। अनेनैव विधिना हृदयादिन्यासमपि कुर्यात्। तत आं नमो नाभ्यादिपादपर्यन्तम्, ह्रीं नमो हृदयादिनाभ्यन्तम्, क्रौं नमो भ्रूमध्यादिहृदन्तं विन्यस्य हृदये सप्तधातून् विन्यसेत्। तद्यथा—यं त्वगात्मने नमः, रं रक्तात्मने नमः, लं मांसात्मने नमः, वं मेदसात्मने नमः, सं अस्थ्यात्मने नमः, षं मज्जात्मने नमः, शं शुक्रात्मने नम इति। ततो ह्रीं ओजसात्मने नमः। हूँ प्राणात्मने नमः, क्षं जीवात्मने नम इति हृदये विन्यस्य अं नमः, आं नमः, इं नम इत्यादि क्षकारान्तं व्यापकं कुर्यात्।

ततः स्वहृदि पीठशक्तिं विन्यस्य ध्यात्वा मानसोपचारैः सम्पूज्य हृदि ज्ञानमुद्रया हस्तं दत्त्वा प्राणस्थापनं कुर्यात्। तद्यथा—आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं सः सोऽहं प्राणा इह प्राणाः। पुनः आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं सः सोऽहं जीव इह स्थितः। पुनः आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं सः सोऽहं सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनस्त्वक्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणपादपाणिपायूपस्थानीहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु नमः ह्रीं क्षं सं हं सः ह्रीं ह्रीं इति प्राणप्रतिष्ठामन्त्रं त्रिवारं पठेत्। गर्भाधानादिसंस्कारसिद्ध्यर्थं षोडशवारं प्रणवं जपेत्। ततोऽनेन देहस्य गर्भाधानादिसंस्काराः संपद्यन्ताम्, अयं मम देहोऽधुना सर्वकर्मारम्भयोग्यो जात इति ज्योतिर्मयं स्वशरीरं भावयेत्। ततः प्राणायामं कुर्यात्। तद्यथा—

१. प्राणप्रतिष्ठाप्रकारोऽयं प्रयोजनान्तरमुद्दिश्य विध्यन्तरेण नित्याषोडशिकार्णवव्याख्यायामर्थरत्नावल्यां निर्दिष्टस्तत्रैव द्रष्टव्यः (पृ० १५५)। प्रपञ्चसारीये पञ्चत्रिंशे पटलेऽपि विधिरयं व्यावर्ण्यते।

अकारादिषोडशस्वरानुच्चार्य वामनासिकया वायुं पूरयेत्, ककारादिपञ्चविंशतिवर्णानुच्चार्य कुम्भकेन वायुं स्थिरीकुर्यात्, यकारादिक्षकारान्तान् वर्णानुच्चार्य वायुं रेचयेदिति। एवं वारत्रयं कुर्यात्। प्राणायामस्यास्य माहात्म्यमेवं वर्ण्यते शास्त्रेषु—

यथा पर्वतधातूनां दोषं दहति पावकः।
एवमन्तर्गतं पापं प्राणायामेन दह्यते॥[1] इति।

आभ्यां भूतशुद्धिप्राणप्रतिष्ठाभ्यामन्योन्यसंयुक्ताभ्यामनुष्ठानाभ्यामर्चकः प्रथमं स्वयमिष्टदेवमयो भूत्वा तदनु स्वेष्टदेवतां समाराधयते।

त्रिविधा पूजा

तत्र बाह्या, आन्तरी चेति द्विविधा वरिवस्या तन्त्रशास्त्रेषु वर्ण्यते। तत्र बाह्यैः पुष्पधूपादिभिः स्वेष्टदेवतासमाराधनं बाह्यवरिवस्यापदेन, भावनाप्रवणेन चेतसा तस्याः समाराधनमान्तरवरिवस्यापदेन परिचीयते। कुलक्रमादिसम्प्रदायेषु स्वात्मदेवता समाराध्यते तत्तच्छास्त्रपद्धत्या। अयं चान्य एव प्रकारः पूजायाः। प्रकारत्रयमेतत्—

तव नित्योदिता पूजा त्रिभिर्भेदैर्व्यवस्थिता।
परा चाप्यपरा गौरि तृतीया च परापरा॥
प्रथमाद्वैतभावस्था सर्वप्रसरगोचरा।
द्वितीया चक्रपूजा च सदा निष्पाद्यते मया॥
एवं ज्ञानमये देवि तृतीया तु परापरा।
उत्तमा सा परा ज्ञेया .... ॥ (३।२-४)

इत्येवं वर्ण्यते योगिनीहृदये परा-अपरा-परापराभेदेन। अत्र बाह्यपूजा अपरा, आन्तर वरिवस्या परा, स्वात्मदेवतासमाराधनं च परापरा पूजेति मन्तव्यम्।

अत्र पराया उत्तमत्वमुद्घोष्यते। शक्तिसंगमतन्त्रे च देव्याः पूजाविषयके प्रश्ने शिवः—"विष्ठापूर्णे मृद्घटे हि बहिःशुद्धौ तु किं फलम्। अन्तःशुद्धिं समासाद्य बहिः शुद्धिं समाचरेत्॥" (iv.११।७४-७५) इति, "अन्तःपूजां समासाद्य बहिःपूजां समाचरेत्" (iv.११।७९) इति निश्चिनोति। "यद्यद् बाह्यं वक्ष्यमाणं तत्तदान्तरमाचरेत्" इति वचनं स्मरंश्च योगिनीहृदयदीपिकाकारः—"एतेन बाह्यपूजां सर्वामप्यादावन्तः कुर्यादिति सूच्यते" (३।९०) इति निष्कर्षयति। अत एव—

१. दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥ (६।७१)
इति च मनुः प्राह।

न पूजा बाह्यपुष्पादिद्रव्यैर्या प्रथिताऽनिशम् ।
स्वे महिम्न्यद्वये धाम्नि सा पूजा या परा स्थितिः ॥

इत्येतादृशानि वचनानि प्रवर्तन्ते । यतो हि—

बालिकारचितवस्त्रपुत्रिकाक्रीडितेन सदृशं तदर्चनम् ।
यत्र शाम्यति मनो न निर्मलस्फीतचिज्जलधिमध्यमाश्रितम् ॥

इति दिशा आन्तरवरिवस्यां विना निष्फलप्रायं भवति बाह्यमर्चनम् । अत एव शिवानन्दः—"पूजा विश्वस्य वेद्यस्य चिद्भूमिविश्रान्तिः" इति पूजालक्षणं वक्ति । भट्टगङ्गाधरस्तोत्रप्रामाण्येन च धूपगन्धदीपनैवेद्यरहस्यं स्फोरयति । अत एव च—"परमनिरावरणात्मनि रूपे यो दृढतरः परामर्शः । पूजनमेतदितीत्थं प्रभुणा निरणायि" इति पूजनलक्षणं महानयपद्धत्यां वर्ण्यते,

ये ये भावा ह्लादिन इह दृश्याः सुभगसुन्दराकृतयः ।
तेषामनुभवकाले स्वस्थितिपरिपोषणं सतामर्चा ॥

इति च वक्ति प्रशस्तिभूतिपादः । यतो हि—

या या संविदुदारा यो योऽप्यानन्दसुन्दरो भावः ।
जगति यदद्भुतरूपं तत्तद् देव्यास्तवाकारः ॥

इति नीत्या सर्वं देवीमयमेव ।

योगो नान्यः क्रिया नान्या तत्त्वारूढा हि या मतिः ।
स्वचित्तवासनाशान्तौ सा क्रियेत्यभिधीयते ॥

इत्यागमशास्त्रवचनेऽपि क्रियापदं पूजनपरमेव प्रत्येयम् । तच्च परामेव पूजां निर्दिशतीति बाढं सिद्ध्यति परापूजाया उत्तमत्वम् । अतश्च अपरायाः परापरायाश्च पूजाया योग्यतावाप्त्यर्थं पराया अभ्यासोऽतीवावश्यक इति विज्ञेयम् । अत्र च भूतशुद्धिप्राणप्रतिष्ठयोरपि वर्तते विशिष्टो विनियोग इति पूर्वोक्तेनानयोर्विवरणेनैव विद्वांसो विदाङ्कुर्वन्तु ।

उपर्युद्धृते योगिनीहृदयवचने निर्दिष्टा बाह्यचक्रपूजाऽपराख्या बाह्यवरिवस्यापदेनाख्यायते । पञ्चभूतमयैर्गन्धपुष्पादिभिर्बाह्यार्चनमिति दीपिकाकारः (३।११२) । ऋजुविमर्शिनीकारोऽपि (पृ० १३४) प्रपञ्चसारप्रामाण्येनैषां लक्षणमाह । पञ्चोपचार-षोडशोपचार-चतुष्षष्ट्युपचारादिभेदैर्बहुधेयं विस्तार्यते ।

परापरा च पूजा—"एवं ज्ञानमये पूर्वोक्ताद्वैतभावनामये धाम्नि बाह्यस्य पृथगात्मकावरणार्चनरूपस्य कर्मणो ज्ञानमयताविश्रान्तिस्तृतोया परापरा पूजा। तदुक्तमभियुक्तैः—"प्रकाशैकघने धाम्नि विकल्पप्रसरादिकम्। निक्षिपाम्यर्चनद्वारा वह्नाविव घृताहुतीः॥" इत्येवं सप्रमाणं विवृताऽमृतानन्देन। अत्र परायाः परापरायाश्च पूजाया भेदः सावधानं सूक्ष्मेक्षिकया हृदयङ्गमीकरणीयः। तत्राशुद्धविकल्पानां शोधनाय परापराख्या पूजा प्रवर्तते, पराख्यायां च पूजायां सर्वं शुद्धसंविन्मयमेव राजते।

एवं च—"स्वात्मानं हि विहाय चेतनममुं कं पूजयेयुर्जडम्"[1] इति ज्ञानेन्दुकौमुदीवचने, "इन्द्रियद्वारसंग्राह्यैर्गन्धाद्यैरात्मदेवता। स्वभावेन समाराध्या ज्ञातुः सोऽयं महामखः॥" इति मुख्याम्नायरहस्यविधिवचने, "आनन्दप्रसरः पूजा", "शिवशक्तिसमापत्त्या" इति त्रिकसारवचनयोः, "अहो स्वादुरसः कोऽपि" इति पूजनस्तोत्रवचने च परापराख्या पूजैव व्यावर्ण्यते।

पूजान्तराणामत्रैवान्तर्भावः

महेश्वरानन्देन चाररावेत्यादिचिद्गगनचन्द्रिकाप्रामाण्येन चारो रावश्चरुर्मुद्रेति चतुर्विधा पूजा निर्दिष्टा। तथा हि—"तत्र चारः समयाचारः। रावो विमर्शः। चरुः [2]प्रथमद्वितीयादिकम्। मुद्रा स्वात्मनः परमेश्वरत्वोपपादनाय स्वशरीरं प्रति कल्प्यमानः करचरणादिसन्निवेशविशेषो वेषधारणविशेषश्च। महती तु मुद्रा पर्यन्ततो राव एवान्तर्भवति। तत्र चतुर्ष्वपि पूजाक्रमेषु प्राधान्येन राव एवोपयुज्यते। अन्येषां तु पर्यन्ततस्तत्प्रयोजकतया परिग्रहणम्। तस्मात् स्वस्वरूपपरामर्श एव परमा पूजा। अन्यत्तु गन्धपुष्पधूपदीपाद्याडम्बरमात्रमिति तात्पर्यार्थः" (पृ० १०६) इति। अत्र विमर्शात्मकस्य रावस्य परमत्वं महेश्वरानन्दो वक्ति। चारस्य मुद्रायाश्चापराख्यायां बाह्यपूजायाम्, चरोश्च परापरायां पूजायां समावेशः कर्तुं शक्यत इति पूजायास्त्रैविध्यमेवात्र पर्यन्ततः प्रतिफलति।

---

१. प्रतिमा-पट-चित्र-स्थण्डिल-तूरादिषु जडेषु द्रव्येषु मन्त्रमहिम्ना यदा भगवान् प्रतिष्ठापयितुं शक्यते, तदा कथं नाम चैतन्यभरितेऽस्मिन् मानवीये काये न तस्य प्रतिष्ठा स्यादिति वदन्तः कौलिकाचार्याः, वज्रयानानुयायिनः, नाथयोगिनश्च—"सर्वदेवमयः कायः" (१५।६०४) इति तन्त्रालोकधृतलाकुलसिद्धान्तमनुसरन्तः स्वात्मदेवतामेव पूजयन्ति।

२. मद्यमांसादिकमित्यर्थः।

बौद्धतन्त्रेष्वपि बाह्या, आध्यात्मिकी (मनोमयी), गुह्या चेति पूजायाः प्रकारत्रयं वर्ण्यते। तत्र बाह्याऽपरा, आध्यात्मिकी परा, गुह्यपूजा च परापरेति वक्तुं शक्यते। स्वात्मदेवताया यजनायैव सा समाचर्यते। अत्र सप्तविधाया एकादशप्रकाराया वाऽनुत्तरपूजायाः, चतुर्ब्रह्मविहारभावनायाश्च[1] वर्तते आन्तरपरिशुद्धिः फलम्। एतेषां लक्षणस्वरूपादिकं साधनमालादिग्रन्थेभ्योऽधिगन्तुं शक्यते[2]। देवभावाधिगमाय चात्र निष्पन्नक्रमभावनाऽभ्यस्यते।

त्रिकदर्शनेषु किल आणव-शाक्त-शाम्भवाख्यास्त्रय उपायाः, चतुर्थी चानुपायप्रक्रिया स्वस्वरूपप्रत्यभिज्ञानसाधनतयोपवर्ण्यन्ते। तेषामप्यत्रैवान्तर्भावः कर्तुं शक्यते। तथाहि—केषाञ्चनाणवोपायानामपरायामन्येषां च परापरायाम्, शाक्तोपायस्य परापरायाम्, शाम्भवोपायस्यानुपायप्रक्रियायाश्च परायां समावेश इति। आणवोपायेषु केषुचित् प्राणचक्राद्यान्तरसाधनानां समुपयोगो भवति, शाक्तोपाये शाम्भवोपाये च क्वचन स्वात्मदेवताप्रीतये ललनामद्यमांसानि स्वीक्रियन्त इति तेषां परापराख्यायां पूजायामेव समावेशो भवितुमर्हति, न परायाम्। शाम्भवोपायपर्यन्तावस्थायामनुपायप्रक्रियायां च प्रविष्टो योगी प्रातिभज्ञानमन्तरा न किमपि बाह्यमान्तरं वा साधनमपेक्षत इति सत्यं तथाविधायां शाम्भवोपायप्रक्रियायामनुपायप्रक्रियायां च परा पूजा निष्पाद्यते। उपायचतुष्टयं चास्माभिरन्यत्र[3] विवृतमिति नात्र पुनः प्रयत्यते। केवलं पूजात्रयमेव यथाशास्त्रं नातिविस्तरेण वर्ण्यते।

अपरा पूजा

स्थानप्रकल्पनाख्यमाणवोपायं वर्णयताऽभिनवगुप्तेन तन्त्रालोके—

स्थानभेदस्त्रिधा प्रोक्तः प्राणे देहे बहिस्तथा।
प्राणश्च पञ्चधा देहे द्विधा बाह्यान्तरत्वतः॥

---

१. मैत्री-करुणा-मुदिता-उपेक्षाख्याश्चत्वारो भावा अत्र चतुर्ब्रह्मविहारपदेनोक्ताः। ते च—"मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्" (१।३३) इत्यस्मिन् पातञ्जलीये योगसूत्रे, "मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थ्यानि च सत्त्व-गुणाधिक-क्लिश्यमान-अविनयेषु" (७।१२) इति जैनदर्शनीये तत्त्वार्थसूत्रेऽपि च वर्ण्यन्ते।

२ बौद्धतन्त्रवर्णिता त्रिविधा पूजाऽत्रापि (पृ० ७६-७७) संक्षेपेण द्रष्टुं शक्यते।

३. विज्ञानभैरवीये उपोद्घाते, द्वितीये संस्करणे, १५-२० पृष्ठानि द्रष्टव्यानि।

मण्डलं स्थण्डिलं पात्रमक्षसूत्रं सपुस्तकम् ।
लिङ्गं तूरं पटः पुस्तं प्रतिमा मूर्तिरेव च ॥
इत्येकादशधा[1] बाह्यं पुनस्तद्बहुधा भवेत् । (६।२-४)

इत्युक्तम् । अत्र—"पुस्तं लेपादिनिर्मिताकृतिः । मूर्तिर्गुर्वादिसम्बन्धिनी" इति तत्रैव जयरथः। तत्रोपरि वर्णितेष्वेकादशस्थानेषु स्वेष्टदेवतां प्रतिष्ठाप्य बाह्यैरेव पुष्पादिभिः कृतं समाराधनमपरा पूजा। "स्थण्डिलादुत्तरं तूरं तूरादुत्तरतः पटः" इति सिद्धयोगीश्वरीमते स्थण्डिलतूरपटानामुत्तरोत्तरं वैशिष्ट्यं प्रदर्श्यते । अत्रापि जयरथः—"स्थण्डिलं यागार्थं गृहीतो भूप्रदेशः। तूरं पात्रादावुत्कीर्ण आधारविशेषः" (२।४३) इत्येवं स्थण्डिलतूरशब्दौ व्याख्याति। तूरलक्षणं च सविधानं सिद्धातन्त्रतः संगृहीतं लुप्तागमसंग्रहे (भा० २, पृ० १९९-२००) द्रष्टव्यम् । "मण्डलं सारमुक्तं हि मण्डश्रुत्या शिवाह्वयम्" (तन्त्रा० ३७।२१) इत्यत्र मण्डलपदनिर्वचनं प्रदर्श्यते। "मण्डलमिति मण्डं शिवाह्वयं सारं लातीत्यर्थः" इति च तत्र जयरथः। अस्मिन् प्रसङ्गे—"सर्वार्चनं स्थण्डिले स्यान्न च तत्राधिवासनम्" इति हंसपारमेश्वरवचनम्, "अन्तर्लिङ्गं दृढं बद्ध्वा बहिर्लिङ्गं प्रपूजयेत्" इति सिद्धान्तवचनं च स्मरणार्हम् ।

लुप्तागमसंग्रहस्य द्वयोरपि भागयोः संगृहीतेषु वचनेषु बाह्यार्चनसंबद्धा नैके विषयाः प्रतिपाद्यन्ते । दशदिक्पालपूजनेऽष्टदिक्षु तावदष्टौ दिक्पालाः पूज्यन्ते मण्डलादिषु । नवमदशमयोस्तु पूजनस्थानं कुत्रेति समस्या—

इन्द्रेशानदिशोर्मध्ये स्थानमन्यत् प्रकीर्तितम् ।
नैर्ऋताम्बुदिशोर्मध्ये स्थानमन्यत् प्रकीर्तितम् ॥

इति [2]तत्त्वविमर्शिनीश्लोकेन समाधीयते। इन्द्रेशानदिशोर्मध्ये गगनाधिपस्य, नैर्ऋताम्बुदिशोर्मध्ये च पातालाधिपस्य पूजनं विधेयमिति तेन ज्ञायते । इन्द्रदिगत्र पूर्वा, अम्बुदिक् च पश्चिमा। "ततो मूले उत्तरतः" इति त्रिशिरो-

---

१. स्थण्डिलेऽग्नौ पटे लिङ्गे पात्रे सूत्रेऽथ मण्डले ।
मूर्तौ घटेऽस्त्रसंघाते घटे सूत्रेऽथ पूजयेत् ॥
तन्त्रालोके (२७।४५-४६) समुद्धृतेऽस्मिन् भैरवकुलवचने परिगणितेष्वेकादशस्थानेषु किञ्चिदिव वैभिन्न्यमवलोक्यते ।

२. "इन्द्रेशानयोर्मध्ये ब्रह्माणमूर्ध्वदिक्पतिम्, निर्ऋतिवरुणयोर्मध्येऽनन्तमधोदिक्पतिं विद्यादित्युपदेशः" (भा० ३, पृ० ३६) ईशानशिवगुरुदेवपद्धतिवचनेऽस्मिन् स एव क्रमो निर्दिश्यते ।

भैरववचने नन्दिरुद्रगङ्गायमुनादीनां पूजनस्थानं निर्दिश्यते। एवमेव द्वारदेवताक्रमस्त्रिशिरोमते वामसिद्धान्तमतयोश्च प्रतिपादितः स्वच्छन्दोद्योते (२।२४-२५) वर्ण्यते। पराख्यसंहितायां पञ्चगव्यविधानं दृश्यते। स्वच्छन्दतन्त्रवदेव (३।५४-५५) सात्वतसंहितायामपि (७।१०, १६।१३) पञ्चगव्यसंस्कारोऽवधानार्हः। अत्रत्यं भाष्यमपि द्रष्टव्यम्।

सिद्धान्तशैवपद्धत्या स्नानासनसन्ध्यातर्पणन्यासमुद्रादेहशुद्धिभूपरिग्रहाधिवासमण्डपार्घ्यपात्रसाध्यमन्त्रजपपूजाऽग्निकार्यादिविचारः किरण-निःश्वासोत्तर-पौष्कर-मतङ्ग-मयसंग्रह-रौरव-स्वायम्भुवादिवचनेषु द्रष्टुं शक्यते। शैवाद्यागमेषु क्रियाचर्यापादयोर्वर्तते बाह्यार्चनस्य महान् विस्तरः। पाशुपतीये पञ्चार्थप्रमाणे घोरमन्त्रव्याख्यानप्रसङ्गे—"नमस्कारः परित्यागः कार्यकारणलक्षणः" इति नमस्कारलक्षणं प्रदर्श्यते। वेदव्रतानि महायज्ञाश्च यज्ञसूत्रवचनयोः, अष्टाचत्वारिंशत्संस्काराश्च प्रायः सर्वेष्वागमेषु केषुचित् स्मृतिग्रन्थेषु च द्रष्टुं शक्यन्ते। बाह्यार्चनरूपो विषयोऽयं परशुरामकल्पसूत्रद्वितीयसंस्करणपरिशिष्टे ३८६-३९५, ४२८-५४१ पृष्ठेषु वितानित इति तत्रैवावलोकनीयः।

परा पूजा

[१]क्रमवासनावचनेष्वान्तरयजनपद्धत्या शोषण-करशुद्धि-उन्मज्जनानां स्वरूपं निदर्श्यते। ग्रन्थोऽयं साम्प्रतं सुभगोदयवासनानाम्ना मुद्रित उपलभ्यते। सम्पूर्णेऽस्मिन् ग्रन्थे चिद्विलासस्तवे च वासनामयी बाह्याभ्यन्तरपुष्पप्राणाद्यनपेक्षिणी सेयमान्तरवरिवस्या स्वे महिम्न्यद्वये धाम्नि प्रतिष्ठापनप्रवणा प्रदर्श्यते। ज्ञानदीपविमर्शिन्यामधुनावध्यप्रकाशितायां सन्ध्यासूर्योपस्थानादिप्रकरणेषु सर्वेषु बाह्या आन्तराश्चोपचारा वर्ण्यन्ते। तेषां स्वरूपमुदयाकरपद्धतिवचनेष्वपि द्रष्टुं शक्यते। विज्ञानभैरवस्य प्रारम्भिकेष्वन्तिमेषु च श्लोकेषु, विशेषतो धारणाप्रतिपादकेषु श्लोकेषु चानुपायप्रक्रियामुखेन परा पूजा विवृता। गीतानिष्यन्दे, भट्टनायकस्तोत्रे, पूर्वतन्त्रे च जप-यजन-लिङ्गादिपदानां तादृश एवार्थः स्फोर्यते।

---

१. महार्थमञ्जरीपरिमले (पृ० ११२-११३) महेश्वरानन्देन स्वपरमगुरोः क्रमवासनायास्त्रयः श्लोकाः समुद्धृताः। ते च तन्नाम्नैव लुप्तागमसंग्रहप्रथमभागे संगृहीताः। त्रयोऽपीमे श्लोकाः सुभगोदयवासनायां (२१, २४, २६) नित्याषोडशिकार्णवसंस्करणेऽस्मदीये परिशिष्टेषु प्रकाशितायामुपलभ्यन्त इति ग्रन्थ एष क्रमवासनातोऽभिन्न इति निश्चीयते।

प्रकाशविमर्शात्मकं सचराचरं जगदिति किल प्रत्यभिज्ञादर्शनप्रतिपादितः पन्थाः। प्रकाशविमर्शयोश्च चन्द्रचन्द्रिकयोरिवाभेद इति सत्यमद्वयप्रकाशविमर्शात्मकमेव सर्वम् । तमेनं सिद्धान्तं त्रैपुरसम्प्रदायमनुसरन्तोऽप्यङ्गीकुर्वन्ति । अत्र पूज्यपूजकयोः पूजाद्रव्याणां च वस्तुतोऽभावात् प्रकाशविमर्शात्मकमिदं तत्त्वं भावोपहारैरेव पूज्यते। इयमेव परा पूजा। निस्त्रैगुण्ये पथि विचरद्भिरेषा सम्पाद्यते । योगिनीहृदये तस्याः स्वरूपमेवमुपवर्ण्यते—

महापद्मवनान्तःस्थे वाग्भवे गुरुपादुकाम् ।
आप्यायितजगद्रूपां परमामृतवर्षिणीम् ॥
संचिन्त्य परमाद्वैतभावनामदघूर्णितः ।
दहरान्तरसंसर्पन्नादालोकनतत्परः ॥
विकल्परूपसंजल्पविमुखोऽन्तर्मुखः सदा ।
चित्कल्लोल्लासदलितसंकोचस्त्वतिसुन्दरः ॥ इति ।

अस्यार्थस्तट्टीकायां दीपिकायामवलोकनीयः । प्रकाशविमर्शात्मककामेश्वरकामेश्वरीमिथुनस्वरूपमिदं तत्प्रतीकभूतेऽद्वयात्मके महाबिन्दौ प्रकाशपरमार्थे प्रसारपरमार्थे च कामकलारूपेण समारूढमेवमेव समाराध्यते ।

अपरापूजाविवरणारम्भेऽत्र स्थानभेद इत्यादिकः श्लोकस्तन्त्रालोकीयः समुद्धृतः। तत्र बाह्येष्वेकादशस्थानेषु यथा पूजा निष्पाद्यते, तथैव प्राणे देहे च सा निष्पाद्येति प्रोच्यते । एकादशबाह्यस्थानानि तत्रैव परिगणितानि, टिप्पण्यां चापि वचनान्तरेण तानि प्रदर्शितानि। देहे बाह्याभ्यन्तरभेदेन द्विधा पूजा सम्पाद्यते । तन्त्रान्तरेषु मूलाधारादिस्थानेषु कुण्डलिनीशक्तिजागरणमुखेन भाव्यमाना आन्तरी, बाह्येषु हृदयादिषु षडङ्गन्यास-करन्यास-मुद्राबन्ध-मुद्राविरचनादिरूपेण सम्पाद्यमाना बाह्या, शरीरस्थैर्बाह्यैरान्तरैश्च द्रव्यैः सम्पाद्यमाना गुह्येति ज्ञेयम् । क्रमश आसां परायाम्, अपरायाम्, परापरायां च पूजायामन्तर्भावो विधेयः ।

प्राणस्तावत् पञ्चधा

हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले ।
उदानः कण्ठदेशे स्याद् व्यानः सर्वशरीरगः ॥

इत्यादिसरण्या शरीरस्य विभिन्नेष्ववयवेषु सरति, श्वासप्रश्वासरूपेण चान्तर्बहिश्चरति। तन्त्रान्तर्बहिश्चरतः श्वासप्रश्वासानवलम्ब्य योगिनोऽजपा-

जपविधिं सम्पादयन्ति, शरीरान्तःसरतः प्राणानालम्ब्य च कालोदय-वर्णोदय-चक्रोदयान् भावयन्ति। तत्रभवानभिनवगुप्तः—"कालाध्वा प्राणे स्पष्टं प्रतिष्ठितः" (तन्त्रा० ६।३७) इत्यादिना षष्ठे सप्तमे चाह्निके तानेतान् कालोदयादिप्रकारान् वर्णयति। बौद्धे कालचक्रतन्त्रेऽपि प्रकारोऽयं सविशेषं निरूप्यते। परायामेव पूजायामस्याप्यन्तर्भावो मन्तव्यः। अजपाजपोऽपि पराया एव पूजाया विशिष्टः प्रकार इति विभावनीयम्।

परापरा पूजा

"इन्द्रियप्रीणनद्रव्यैर्विहितस्वात्मपूजनः" (३।८) इति योगिनीहृदयवचने च परापरायाः पूजाया विधानमवगन्तव्यम्, न परायाः। यतो हि स्वात्मदेवतायाः पूजार्थमत्र इन्द्रियप्रीणनानि बाह्यानि देहस्थानि वा द्रव्याण्युपादीयन्ते। अनन्त-वासनामलिनितं हि चेतो विपथं धावति। विकल्पशोधनमन्तरा तस्य शुद्धिर्दुःश-केति वामकुलक्रमत्रिकादिषु वज्रयानतन्त्रेषु च स्वात्मदेवताप्रीणनप्रवणा अपूर्वा काचन पूजापद्धतिराविष्कृता, या हि सममेव पतनाय च समुन्नतये च प्रभवति। इन्द्रियप्रीणनमुखेन भावान् शोधयन्ती सा कल्याणाय कल्पेत, विषयानुरागं वर्ध-यन्ती च पापाय। यदाह योगभाष्यकारः—"चित्तनदी नाम उभयतोवाहिनी। वहति कल्याणाय वहति पापाय च" (१।१२) इति।

तन्त्रालोके पञ्चदशाह्निके ऊनत्रिंशाह्निके च नानाग्रन्थप्रामाण्येन क्रमशो वामाचारप्रधानः कुलप्रक्रियाप्रवणश्च परापराख्यः पूजाविधिरेव प्रधानतया विवेचितः। कुलप्रक्रियायां वज्रयानग्रन्थेषु च पञ्चरत्न-पञ्चप्रदीप-पञ्चामृतपदा-भिलप्यानि द्रव्याणि देहस्थानि पूजोपादानतया परिगृह्यन्ते। तन्त्रालोकविवेके—

रेतो हराम्बु पुष्पं च क्षारं नालाज्यकं तथा।
पौरुषं क्ष्माभवं छागं मोनजं शाकुनीयकम्॥
पलाण्डुं लशुनं चैव द्रव्यद्वादशकं शुभम्। (२९।१७)

इत्यत्र द्रव्यद्वादशकम्,

देहस्थं च चरुं वक्ष्ये यत्सुरैरपि दुर्लभम्।
शिवाम्बु रेतो रक्तं च नालाज्यं विश्वनिर्गमः॥ (२९।२००)

इत्यत्र च रत्नपञ्चकं निर्दशितम्। अत्र एकादशं द्वादशं च द्रव्यं विहाय शिष्टानि द्रव्याणि वज्रयानग्रन्थेषु पञ्चामृत-पञ्चप्रदीपाभिख्यया समुपात्तानि। देह-स्थद्रव्येषु तेषां परिगणनं भवति। एभिः सम्पाद्यमाना गुह्यपूजैव[1] परापराख्याऽ-

१. वामकौलक्रमादिसम्प्रदायवर्णितायाः परापरायाः पूजायाः, बौद्धतन्त्रवर्णिताया एकादशविधानुत्तरपूजायाश्च विस्तरोऽस्मदीये "तान्त्रिकी वरिवस्या—तस्या भेदाश्च" इति शीर्षके निबन्धेऽत्रैव (पृ० ६६-७८) प्रकाशिते द्रष्टव्यः।

भिधीयते। गच्छता कालेनान्तरेषु देहस्थेषु द्रव्येषु "नन्दहेतुफलैर्द्रव्यैरर्घ्यपात्रं प्रपूरयेत्" (२९।२२) इति तन्त्रालोकदिशा कुण्डगोलकाख्यं द्रव्यद्वयमेव परिगृहीतमभूत्। त्रैपुरे सम्प्रदाय आन्तरदेहस्थद्रव्याणां परिष्कृतं स्वरूपमेवाङ्गीकृतमभूदिति योगिनीहृदयादिग्रन्थानामवलोकनेन स्फुटीभवति।

उपसंहारः

एवमत्र कथं नाम साधको देवस्वरूपो भूत्वा देवयजनसमर्थो भवितुमर्हतीति प्रश्नस्य समाधानमुखेन भूतशुद्धिप्राणप्रतिष्ठयोर्विधिः, देवयजनाख्यायाः पूजायास्त्रैविध्यं च व्यावर्णितम्। अत्र भागद्वयात्मके लुप्तागमसंग्रहे संकलितानि नानाविधानां ग्रन्थग्रन्थकाराणां वचनान्येव प्रमाणत्वेन धृतानीति तेषां वचनानामनिर्दिष्टान्याकरस्थलानि तत्साहाय्येन ज्ञातुं शक्यन्ते। इदं चात्रावधेयं यत् परापूजायां भूतशुद्धिप्राणप्रतिष्ठयोरपेक्षा नास्ति, अपरायां परापरायां चैव वर्तते तयोरपेक्षा। यदाऽपरया पूजया चक्रादिषु स्वेष्टदेवतायाः पूजकः "स्वानुभूतसंवित्स्वभावमकृत्रिमाहंपरामर्शमयं भगवद्रूपं बहिरिदन्तयोल्लास्य चक्रे—

निजनिजेषु पदेषु पतन्त्विमाः करणवृत्तय उल्लसिता मम।
क्षणमपीश मनागपि मैव भूत् त्वदविभेदरससक्षतिसाहसम्॥
(शिवस्तोत्रावली, ८।५)

इति श्रीरहस्यगुरूक्तरीत्या [1]भेदेन क्षणपरिभावितमस्मत्प्रमादं क्षमस्व" (नि० षो०, पृ० १४२) इति शिवानन्दव्याख्यानपद्धत्या क्षमां याचते, तदा परायां पूजायां भावोपहाराणि समर्पयतः साधकस्य कथैव का? एवं च परायां पूजायां तस्या उपर्युक्तासु विविधासु प्रथासु च प्रकारान्तरेण भूतशुद्धिप्राणप्रतिष्ठयोर्विधानमेवान्तर्निगूढमिति वक्तुं शक्यत इति सुष्ठूक्तम्—"अन्तःशुद्धिं समासाद्य बहिःशुद्धिं समाचरेत्" इति, "बाह्यपूजां सर्वामप्यादावन्तः कुर्यात्" इति च। अपरायाः पूजाया अपेक्षयाऽपि परापरायाः प्रारम्भे तु नूनं नितान्तमपेक्षिता सा भावद्रव्यादिशोधनाय। अत एव परायाः पूजाया उत्तमत्वमुद्घोष्यते। देशकालधर्मजात्यादिगतान् भेदान् दमयन्ती परा पूजा सर्वोत्तमेत्यत्र को नाम दार्शनिक आस्तिको नास्तिको वा, आधुनिकान् नानाविधान् वादान् रूढिवादप्रगतिवादादीनां प्रतिनिधोनङ्गीकुर्वाणो वा विवदेत? इति सत्यं सुष्ठूक्तं देवो भूत्वा यजेद् देवानिति शम्॥

---

१. अयं भावः— रहस्यगुरोः शिवस्तोत्रावलीकारस्य भट्टोत्पलस्य भगवदविभेदरसक्षतिः क्षणमपि मनागपि नाभिमता। उपासकेन च भगवती त्रिपुरसुन्दरी श्रीचक्रे बहिःस्थे पूजामण्डले भेदेन इदन्तयोल्लास्य क्षणमुपास्यते। एष प्रमाद एव क्षाम्यतेऽत्रेति।

प्रायश्च सिद्धान्तप्रियो लोकः

प्रसिद्धः काश्मीरको विद्वानभिनवगुप्तशिष्यः क्षेमराजः स्वीये स्वच्छन्दोद्योते भणति—"प्रायश्च सिद्धान्तप्रियो लोकः सिद्धान्तक्रममास्थितः" (२।२५) इति। "सिद्धान्तशब्दः पङ्कजादिशब्दवद् योगरूढ्या शिवप्रणीतेषु कामिकादिषु दशाष्टादशसु तन्त्रेषु प्रसिद्धः" (पृ० १४९) इति वदन्नघोरशिवाचार्यो हि सिद्धान्तशब्दस्य स्पष्टां परिभाषामातनोति। "शैवशब्देनानुत्तीर्णपदप्रापककैरणादि-सिद्धान्तशास्त्रमुच्यते" (११।७४) इति च पुनः क्षेमराजः स्वच्छन्दोद्योत एव वक्ति।

स्वतन्त्रो दशधा पूर्वं दशाष्टादशधा पुनः।
कामिकादिसमाख्याभिः सिद्धः सिद्धान्तसंज्ञितः॥ (१।३२।१२)

इति शिवपुराणीयवायवीयसंहितावचनमपि सिद्धान्तशब्दस्य तामिमां परिभाषां पोषयति। भैरवागमान्तर्गतस्य स्वच्छन्दतन्त्रस्यापि काश्मीरकेण भुल्लकेन भुल्लुकेन वा सिद्धान्तागमानुसारिणो व्याख्या विहितेति तदसहमानः क्षेमराजः स्वच्छन्दोद्योते तन्मतं बहुशः खण्डयति। रौरवस्वायम्भुवादि-तन्त्रव्याख्याताऽष्टप्रकरणीयप्रकरणपञ्चकस्य रचयिता च सद्योज्योतिःशिवाचार्य आत्मानमुग्रज्योतिषः[1] शिष्यं ख्यापयति। मोक्षकारिकाव्याख्यानारम्भे रामकण्ठः सद्योज्योतिर्बृहस्पती[2] गुरूणामपि वन्द्याविति निर्दिशति। ममभूवंश्च नारायणकण्ठसुतरामकण्ठपर्यन्तं बहवो विशिष्टा द्वैतवादिनः सिद्धान्तशैवाचार्याः कश्मीरेषु शिवशम्भुनामान्ताश्च आचार्या मध्यदेशे दक्षिणे भारते च।

तदेतस्य द्वैतवादिनो दर्शनस्य शैवागमीयस्य तदाचार्याणां च केषाञ्चन परिचयोऽस्माभिरागममीमांसाख्ये ग्रन्थे, आगमीयं दर्शनमिति नामधेये निबन्धे[3], लुप्तागमीये उपोद्घाते च प्रधानत उमापतिशिवाचार्यकृतशतरत्नोल्लेखिनीसरण्या,

---

१. उग्रज्योतिर्गुरुः श्रीमान् सर्वविद्यासरित्पतिः। (मोक्षकारिका, श्लो० १५७)

२. गुरूणामपि तौ वन्द्यौ सद्योज्योतिर्बृहस्पती। (अष्टप्रकरणे, पृ० २४५)।

३. राष्ट्रिय-संस्कृत-संस्थानषाण्मासिकशोधपत्रिकायाः "संस्कृतविमर्शः" इत्याख्यायाश्चतुर्दशखण्डीये प्रथमभागे २१-३८ पृष्ठेषु मुद्रितोऽयं निबन्धः १९८६ ई० वर्षे नवदिल्लीतः।

लुप्तागमसंग्रहभागद्वये संकलितानां सिद्धान्तशैवागमवचनानां च साहाय्येन, अस्मदीयेऽष्टप्रकरणसंस्करणे च तदाधारेण संक्षेपेण विस्तरेण च समुपस्थापितः, अष्टप्रकरणपरिशिष्टे च तत्रत्यानां प्रायः सर्वासां परिभाषाणां संग्रहमुखेन सिद्धान्तागमदर्शनीयो यावान् विषयोऽकाराद्यनुक्रमणीपद्धत्या पाठकानां सौविध्याय संयोजितः। वाराणसेयेन च प्रथितेन केनचिद्विदुषा लुप्ता. उपो. (१२२-१५१ पृष्ठेषु) विवृतो विषयः संकलय्य स्वनाम्ना स्थापितः। स्मार्तोऽपि सन् स निबन्धान्ते "वयं तान्त्रिकाः सुखमास्महे" इति भणति। अत्रेदमवधेयं यत् सर्वज्ञानोत्तरमिति वर्तते ग्रन्थस्य नाम, न तु ज्ञानधर्मोत्तरमिति। एवमेव संवित्प्रकाशस्य नाधुनावधि मुद्रणं संजातम्[1], अपि तु तस्य वचनानि स्पन्दप्रदीपिकायां तत्र निर्दिष्टे स्थले समुपलभ्यन्त इति।

कैश्चनास्य सिद्धान्तशास्त्रस्य दक्षिणभारतीयदर्शनमित्यपि नाम ख्याप्यते। तत्तु नास्मभ्यं रोचते। यद्यपि द्वैत-द्वैताद्वैत-अद्वैतवादिनामागमानामवतारभूर्मध्यदेश इत्यभिनवगुप्तो भाषते, तथापि प्रत्यभिज्ञादर्शनमुत्पलोपज्ञमिति तस्य काश्मीरप्रभवत्वं वक्तुं शक्यते, किन्तु द्वैतदर्शनविषये नैतादृशं किमपि प्रमाणमुपलभामहे, येन तस्य दक्षिणदेशप्रभवत्वं साधयितुं शक्येत। प्रत्युत सद्योज्योतिःशिवाचार्यप्रभृतिभिर्नारायणकण्ठसुतरामकण्ठपर्यन्तैः काश्मीरकैराचार्यैः स्थापितां परम्परामेवाघोरशिवादयो दाक्षिणात्या आचार्या अनुसरन्तो दृश्यन्ते। शैवभूषणपरिगणितेषु पद्धतिकारेषु[2] प्रथमं काश्मीराभिजनानां विदुषाम्, तदनु च मध्यदेशीयानां सोमशम्भुप्रभृतीनां नामानि दृश्यन्ते। सर्वान्ते वर्ततेऽघोरशिवस्य दाक्षिणात्यस्य नाम। अपि च, डॉ० वी० एस० पाठकमहोदयेन त्रिलोचनशिवाचार्यस्य सिद्धान्तसारावलीवचनमेतदुद्ध्रियते[3]—

---

१. साम्प्रतमयं ग्रन्थो वाराणसीतो मुद्रित उपलभ्यते, डॉ. मार्क एस. जी. डिच्कोफस्कीमहोदयेन सम्पाद्य प्रकाशितः।

२. उग्रोत्तरज्योतिरथोपसद्यः श्रीरामकण्ठोऽपि च वैद्यकण्ठः।
नारायणश्चापि विभूतिकण्ठः श्रीनीलकण्ठोऽपि च सोमशम्भुः॥
ईशानशम्भुर्हृदयादिना स्याद् विरञ्चिवैराग्यकयुग्मवाच्यौ।
ज्ञानस्त्रिणेत्रो वरुणेश्वरौ ज्ञावित्यादयस्ते स्युरघोरशम्भुः॥
इति शैवभूषणे पठ्यते।

३. हिस्ट्री आफ शैव कल्ट्स इन नार्दर्न इण्डिया, अविनाश प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् १९८०; अस्य ग्रन्थस्य ३८ तमपृष्ठस्था टिप्पणी द्रष्टव्या।

राजेन्द्रचोल इत्याख्यश्चोलभूपो महीं वसन्।
गङ्गास्नानार्थमागत्य दृष्ट्वा शैवान् वरांस्तदा॥
स्नात्वा प्रतिनिवृत्तः सन् तान् समादाय शैवकान्।
स्वराज्ये स्थापयामास शैवाचार्यवरांस्तदा॥
काञ्चीमध्ये चोलभूमौ सर्वत्रैव प्रविस्तराः। इति।

परीक्षणार्हमेतत्। किमनेन साधयितुं शक्यते यत् त्रिलोचनशिवाचार्यतः परमेव सिद्धान्तशैवदर्शनपरम्परा तत्र प्रसृतिं लेभे? वस्तुतः साम्प्रतमिदमेव वक्तुं शक्यते यद् द्वैतवादिनां शैवागमानां तद्दर्शनस्य च संरक्षकाः संवर्धकाश्च सन्ति दाक्षिणात्या विद्वांस इति प्रथमतस्तेभ्यो वयं नमोवाकं व्याहरामः।

परा चैवापरा च विद्या उपनिषत्सु श्रूयते। शैवं ज्ञानमपि परापरभेदाद् द्विविधं भवति। तत्र परमवबोधरूपम्, अपरं च कामिकादितन्त्रस्वरूपम्। अवबोधरूपं ज्ञानं शिवस्य शक्तिरेव। सा च द्विविधा—समवायवर्तिनी, परिग्रहवर्तिनी च। तत्र समवायवर्तिन्यपि द्विविधा-बोधरूपा क्रियारूपा च। तत्र बोधरूपा सर्वार्थपरिच्छेत्री। क्रियारूपा च द्विविधा—अनुग्रहरूपा, तिरोधानरूपा चेति। परावबोधरूपं ज्ञानमपरज्ञानरूपशब्दोपारूढमेवार्थेषु प्रवर्तते। निष्कलाच्छिवादवबोधरूपं ज्ञानमेव प्रथमं नादरूपत्वेन प्रसृतम्। पश्चात् सदाशिवरूपात् तन्त्राकारतां प्राप्तमपरं ज्ञानमेव सिद्धान्तनाम्ना प्रथते। एतच्च त्रिपदार्थं चतुष्पादं च भवति।

पति-पशु-पाशाख्यः पदार्था यस्मिन् सन्ति प्रतिपादितास्तत्त्रिपदार्थम्, विद्याक्रियायोगचर्याख्याश्चत्वारः पादा यस्मिंस्तच्चतुश्चरणं तदेतच्छिवशास्त्रम्। तत्र पशूनामस्वतन्त्रत्वात् पाशानामचैतन्यात् तद्विलक्षणस्य पत्युः प्रथममुद्देशः। चेतनसाधर्म्यात् पशूनां तदानन्तर्यम्। अवशिष्टानां पाशानामन्ते विनिवेश इति। दीक्षायाः परमपुरुषार्थहेतुत्वात्, तस्याश्च पशुपाशेश्वरस्वरूपनिर्णयोपायभूतेन मन्त्रमन्त्रेश्वरादिमाहात्म्यनिश्चायकेन ज्ञानेन विना निष्पादयितुमशक्यत्वात् तदवबोधरूपस्य विद्यापादस्य प्राथम्यम्। अनेकविधसाङ्गदीक्षाविधिप्रदर्शकस्य क्रियापादस्य तदानन्तर्यम्। योगेन विना नाभिमतप्राप्तिरिति साङ्गयोगज्ञापकस्य योगपादस्य तदुत्तरत्वम्। विहिताचरणनिषिद्धवर्जनरूपां चर्यां विना योगोऽपि न निर्वहतीति तत्प्रतिपादकस्य चर्यापादस्य चरमत्वमिति विवेकः। तदत्र सर्वप्रथममुद्दिष्टः पतिपदार्थः प्रतिपाद्यते।

सर्वज्ञः सर्वकर्ता सर्वव्यापी सततोदितो नित्यमुक्तः पतिरचेतनस्य जडस्य मायादेर्महामायाप्रमुखस्य जगतः प्रवृत्तिजनकतया सिद्ध्यति। यस्य दृक्क्रिया-

त्मकमैश्वर्यं स्वाभाविकं राजते, स ज्ञानक्रियात्मकशक्तिद्वययुक्तः स्वतन्त्रः प्रभुः शिवः पतिरित्युच्यते। अस्य पत्युः शरीरं स्वशक्तिकिरणात्मकमेव भवति। स च निष्कम्पोऽचलमूर्तिमान्। द्विधा ह्यात्मनां मूर्तिः—चला, अचला चेति। तत्र चला तत्त्वभौवनशरीरात्मिका, अचला तु ज्ञानक्रियास्वभावा। तत्रायं पतिरचलमूर्तिमान्, न तु भौवनशरीरयुक्तः। सैषाऽचलमूर्तिलक्षणा शक्तिः सर्वोत्कृष्टा परमाण्वादेरप्यतिसूक्ष्मा सर्वदिग्गताऽमृतात्मिका प्रध्वस्तावरणा शान्ता आद्यन्तशून्याऽस्य पत्युः शरीरत्वेनोपचर्यते। स पतिर्वपुषो हस्तपादादि-शरीरस्याविद्यमानत्वाद् यद्यत् कृत्यं सृष्टिस्थितिसंहारनिग्रहानुग्रहात्मकं करोति, तस्मिन् कृत्येऽस्य पत्युः शरीरं पञ्चकृत्योपयोगिना वपुषा पञ्चब्रह्मरूपेण शाक्तेन शरीरेण कल्पितं भवति। तदुक्तं मृगेन्द्रे—

तद्वपुः पञ्चभिर्मन्त्रैः पञ्चकृत्योपयोगिभिः।
ईशतत्पुरुषाघोरवामाद्यैर्मस्तकादिकम् ॥ (वि० ३।८) इति।

पत्युरस्य च शक्तिरेव करणम्, तयैव तत्तत्क्रियानिष्पादनात्। यथा लोकेऽमूर्तोऽपि कालः क्षणमुहूर्तादिकः षड्ऋतुरूपः स्वस्वोचितपुष्पफलादीनां प्रतिक्षणं द्रव्यपरिपाकस्य बाल्ययौवनादेश्च साधकः कर्ता प्रख्यायते, एवममूर्तोऽपि शिवः क्षित्यङ्कुरादिकं जगत् स्वकीयेच्छाशक्त्या निर्मिमीते।

अस्य प्रपञ्चस्य ईश्वरो निमित्तकारणम्, शक्तयः सहकारिकारणम्, बिन्दुरुपादानकारणं भवति। तत्रापि शुद्धेऽध्वनि शिवस्य निमित्तत्वं बिन्दोरुपादानत्वम्, अशुद्धेऽध्वनि त्वनन्तस्य निमित्तत्वं मायायाश्चोपादानत्वं वेदितव्यम्। शिवशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्याख्यानि पञ्च तत्त्वानि शुद्धानि, मायादिपृथिव्यन्तानि चैकत्रिंशत्तत्त्वान्यशुद्धान्यभिधीयन्ते। स चेश्वरो जगज्जन्म-स्थितिध्वंसतिरोधानविमुक्त्याख्यानि पञ्चकृत्यानि करोति।

जगच्छब्देन जन्मवज्जन्तुचक्रमुच्यते। तस्य जन्म शिवस्यैकं कृत्यम्। स्वसृष्टस्य सर्वलोकस्य पुरुषार्थप्रसिद्धये व्यापारप्रसिद्धये नियोजनं स्थापनं द्वितीयं कृत्यम्। ध्वंसः स्थित्यन्ते शुद्धाशुद्धाध्वभोगसाधनतनुकरणभुवनादीनां बिन्दुमायात्मककारणे विलयनद्वारा भवाध्वभ्रमणश्रान्तानां संसारिणां विश्रामाया-वस्थापनं तृतीयं कृत्यम्। अयमेव च ध्वंसः प्रलय इत्यप्युच्यते। प्रलयोऽयं त्रिभेदो मतङ्गपारमेश्वरे विद्यापादे पञ्चविंशे पटले विस्तरेण विवृतः। तत्र महाप्रलये माया-पुरुष-शिवव्यतिरेकेण सर्वेषामुपसंहारो भवति। तदुक्तं तत्त्वप्रकाशे—

माया पुरुषः शिव इत्येतत्त्रितयं महार्थसंहारे।
अवशिष्यते पुनस्तत् प्रवर्तते पूर्ववत् सृष्टौ ॥ (श्लो० ६९)

इति। तिरोभावः पाशानुग्रहेण पशूनां यथानुरूपाद्भोगादप्रच्युतिश्चतुर्थं कृत्यम्। अयमेव संरक्षणाख्ययाऽन्यत्रोक्तः। विमुक्तिश्चानुध्यानमनुग्रहः पाशतिरोधानेनाणूनां परापरमोक्षदानम्। तत्रापरमोक्षः षड्विधः, परस्त्वेकविध इति सप्तप्रकारोऽयं मोक्षो मतङ्गपारमेश्वरे (यो० ५।६३-६७) वर्णितः। इदमनुग्रहरूपं कृत्यं शिवः सृष्टिकाले संहारकालेऽपि च करोतीति मृगेन्द्रे (वि० ५।२-३) वर्ण्यते। पौष्करे तु प्रलयकालेऽपि शिवस्य पञ्चकृत्यानि प्रवर्तन्त इति निर्दिष्टम्। एवंप्रकारकस्य पतिस्वरूपस्यावबोधेन पाशेभ्यो विमुच्यन्ते पशवः।

शरीरव्यतिरिक्तोऽनश्वरो नित्यो न तु बौद्धानामिव क्षणिकः, व्यापी न तु जैनानामिव शरीरमात्रपरिमाणः, विभिन्नोऽनेको न तु वेदान्तिनामिवैकः, समलो मलेन सहितोऽज्ञानेनावृतः, अजडो ज्ञानक्रियास्वभावः, स्वार्जितस्य धर्माधर्मात्मकस्य कर्मणः फलभोक्ता, धर्माधर्मात्मकस्य कर्मणः सम्पादयिता, अल्पज्ञो न तु सर्वज्ञः, ईश्वरेण प्रेरितश्च भोगं मोक्षं च भुञ्जानः पुरुषो जीवात्मा पशुरित्युच्यते शैवागमेषु। विज्ञानाकलप्रलयाकलसकलभेदात् पशुरयं त्रिविधो भवति। तत्र प्रथमो विज्ञानयोगसंन्यासैर्भोगेन वा कर्मक्षये सति कलादिभोगबन्धस्याभावात् केवलमलमात्रयुक्तो विज्ञानाकल इति व्यपदिश्यते। द्वितीयस्तु प्रलयेन कलादेरुपसंहारान्मलकर्मयुक्तः प्रलयाकल इति व्यवह्रियते। तृतीयश्च मलमायाकर्मात्मकबन्धत्रयसहितः सकल इति संलप्यते।

मल-तिरोधानशक्ति-महामाया(बिन्दु)-माया-कर्माणि पञ्चापि पुरुषबन्धकतयाऽस्मिन् शास्त्रे पाशपञ्चकत्वेन प्रसिद्धानि। यदुच्यते—"मलः कर्म महामाया मायोत्थमखिलं जगत्। तिरोधानकरी शक्तिः पाशत्वेनार्थपञ्चकम् ॥" इति। तत्र पाशत्वं नाम शिवानन्दाभिव्यक्तिविरोधित्वम्। तच्चाणवमलस्याच्छादकतया, तिरोधानशक्तेस्तु तत्प्रेरकत्वेन, बिन्दुमायाकर्मणामपि भोगभोग्यसम्पादनद्वारा वैषयिकसुखादिजनकत्वेन च बोध्यम्। तत्र चत्वारः पदार्था जडरूपाः, तिरोधायकशक्तिस्तु चिद्रूपापि पाशानुग्राहकत्वात् पाश इत्युपचर्यते। प्रथमो मलाख्यः पाश आणवनाम्नाऽपि प्रसिद्धः। अस्य चाणवोक्तिर्विभोरात्मनोऽणुत्वसम्पादनात्। अत्र महामायामनुपादाय पाशचतुष्टयं मृगेन्द्रागमादिषु वर्ण्यते। तिरोधायकशक्तेरपि पाशत्वमौपचारिकमेव। अत एव मल-कर्म-मायारूपस्त्रिविध एव पाशः स्वायम्भुवागमे वर्णितः—"मायेयमाणवं कार्मं चैतावदणुबन्धनम्" इति। अथात्ममलमायाख्येत्यादिके रौरवस्वायम्भुववचनेऽपि पाशत्रयमेव निदर्श्यते। प्रयोगमञ्जरीकारेणापि त्रय एव पाशाः स्वीकृताः। मलपदेनाणवं मलं संगृह्य कर्ममायापदाभ्यां सह मलपदं च संयोज्य आणव-मायीय-कार्माख्यास्त्रयो मलाः प्रतिपाद्यन्ते त्रिकादिदर्शनेषु। अत्रापि केवलाणवमलयुक्तो विज्ञानाकलः,

आणवकार्ममलसंवलितः प्रलयाकलः, त्रिविधमलसंयुक्तश्च सकल इति त्रिविधः पशुः स्वीकृतः। शाक्तदर्शनेष्वपि मलत्रयमेतत् प्रतिपाद्यते।

एतेषां पाशानामसंस्पर्शे शिवसाम्यरूपं मोक्षं क्रमेणायमात्मा प्राप्नोति। अस्यां स्थितावपि स शिवात् पृथगेव सन्तिष्ठते। मोक्षेऽपि पशोः शिवात् पृथक् सत्तास्वीकाराद् द्वैतमिदं दर्शनम्। आत्मा यदा कर्मसाम्यमलपरिपाकाभ्यां युज्यते, तदा तस्मिन्ननुग्रहाख्या पारमेश्वरी शक्तिः पतति। शक्तिपात इति समाख्यया तदागमेषु परिचीयते। तत्र कर्मसाम्यं नाम समवेतयोर्विरुद्धफलयोः पुण्यरूपयोरपुण्यरूपयोः पुण्यापुण्यरूपयोर्वा युगपत् [1]फलौन्मुख्यम्। इदं च तिरोधानशक्तिनिवर्तनद्वाराऽनुग्रहशक्तिनिपाते हेतुः। अस्य च शक्तिपातस्य संसारविद्वेष-मुमुक्षा-शिवभक्त्यादीनि चिह्नानि। एतैश्चिह्नैरञ्चितं संजातशक्तिपातं शिष्यं विलोक्य गुरुस्तं दीक्षयति, षडध्वशुद्धिमुखेन क्रियाकलापेन तस्य मलान् विशोधयति। शैवेषु वैष्णवेषु चागमेषु कर्मणां भोगहेतुत्ववत् कर्मसाम्यावस्थायां मोक्षहेतुत्वमपि स्वीक्रियते। आचार्यशिष्ययोरुभयोरपि सम्बन्धसम्पादकोऽत्र शिवस्वरूपो मन्त्र एवाभिमन्यते। शक्तिपातसमन्वितो हि शिष्यो देशिकमनुप्राप्य दीक्षाक्षपितकल्मषो निर्मलः सन् शिवसाम्यं लभते। शिवस्येव जीवानामपि सार्वज्ञादिकं पूर्वमेवास्ते। किन्तु संसारदशायां मलरुद्धं न चकासते। मुक्तौ तु मलविगमेनाभिव्यज्यते। तस्मात् स्वीयगुणाभिव्यक्त्या शिवसाम्यमिति सिद्धान्तशैवा अभिव्यक्त्या शिवसाम्यमङ्गीकुर्वते।

एवमत्र संक्षेपेण प्रतिपादिता सिद्धान्तशैवीया दृष्टिः सर्वेषां शैवशाक्तदर्शनानामाधारभूमिः। डॉ० एस० एन० दासगुप्तमहोदयेन[2], डॉ० कृष्णकान्तहाण्डीकीमहोदयेन[3] च स्वस्वग्रन्थेषु सिद्धान्तशैवसिद्धान्तानां परिचयः प्राधान्येन

---

१. आगममीमांसायाः ५२ पृष्ठस्था १ टिप्पणी द्रष्टव्या। "समे कर्मणि संजाते" (विद्या० १।२०) इति किरणागमवचनमुद्धरता शैवपरिभाषाकारेण तदेतत् प्रतिपाद्यते। अघोरशिवस्तु मतमेतत् खण्डयति, अन्यथा च प्रकरणमेतदुपस्थापयतीत्यस्मदीयेऽष्टप्रकरणसंस्करणे (पृ० २००-२०१) द्रष्टव्यम्।

२. हिस्ट्री आफ इण्डियन फिलासफी, भा० ५, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, सन् १९५५, अत्रत्यानि १५९-१७२ पृष्ठानि द्रष्टव्यानि। अत्रत्येष्वन्येष्वपि प्रकरणेषु दासगुप्तमहोदयेन दक्षिणशैवमतादिनाम्ना सिद्धान्तशैवदर्शनं विवृतम्। तत्सर्वं विपर्यस्तप्रायमिति नास्मभ्यं रोचते।

३. यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कल्चर, जीवराज जैन ग्रन्थमाला, शोलापुर, सन् १९४९; अत्रत्यानि ३३४-३३७ पृष्ठानि द्रष्टव्यानि।

भोजदेवकृततत्त्वप्रकाशकुमारदेवकृततात्पर्यदीपिकाख्यतद्व्याख्यानसाहाय्येन कृतः। अघोरशिवरामकण्ठव्याख्यानसहितानामष्टप्रकरणानां तदा प्रकाशितत्वेऽपि किमर्थमाभ्यां विद्वद्भ्यामिमे ग्रन्था नोपयुक्ता इति न जानीमः। वस्तुतो द्वैतवादिनां सिद्धान्तशैवानां सिद्धान्ता अत्रैव व्याख्याताः। दासगुप्तमहोदयस्तत्त्वप्रकाशीयाऽघोरशिववृत्तिमातृकामवश्यमेव स्मरति। तत्र तत्त्वप्रकाशस्य तद्व्याख्यायास्तात्पर्यदीपिकायाश्च सिद्धान्तशैवीयग्रन्थान्तरापेक्षया प्रकृतिर्भिन्नेत्यस्मिन् विषये किमप्युक्तमस्माभिः[1]। पूर्वोक्तविद्वद्द्वयवचनसमालोचनमुखेन पुनरपि विचार्यते।

दासगुप्तमहोदयः[2] कुमारोऽस्थिरचित्त इति तमाक्षिपति, कुमारेण प्रतिपादिताः सर्वे सिद्धान्ताः केषुचन पुराणेषु सामान्यतः, विशेषतश्च सूतसंहितायां पूर्वमेव व्याख्याता इति च स वदति। कुमारदेवः सूतसंहितां क्वापि नाम्ना नोद्धरति। अत्र श्रीकण्ठभाष्ये च सूतसंहितावचनानि प्रमाणीक्रियन्ते न वेति परीक्षणीयमास्ते। बाढं तेन वायवीयसंहिता नैकवारमुद्धृता। अन्यानि कानिचन पुराणानि कूर्मपुराणं तदन्तर्गतामीश्वरगीतां च स सादरं स्मरति, मतङ्गमृगेन्द्रादीनागमग्रन्थांश्च स यथावसरं प्रमाणयति, किन्तु नाघोरशिवादिवत् सार्वात्म्येन आगमाननुसरति। अघोरशिवादयो हि दाक्षिणात्या आचार्याः काश्मीरकैराचार्यैर्द्वैतवादिभिः क्षुण्णां सरणिमनुसरन्ति, मध्यदेशीयाश्च आचार्या नैकात्म्येन तदनुयायिन इत्युक्तमन्यत्र[3]। एवं च कैश्चन द्वैताद्वैतवादिभिरद्वैतवादिभिश्च स्थापितां पुराणेषु प्रपञ्चसारप्रभृतिग्रन्थेषु च निर्दिष्टां निश्चितां परम्परां कुमारः स्वीये व्याख्यानेऽनुसरतीति तस्याऽस्थिरचित्तत्वकथनं नैव तावत् प्रमाणानुमोदितं पश्यामः।

कुमारदेवस्य—"न च शिवस्य परिणामित्वमिति वाच्यम्, विवर्तवादाश्रयणात्" (पृ० ४३) इतीदृग्विधानि शाङ्कराद्वैतवादानुकारीणि वाक्यानि दृष्ट्वा डॉ० ह्याण्डीकीमहोदयः[4] शैवदर्शनं विवर्तवादमनुसरतीति वक्ति, ईशानशिवगुरुदेवपद्धतिं चात्र स्मरति। किन्त्वेतद्विभावनीयं यदेतादृशानि वाक्यानि तत्र दृष्ट्वैवाघोरशिवस्तत्त्वप्रकाशव्याख्यानारम्भेऽद्वैतवासनाविष्टैरित्यादिकं श्लोकं रचयति। वस्तुतो द्वैतवादिनः शैवाः सत्कार्यवादिन इत्यसकृत् स स्वीयासु वृत्तिषु

१. अष्टप्रकरणीये उपोद्घाते १०-१२ पृष्ठान्यवलोकनीयानि।

२. पृ. १७०,२ टिप्पण्यां निर्दिष्टं स्थलं पश्यत।

३. अष्टप्रकरणीये उपोद्घाते ११-१२ पृष्ठे द्रष्टव्ये।

४. पृ. १७०,३ टिप्पण्यां निर्दिष्टं स्थलं पश्यत।

सत्कार्यवादोऽयमस्माभिर्विस्तरेण मृगेन्द्रवृत्तिदीपिकायां[1] व्याख्यात इति कथयति। अतो नैव कुमारदेवव्याख्यानं सार्वात्म्येन सिद्धान्तशैवदर्शनमनुसरतीति विभावनीयं किल विपश्चिद्भिः।

द्वैतवादिनो हि सिद्धान्तशैवाः पतिपशुपाशाख्यस्य तत्त्वत्रयस्य सार्वात्म्येन पार्थक्यं मन्यन्ते। नैषामैक्यं कदापि भवितुमर्हतीति तेषां निश्चितः सिद्धान्तः। अत एव ते द्वैतवादिनोऽभिधीयन्ते। नैयायिकवन्माध्वा वैष्णवा अपि जीवात्म-परमात्मनोः शाश्वतिकं भेदमेवांगीकुर्वन्ति। अतः सिद्धान्तशैवग्रन्थानां तद्विपरीतं व्याख्यानं नैव परम्परां तदीयामनुसरतीत्येव मन्तव्यम्। बन्धमोक्षावुभावत्र वास्तविकौ, न त्वद्वैतवादिनामागमिकानामिव बौद्धानामिव वा विकल्पघटितौ।

"तत्र पतिः शिव उक्तः" इति वचनं व्याकुर्वन् कुमारः शिवशब्देन जात्येकवचनेन शिवत्वयोगिनां मन्त्र-मन्त्रेश्वर-मन्त्रमहेश्वर-मुक्तात्म-शक्ति-शिवानां शिवतत्त्वप्राप्तिसाधनेन दीक्षादिनोपायकलापेन सह पतिपदार्थे संग्रहं करोति। "मुक्तात्मानोऽपि शिवाः किन्त्वेते यत्प्रसादतो मुक्ताः। सोऽनादिमुक्त एको विज्ञेयः पञ्चमन्त्रतनुः॥" इत्यादिना मुक्ताद्यपेक्षया पञ्चमन्त्रतनुत्वं नाम शिवस्य वैलक्षण्यं प्रतिपाद्यते। भगवानवधूतसिद्धश्च—"परमशिवः सिद्धान् प्रत्युपरताधिकारोऽप्यन्येष्वनुपरताधिकारः। सिद्धः पुनरेकान्तेन सर्वत एवोपरताधिकार इति भेदः" (अष्ट०, पृ० २८१) इत्येवं परमशिवस्य मुक्तात्मनश्च शिवस्य भेदं निर्दिशति। सततोदितः प्रभुः शान्त इत्यनेन च भगवतः शिवस्य सततोदितं (नित्योदितं) शान्तोदितं चेत्यवस्थाद्वयं तथैव सूच्यते, यथा हि पाञ्चरात्रागमेषु परस्य व्यूहात्मनश्च भगवतो वासुदेवस्य नारायणस्य वा [2]तदेतद्दशाद्वयं वर्ण्यमानमास्ते। [3]लयभोगाधिकारभेदेन, [4]शक्तोद्युक्तप्रवृत्तभेदेन, सकल-सकलनिष्कल-निष्कल-स्वरूपमुखेन च तस्यावस्थात्रयवत्त्वमपि तत्र तत्र वर्ण्यते। जीवोन्मुखस्य शिवस्या-

---

१. अष्टप्रकरणे १२५, १५५, पृष्ठे अवलोकनीये।

२. "तत्र सततोदितया नित्योदिताऽपरनामधेयया दशया युक्तः परवासुदेव इति, शान्तोदितया च दशया युक्तो व्यूहवासुदेव इत्युच्यते" इत्यादिना प्रतिपादितं परब्रह्मणो दशाद्वयमत्रैव (पृ० ३३) द्रष्टव्यम्।

३. भगवतः शिवस्यावस्थात्रयमेतन्मतङ्गपारमेश्वरविद्यापादे तृतीयचतुर्थपटलयोर्विस्तरेण विवृतं द्रष्टव्यम्। बौद्धमहायानशाखायां भगवतो बुद्धस्य धर्मसंभोगनिर्माणाख्यं कायत्रयमभ्युपगम्यते। कायत्रयमेतल्लयभोगाधिकारावस्थाभिरपि सूचयितुं शक्यते।

४. लुप्तागमसंग्रहद्वितीयभागस्य उपोद्घाते (पृ० १३०) एतदर्थं द्रष्टव्यः।

वस्थात्रयमेतत्। एवमेव शिवोन्मुखस्य जीवास्याऽप्यवस्थात्रयं[1] सांसिद्धिकादिगुणत्रयं[2] चोत्पद्यमानं शास्त्रेषु वर्ण्यते।

अत्रेदं विचारणीयम्—लब्धदीक्षः शिवसमतारूपां मुक्तिं कामयमानो जीवः षडध्वशुद्धिमुखेन यदा प्रवर्तते, तदा तत्त्वान्तःपातिनः शिवस्यापि षडध्वान्तर्भूततया तस्यापि किं शुद्धिरपेक्षिता, उत सर्वानुग्राहकः पञ्चमन्त्रतनुः शिवस्तद्भिन्न इति ? अत्राघोरशिवः "शिवतत्त्वं जगदुराचार्याः" इति कारिकाव्याख्यायामाह—"एवंभूतमुपादानरूपं महामायाख्यं शिवतत्त्वमाचार्या जगदुरिति। न त्वियमार्या परमशिवविषयतया तच्छक्तिविषयतया वा व्याख्येया, शिवादिपृथिव्यन्ततत्त्वलक्षणप्रस्तावे तत्त्वातीतयोस्तयोरत्राप्रस्तुतत्वात्। तयोरेव शिवतत्त्वरूपत्वेन शुद्धाध्वोपादानत्वाभ्युपगमे परिणामित्वादचेतनत्वादिदोषप्रसङ्गात्। न च चिद्विवर्ताभ्युपगमो युक्तः, सर्वप्रमाणसिद्धत्वेन जगतोऽसत्यत्वाभावात्, विवर्तस्य चासत्यत्वाभ्युपगमात्, शिवतत्त्वसंज्ञाया बिन्द्वात्मनः कुण्डलिन्याश्चित्समवायाभावेन परिग्रहशक्तित्वेन श्रवणाच्च" (पृ० ४८) इति। अत्रैव स पौष्करागमवचनानि प्रमाणयति, नादोपादानत्वेनापि च महामायां साधयति। अपि चान्यत्र (पृ० ४५) उपादानं शरीराणां विद्याविद्येश्वरात्मनामिति वचनमुद्धृत्य नादादिद्वारेण मन्त्रतन्त्राद्युत्पादकत्वमप्यस्याः श्रूयत इत्युक्त्वा "शक्तेर्नादो भवेद् बिन्दुरक्षरं मातृका ततः" (क्रि० १।१) इति मृगेन्द्रागमवचनं स्मारयति। शक्तितत्त्वव्याख्यानावसरे च—"अस्य बिन्दोर्य आद्य उन्मेषः प्रथमः परिणामः शान्त्यादिभुवनात्मको नादात्मकश्च, तच्छक्तितत्त्वमुच्यते" (पृ० ५०) इति वदन् स शक्तिशिवशब्दौ बिन्दुनादवाचकौ साधयति। एवं च षडध्वशुद्धिप्रक्रियायां तत्त्वान्तःपातिनोः शिवशक्तिपर्याययोर्बिन्दुनादयोरेव शुद्धिरपेक्ष्यते, न तु तत्त्वातीतयोरिति तत्प्रतिपादितः पन्थाः। "तत्त्वाध्वा च पदाध्वा च वर्णाध्वा भुवनात्मकः। मन्त्राध्वा च कलाध्वा च विशन्त्येकं परं शिवम्॥ अप्रमेयमनिर्देश्यम्" (अष्ट०, पृ० १७४) इति च मृगेन्द्रागमक्रियापादवृत्त्युद्धृतं स्वायम्भुवागमवचनम्।

---

१. शिवस्य जीवस्य चावस्थात्रयमेतदष्टप्रकरणे नतिपूर्वः कृतवर्ग इति श्लोकव्याख्यायाम् (पृ० १३९), लुप्ता० उपो० च १३०, १३४-१३५ पृष्ठेषु वर्ण्यमानमास्ते।

२. "सांसिद्धिकाश्च भावाः प्राकृतिका वैकृताश्च धर्माद्याः" (का० ४३) इत्येवं सांख्यकारिकायां प्रदर्शिता धर्मादयो भावा उत्पद्यमाना जीवेषु "सांसिद्धिका वैनयिकाः प्राकृताश्च भवन्त्यणोः" इत्यादिना मृगेन्द्रवचनप्रामाण्येनाष्टप्रकरणेऽपि विवृता विद्यन्ते (पृ० २१६)।

नादो बिन्दुरिति श्लोकव्याख्यानावसरे शिवाख्यं तत्त्वमाश्रिताविति पाठं स्वीकरोति कुमारः। विद्येश्वरविद्यामन्त्राणां सदाशिवे वृत्तिमन्ये मन्यन्त इति मतं स खण्डयति, सकलौ नादबिन्दू सदाशिवं तत्त्वमाश्रिताविति पाठान्तरं च प्रदर्शयति। अघोरशिवस्तु—"परबिन्दोः शिवतत्त्वत्वेन तत्कार्यस्य सूक्ष्मनादस्य शक्तितत्त्वान्तर्भावेन चोक्तत्वात् सकलो बिन्दुरक्षरबिन्द्वात्मको नादश्च स्थूलध्वनिरूपः। द्वौ च सदाशिवतत्त्वान्तर्भूतौ ज्ञेयौ। विद्येशानामनन्तादीनामीश्वरतत्त्वेऽन्तर्भावः। मन्त्राणां सप्तकोटिसंख्याकानां वाचकशब्दानां च व्योमव्याप्यादीनां विद्यानां[1] च कामिकाद्यष्टाविंशतितन्त्राणां विद्यातत्त्वेऽन्तर्भावः" (पृ० ५३) इत्येवं कारिकामेनां व्याकरोति, "बिन्दोर्यो द्वितीयः प्रसरः परिणामः शक्तितत्त्वव्यवधानेन जायते तत् सदाशिवतत्त्वमाहुः" (पृ० ५१) इति च सदाशिवतत्त्वस्य स्वरूपं प्रदर्शयति।

पञ्चानां शुद्धतत्त्वानां क्रमः कल्पित इत्यस्यार्थस्य प्रतिपादिका पञ्चानामप्येषामिति कारिका प्रक्षिप्तेत्यघोरशिवो भाषते, तत्त्वं वस्तुत एकमिति कारिकां च परमशिवप्रतिपादकतया योजयति। भोजदेवोऽत्र 'कल्पिताः' इति पदं प्रयुङ्क्ते। कुमारदेव एवात्र भोजानुगुणः प्रतीयते। न स पञ्चानामिति कारिकां प्रक्षिप्तां मन्यते। अघोरशिवस्तु—"ततश्चास्य शक्तिव्यापारभेदादुपचारेण सदाशिवादिभेदाः काल्पनिका एव, न तु परमार्थतः। अधिष्ठेयस्य तु बिन्दोः शिवतत्त्वाद्यवस्थाभेदः सत्य एव" (पृ० ५५) इति ब्रूते, मृगेन्द्रपौष्करागमौ च प्रमाणयति। वस्तुतोऽत्र भोजराजस्तद्व्याख्याता कुमारश्च सिद्धान्तशैवागमसिद्धान्तात् प्रच्युताविव दृश्येते अभेदवादमिव स्थापयन्तौ। षडध्वशुद्धिप्रक्रियायां क्रमः कश्चन आश्रीयते। स च शास्त्रेषु व्युत्क्रमेण (संहारक्रमेण) उपादीयते। "व्युत्क्रमेणोपनेयोऽसौ शिवाय गमनं प्रति" इति हि स्वायम्भुवागमः। किञ्च, प्रलयाकलानां विज्ञानाकलानां च विद्याविद्येश्वरादिपदप्राप्तिः क्रमेणैव श्रूयते। "शुद्धेऽध्वनि शिवः कर्ता प्रोक्तोऽनन्तोऽसिते प्रभुः" इति वचनानुसारं महामायामुपादानीकृत्य शिवः शुद्धाध्वानमनन्तश्च मायामुपादायाऽशुद्धाध्वानं प्रवर्तयतीति च श्रूयते। एतत्सर्वमसामञ्जस्यमवलोक्यैवाऽघोरशिवो हेतुप्रदर्शनपुरस्सरं कारिकाया अस्याः प्रक्षिप्तत्वं साधयति (पृ० ५४)।

रत्नत्रये बिन्दुशक्तिशिवाख्यानि त्रीणि तत्त्वानि वर्ण्यन्ते। तत्र शक्तिशिवौ तत्त्वातीतौ, बिन्दुश्च शिवतत्त्वपर इति व्याख्येयम्, "जायतेऽध्वा यतः शुद्धो वर्तते

---

१. स्त्रीदैवत्या मन्त्रा विद्यापदेनाभिधीयन्त इति शाक्तागमीया परिभाषा नात्राघोरशिवेन स्वीकृता। उचितं तु तदेव प्रतिभाति, प्रकरणानुरोधात्।

यत्र लीयते। स बिन्दुः परनादाख्यो नादबिन्द्वर्णकारणम् ॥" (श्लो० २२) इति तत्रैवोक्तेः। शिवः कर्ता शक्तिकरणको महामायामुपादाय जगत् सृजत्यवति संहरतीति सुष्ठूक्तं जायतेऽध्वा यतः शुद्धो वर्तते यत्र लीयत इति। बिन्द्वात्मक-मेतत् शिवतत्त्वं परनादाख्यम्। तदुक्तं रत्नत्रये—"शब्दतत्त्वमघोषा वाग् ब्रह्म कुण्डलिनी ध्रुवम् ॥ विद्याशक्तिः परो नादो महामायेति देशिकैः। बिन्दुरेवं समाख्यातो व्यामाऽनाहतमित्यपि ॥" (श्लो० ७०-७१) इति। नादकारिकायामपि स एवमेव वर्णितः—"तत्सिद्धो नादः परः सुमङ्गला मालिनी महामाया। समनाऽनाहतबिन्दुरघोषा वाग् ब्रह्म कुण्डलिनीतत्त्वम् ॥ विद्याख्यं तत्त्वमित्युक्तं तैस्तैस्तदागमेष्वित्थम्।" (श्लो० १६-१७) इति। अनेनैकमेव तत्त्वं तेषु तेष्वा-गमेषु तत्तन्नाम्ना प्रसिद्ध्यतीति सूच्यते। परनादाख्य एष बिन्दुरेव नादबिन्द्वर्ण-कारणतया कालोत्तरादौ वर्णितः। तत्र नादो नामाभिधेयबुद्धिहेतुर्बिन्दोः प्रथमप्रसररूपः सूक्ष्मो नादश्चिन्तया रहितत्वेन श्रीमत्कालोत्तराद्युक्तः। बिन्दुश्च तत्कार्यमयूराण्डरसबिन्दुवदव्यपदेश्यः परामर्शज्ञानरूपोऽक्षरबिन्दुस्तत्रैव सूक्ष्म-त्वेनोक्तः। अर्णश्च वर्ण आकाशवायुप्रभवः श्रोत्रग्राह्यः स्थूलशब्दः। यदुक्तं तत्र— "स्थूलं शब्द इति प्रोक्तं सूक्ष्मं चिन्तामयं भवेत्। चिन्तया रहितं यत्तु तत्परं परिकीर्तितम् ॥" (पृ० १५२) इत्येवमघोरशिवस्तद्विस्पष्टयति। अत्र कारण-बिन्दुतो भिन्नः कार्यबिन्दुः, परनादाच्च भिन्नो नाद इति सूच्यते। नादश्चैषः— "बुद्ध्यस्मितामनोभ्यो विद्यातो रागतः कलायाश्च। मायापुंशक्तिभ्यो नादोऽन्यो दृश्यते ध्वनिभ्योऽपि ॥" इत्यादिना नादकारिकायां वर्ण्यते। रत्नत्रये च —"शब्दराशिश्च बिन्दूत्थो बिन्दुर्नादादसावपि। बिन्दोरनाहतादेष कारणं शुद्धवर्त्मनः ॥" इत्येवं प्रकरणमेतदुपसंह्रियते। "अनाहतबिन्दुरिति शुद्धाध्व-योनेर्महामायायाः संज्ञा" (पृ० १७८) इति चाघोरशिवो व्याकुरुते।

पञ्चानामाद्यानां चिद्रूपतयाऽन्वय इति कारिकांशव्याख्यानावसरेऽघोर-शिवः—"आद्यानां शुद्धानां पञ्चानां तत्त्वानां सर्वज्ञत्वसर्वकर्तृत्वोपोद्बलनहेतु-त्वाच्चिद्रूपतया चिदुपकारितयाऽन्वयः। न तु तेषां चैतन्याभ्युपगमो युक्तः, अचेतनत्वस्य प्रागेव साधितत्वात्" (पृ० १०२) इति भणति, बिन्द्वाख्यस्य शिवतत्त्वस्य स्वरूपनिरूपणावसरे च सः—"अथवा ज्ञानक्रिये अस्य न स्वभाव इति नञ्प्रश्लेषाज्जडरूपतया व्याख्येयम्, न तु ज्ञानस्वभावतया, उपादानत्वेन मृदादिवदचेतनत्वात्, ज्ञानस्वभावस्योपादानत्वायोगात्" (पृ० ४७) इति।

सर्वस्यैतस्याघोरशिवेन बिन्दुनादादिजडतत्त्वपरकतया योजितस्य शुद्धतत्त्वप्रकरणस्य वैशद्यार्थं पूर्वमस्माभिः प्रमातृसप्तकविचारः प्रस्तूयते। शिवः,

मन्त्रमहेश्वरः, मन्त्रेश्वरः, मन्त्रः, विज्ञानाकलः, प्रलयाकलः, सकलश्चेति सप्त प्रमातारः काश्मीरकैः शैवैः कैश्चन शाक्तैश्चाचार्यैः स्वोक्रियन्ते। शक्तिसमवेतः शिवः प्रथमः प्रमाता, सदाशिव एव मन्त्रमहेश्वरः, ईश्वरो मन्त्रेश्वरः, शुद्धविद्या च मन्त्रपदाभिलप्या। मलमात्रयुक्तो विज्ञानाकलः, मलकर्मयुक्तः प्रलयाकलः, मलकर्ममायाख्यपाशत्रयबद्धश्च सकल इति सर्वे एते शब्दा मन्त्रमहेश्वरपदं विहायाष्टप्रकरणाख्येषु ग्रन्थेषु शब्दसूचीसाहाय्येन द्रष्टुं शक्यन्ते।

मायाधिकारान्मुक्ताः प्रलयाकला विज्ञानाकलाश्च क्रमेण मन्त्रमन्त्रेश्वरत्वमेव न, शिवत्वमपि लभन्ते। मन्त्रमन्त्रेश्वराधिपतयोऽनन्तादयः क्रोधेशा मण्डलिनः शतरुद्रादयश्च किमेते सर्वेऽचेतना ज्ञानशून्याः? नेत्येव प्रश्नस्योत्तरं स्यात्। "शुद्धेऽध्वनि शिवः कर्ता प्रोक्तोऽनन्तोऽसिते प्रभुः" इति श्रूयते। तत्र शिवो महामायामुपादाय शुद्धसृष्टिम्, अनन्तश्च मायामाश्रित्याशुद्धसृष्टिमातनुत इत्यघोरशिवोऽपि तत्र तत्रोद्धरति। अतश्च शुद्धाध्वप्रकरणमेतदघोरशिवेन व्याकुलीकृतमिव प्रतीयते। जडानां हि तेषां कथं प्रमातृकोटौ प्रवेशः स्यात्?

तत्त्वातीतौ शक्तिशिवौ स स्मरति (पृ० ४८), तत्त्वान्तःपातिनावपि तौ स्याताम्। षट्त्रिंशत्तत्त्वेषु शक्तिशिवयोरेव सर्वत्र परिगणनं विद्यते, न क्वापि बिन्दुनादयोः। "शब्दजातमशेषं तु धत्ते सर्वस्य वल्लभा। अर्थस्वरूपमखिलं धत्ते मुग्धेन्दुशेखरः॥" इति वचनानुसारं शब्दात्मिका सृष्टिः शक्तितः, अर्थात्मिका च शिवादाविर्भवतीति ज्ञायते। तत्र बिन्दोरर्थात्मिका, नादाच्च शब्दात्मिका सृष्टिः प्रवर्तत इति बिन्दुनादयोः शिवशक्तिस्वरूपत्वमङ्गीकर्तुं शक्यते, किन्तु बिन्दुनाददृष्टान्तेन शुद्धानां पञ्चानामपि तत्त्वानां जडत्वसाधनं युक्त्यागमविरुद्धमेव। अथवा (पृ० ४७) इत्यादिना पक्षान्तरोत्थापनेनाघोरशिवस्यापि वैरस्यमत्र दृश्यत इव।

पशुत्रयप्रकरणं व्याकुर्वन् स एवमाह—"परिपक्वमलान् सकलानाचार्यमूर्तिस्थः शिवः शक्तिपातमहिम्ना परे तत्त्वे योजयति, शेषांश्चाष्टादशाधिकशतसंख्याकान् मन्त्रेशान् विधत्ते। प्रलयाकलेषु येषां मलकर्मणी पक्वे ते मुच्यन्ते, अन्ये संसरन्ति। तेषु कांश्चनानुगृह्य महेश्वरस्तेभ्यो भुवनपतित्वं वितरति। विज्ञानाकलेषु शिवोऽष्टावनन्तादीन् विद्येशत्वे नियोजयति, अन्यांश्च सप्तकोटिसंख्याकान् मन्त्रान् विधत्ते" इति। अत्र शुद्धतत्त्वान्तःपातिनां शिवप्रेर्यत्वमितरेषां चानन्तेशप्रयोज्यत्वमभिमतम्, "गुह्यातिगुह्यगुह्यतरपवित्रस्थाण्वाख्यपञ्चाष्टकादीनां भुवनपतीनामनन्तनियुक्तत्वेनैव श्रुतेः" (पृ० ३१) इत्यघोरशिवकथनात्।

तत्र—"तत्राष्टौ मण्डलिनः क्रोधाद्यास्तत्समाश्च वीरेशाः। श्रीकण्ठः शतरुद्राः शतमित्यष्टादशाभ्यधिकम्॥" इत्येते सकलानामनन्तनियोज्यानामष्टादश-

धिकशतसंख्याकानां भुवनाधिपतीनां भेदाः प्रदर्श्यन्ते। तेषु—"मण्डलिनोऽष्टौ कलामस्तकवासिनो गहनेशादयः" (पृ० ३२), "तत्र मण्डलिनोऽष्टौ कलामस्तकस्थाः। ... मण्डलाधिपतिभ्यो यस्तत्त्वमार्गः प्रतिष्ठितः" (पृ० १२७) इत्येवं मण्डलिनः, "क्रोधादयश्च गुणमस्तकस्था अष्टावेव" (पृ० ३२, १२७), "क्रोधेश आदौ यस्याष्टकस्य श्रीकण्ठसहितस्य" (पृ० २६२) इत्येवं क्रोधेशादयः, "वीरेशो वीरभद्रः शतरुद्राधिष्ठाता" (पृ० ३२, १२७), "शतरुद्राणां ब्रह्माण्डधारकाणामधिष्ठाता वीरभद्रः" (पृ० २३१), "वीरभद्रादीनां मायागर्भाधिकारित्वात् सकलत्वाच्च ब्रह्मादिवन्मायातत्त्वादधः कलादिभुवनेष्ववस्थितिः" (पृ० २६२) इत्येवं वीरभद्रः, "श्रीकण्ठो गुणतत्त्वनिलयोऽधस्तनभुवनादेश्च कर्ता" (पृ० ३२, १२७) इति श्रीकण्ठः, "शतरुद्राश्च ब्रह्माण्डधारकाः" (पृ० ३२), "शतभवाः शतरुद्रा ब्रह्माण्डधारकाः" (पृ० १२७) इति च शतरुद्रा व्यावर्ण्यन्ते। शतरुद्राणां नामानि कुमारदेवोद्धृतगुरुदेवपद्धतिवचनेषु (पृ० १७-१८) द्रष्टव्यानि। श्रीकण्ठादीनां गहनेशादीनां च तत्तद्भुवनपतीनां नामानि तन्त्रयात्रायां[1] संक्षेपेण, स्वच्छन्दतन्त्रे[2] च विस्तरेण द्रष्टव्यानि। एतेषां च गौणं मन्त्रेश्वरत्वम्, "अनुग्रहाय जन्तूनां मन्त्राणां हि प्रयोजकाः। एते मन्त्रेश्वरास्तस्मान्न मन्त्रोर्ध्वव्यवस्थितेः॥" (श्लो० ७९-८०) इति मोक्षकारिकावचनात्। "मन्त्रमन्त्रेश्वरयोः पश्चादुत्पत्तेर्मायागर्भाधिकारित्वादधोभागेऽप्येषामाचार्यादिवत् पश्वनुग्रहाय मन्त्रप्रयोजकत्वान्मन्त्रेश्वरत्वम्, न त्वनन्तादीनामिव मन्त्रेभ्य ऊर्ध्वं स्थितत्वात्" (पृ० २६२) इति हि तत्राघोरशिवव्याख्यानम्।

गुह्यातिगुह्यगुह्यतरपवित्रस्थाण्वाख्यपञ्चाष्टकादीनां भुवनपतीनामनन्तनियोज्यत्वमधुनैव सूचितम्। मोक्षकारिकाव्याख्यायामपि स वक्ति—"तन्मात्राद्यहङ्कारान्ते चाध्वनि गुह्यातिगुह्यगुह्यतरपवित्रस्थाण्वाख्यानि पञ्चाष्टकानि भुवनानां स्थितानि" (पृ० २३१) इति। महेश्वर एतेषां भुवनानामाधिपत्यं प्रलयाकलेभ्यो वितरतीति व्याकुरुते भोजदेववचनमघोरशिवः (श्लो० १२)। एतेषां भुवनानामप्यवस्थितिस्तन्त्रयात्रायां[3] स्वच्छन्दतन्त्रे च द्रष्टुं शक्येत। तेन

---

१. तत्रत्ये २६-२७ पृष्ठे द्रष्टव्ये।

२. स्वच्छन्दतन्त्रस्य भुवनाध्वनिरूपके दशमे पटले सिद्धान्तिसंमतानां चतुर्विंशत्युत्तरशतद्वयभुवनानां विस्तरेण विवरणं दृश्यते। कैरणे च विद्यापादे (८।९२-१४१) तानि संक्षेपेण सूचितानि। मालिनीविजये (१।३७) तु भुवनानां सकलानां संख्याऽष्टादशोत्तरशतमेव सूचिता, वर्णितानि च तानि पञ्चमाधिकारे।

३. उपरि धृते १-२ संख्याके टिप्पण्यौ द्रष्टव्ये।

सकलेभ्यः प्रलयाकलानां स्थितिरधस्तादित्यायाति, सकलानामष्टादशोत्तरशतभुवनाधिपतीनामङ्गीकारात्। "श्रीपूर्वशास्त्रे च मन्त्रमन्त्रेश्वराणां विज्ञानाकलाः, मन्त्रेश्वराणां सकला उपादानत्वेनोक्ता इति पारिशेष्यान्मन्त्राणां प्रलयाकलोपादानत्वं सिद्धम्" (९।१४१) इति वदन् तन्त्रालोकविवेककारो जयरथोऽपि मतमेतत् समर्थयतीव।

कुमारस्तु प्रलयाकलानष्टादशोत्तरशतभुवनाधिपतीनङ्गीकुरुते, न सकलान्। सकलास्तु पुर्यष्टकदेहयुताः संसरन्तीति स आह। तेनोद्धृतानि सिद्धान्तहृदयवचनानि तद्व्याख्यानमेव समर्थयन्ति, किन्तु तत्रैव निर्दशितानि शैवरहस्यवचनानि श्रीमतोऽघोरशिवस्य व्याख्यानं पोषयन्ति। मोक्षकारिकायां चानन्तादयोऽष्टौ मन्त्रेश्वराः, सप्तकोटिसंख्याका मन्त्राः, अष्टादशोत्तरशतभुवनाधिपतयश्च मण्डल्यादयो यद्यपि वर्ण्यन्ते, किन्तु तेषां विज्ञानाकलप्रभृतिभ्यो न कोऽपि सम्बन्धः प्रदर्शितः। प्रसङ्गेऽस्मिन् मन्त्रमहेश्वरस्य सदाशिवाख्यस्य कुत्रापि चर्चा नास्ति। रत्नत्रयकारः श्रीकण्ठस्तु—"उत्तीर्णमायाम्बुधयो भग्नकर्ममहार्गलाः। अप्राप्तशिवधामानस्त्रिधा विज्ञानकेवलाः॥" (श्लो० २३) इति, "विज्ञानकेवलास्त्रेधा" (श्लो० १४१) इति च त्रिविधान् विज्ञानाकलान् सदाशिवेश्वरमन्त्राख्यान् वर्णयति। "विद्या विद्याधिपतयः पशुपूर्वाः सदाशिवाः" (श्लो० २४) इति स्पष्टोक्तौ सत्यामप्यघोरशिवोऽमुं श्लोकं सकल-प्रलयाकल-विज्ञानाकलपरकतया योजयति।

विषयोऽयं सद्योज्योतिषा तत्त्वसंग्रहेऽपि निबद्धः। प्रकरणमेतद् व्याकुर्वन्नघोरशिवः—"अत्र च विज्ञानकेवलानष्टौ बोधयामास पुद्गलानिति श्रुतेः शुद्धाध्ववर्तित्वाच्च विज्ञानाकलानां मध्यात् परिपक्वमलानामेव तत्पाकतारतम्यवशाद् विद्येश्वरत्वे मन्त्रेश्वरत्वे च नियोगः, अपरमन्त्रेश्वरत्वेऽशुद्धाध्ववर्तित्वादपक्वमलानां प्रलयाकलानामेवेति मन्तव्यम्" (पृ० १२७) इत्येवं विज्ञानाकलानां परमन्त्रेश्वरत्वं प्रलयाकलानां चापरमन्त्रेश्वरत्वं साधयति। मन्त्रपद स एवं तत्रैव व्याकरोति—"मन्त्रशब्दश्चात्र मननं सर्ववेदत्वं त्राणं संसार्यनुग्रहः। मननत्राणधर्मित्वान्मन्त्र इत्यभिधीयते॥" इति श्रुतेः शिवत शक्तितदनुगृहीतेषु च वर्तते। उपचारात्तु वाचकशब्दानां मन्त्रत्वमिति वक्ष्यामः। निर्मलत्वाच्च प्रकाशितज्ञानक्रिया एते मननादिधर्मयोगाच्छुद्धविद्यातत्त्वाश्रितत्वाच्च रौरवादौ शैवशास्त्रे मन्त्रतत्त्वमित्युच्यन्ते" (पृ० १२७) इति। अत्र स्पष्टमेवानन्तेशप्रभृतीनां विज्ञानाकलानां मन्त्रेश्वरत्वं मन्त्रत्वं च, अष्टादशोत्तरशतसंख्याकानां प्रलयाकलानामपरमन्त्रेशत्वं भुवनपतित्वं च साध्यते। स्पष्टमेवैतदघोरशिवस्य व्याख्यानं पूर्वव्याख्यानतो विपरीतम्।

अत्राघोरशिवेन मन्त्रेश्वरा एव मन्त्रमन्त्रेश्वरा उक्ताः, मन्त्राद्यात्मकशब्दोपादानतया विद्येश्वरादीनां देहेन्द्रियाद्याधारभूतशुद्धाध्वभुवनोपादानत्वेन च कुण्डलिन्याख्या महामाया तेन साधिता (पृ० १३१)। वस्तुतस्तु सदाशिवतत्त्वमेव मन्त्रमहेश्वरपदभागित्यवगन्तव्यम्। महामायापदेनापि दभिलपितं शक्यते। एवं च मन्त्रमहेश्वरः सदाशिवः, मन्त्रेश्वरा अनन्तादय ईश्वरपदभाजः, मन्त्रा विद्याश्च सप्तकोटिसंख्याका इति त्रिविधा विज्ञानकेवलाः, पृथिव्यादिकलातत्त्वपर्यन्तानां भुवनानामधिपतयः शतरुद्रादयश्च प्रलयाकला इत्येव पक्षोऽस्माकमुचितः प्रतिभाति। प्रमातृभेदसाधनाय सर्वत्रात्र साम्यपक्षः समाश्रयणीयः। अर्थाद् विज्ञानाकला मन्त्रमहेश्वरादिसदृशाः, प्रलयाकलाश्च भुवनाद्यधिपतिसदृशा भवन्ति। अथवैषामिन्द्रमन्वादिन्यायेन मन्त्रमहेश्वरादिपदप्राप्तिः साधनीया। पक्वमलाश्च सकला हिरण्यगर्भादयः, सनकाद्या योगिनः, आचार्याः, देवाश्च भवन्तीति सिद्धान्तहृदयप्रदर्शितः पन्थाः।

बुद्धेर्भावाख्यः प्रत्ययाख्यश्च सर्गः सांख्यकारिकायामपि व्याख्यायते। तत्र भावा अष्टौ धर्मादयः, प्रत्ययाश्च चत्वारः सिद्ध्यादयः। एष प्रत्ययसर्ग इत्यादिना सांख्यकारिकायां प्रत्ययसर्गस्य पञ्चाशद्भेदाः प्रदर्श्यन्ते। शैवागमेषु तु शतत्रयसंख्याका[1] भावा वर्णिताः। "इह हि बुद्धौ वासनात्वेन स्थिता धर्मादयोऽष्टौ भावा उच्यन्ते। ... त एव प्रकर्षावस्थां प्राप्ताः स्थूलेन रूपेण भोग्यदशामापन्नाः संसारिणां प्रत्यायनात् प्रत्ययाः कथ्यन्ते" (पृ० २१७) इति चाघोरशिवः।

सांख्या अन्तःकरणत्रयस्य—"सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च" (सां० का० २९) इति संगिरन्ते, अत्र तु अहङ्कारस्य संरम्भाख्यात् प्रयत्नात् शारीराः पञ्च दश वा वायवश्चेष्टन्ते। यथाह पञ्चकर्मकृत इत्यादिश्लोकव्याख्यायामघोरशिवः—"जीवनाय शरीरधारणार्थं प्रणयनापनयनादिपञ्चकर्मकृतस्तत्तद्वृत्तिभेदेन प्राणापानादिसंज्ञाभाजो वायोः प्रवर्तकः संरम्भात्मको यः प्रयत्नः, सोऽहङ्कारवृत्तिः" (पृ० २११) इति। अहङ्कारस्य

---

१. "ते च भावाः सिद्ध्यादिप्रत्ययभेदेन शतत्रयसंख्या भवन्तीत्युक्तमन्यत्र" (पृ० ११८) इत्यमघोरशिवस्तत्त्वसंग्रहव्याख्यायां वक्ति। एते च भावा मतङ्गपारमेश्वरवृत्तौ (१७।१५७) व्याख्याता द्रष्टव्याः—

धर्मो दशभिर्भेदैर्ज्ञानमशीत्या शतेन वैराग्यम्।
ऐश्वर्यं चतुष्षष्ट्या दशभिरधर्मस्तदर्धतोऽज्ञानम्॥
दशभिरवैराग्यं चानैश्वर्यं भिन्नमेकविंशत्या।
भावप्रत्ययभेदः संक्षेपोक्तः शतत्रयेणायम्॥

करणस्कन्धः पञ्चप्राणात्मकः, प्रकृतिस्कन्धश्च सात्त्वराजसतामस इत्यभिनवगुप्तोऽप्याह (तन्त्रा० ९।२३१-२३३)।

आहङ्कारिकप्रकृतिस्कन्धप्रतिपादनेऽप्यस्ति सिद्धान्तशैवानां स्वीयं वैशिष्टयम्। तथाहि—"तैजसाख्यादहङ्काराद् राजसाच्चलस्वभावं मन उत्पद्यते, वैकारिकात् सात्त्विकात् प्रकाशलाघवोपेतमिन्द्रियदशकम्, भूतादेस्तामसात् तमोबहुलानां तन्मात्राणामुद्भव इति। तैजसात् सात्त्विकात् स्वच्छं लघूत्पद्यते मन इत्यन्ये। सात्त्विकसहकृताद् वैकारिकाद् राजसाद् बुद्धीन्द्रियाणामुत्पत्तिः, ज्ञानसाधनत्वात्। तामससहकृताद् वैकारिकात् कर्मेन्द्रियाणामिति। सांख्याः सात्त्विकादेवाहङ्कारादेकादशेन्द्रियाणाम्, तामसात् तन्मात्राणामुत्पत्तिं मन्यन्ते" (पृ० ९१) इति कुमारो विवृणोति। अघोरशिवस्तु—"तैजसादहङ्कारान्मनोबुद्धीन्द्रियाणि जायन्ते, वैकारिकात् कर्मेन्द्रियाणि, भूतादेरपि तन्मात्राणीत्यर्थः। न च तैजसतो मन एव, वैकारिकादुभयरूपाणीन्द्रियाणीति व्याख्येयम्" (पृ० ९२) इत्याह। उत्पत्तिरहङ्काराच्चित्तबहिष्करणभूतयोनीनामिति वचनं विवृण्वंश्च स एवमेवाह—"तत्र मनसो बुद्धीन्द्रियाणां च सात्त्विकात् तैजसाख्यादहङ्कारस्कन्धादुत्पत्तिः, कर्मेन्द्रियाणां तु राजसाद् वैकारिकाख्यात्, भूतयोनीनां च तन्मात्राणां तामसाद् भूतादिसंज्ञादेवं त्रिविधादहङ्कारादेषामुत्पत्तिः" (पृ० ११८) इति। "बुद्धीन्द्रियद्वारेण तैजसेनाहङ्कारेणात्मनो ज्ञानशक्तिरुन्मील्यते। वैकारिकेणापि कर्मेन्द्रियद्वारेण क्रियाशक्तिरुन्मील्यते" (पृ० ११९) इत्यपि स एवाह। एतच्च मतं भोगकारिकानुगुणम्। यदुक्तं तत्र—"समनोबुद्धिदेवानां गणो यस्मात् प्रकाशकः। तस्मात् स सात्त्विकाज्जातः स्वानुरूपादहङ्कृतः॥" (श्लो० ३६) इति, "राजसाद् वैकृताद् वर्गः कर्माक्षाणां तु कर्मकृत्" (श्लो० ४३) इति, "मात्रासङ्घोऽप्यहङ्काराद् वर्गद्वयविलक्षणः। प्रकाश्यस्तामसस्तस्माज्जातो भूतादिसंज्ञकात्॥" (श्लो० ४५) इति च।

अयमेव पक्षस्तन्त्रालोकेऽपि (९।२३४, २५३, २७१) स्वीकृतः। अत्र सः "तैजसादुभयम्" (का० २५) इति सांख्यकारिकामतमपि स्मरति। ततः स मनसो राजसाहङ्कृतिजन्यत्वमिति पक्षम्, मनसः सात्त्विकात्, बुद्धिकर्मेन्द्रियाणां राजसादहङ्काराज्जन्मेति पक्षम्, खेटपालस्य कर्मेन्द्रियाणां राजसत्वमिति पक्षं च समुपस्थाप्य—"श्रीपूर्वशास्त्रे तु मनो राजसात् सात्त्विकात् पुनः। इन्द्रियाणि समस्तानि युक्तं चैतद्विभाति नः॥" (९।२७६-२७७) इत्याह। मतमेतन्नास्मभ्यं रोचते। "तत्त्रिधा तैजसात् तस्मान्मनोऽक्षेशमजायत। वैकारिकात् ततोऽक्षाणि तन्मात्राणि तृतीयकात्॥" (१।३१) इति हि तत्रत्यं वचनम्। सांख्य-

कारिकापद्धत्या तैजसपदं राजसतया संयोज्याभिवगुप्त एवं वदति, जयरथश्चान्यत्र—"सात्त्विकादिति तैजसशब्दाभिहितात्, ... राजसादिति वैकारिकशब्दाभिहितात्" (९।२७४-२७५) इति व्याकुर्वाणोऽपि प्रसङ्गेऽस्मिन् तद्व्याख्यानं न स्मरति। वस्तुतो मनसः सात्त्विकाहङ्कारजन्यत्वम्, बुद्धिकर्मेन्द्रियाणां राजसत्वम्, तन्मात्राणां तामसत्वमेव मालिनीविजये वर्ण्यते। तैजसवैकारिकभूतादिशब्दाः क्रमशः सात्त्विकराजसतामसगुणबोधकाः सन्ति शैवागमेष्विति पक्षोऽस्माभिरन्यत्र[१] वितानित इति नात्र पुनः प्रयत्यते।

एवं संक्षेपेणात्र सिद्धान्तशैवागमीया दृष्टिरितिहासश्च प्रदर्शित इति तेन प्रायश्च सिद्धान्तप्रियो लोक इत्युक्तिः खलु क्षेमराजस्य सत्यैव। अत एव पुराणेष्वन्यत्रत्याः सृष्टिसंहारयोगदर्शनविषयका विचारा दरीदृश्यन्ते। नारदीयमहापुराणस्य पूर्वभागे ६३ तमेऽध्याये विवृतं सिद्धान्तशैवीयं दर्शनं भोगकारिकावचनानि च तत्रोद्धृतानि तदत्र प्रमाणम्। अधुना एतावदेवोक्त्वा विरम्यते॥



१. अष्टप्रकरणीये उपोद्घाते ३७-३८ पृष्ठे द्रष्टव्ये। ३७ पृष्ठस्थे द्वितीयतृतीये टिप्पण्यौ च नूनमवलोकनार्हे।

आचार्यशङ्करीयः प्रपञ्चसारः

प्रस्थानत्रयीप्रतिष्ठापकेन भगवता शङ्कराचार्येण काश्चन उपनिषदो ब्रह्मसूत्रं भगवद्गीता च व्याख्यातानीति नात्र कश्चन विवादः। पञ्चायतन-पूजापद्धतिं प्रतिष्ठापयता तेन स्मार्तधर्मप्रवर्तकः प्रपञ्चसाराख्यो ग्रन्थो रचित इत्यत्र तु वर्तते महान् कोलाहलः प्राच्यानां पाश्चात्यानां च विदुषाम्। परम्परा-प्रामाण्यवादिनो यांस्तर्कान् प्रस्तुवन्ति, न तानङ्गीकुर्वन्ति साम्प्रतिकगवेषणा-सिद्धान्तप्रवीणाः पण्डिताः। मल्लशालायामस्यां वयमपि तावदवतरामः।

दिल्लीनगर्यां द्वासप्तत्युत्तरैकोनविंशतिशततमे ईशवीये वर्षे (१९७२ ई०) सम्पन्ने विश्वसंस्कृतपरिषदः प्रथमाधिवेशने पठिते "तान्त्रिकं वाङ्मयम्" इति शीर्षके निबन्धेऽस्माभिः प्रोक्तमासीत्[1]—"तान्त्रिके वाङ्मये प्रपञ्चसार-शारदा-तिलकयोः स्वीयं वैशिष्ट्यं विद्यते। अनयोः शिव-विष्णु-शक्ति-गणपति-सूर्य-स्कन्दादीनां तान्त्रिकी उपासनापद्धतिरेकत्रीकृता। स्मार्तधर्मस्याधारभूताविमौ ग्रन्थाविति वक्तुं पार्येत। प्रपञ्चसारो भगवतः शङ्कराचार्यस्य कृतित्वेन प्रख्यातः। ख्रीष्टैकादशशताब्द्यां रचितायामीशानशिवगुरुदेवपद्धत्यां ग्रन्थोऽयं स्मर्यते। षष्ठशताब्दीतो दशमशताब्दीपर्यन्तमाविर्भूतं तान्त्रिकं वाङ्मयं साम्प्रतमप्य-प्रकाशितमेव विद्यते। वाङ्मयस्यास्य विशेषतः पद्धतिग्रन्थानां प्रकाशनानन्तरमेव प्रपञ्चसारस्य विषये याथातथ्येन किमपि वक्तुं शक्येत" (पृ० ९०) इति।

शारदातिलककारो लक्ष्मणदेशिकेन्द्रः काश्मीरप्रत्यभिज्ञासम्प्रदायप्रवर्तक-भट्टोत्पलशिष्याल्लक्ष्मणगुप्ताद् भिन्न इति च साधितमस्माभिरन्यत्र[2]। एवमेव नित्याषोडशिकार्णवस्य उपोद्घाते (पृ० ४१) प्रपञ्चसारविषये यदुक्तमस्माभिः तदनुमन्यते हालैण्डदेशवासी तन्त्रशास्त्राध्ययनसमर्पितजीवनो डॉ० गून-गान्द्रियान-महोदयः स्वकीये "हिन्दू तान्त्रिक एण्ड शाक्त लिट्रेचर" इत्याख्ये ग्रन्थे (पृ० १३१)।

प्रपञ्चसारस्य प्राचीनताविषये यान् ग्रन्थान् प्रमाणयन्ति सुधियः, तान् प्रति सन्दिहन्ति साम्प्रतिकाः। तत्र नूतनं प्रमाणद्वयमन्यैरनुपस्थापितमस्माभिः

---

१. निबन्ध एष तन्त्रयात्रायां मुद्रितस्तत्रैव ८२-९२ पृष्ठेषु द्रष्टव्यः।

२. लुप्तागमसंग्रह-द्वितीयभागस्य उपोद्घाते ४६-४७ पृष्ठे द्रष्टव्ये।

पूर्वोक्ते नि० षो० उपोद्घाते समुट्टङ्कितम्। तथाहि—अर्थरत्नावलीकारो विद्यानन्दो ज्ञानदीपविमर्शिन्यां स्वकृतौ "तदुक्तं भगवता शङ्कराचार्येण" (पृ० ११ क) इत्युक्त्वा "मूलाधारात् स्फुरित०" इत्यादिकं श्लोकमुद्धरति। अयं च श्लोकः प्रपञ्जसारे (१०।७) समुपलभ्यते। अनेन त्रयोदशचतुर्दश-शताब्दीभवो विद्यानन्दः प्रपञ्चसारं भगवतः शङ्कराचार्यस्य कृतिं मनुत इति सिद्ध्यति[1]। किञ्च, ईशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सप्तस्थलेषु प्रपञ्च इति प्रपञ्चसार इति वा नाम्ना ग्रन्थ एष स्मर्यते। तत्रत्यानि बहूनि वचनान्यानुपूर्व्या समुपलभ्यन्तेऽत्र। खोष्टीयैकादशशताब्द्या अन्तिमो भागोऽस्ति ईशानशिवस्य स्थितिकाल इति पूर्वोक्ते उपोद्घात एवास्माभिः स्थापितम्। [2]प्रायश्चित्त-समुच्चय-[3]नैमित्तिकक्रियानुसन्धान-[4]प्रतिष्ठादर्पणप्रभृतिषु प्राचीनेषु पद्धतिग्रन्थेषु गवेषितेषु प्रपञ्चसारस्य रचनाकाल इतोऽपि प्राचीनः साध्येतेति च तत्रैवोक्तम् (पृ० ४१)।

अधुना सर्वेषु शाङ्करमठेषु श्रीचक्रं भगवत्यास्त्रिपुरसुन्दर्या मन्दिरमिति कृत्वा तदर्चनं विधीयते। प्रपञ्चसारे च तन्त्रशास्त्रीयान् सर्वसाधारणान्

---

१. विद्यानन्दसमसामयिकस्तत्पूर्ववर्ती वा शिवानन्दोऽपि प्रपञ्चसारश्लोकान् बहूनुद्धरति, किन्तु सर्वत्र स ग्रन्थग्रन्थकारनामनी अनुल्लिख्याभियुक्तवचनत्वेनैव तान् स्मरति। यद्यपि तन्त्रशास्त्रपद्धत्या ग्रन्थोऽयं ब्रह्मणे विष्णुना समुपदिश्यते, तथापि शिवानन्दः केनचित् प्रामाणिकेन विदुषा रचितोऽयमित्यङ्गीकरोति, विद्यानन्दश्च स्पष्टमेवास्य प्रणेतारं भगवत्पादशङ्कराचार्यमुद्घोषयति।

२. प्रायश्चित्तसमुच्चय ईशानशिवशिष्येण हृदयशिवेन रचित इति "तान्त्रिक साहित्य" (पृ० ४०५) इत्यत्र द्रष्टव्यम्। ईशानशिवोऽयं प्रस्तुतादीशानशिवाद् भिन्नः। त्रिलोचनशिवाचार्यरचितः प्रायश्चित्तसमुच्चयः आफ्रेक्टबृहत्सूच्यां तृतीये भागे (पृ० ७७) विव्रियते।

३. नैमित्तिकक्रियानुसन्धानं ब्रह्मशम्भुना रचितमिति हरप्रसादशास्त्रिणा ईशानशिव-पद्धत्युपोद्घाते (भा० २, पृ० १), "शैव कल्ट०" (पृ० ३९) इत्यत्र च लिख्यते। ९३८ ई० वर्षे लिखितस्यास्य ग्रन्थस्य मातृका आर० ए० एस० बी० संस्थायाः सूचीपत्रस्य तृतीये भागे ३०४२ ए संख्यायां विवृतेति "न्यू कैटलागस्०" (भा० १०, पृ० २२७) इत्यत्र दृश्यते।

४. प्रतिष्ठादर्पण ईशानशिवशिष्येण वैरोचनेन रचित इति पूर्वोक्ते स्थले हरप्रसाद-शास्त्रिणो वदन्ति। "शैव कल्ट०" इत्यत्र च तदेवोच्यते।

विषयान् व्यावर्ण्य सर्वप्रथमं नवमे पटले त्रिपुराकल्पे[१] भगवत्यास्त्रिपुरायाः समाराधनविधिः प्रस्तूयते। शारदातिलके नाङ्गीकृत एष क्रमः। ईशानशिवेन रचित उपर्युक्तो ग्रन्थस्तन्त्रपद्धति-तन्त्रसार-तन्त्रसारपद्धति-सिद्धान्तसारेत्यादि-नामभिः प्रथते। कुमारदेवेन गुरुदेवपद्धतिनाम्ना स स्मृतः। अत्रापि यद्यपि सर्वे विषया भूयसा विस्तरेण प्रपञ्चसारपद्धत्यैव व्याख्याताः, तथापि देवताराधनक्रमे तत्र प्रथमं गणपतेः पूजापद्धतिर्वर्ण्यते, तदनु च वर्तते त्रिपुराकल्पः। "निःशेष-शास्त्रसदनं किल मध्यदेशः" [२]इत्यभिनवगुप्तो भणति। अत्र षष्ठसप्तमशताब्दीतो द्वादशशताब्दीपर्यन्तमप्रतिहतं स्ववैदुष्यं ख्यापयतां शिवशम्भुनामान्तानां शैवाचार्याणामुपस्थितिः शिलालेखादिभिर्ग्रन्थसम्पत्त्या च ज्ञायते। अत्र स्थापितानां विभिन्नानां मठानामधिपतयो नृपतिभिराहूताः सम्पूर्णेऽपि देशे शैवधर्मप्रतिष्ठा-मकुर्वन्। गुरुदेवपद्धतिसदृशग्रन्थानामवलोकनेन प्रतीयते यदेते आचार्या आसन् सर्वधर्मसमभाववादिनः। अस्यां पद्धतौ हि वसुधाराधिकारेऽक्षोभ्य-वैरोचन-रत्न-सम्भव-अमिताभ-अमोघसिद्ध्याख्याः पञ्चबुद्धाः प्रणम्यन्ते (भा० २, पृ० ११४)। मन्त्रपादीये सप्तचत्वारिंशत्तमे पटले च यमान्तकमन्त्रस्वरूपं तत्साधनपद्धतिश्च प्रायस्तादृशमेव, यादृशं हि बौद्धतन्त्रेषु प्रसिद्धे कृष्णयमारितन्त्रे प्रदर्श्यते। अत्रत्यः—

यमराजसदोमेय यमोयोरुणयोदय।
दययोनिरयक्षेय यक्षेशश्च निरामयः॥ (i.४७।११)

इत्ययं श्लोकः कृष्णयमारितन्त्र एवं दृश्यते—

यमराजासदोमेय यमेदोरुणयोदय।
यदयोनिरक्षेय यक्षयच्च निरामय॥ (६।१३) इति।

पद्धतिरेषा नाङ्गीकृता प्रपञ्चसारकारेण। अत्र वर्णितेषु दशावतारेषु न दृश्यते बुद्धस्य नाम। तद्यथा—"मत्स्यः कूर्मवराहौ नृसिंहकुब्जत्रिरामकृष्णाश्च। कल्किः" (२०।५९) इति। आन्तरमेतल्लक्षणद्वयं त्रिपुरार्चाबुद्धावतारत्वरूपं भगवता शङ्कराचार्येणास्य ग्रन्थस्य सम्बन्धं स्थापयति।

---

१. भुवनेश्वरीकल्पे च—"बोधस्वरूपवाची संवित् प्रोक्ता च देवता गुरुभिः" इत्येवं तत्त्वप्रकाशव्याख्यात्रा कुमारदेवेन तदिदं प्रपञ्चसारवचनं (१०।३) भुवनेश्वरी-कल्पवचनत्वेन समुद्धृतम्। तदनुकारमस्माभिर्नवमपटलस्य प्रपञ्चसारीयस्यैतन्नाम स्थापितम्।

२. तन्त्रालोके, ३७।३८

शङ्कराचार्येण ग्रथितोऽप्ययं ग्रन्थस्तान्त्रिकवाङ्मये गणनामर्हति, यतो हि "तन्त्रेऽस्मिन्" (३६।६३) इत्युक्त्वा स स्वयमेव तन्त्रग्रन्थत्वेनात्मानं प्रख्यापयति। अथाप्ययं न कस्यचन तान्त्रिकसम्प्रदायविशेषस्य ग्रन्थः, किन्तु सर्वान् सम्प्रदायान् क्रोडीकृत्य प्रवर्तते। अत एव पञ्चायतनपूजापद्धतिप्रदर्शकत्वेनायं स्मार्तधर्मप्रतिष्ठापको ग्रन्थ इति निबन्धारम्भ एवास्माभिः सूचितम्। अत्र हि वैदिकतान्त्रिकवाङ्मययोः समानमानं प्रामाण्यमङ्गीक्रियते। वैष्णवानां ग्रन्थोऽयमिति केचन वदन्ति[1]। तत्र भगवता विष्णुना ब्रह्मणे समुपदिष्ट इत्यतोऽधिकं न कुत्रापि वैष्णवत्वमिह दृश्यत इति यत्किञ्चिदेतत्।

प्रपञ्चपञ्चकस्य सारोऽत्र संगृह्यत इति ग्रन्थोऽयं प्रपञ्चसारनाम्ना प्रसिद्ध इति तत्सम्पादको वक्ति (भूमिका, पृ० ४)। प्रयोगदीपिकाकारस्तु "समस्तागमसारसंग्रहप्रपञ्चागमसारसंग्रहरूपम्" (पृ० १) इति विवरणवाक्यं विवृण्वन्—"समस्ताः सत्त्वसागरसंहितादयः, तेषां संग्रहः प्रपञ्चागमः, तस्यापि सारसंग्रहरूपमिति प्रपञ्चसार एवाभिप्रेतः" (पृ० ३८२) इत्येवं वक्ति। एवं च सम्पादकप्रदर्शिताया व्युत्पत्तेर्मूलमन्वेषणीयम्। प्रपञ्चपञ्चकमिति वा प्रपञ्चागम इति वा नाम्ना न कोऽपि ग्रन्थः साम्प्रतमुपलभ्यते। तत्त्वसागरोऽवश्यमनेकवारमीशानशिवपद्धतौ[2] शारदातिलकटीकादिषु[3] च स्मर्यते। तत्त्वसागरोऽयं तत्त्वसागरसंहितातोऽभिन्न एव स्यात्। अतः सत्त्वसागरसंहितेति नाम लिपिदोषप्रयुक्तमिति वयं संभावयामः। एवं च विवरणकार-प्रयोगक्रमदीपिकाकारयोर्मतेन समस्तागमानां तत्त्वसागरसंहितादीनां सारभूतः प्रपञ्चागमः, तस्यापि च सारभूतोऽयं प्रपञ्चसार इति सिद्ध्यति। ईश्वरशिवः—"तथाहि तत्त्वसागरे प्रपञ्चके च दर्शितम्" (१।१४।२६०) इत्येवं तत्त्वसागरप्रपञ्चयोः सहैव नाम निर्दिशति। "तत्त्वसागरादितन्त्रचोदितः"(१।१४।२६४) इत्यत्र च तस्य तन्त्रग्रन्थत्वं ख्यापयति। अनेनापि तत्त्वसागरस्य प्रपञ्चसारस्य च वर्तते कश्चन सम्बन्ध इति सिद्ध्यति। इतोऽधिकं किमप्यधुना वक्तुं न शक्यते।

---

१. प्रपञ्चसारस्य भूमिका द्रष्टव्या, पृ० ७०

२. प्रथमे भागे ३५, ३६, ४०, ४३, ५३, १४१, १४२, पृष्ठेषु, तृतीये च भागे ७९ पृष्ठे द्रष्टव्यम्।

३. शारदातिलकराघवभट्टीयटीकायां १०७, १२८, १३१, २८९ पृष्ठेषु। तत्त्वसागरस्तत्त्वसंहिता वाऽन्येष्वपि ग्रन्थेषु स्मर्यत इति "न्यू कैटलागस०" (भा० ८, पृ० ७१) इत्यत्र द्रष्टव्यम्।

प्रपञ्चसारे न विद्यते कस्यापि ग्रन्थस्य ग्रन्थकारस्य वा नाम। तत्र केवलम् अपरे, एके, केचित्, स्मृतिकोविदा इत्येतादृशाः, तन्त्र-आगम-शैवागम-प्रभृतयश्च शब्दा दृश्यन्ते। तेनान्तरङ्गप्रामाण्येन न तद्विषये किमपि साधयितुं शक्यते। न चोपलभ्यते प्रपञ्चागमस्तत्त्वसागरसंहिता वा। टीकाकाराश्च सर्वे भगवत्पादशङ्कराचार्येण रचितोऽयं ग्रन्थ इत्यैकमत्येन स्वीकुर्वन्ति।

साम्प्रतमिमे टीकाग्रन्था अस्य समुपलभ्यन्ते—

१. *पद्मपादाचार्यकृतविवरणेन[1] सह मुद्रितोऽयं ग्रन्थ इति सर्वे वयं जानीमः। अत्रैव नवमपटलपर्यन्ता[2] प्रयोगक्रमदीपिकाख्या पद्मपादीयविवरण-व्याख्याऽपि प्रकाशिता। को नाम वर्तते प्रयोगक्रमदीपिकाकर्तेति तु न ज्ञायते।

२. अस्य विज्ञानचन्द्रिकाख्या व्याख्या शारदातिलकव्याख्यात्रा राघवभट्टेन समुद्धृता (पृ० ७४५)

३. *प्रपञ्चसारसंग्रहरचयिता गीर्वाणेन्द्रसरस्वती भणति यत्तस्य ग्रन्थः शङ्कराचार्यरचितप्रपञ्चसारस्य सारसंग्रहरूपः[3] सत्सम्प्रदायसर्वस्वाख्यां तस्य व्याख्यामनुसरतीति।

अपि च प्रपञ्चसारभूमिका(पृ० ६९)- तान्त्रिक साहित्य (पृ० ३९९-४००)- आफ्रेख्टबृहत्सूचीनां दर्शनेन ज्ञायते यदधुनावधि प्रपञ्चारस्याधोनिर्दिष्टानि व्याख्यानानि समुपलब्धानीति—

४. प्रपञ्चसारगूढार्थदीपिका (सारसंग्रहः)	नित्यानन्दस्य
५. प्रपञ्चसारटीका	जगद्गुरोः
*६. ,, ,,	सरस्वतीतीर्थस्य
*७. प्रपञ्चसारदीपिका(नी)	सत्यानन्दस्य

---

१. तारकाङ्किता ग्रन्थाः सरस्वतीभवनग्रन्थालयेऽपि समुपलभ्यन्ते।

२. "गुप्तार्थभाजः" (पृ० ४२) इत्यादिकमृजुविमर्शिनीवचनमत्र ५६६ पृष्ठे दृश्यते। ५८५ पृष्ठे समुद्धृतेषु वचनेष्वपि केचन ऋजुविमर्शिन्याम् (पृ० १४७, १८५), अन्ये च नित्याषोडशिकार्णवतृतीयपटले विद्यन्त इति प्रयोगक्रमदीपिकाकार ऋजुविमर्शिनीकारात् परतन इत्यनुमातुं शक्यते।

३. "मया सत्सम्प्रदायसर्वस्वाभिधव्याख्यानोक्तमार्गेण वक्ष्यते" (पृ० १) इति हि तत्रत्यं वचनम्। षट्सम्प्रदायसर्वस्वेति शोभनः पाठः, प्रपञ्चसारे शिव-शक्ति-विष्णु-सूर्य-गणेश-स्कन्दानां षण्णां सम्प्रदायानां व्याख्यातत्वात्।

८. प्रपञ्चसारप्रयोगविधिः		
९. प्रपञ्चसारविवरणम् (टीका)		[1]ज्ञानस्वरूपस्य
१०. ,,		देवदेवस्य
११. ,,	(प्रदीपः)	नारायणस्य
१२. ,,		प्रेमानन्दभट्टाचार्यस्य
१३. ,,		विज्ञानेश्वरस्य
१४. प्रपञ्चसारविवृतिः		
१५. प्रपञ्चसारविवेकः		गङ्गाधरस्य
१६. प्रपञ्चसारवृत्तिः		
१७. प्रपञ्चसारव्याख्या (तत्त्वप्रदीपिका)		नागस्वामिनः
१८. प्रपञ्चसारव्याख्या (विज्ञानोद्योतिनी)		त्रिविक्रमस्य
१९. ,,		
२०. प्रपञ्चसारसम्बन्धटीका		
२१. *प्रपञ्चसारसम्बन्धदीपिका		उत्तमप्रकाशशिष्यस्योत्तमबोधस्य

एवं चैकविंशतिटीकाग्रन्था अत्र रचिताः साम्प्रतं नाम्ना स्वरूपेण वा समुपलभ्यन्ते। प्रयोगक्रमदीपिका च वर्तते पद्मपादीयविवरणस्य व्याख्या। यावदेताः सर्वा मातृका न परीक्ष्यन्ते, तावद् याथातथ्येन न किमपि वक्तुं शक्यते, किन्तु प्रपञ्चसारदीपिका प्रपञ्चसारप्रयोगविधिश्चेति द्वौ ग्रन्थौ प्रयोगक्रमदीपिकातोऽभिन्नौ स्याताम्, अथवा प्रपञ्चसारदीपिका प्रपञ्चसारगूढार्थदीपिकातोऽभिन्ना स्यात्। एवमेव प्रपञ्चसारसम्बन्धटीका च प्रपञ्चसारसम्बन्धदीपिकातोऽभिन्नैव स्यात्।

शङ्करभगवत्पादाः केरलाभिजना इति निर्विवादम्। तेषां समयः सुनिश्चित इति कृत्वा द्वादशशताब्दीपूर्तिमहोत्सवः सम्पूर्णेऽपि भारते महताऽऽडम्बरेण समायोज्यते। किन्तु शक्तिसंगमतन्त्रे—

षट्शतीवत्सरान्ते तु द्विसप्तत्युत्तरं शिवे।
आविर्भवति देवेशि दिव्यौघद्वारतः शिवे॥
बौद्धपाषण्डनाशार्थं सम्प्रदायार्थमेव च। (i.१।१६-१७)

इत्येवं द्वासप्तत्युत्तरे षट्शते वैक्रमे वत्सरे तस्याविर्भावः समजायतेति वर्ण्यते। प्रायोऽयमेव वर्तते भट्टकुमारिलस्यापि स्थितिकालः। अत्र यद्यपि भगवतः शङ्करा-

---

१. ज्ञानस्वरूपीयं विवरणं कस्याञ्चिन्मातृकायां पद्मपादनाम्ना स्मर्यत इति डॉ० टी० गान्द्रियानमहोदयो वक्ति (हिन्दू तान्त्रिक एण्ड शाक्त लिटरेचर, पृ० १३२)। विवरणद्वयमेतद् भिन्नमभिन्नं वेति परीक्षणार्हम्।

चार्यस्य स्पष्टमुल्लेखो नास्ति, तथापि पूर्वापरपर्यालोचनया तदाविर्भावकाल एवात्र सूचित इति शक्तिसंगमतन्त्रचतुर्थभागप्रस्तावनायाम् (पृ० ८) अस्माभिः प्रतिपादितम् । तन्नाङ्गीकरोति हालैण्डदेशीयो डॉ० गान्द्रियानमहोदयः स्वीये "हिन्दू तान्त्रिक एण्ड शाक्त लिटरेचर" इत्याख्ये ग्रन्थे (पृ० ६०) । अन्यत्र च स लिखति यद् ऐतिहासिकैर्यो हि तस्य समयो निर्धारितः (७८८-८२० ई०) स तस्माच्छतवर्षपूर्वमपि स्थापयितुं शक्यते (पृ० १३१) । अतश्चास्माभिर्गड्डरिका-प्रवाहप्रपतनात् पूर्वं विषयेऽस्मिन् सम्यग् विचारणीयम् । पुष्टतराणां विपरीत-प्रमाणानामभावे किमर्थं स्वीया परम्परा परित्यज्येत ?

ईशानशिवपद्धतौ प्रपञ्चसारः स्मर्यत इति पूर्वं निर्दिष्टमस्माभिः । अय-मीशानशिवोऽपि केरलाभिजन इत्यस्य ग्रन्थस्य द्वितीयसंस्करणसम्पादका डॉ० एन० पी० उण्णीमहोदयाः प्रतिपादयन्ति (उपोद्घात, पृ० ११-१२, २४-२५) । ईशानशिवपद्धतिकार ईशानशिवो राजेन्द्रचोलस्य राजगुरुरिति "शैव कल्ट" (पृ० ३९) इत्यत्र निदर्श्यते, किन्तु तत्रैव (पृ० ३८) उद्धृतेन त्रिलोचन-शिवाचार्यस्य सिद्धान्तसारावलीवचनेन ज्ञायते यद् गङ्गास्नानार्थमागतेन तेन काशीतः शैवाचार्यवराः समानीताः, काञ्चीमध्ये चोलभूमौ च ते प्रतिष्ठापिताः । तत्त्वप्रकाशटीकाकारः कुमारोऽपि केरलीय इति डॉ० उण्णीमहोदया वदन्ति, किन्तु "शैव कल्ट" (पृ० ३९) इत्यत्रैव सोलंकीवंशोद्भवस्य मूलराजस्य गुर्जरनृपतेर्गुरुः कुमारशिवः, तस्य च शिष्येणाज्ञातनाम्ना वाराणसीवास्तव्येन १०९० (नवत्युत्तरे सहस्रतमे) ई० वर्षे कश्चन प्रतिष्ठाग्रन्थो रचित इति सप्रमाणमुल्लिख्यते । एवं च ईशानशिवः कुमारश्च केरलीय इति वचनं कथा-मात्रमेव प्रतीयते ।

डॉ० एन० पी० उण्णीमहोदयैः प्रयोगमञ्जरी-तन्त्रसारसंग्रहसदृशा ग्रन्थाः प्रसङ्गेऽस्मिन् प्रमाणिताः । सन्ति सर्वे ते पश्चाद्वर्तिनः । प्रयोगमञ्जरी-नारायणीया-दीनां वचनानीशानशिवपद्धतावुद्धृतानि डॉ० उण्णीमहोदयेन स्मृतायां प्रयोग-मञ्जर्यां नारायणीये तन्त्रसारसंग्रहे चान्वेषणीयानि । ततः परमेव याथार्थ्येन किमपि वक्तुं शक्येत । नामसाम्यं दृष्ट्वा नैव भ्रमोऽस्माभिरुत्पादनीयः । ईशानशिवेन विस्तरायां स्वपद्धतौ नाना ग्रन्थाः, ग्रन्थकाराः, मतमतान्तराणि च स्मृतानि । सर्वेषामेषां सम्यक्परीक्षानन्तरमेव, समुपलब्धेषु त्व तत्त्वसागरसंहिता-दिष्वन्येषु च पद्धतिग्रन्थेषु प्राचीनेषु शैवाचार्याणामीशानशिवादीनां भगवत्पाद-प्रतिष्ठापितस्मार्तधर्ममनुपालयतां विषये किमपि प्रामाणिकतया वक्तुं शक्येत । एतदर्थमनुसन्धित्सूनां सौविध्याय तस्य ग्रन्थस्यानुबन्धत्रयमुखेन सर्वमेतत् संगृह्यते—

१–ईशानशिवगुरुदेवपद्धत्यामुद्धृता ग्रन्थाः

२–ईशानशिवगुरुदेवपद्धत्यामुद्धृता ग्रन्थकाराः

३–ईशानशिवगुरुदेवपद्धत्यामुद्धृतानि मतमतान्तराणि

अत्र अजित-कामिक-कारण-किरण-चन्द्रज्ञान-पारमेश्वर-पौष्कर-बिम्ब-मकुट-मकुटोत्तर-ललित-वातुल-विजय-वीर-सान्तानिक-स्वायम्भुवागमा अष्टाविंशतिशैवागमेषु परिगण्यन्ते। कालोत्तर-देव्यामत-पराख्यसंहिता-पिङ्गलामत-बृहत्कालोत्तर-मतङ्गपारमेश्वर-माहेन्द्र-मोहशूरोत्तर-लम्बित-वातुलोत्तर - शिवधर्म-सर्वज्ञानोत्तर-[1]सार्धत्रिशतिका-स्वतन्त्राख्या अपि शैवोपागमेषु लभ्यन्ते। स्वच्छन्दतन्त्रं भैरवागमेषु, पद्मोद्भवसंहिता च पाञ्चरात्रागमेषु परिगण्यते। गौतमीयं [2]मन्त्रव्याकरणं शारदातिलकटीकायामपि स्मर्यते। मन्त्रव्यापृतिरित्यपि तस्यैव नाम। नैके तन्त्रग्रन्थाः क्षेत्रपाल-गणेश-दौर्ग-पाशुपत-भानु-भूतनाथ-मातृ-वागीश्वरी-विष-षडास्य-सूर्य-सोमतन्त्रादयस्तेषां तेषां सम्प्रदायानां विषयाणां च प्रतिपादकाः स्युः। देवोद्भवाख्ये तन्त्रे विविधानां देवतानां स्थापनाद्युत्सवान्तो विधिर्वर्णित इति ज्ञायते। पूर्वपद्धतिपदेन (III.७१) पूर्वार्धः, उत्तरपद्धतिपदेन (II.१७६) चास्यैव ग्रन्थस्य उत्तरार्धः परामृष्ट इति ग्रन्थनामसु न तयोः समावेशोऽकारि। उत्तरगार्ग्य-तत्त्वसागर-तत्त्वसिद्धि-प्रतिष्ठापद्धति[3]-प्रतिष्ठासमुच्चय-प्रयोगमञ्जरी(मञ्जरी) - भोजराजपद्धति - योगशिवपद्धति-शिवतन्त्रपद्धति-षट्त्रिंशत्तत्त्वसिद्धि-सर्वज्ञानसमुद्रसदृशा अत्र स्मृता ग्रन्था महत्त्वपूर्णा विद्यन्ते। एषु केषाञ्चन ग्रन्थानां पाण्डुलिपयोऽपि समुपलभ्येरन्। परीक्षितासु च तासु प्रपञ्चसारविषये नूतनं किमप्युदन्तमुपलब्धं स्यात्। तत्त्वप्रकाशो भोजदेवविरचितः, रत्नत्रयं च श्रीकण्ठसूरिणा विरचितमष्टप्रकरणेषु सव्याख्यं मुद्रितमेव। कालोत्तरटीकानाम्नाऽत्र द्वौ श्लोकावुद्धृतौ स्तः, तौ च नोपलभ्येते मुद्रितायां सार्धत्रिशतिकालोत्तरटीकायाम्। मयसूत्रं च मयमततोऽभिन्नं स्यात्। संहिता-संहिताटीकानाम्ना च कयोर्ग्रन्थयोरुल्लेख इति न स्पष्टीभवति।

ग्रन्थकर्तृषु अगस्त्य-त्वष्टृ-पराशर-पितामह-पुरन्दर-ब्रह्म-मय-विश्वकर्म-प्रभृतयः शिल्पशास्त्रप्रणेतारः सन्ति। आर्यभटो ज्योतिश्शास्त्रप्रणेता। आश्वलायन-पराशर-पितामह-बोधायन-मनु-याज्ञवल्क्याः स्मृतिकाराः प्रसिद्धाः। गौतमोऽत्र मन्त्रव्याकरणप्रणेतृत्वेन स्मर्यते। धन्वन्तरिरायुर्वेदावतारकतया प्रथितः। पटो

१. अत्रोद्धृतः सार्धत्रिशतिकाश्लोको मुद्रितायां सार्धत्रिशतिकालोत्तरायां नोपलभ्यते।

२. गौतमीयं मन्त्रव्याकरणमथ च तन्त्रव्याकरणमपि शारदातिलकटीकायां (पृ० १३, ७१०) स्मर्यते। तत्र मन्त्रव्याकरणं तन्त्रव्याकरणं च पृथगेतद् ग्रन्थद्वयमथवा तन्त्रव्याकरणमिति नाम लिपिदोषसमुद्भवमिति निश्चेयम्।

३. अत्रत्या १८३ पृष्ठस्था द्वितीया टिप्पणी द्रष्टव्या।

मलयेन्द्रश्च आयुर्वेदज्ञौ, वाचस्पतिः शाकपूणिश्च विषतन्त्रज्ञौ स्तः। योगसूत्र-प्रणेता भगवान् पतञ्जलिरिति सर्वे वयं जानीमः, किन्त्वत्र श्लोक एकः पतञ्जलिनाम्ना स्मृत उपस्थाप्यते—

यदृच्छयाऽप्येकमपेतगन्धं त्वत्पादपद्मे कुसुमं निधाय।
बहूनि कामं बहुरूप ! भुङ्क्ते फलान्यहो स्वादुतराणि लोके॥
(भा० ३, पृ० १००)

ईशानशिवोऽत्र ब्रह्मशम्भुं भोजराजं च बहुशः स्मरति। भोजराजपद्धति-भोजराजेन्द्रपद्धति-भोजेन्द्रपद्धतीत्यादिनामभिर्भोजराजस्य ग्रन्थोऽप्यत्र प्रदर्शितः, किन्तु ब्रह्मशम्भुना रचितस्य ग्रन्थस्य नाम क्वापि न स्मृतम्[1]। सोमशम्भुना रचिता कर्मकाण्डक्रमावलिर्बहुशो मुद्रिता। सोमशम्भुनाम्ना स्मृतानि सर्वाणि वचनानि तत्र सन्ति, अथवाऽन्योऽपि ग्रन्थस्तेन रचित इति परीक्षणार्हम्। रामकण्ठोऽत्र नारायणकण्ठसुत एव स्मर्यत इति प्रतीयते। वरुणः पद्धतिकर्तृत्वेन बहुशः स्मर्यते। सद्योज्योतिः शिवाचार्यो नानागमव्याख्यातृत्वेन नानाग्रन्थप्रणेतृत्वेन च प्रसिद्धः। अत्र तस्य कश्चन व्याख्याग्रन्थ उद्धृतः।

"वैदिकांस्तान्त्रिकांश्चापि सर्वानित्थमुवाच ह" (१।२१) इति प्रतिज्ञानुसारं प्रपञ्चसारे दर्शनविषयेऽपि वर्तते समन्वयात्मिका दृष्टिः, या क्वचन सांख्यदर्शनस्य, क्वचन पुराणानाम्, क्वचिच्च शैवागमानां पदवीमनुसरति। "प्रकृतिः पुरुषश्चैव नित्यौ कालश्च सत्तम" (१।२१) इति वचनमत्रत्यं कुमारेण तत्त्वप्रकाशटीकायां (श्लो० ३९) स्मर्यते।

विष्णोः स्वरूपात् परतो हि ते द्वे रूपे प्रधानं पुरुषश्च विप्र।
तस्यैव तेऽन्येन धृते वियुक्ते रूपं तु यत्तद् द्विज ! कालसंज्ञम्॥
(१।२।२४)

इति विष्णुपुराणीयः श्लोकश्चास्मिन् प्रसङ्गे प्रमाणीक्रियते। अत्रत्या प्रकृतिर्न सांख्यवज्जडा, किन्तु स्वसंवेद्यस्वरूपा। सैव प्रधानमिति शक्तिरिति च प्रोच्यते। अस्यां प्रकृतौ कालः कदाचिद् विकृतिमादधाति। तदा सा तत्त्वसंज्ञा चिन्मात्रा ज्योतिषः सन्निधेर्बिन्दुतामभ्येति। कालेन भिद्यमानः स परसंज्ञको बिन्दुः स्थूलसूक्ष्मपरतया बिन्दुनादबीजसंज्ञया त्रैविध्यं भजते। एष अपरसंज्ञको बिन्दुः पुनः कालवशाद् भिद्यते, तदाऽव्यक्तस्य रवस्योत्पत्तिर्भवति।

---

१. अत्रत्या १८३ पृष्ठस्था तृतीया टिप्पणी द्रष्टव्या। नैमित्तिकक्रियानुसन्धानस्यैवेमे सर्वे श्लोकाः, उत तेन कश्चनान्योऽपि ग्रन्थो रचित इति मातृकादर्शनादेव ज्ञायेत।

स एवः श्रुतिसम्पन्नैः शब्दब्रह्मपदेन परिचीयते। एवमेषाऽऽगमसंमता सृष्टि-प्रक्रियाऽत्र प्रतिपादिता।

अव्यक्तात् त्रिभेदगहनात्मकं महत्तत्त्वम्, महतोऽहङ्कारस्ततः—"भूतादि-वैकारिकतैजसभेदक्रमादहङ्कारात्" (१।४६) इत्यादिना सांख्यसंमता सृष्टि-प्रक्रिया वर्णिता, किन्त्वत्रत्यो भूतादीत्यादिकः क्रमः शैवागमक्रममनुसरति[1] न सांख्यसंमतम्। पञ्चभूतानामत्र स्वभाववर्णमण्डलादयो विवृताः, निवृत्ति-प्रतिष्ठा-विद्या-शान्ति-शान्त्यतीताख्यस्य कलापञ्चकस्य च नादकलात उद्भवः प्रोच्यते।

शारदातिलके प्रथमे पटले विषयोऽयमेवं वर्ण्यते—निर्गुणः सगुणश्चेति द्विविधः शिवः। तत्र निर्गुणः प्रकृतेरन्यः, सगुणश्च सकल इत्युच्यते। सच्चिदा-नन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात् शक्तिनादबिन्दूनां समुद्भवः। परमशक्ति-मयोऽसौ शिवः पुनस्त्रिधा भिद्यते। इमे च भेदा बिन्दुनादबीजशब्दैरुच्यन्ते। तत्र बिन्दुः शिवात्मकः, बीजं शक्तिः, नादश्च तयोः समवायः समाख्यायते। बिन्दो रौद्री, नादाज्ज्येष्ठा, बीजाच्च वामा शक्तिः प्रादुर्भवति। आभ्यः शक्तिभ्यो रुद्रब्रह्मरमाधिपा ज्ञानेच्छाक्रियात्मानो वह्निचन्द्रसूर्यरूपिणो देवाः संजायन्ते।

भिद्यमानात् पराद् बिन्दोरव्यक्तात्मा रवो जायते। सोऽयं रवः सर्वागमेषु शब्दब्रह्मनाम्ना परिगीयते। सर्वप्राणिषु स्थितं चैतन्यमेव शब्दब्रह्माभिधेयम्। प्राणिनां देहमध्यगं तत् कुण्डलीरूपं प्राप्य वर्णात्मनाविर्भवति। अथ बिन्द्वात्मनः शम्भोः सर्वव्यापी सदाशिवो जायते। सदाशिवादीशस्ततो रुद्रस्ततो विष्णुस्ततश्च ब्रह्मा जायते। मूलभूतादव्यक्तात् परवस्तुनो विकृताद् गुणान्तःकरणात्मकं महत्तत्त्वं जायते। तस्मात् त्रिविधोऽहङ्कारस्ततोऽग्रेतनो च तत्त्वसृष्टिः सांख्य-प्रक्रियासदृशी प्रवर्तते। पञ्चभूतानां स्वभाववर्णमण्डलादयश्च प्रपञ्चसार-पद्धतिमनुसरन्ति। धरादिपञ्चभूतानां निवृत्त्याद्याः कलाश्च नाददेहसमुद्भवा इत्यत्रापि वर्ण्यन्ते। कुण्डलीस्वरूपं च तत्र—"ततश्चैतन्यरूपा सा सर्वगा विश्व-रूपिणी। शिवसन्निधिमासाद्य नित्यानन्दगुणोदया॥" इत्यादिना, "विश्वात्मना प्रबुद्धा सा सूते मन्त्रमयं जगत्" इत्यन्तेन (१।५१-५७) श्लोकजालेन वर्ण्यते।

ईशानशिवेनापि स्वग्रन्थारम्भे मन्त्रमातृकोत्पत्तिं विवृण्वता "निर्वि-कल्पात्मकं ब्रह्म" (१।२५) इत्यादिना ब्रह्मस्वरूपं च निर्वर्णयता—

---

१. अत्रास्मत्सम्पादितस्य अष्टप्रकरणस्य उपोद्घातो (पृ० ३७-३८) द्रष्टव्यः।

आदिसर्गमुखे ज्ञानचिकीर्षायत्नधारणात् ।
स्वशक्तिर्व्यक्तिमाधत्ते प्रदीपः स्वप्रभामिव ॥ (१।२७-१८)

इत्यादिना तच्छक्त्यभिव्यक्तिं च संवर्णयता—

शक्तिर्भवत्यजा ह्येका विश्वोद्भवविधायिनी ।
सा शक्तिर्बिन्दुतामेति बिन्दुः सोऽपि त्रिधा भवेत् ॥
बिन्दुर्नादो रवश्चेति स रवोऽव्यक्तमिष्यते ।
अव्यक्तादुदितं तत्त्वं महन्नाम त्रिभेदकम् ॥
महतश्चाप्यहङ्कारस्त्रेधा स च निगद्यते ।
वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिरिति चापरः ॥ (१।२९-३१)

इत्यादिना सृष्टिप्रक्रिया वर्णिता । ततः स कालोत्तरप्रामाण्येन नादतत्त्वम्, रत्नत्रयपद्धत्या च वैखर्यादिभेदभिन्नस्य चतुर्विधस्य शब्दस्य वर्णनाय शक्ति-नाद-महामाया-व्योमाख्यान् तत्त्वतुष्टयान् समुपस्थाप्य—

बिन्दोरेवास्य तु पुनश्चतस्रो वृत्तयः स्मृताः ।
वैखरी मध्यमा चैव पश्यन्ती चापि सूक्ष्मगा ॥ (१।३३)

इति वाचो भेदान् समुपस्थाप्य कुण्डलीस्वरूपं ततो वाक्चतुष्टयोद्भवपद्धतिं च प्रदर्शयति । एवमत्र तेन प्रायः प्रपञ्चसारपद्धत्यैव सृष्टिप्रक्रिया वर्णिता ।

शैवागमसंमतः षट्त्रिंशत्तत्त्वविचारः पतिपशुपाशाख्यतत्त्वत्रयविचारश्च तेन क्रियापादीयप्रथमद्वितीयपटलयोर्विस्तरेण कृतः । तत्रैव तेनाष्टाविंशतिशैवागमानामष्टादशविद्यानां च परिगणनं विधाय परपक्षनिरसनपूर्वकं शिवागमानां प्रामाण्यं निरूपितम् ।

प्रपञ्चसारीया सृष्टिप्रक्रिया भास्कररायेण सौभाग्यभास्कराख्ये ललिता-सहस्रनामभाष्ये "अत्रेदं बोध्यम्" (पृ० ९९-१००) इत्यादिना एवं विवृता—प्रलये सृज्यमानप्राणिकर्मणामपरिपाकदशायां तादृशकर्माभिन्नमायावच्छिन्नं ब्रह्म घनीभूतमित्युच्यते । कालवशात् कर्मणां परिपाके सति विनश्यदवस्थपरिपाक-प्रागभावो विचिकीर्षेत्युच्यते । ततः परिपाकक्षणे मायावृत्तिरुत्पद्यते । तादृशं परिपक्वकर्माकारपरिणतमायाविशिष्टं ब्रह्माव्यक्तपदवाच्यम् । अत एव तस्योत्पत्तिरपि स्मर्यते—"तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तम" इति । स एव जगदङ्कुरकन्दरूपत्वात् कारणबिन्दुपदेन व्यवह्रियते । तदुक्तं प्रपञ्चसारे—"विचिकीर्षुर्घनीभूता सा चिदभ्येति बिन्दुताम्" (१।४१) इति । अस्माच्च कारणबिन्दोः सकाशात् क्रमेण कार्यबिन्दुस्ततो नादस्ततो बीजमिति त्रयमुत्पन्नम् ।

तदिदं परसूक्ष्मस्थूलपदैरप्युच्यते। चिदंशश्चिदचिन्मिश्रोऽचिदंशश्चेति तेषां रूपाणि। तदुक्तं रहस्यागमे—

कालेन भिद्यमानस्तु स बिन्दुर्भवति त्रिधा।
स्थूलसूक्ष्मपरत्वेन तस्य त्रैविध्यमिष्यते॥
स बिन्दुनादबीजत्वभेदेन च निगद्यते। इति।

(प्र० सा० १।४२-४३)

एते च कारणबिन्द्वादयश्चत्वारोऽधिदैवतमव्यक्तेश्वरहिरण्यगर्भविराट्स्वरूपाः, शान्तावामाज्येष्ठारौद्रीरूपाः, अम्बिकेच्छाज्ञानक्रियारूपाश्च। अधिभूतं तु कामरूपपूर्णगिरिजालन्धरोड्याणपीठरूपा इति तु नित्याहृदये स्पष्टम्। अध्यात्मं तु कारणबिन्दुः शक्तिपिण्डकुण्डल्यादिशब्दवाच्यो मूलाधारस्थः, यः—"शक्तिः कुण्डलिनीति विश्वजननव्यापारबद्धोद्यमां ज्ञात्वेत्थं न पुनर्विशन्ति जननीगर्भेऽर्भकत्वं नराः"[1] इत्यादिरीत्याऽऽचार्यैर्व्यवहृतः। सोऽयमविभागावस्थः कारणबिन्दुः। अयमेव यदा कार्यबिन्द्वादित्रयजननोन्मुखो भिद्यते, तद्दशायामव्यक्तः शब्दब्रह्माभिधेयो रवस्तत्रोत्पद्यते। तदप्युक्तम्—

बिन्दोस्तस्माद् भिद्यमानादव्यक्तात्मा रवोऽभवत्।
स रवः श्रुतिसम्पन्नैः शब्दब्रह्मेति गीयते॥

(प्र० सा० १।४४)

सोऽयं रवः कारणबिन्दुतादात्म्यापन्नत्वात् सर्वगतोऽपि व्यञ्जकयत्नसंस्कृतपवनवशात् प्राणिनां मूलाधार एवाभिव्यज्यते। तदुक्तम्—

देहेऽपि मूलाधारेऽस्मिन् समुदेति समीरणः।
विवक्षोरिच्छयोत्थेन प्रयत्नेन सुसंस्कृतः॥
स व्यञ्जयति तत्रैव शब्दब्रह्मापि सर्वगम्। इति।

तदिदं कारणबिन्द्वात्मकमभिव्यक्तं शब्दब्रह्म स्वप्रतिष्ठतया निष्पन्दम्, तदेव च परा वागित्युच्यते। अथ तदेव नाभिपर्यन्तमागच्छता तेन पवनेनाभिव्यक्तं विमर्शरूपेण मनसा युक्तं सामान्यस्पन्दप्रकाशरूपकार्यबिन्दुमयं सत् पश्यन्ती वागुच्यते। अथ तदेव शब्दब्रह्म तेनैव वायुना हृदयपर्यन्तमभिव्यज्यमानं निश्चयात्मिकया बुद्ध्या युक्तं विशेषस्पन्दप्रकाशरूपनादमयं सन्मध्यमा वागित्युच्यते। अथ तदेव वदनपर्यन्तं तेनैव वायुना कण्ठादिस्थानेष्वभिव्यज्यमानमकारादिवर्णरूपं श्रोत्रग्रहणयोग्यस्पष्टतरप्रकाशरूपबीजात्मकं सद् वैखरी वागुच्यते। तदुक्तमाचार्यैः—

१. धर्माचार्यीये लघुस्तवे द्वितीयः श्लोकः।

मूलाधारात् प्रथममुदितो यश्च भावः पराख्यः।
पश्चात् पश्यन्त्यथ हृदयगो बुद्धियुङ्मध्यमाख्यः।
व्यक्ते वैखर्यथ रुरुदिषोरस्य जन्तोः सुषुम्ना-
बद्धस्तस्माद् भवति पवने प्रेरिता वर्णसंज्ञा ॥ इति।
(प्र० सा० २।४३)

नित्यातन्त्रेऽपि

मूलाधारे समुत्पन्नः पराख्यो नादसंभवः।
स एवोर्ध्वतया नीतः स्वाधिष्ठाने विजृम्भितः॥
पश्यन्त्याख्यामवाप्नोति तथैवोर्ध्वं शनैः शनैः।
अनाहते बुद्धितत्त्वसमेतो मध्यमाभिधः।
तथा तयोर्ध्वनुन्नः सन् विशुद्धौ कण्ठदेशतः(गः)।
वैखर्याख्य .... इत्यादि।

इत्थं चतुर्विधासु मातृकासु परादित्रयमजानन्तो मनुष्याः स्थूलदृशो वैखरीमेव वाचं मन्वते। तथा च श्रुतिः—"तस्माद् यद्वाचोऽनाप्तं तन्मनुष्या उपजीवन्ति" इति। अनाप्तम् अपूर्णम्, तिसृभिर्विरहितमित्यर्थ इति वेदभाष्ये। श्रुत्यन्तरेऽपि—

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥ इति।
(ऋ० १।१६४।४५)

पञ्चपदी सप्तपदी च वाग् विवरणकारेण विवृता[1]। सूक्ष्मा, परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी चेति पञ्चपदी वाक्। शून्या, संवित्, सूक्ष्माद्याः पञ्च चेति सप्तपदी वाक्। तत्रानुत्पन्ना निष्पन्दा शून्या वाक्, उत्पित्सुः संवित्, उत्पत्त्यवस्था च सूक्ष्मा। शिष्टाश्चतस्रो वाचो विवृतपूर्वाः।

एवमत्र प्रपञ्चसार-शारदातिलक-ईशानशिवपद्धति-भास्कररायवर्णिता सृष्टिप्रक्रिया संक्षेपेण समुपस्थापिता। ईशानशिवग्रन्थदर्शनेन ज्ञायते मन्त्रशास्त्रानुगुणा प्रक्रिया सर्वत्र वर्ण्यत इति। प्रपञ्चसारे सृष्टौ बिन्दोः प्राथम्यम्, शारदातिलके च नादाद् बिन्दुसमुद्भवः प्रदर्श्यते। उभयत्र बिन्दुरेव बिन्दुनादबीजभेदेन त्रिधा भिद्यते। कारणबिन्दुः कार्यबिन्दुरिति, परनादोऽपरनाद इति विभज्योभयोर्व्यवस्था विधेया। उभयथा हि सृष्टिस्तन्त्रशास्त्रेषु वर्ण्यते। रत्नत्रये

१. प्रपञ्चसारविवरणं (२।४३) द्रष्टव्यम्।

शिवशक्तिबिन्द्वाख्यं तत्त्वत्रयं वर्ण्यते। अत्र बिन्दोः प्राथम्यम्। कालोत्तरे नादकारिकायां च नादाख्यं तत्त्वं प्राथम्येनोपवर्ण्यते। "नादाख्यं यत् परं बीजम्" (१।५) इति कालोत्तरे, "स बिन्दुः परनादाख्यो नादबिन्द्वर्णकारणम्" (श्लो० २२) इति च रत्नत्रये वर्ण्यते। ईशानशिवेनापि बिन्दोर्नादस्य चेदृशमेव स्वरूपं दर्शितम्।

अत्रेदं बोध्यम्—तन्त्रागमेषु शब्दमयी अर्थमयी च; शिवप्रधाना, शक्तिप्रधाना च सृष्टिः प्रतिपाद्यते। तत्र शब्दसृष्टौ शक्तेः प्राधान्ये च नादस्य प्रमुखोपादानत्वम्, अर्थसृष्टौ शिवप्राधान्ये च बिन्दोरिति यथायथमुभयोरपि तरतमभावः प्रक्रियाभेदेन समाधेयः। एवं च स्मार्तपञ्चायतनसम्प्रदायप्रतिष्ठापकेन भगवता शङ्कराचार्येणात्र तासां तासां देवतानामुपासनापद्धतिरेव प्राधान्येन वर्णिता। यावांश्च दार्शनिकोंऽशोऽत्र दृश्यते, स केवलं मन्त्रशास्त्रप्रक्रियां स्पष्टयति। न च तत्र शाङ्करवेदान्तप्रक्रियया कश्चन विरोधोऽवलोक्यते। अतो न दार्शनिकपद्धतिभेदेनापि प्रपञ्चसारस्य भिन्नकर्तृकत्वं साधयितुं शक्यत इति पुष्टतराणां विपरीतप्रमाणानामभावे ग्रन्थोऽयं भगवता आद्येन शङ्कराचार्येण रचित इति वयं तावत् साम्प्रतमेतावदेवोक्त्वा विरमामः॥

●

प्रास्ताविकम्

[षड्दर्शनसूत्रसंग्रहस्य]

भारतीयानां दर्शनानां संख्या षडिति सत्येयं भणितिः। अत एव तदभिज्ञः षट्शास्त्रीति निगद्यते। सन्ति भूयांसि षड् दर्शनानि। तथा हि—आस्तिकानि, नास्तिकानि चेति षड्दर्शनानि श्रूयन्ते। तत्र मीमांसा-वेदान्त-सांख्य-योग-न्याय-वैशेषिकाख्यान्यास्तिकानीति वर्ण्यन्ते। चार्वाक-जैन-चतुर्विधबौद्धाश्च नास्तिक-षड्दर्शनेषु परिगण्यन्ते। अत्र चास्तिकनास्तिकशब्दयोः प्रवृत्तिर्न "अस्ति-नास्ति-दिष्टं मतिः" (४।४।६०) इति पाणिनिसूत्रानुसारिणी, किन्तु वेदप्रामाण्यतद-प्रामाण्यवादमनुसरन्ती दृश्यते। वायुपुराणे—"ब्राह्मं शैवं वैष्णवं च सौरं शाक्तं तथार्हतम्। षड् दर्शनानि" (१०४।१६) इत्येवं षड्दर्शनानि निर्दिष्टानि। शक्तिसंगमतन्त्रे तारा-त्रिपुरा-छिन्नाभेदेन षड्दर्शनान्येवं प्रदर्श्यन्ते—

शाक्तं शैवं गाणपतं सौरं वैष्णवमेव च।
बौद्धं च देवदेवेशि ताराषड्दर्शनानि च॥
वैदिकं चैव सौरं च गाणपत्यन्तमेव च।
बौद्धं तु देवदेवेशि त्रिपुरादर्शनानि च॥
चान्द्रं स्वायम्भुवं जैनं चीनं नीलं महेश्वरि।
छिन्नाषड्दर्शनान्येव कीर्तितानि त्रिधा शिवे॥ इति।
(i. २।८५-८८)

हरिभद्रसूरिविरचिते षड्दर्शनसमुच्चये—

बौद्धं नैयायिकं सांख्यं जैनं वैशेषिकं तथा।
जैमिनीयं च नामानि दर्शनानाममून्यहो॥ (श्लो० ३)

इत्येवं षड्दर्शनानि निर्दिष्टानि। सायणमाधवीये सर्वदर्शनसंग्रहे रामानुज-पूर्णप्रज्ञ-शैव-लकुलीशपाशुपत-प्रत्यभिज्ञा-रसेश्वरप्रभृतीनां दर्शनानामपि संग्रहो दृश्यते। एवं सत्यपि षड्दर्शनशब्दः प्राधान्येन पूर्वोक्तान्यास्तिकानि दर्शनान्येव सूचयति, सत्स्वपि बहुषु दर्शनेषु षट्संख्या तानि न विजहातीति च। भारतीयेषु दर्शनेषु प्राचीनतमानि सूत्रपद्धत्या निबद्धानि दर्शनानि षडेव सन्ति। जैमिनि-बादरायण-कपिल-पतञ्जलि-गौतम-कणादाः सन्ति सूत्रकर्तारो महर्षयः। तान्येव षड्दर्शनसूत्राणि साम्प्रतं सुविज्ञानां पाठकानां पुरस्तात् समुपस्थाप्यन्ते परिशिष्टादिना संयोजितानि वाराणसेयया सुधीप्रकाशनसंस्थयेति परमस्य प्रमोदस्यायमवसरः।

दर्शनानां परिचयः

मीमांसादर्शनम्

जैमिनीये मीमांसादर्शने सन्ति द्वादशाध्यायाः। अत्र प्रतिपादिता विषया जैमिनीयन्यायमीमांसायामेवं निर्दिष्टाः—

धर्मो द्वादशलक्षण्या व्युत्पाद्यस्तत्र लक्षणैः।
प्रमाणभेदशेषत्वप्रयुक्तिक्रमसंज्ञकाः॥
अधिकारोऽतिदेशश्च सामान्येन विशेषतः।
ऊहो बाधश्च तन्त्रं च प्रसङ्गश्चोदिताः क्रमात्॥ इति।
(१।१।११–१२)

इतः परमध्यायगतपादानां विषयाः १३–२४ श्लोकेषु विस्तरेण प्रतिपादिता इति ते तत्रैव द्रष्टव्याः। अध्यायगताः पादा अधिकरणेषु विभज्यन्ते। न्यायपदेनापि तेषां व्यवहारः। मीमांसानिर्दिष्टानां न्यायानामन्येषु शास्त्रेषु लोकव्यवहारे च समानमाना प्रतिष्ठा वर्तत इति जानन्त्येव शास्त्रनिष्णाता मनीषिणः। अत्रत्यं शाबरभाष्यं भट्टकुमारिलेन, भट्टप्रभाकरेण च गुरुपदालङ्कृतेन यथायथं व्याख्यातम्, मुरारेश्चात्र वर्तते तृतीयः पन्थाः। एवं त्रिधा व्याख्यातस्यास्य मीमांसादर्शनस्य वर्तते विस्तृतं वाङ्मयम्।

वेदान्तदर्शनम्

बादरायणीये वेदान्तदर्शने भिक्षुसूत्र-ब्रह्मसूत्राद्यपरनामधेये वर्तन्ते चत्वारोऽध्यायाः। प्रत्येकं चतुर्षु पादेषु विभक्ताः समन्वयाध्याय-अविरोधाध्याय-साधनाध्याय-फलाध्यायनामानः। प्रथमाध्यायस्य चतुर्षु पादेषु क्रमशः स्पष्टब्रह्मलिङ्गकानाम्, अस्पष्टब्रह्मलिङ्गकानाम्, ज्ञेयब्रह्मविषयकाणाम्, अजाव्यक्तादिविषयकाणां च वाक्यानां विचारो वर्तते। द्वितीयाध्यायस्य प्रथमे पादे ब्रह्मणि स्मृतितर्कादीनामविरोधेन प्रवृत्तिः, द्वितीये पादे सांख्य-योग-वैशेषिक-जैन-बौद्ध-पाशुपत-पाञ्चरात्रमतखण्डनम्, तृतीयचतुर्थयोश्च पादयोर्महाभूतजीवेन्द्रियादिविषयकश्रुतीनां परस्परविरोधः परिहृतः। तृतीयाध्यायस्य चतुर्षु पादेषु क्रमशः परलोकगमन-तत्त्वम्पदार्थपरिशीलन-सगुणविद्यानिरूपण-निर्गुणब्रह्मविद्याबहिरङ्गान्तरङ्गसाधननिरूपणं वर्तते। चतुर्थाध्यायस्य चतुर्षु पादेषु च सगुणनिर्गुणविद्ययोः साङ्गोपाङ्गं सफलं विवेचनं क्रियते।

उपनिषदः, ब्रह्मसूत्रम्, भगवद्गीता च भारतीये वाङ्मये प्रस्थानत्रयीति नाम्ना प्रसिद्ध्यन्ति। नैकैः प्राचीनैराचार्यैः स्वस्वमतप्रतिष्ठार्थं प्रस्थानत्रयी

व्याख्याता । तेषु ब्रह्मसूत्राणि शङ्करभगवत्पाद-भास्कर-रामानुज-मध्व-निम्बार्क-श्रीकण्ठ-श्रीपति-वल्लभ-विज्ञानभिक्षु-बलदेवप्रभृतिभिराचार्यैः स्वमनीषानुसारं व्याख्यातानि, विवृतानि च तानि तत्तच्छिष्यप्रशिष्यैः शतशाखं प्रसृतैः ।

सांख्यदर्शनम्

षडध्यायात्मकेषु सांख्यसूत्रेषु विषयाख्ये प्रथमाध्याये प्रकृतिपुरुषादिसंबद्धा सांख्यदृष्टिरुन्मीलिता, प्रधानकार्याख्ये द्वितीयाध्याये प्रधानकार्याणां विवरणं समुपस्थापितम्, वैराग्याख्ये तृतीयाध्याये बन्धमोक्षादिव्यवस्था प्रदर्शिता, आख्यायिकाख्ये चतुर्थाध्याये आख्यायिकामुखेन सांख्यसिद्धान्ताः समुन्मीलिताः, परमतनिर्जयाख्ये पञ्चमाध्याये नामानुरूपं परप्रवादानां साटोपं निरासो विहितः, तन्त्राख्ये षष्ठाध्याये च पुनरपि सांख्यसिद्धान्ताः सुप्रतिष्ठापिताः ।

सांख्यसूत्राणीमानि न कैश्चिदपि प्राचीनैराचार्यैर्व्याख्यातानि । सांख्यकारिकैव प्रत्युत माठर-गौडपाद-वाचस्पतिमिश्रप्रभृतिभिर्विवृता । वर्तते च तत्र युक्तिदीपिकाख्या प्राचीना व्याख्याऽनिर्दिष्टकर्तृका । अत्रत्या भाषा न्यायवार्त्तिककारस्य उद्योतकरस्य शैलीं सार्वात्म्येनानुकरोति, वर्ण्यन्ते च नैकेषां सांख्ययोगाचार्याणां प्राचीनानां नामानि तेषां सिद्धान्ताश्च तत्र । नूनं सांख्यकारिकैव प्राचीनस्य सांख्यदर्शनस्य प्रातिनिध्यमाचरतीति वर्तते विदुषां विश्वासः ।

योगदर्शनम्

पातञ्जलयोगसूत्राणि चतुर्षु पादेषु विभक्तानि सन्ति । तत्र समाधिपादे प्रथमे चित्तवृत्तीनां सम्प्रज्ञातासम्प्रज्ञातसबीजनिर्बीजादिसमाधीनां च स्वरूपं निरूप्यते । द्वितीये साधनपादे क्रियायोग-क्लेश-योगाङ्गादीनां निरूपणं क्रियते । तृतीये विभूतिपादे धारणाध्यानसमाधीनां निरोधादिपरिणामानां विविधानां विभूतीनां च स्वरूपं वर्ण्यते । चतुर्थे कैवल्यपादे जन्मादिसिद्धीनां निर्माणचित्तस्य कैवल्याख्यस्य मोक्षस्य च स्वस्वरूपप्रतिष्ठितस्य विवरणं वर्तते ।

पातञ्जलं योगदर्शनमत्र संगृहीतेषु दर्शनसूत्रेषु संक्षिप्ततमम्, अथापि योगसंबद्धाः सर्वे विषया अत्र साकल्येन संकलिताः सन्ति । "हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता" (१२।३४९।६५) इति महाभारतवचने हिरण्यगर्भो योगशास्त्रस्य प्रथमाचार्यत्वेन स्मृतः । पतञ्जलितः प्राचीना अपि योगाचार्या महाभारतपुराणादिषु वर्णिताः सन्ति, किन्तु पातञ्जलयोगसूत्राणां दृश्यते महान् प्रभावः । "मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणाम्" (१।३३) इत्यादिके सूत्रे प्रतिपादितो विषयो बौद्धग्रन्थेषु चतुर्ब्रह्मविहारनाम्ना चर्च्यते तत्र-तत्र, जैनानां तत्त्वार्थसूत्रे च दृश्यते

"मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि" (७।११) इत्यादिकं सूत्रम्। तत्त्वार्थसूत्रीयं योगप्रकरणं बाहुल्येनानुकरोति पातञ्जलं योगदर्शनमेव।

न्यायदर्शनम्

गौतमीये न्यायदर्शने सन्ति पञ्चाध्यायाः। सन्ति च ते प्रत्येकं द्वयोराह्निकयोर्विभक्ताः। तत्र प्रथमाध्याये प्रमाणप्रमेयादयः षोडशपदार्था उद्देशलक्षणपुरस्सरं व्याख्याताः। ततः परं द्वितीयाध्याये संशयप्रमाणयोः, तृतीयचतुर्थाध्याययोश्च प्रमेयाणां वर्तते विशदा परीक्षा। अत्रैव सामयिकः शब्दादर्थसम्प्रत्ययः, वेदप्रामाण्यम्, ऐतिह्यादीनां प्रमाणचतुष्टयेऽन्तर्भावः, शब्दस्वरूपविमर्शः, पदार्थविचार इत्यादयः प्रमाणसंबद्धा विषया द्वितीयाध्याये; क्षणिकवादः, बुद्धेरात्मगुणत्वम्, अदृष्टम्, सर्वानित्यतानिराकरणम्, सर्वशून्यतानिराकरणम्, तत्त्वज्ञानोत्पत्तिप्रकार इत्यादयः प्रमेयसंबद्धा विषयाश्च तृतीयचतुर्थाध्याययोः सविशेषं परीक्षिताः। "तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थं जल्पवितण्डे बीजप्ररोहसंरक्षणार्थं कण्टकशाखावरणवत्" (४।२।५०) इति च तत्रैव प्रोच्यते। पञ्चमाध्याये च जातिनिग्रहस्थानयोर्विस्तरेण विभागः प्रदर्शितः।

न्यायदर्शनं प्राचीनेषु शास्त्रेष्वान्वीक्षिकीति नाम्ना प्रथते। न्यायभाष्यकारो वात्स्यायनः "प्रदीपः सर्वविद्यानाम्" (१।१।१) इत्यादिना तदिदं शास्त्रं स्तौति। सोऽयं श्लोकः कौटिलीयेऽर्थशास्त्रेऽपि दृश्यते। भाष्यमिदमुद्योतकरीयेण वार्त्तिकेन, तच्च वाचस्पतिमिश्रकृतया तात्पर्यटीकया, सा च भट्टोदयनकृतया परिशुद्धयेति महती बहुकालव्यापिनो ग्रन्थ-ग्रन्थकारपरम्पराऽत्र प्रवर्तते।

वैशेषिकदर्शनम्

काणादीये वैशेषिकदर्शने सन्त्यध्याया दश, ते च न्यायदर्शनवत् प्रत्येकं द्वयोराह्निकयोर्विभक्ताः। तत्र प्रथमाध्याये द्रव्य-गुण-कर्मादीनाम्, द्वितीयतृतीयाध्याययोर्नवद्रव्याणाम्, चतुर्थाध्याये परमाणूनामनित्यद्रव्याणां च, पञ्चमाध्याये कर्माख्यस्य पदार्थस्य, षष्ठाध्याये वेदप्रामाण्यस्य धर्माधर्मयोश्च, सप्तमाष्टमाध्याययोः कतिपयगुणानाम्, नवमाध्यायेऽभावस्य ज्ञानस्य च, दशमाध्याये च सुखदुःखविभेदानां त्रिविधकारणानां च वर्णनं वर्तते।

"यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः" (१।१।३) इति धर्मलक्षणमत्र प्रोच्यते। पुराणवर्णितेषु पाशुपतयोगाचार्येषु वर्तते [1]गौतमस्य (अक्षपादस्य),

---

१. अत्रैव ८१–९६ पृष्ठेषु प्रकाशिते "पुराणवर्णिताः पाशुपता योगाचार्याः" इति शीर्षके निबन्धे १०५-१०६ संख्याके नामनी द्रष्टव्ये।

कणादस्य च नामनी। जैनाचार्या[१] नैयायिकाः शैवाः, वैशेषिकाः पाशुपता इति वदन्ति। नैयायिकाः पाशुपताः, वैशेषिकाश्च शैवा इति तु तथ्यम्। न्यायभूषणकारो भासर्वज्ञो गणकारिकां संदृब्धवान्, शैवाचार्यो व्योमशिवश्च प्रशस्तपादभाष्ये व्योमवतीं व्याख्याम्। शैवागमेषु भोगमोक्षशब्दौ प्रथिततमौ। वैशेषिकसूत्रकारेण कणादेन भोगमोक्षावेवाभ्युदयनिःश्रेयसशब्दाभ्यां व्याख्यातौ।

वैशेषिकसूत्रापेक्षया प्राचीनैर्व्याख्याकारैः प्रशस्तपादभाष्यमेव तत्रत्यं बाहुल्येन व्याख्यातम्। अत्र व्योमशिवाचार्यस्य व्योमवती, श्रीधराचार्यस्य न्यायकन्दली, उदयनाचार्यस्य किरणावली, श्रीवत्सस्य वल्लभस्य च न्यायलीलावतीत्यादयो महनीया व्याख्याग्रन्थाः समुपलभ्यन्ते।

दर्शनानां कालादिनिर्णयः

तदेतेषां दर्शनानां कदा कस्मिन् वा प्रदेशे प्रादुर्भावः समजायतेति नाधुना किमपि याथातथ्येन वक्तुं शक्यते। अत्र वर्णितान् समालोचितान् वा विषयानाधृत्यानुमानपद्धत्या कालनिर्णयः क्रियते कैश्चित् कोविदैरैतिहासिकैः, किन्तु तत्र तेषामैकमत्यं नैव दृश्यते कालविषयेऽपि, देशनिर्णयस्य तु कथैव का ?

सूत्रेषु स्मृता महर्षयः

मीमांसासूत्रेषु महर्षय आत्रेय-आश्मरथ्य-ऐतिशायन-कामुकायन-कार्ष्णाजिनि-जैमिनि-बादरायण-बादरि-लाबुकायननामधेयाः स्मृताः सन्ति। एवमेव आत्रेय-आश्मरथ्य-औडुलोमि-कार्ष्णाजिनि-काशकृत्स्न-जैमिनि-बादरायण-बादरि-नामानो महर्षयो वेदान्तसूत्रेषु स्मर्यन्ते। उभयोरपि सूत्रयोरात्रेयः, आश्मरथ्यः, कार्ष्णाजिनिः, जैमिनिः, बादरायणः, बादरिरित्येते महर्षयः समानरूपेण स्मर्यन्त इति वर्तते प्राचीनकालादेव पूर्वोत्तरमीमांसयोरव्याहतः सम्बन्ध इति, विद्यते च महती परम्पराऽनयोः शास्त्रयोरिति च प्रतीयते। सांख्यसूत्रेषु पञ्चशिखः, सनन्दनश्चेति द्वावाचार्यौ स्मृतौ, वर्तते च तत्र वैशेषिकमतस्य चर्चा। अत्र कानिचन योगसूत्राणि दृश्यन्ते। षट्पदार्थवादिनो वैशेषिकाः, षोडशपदार्थवादिनो नैयायिकाश्च स्मर्यन्ते। भगवत्पादशङ्कराचार्यैः शारीरकभाष्ये सांख्यकारिकैव समुद्धृता, न सांख्यसूत्राणीति तु तथ्यम्। योगशास्त्रस्य नैके आचार्या रामायणमहाभारतपुराणयुक्तिदीपिकादिषु स्मर्यन्ते, किन्तु न कोऽप्या-

---

१ तन्त्रयात्रायां (वाराणसी, सन् १९८२) "शिवपुराणीयं दर्शनम्" (पृ० ५४) इत्यत्र मतमिदं समालोचितम्।

चार्यो योगसूत्रेषु स्मर्यते। प्रक्रियाप्रधानेऽस्मिन् शास्त्रे मा नाम काचन विचिकित्साऽङ्कुरायमाणा भवेदित्येव मनीषा स्यादत्र महर्षेः। साम्प्रतं हठयोग-मन्त्रयोग-कुण्डलिनीयोग-लययोगादिभेदेन नानाशाखं शास्त्रमिदं प्रवर्तते, वर्तते च स्वतन्त्रो योगपादो बहुषु शैववैष्णवादिष्वागमेषु। एवं सत्यपि राजते राजयोगनाम्नाऽस्य पातञ्जलस्य योगस्य कोऽप्यनिर्वचनीयो महिमा। न्याय-वैशेषिकसूत्रेष्वपि न केचन प्राचीना आचार्याः स्मृताः, किन्तु न्यायसूत्रेषु योगाभ्यासस्य, यमनियमसमाधीनाम्, योगशास्त्रादध्यात्मविधिप्रतिपत्तेश्च प्रतिपादनं वर्तते। एवमेव वैशेषिकसूत्रेष्वपि यमनियमसमाधीनां योगिप्रत्यक्षस्य चोल्लेखो विद्यत एव।

दर्शनानां प्रस्थानेष्वन्तर्भावः

मधुसूदनसरस्वतीकृतः प्रस्थानभेदाख्यः संक्षिप्ततमो ग्रन्थः समुपलभ्यते। तत्र पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्राणि चेति चत्वार्युपाङ्गानि वर्णितानि (पृ० १)। अत्रोपपुराणानामपि पुराणेऽन्तर्भावः, वैशेषिकशास्त्रस्य न्याये, वेदान्तशास्त्रस्य मीमांसायाम्, महाभारतरामायणयोः सांख्यपातञ्जलपाशुपत-वैष्णवादीनां च धर्मशास्त्रे (पृ० १) इति च तत्रैवोक्तम्। वेदबाह्यषड्दर्शनानां वेदोपवेदवेदाङ्गोपाङ्गभेदेन विभक्तानां प्रस्थानानां च संक्षिप्तं स्वरूपमुपवर्ण्य मधुसूदनसरस्वती भणति—

"सर्वेषां च संक्षेपेण त्रिविध एव प्रस्थानभेदः। तत्रारम्भवाद एकः, परिणामवादो द्वितीयः, विवर्तवादस्तृतीयः। पार्थिवाप्यतैजसवायवीयाश्चतुर्विधाः परमाणवो द्व्यणुकादिक्रमेण ब्रह्माण्डपर्यन्तं जगदारभन्ते। असदेव कार्यं कारण-व्यापारादुत्पद्यत इति प्रथमस्तार्किकाणां मीमांसकानां च पक्षः। सत्त्वरजस्तमो-गुणात्मकं प्रधानमेव महदहङ्कारादिक्रमेण जगदाकारेण परिणमते। पूर्वमपि सूक्ष्मरूपेण सदेव कार्यं कारणव्यापारेणाभिव्यज्यत इति द्वितीयः पक्षः सांख्य-योगपातञ्जलपाशुपतानाम्। ब्रह्मणः परिणामो जगदिति वैष्णवानाम्। स्वप्रकाशपरमानन्दाद्वितीयं ब्रह्म स्वमायावशान्मिथ्यैव जगदाकारेण कल्पत इति तृतीयः पक्षो ब्रह्मवादिनाम्। सर्वेषां प्रस्थानकर्तॄणां मुनीनां विवर्तवादपर्यवसानेनाद्वितीये परमेश्वर एव प्रतिपाद्ये तात्पर्यम्। नहि ते मुनयो भ्रान्ताः, सर्वज्ञत्वात् तेषाम्। किन्तु बहिर्विषयप्रमाणानामापाततः पुरुषार्थे प्रवेशो न सम्भवतीति नास्तिक्यवारणाय तैः प्रकारभेदाः प्रदर्शिताः। तत्र तेषां तात्पर्यमबुद्ध्वा वेद-विरुद्धेऽप्यर्थे तात्पर्यमुत्प्रेक्षमाणास्तन्मतमेवोपादेयत्वेन गृह्णन्तो जना नानापथजुषो भवन्तीति" (पृ० ९) इति।

अस्मद्गुरवस्तु नैनां दृष्टिमङ्गीकुर्वते। सत्स्वपि बहुष्वद्वैतवादेषु प्रत्यभिज्ञादृष्टिमेव ते सर्वोत्तमां मन्वते। अवैदिकेषु दर्शनेष्वपि वर्तते तेषां महानादरः। न च ते दार्शनिकदृष्टिषु तमिममुत्कर्षक्रममुररीकुर्वन्ति।

"सच्चिदानन्दघनं ब्रह्म" इति वर्तते श्रुतीनामुद्घोषः। अत्र सच्छब्दः पारमार्थिकीं त्रिकालाबाधितां महासत्ताम्, चिच्छब्दः शुद्धां संविदम्=मातृमान-मेयाख्यकोटित्रयातीतं शुद्धं स्वयम्प्रभं ज्ञानम्, आनन्दशब्दश्च निजानन्दादिभ्य उत्तीर्णं चिदानन्दं परिचाययति। स्थावरजङ्गमात्मकं षट्त्रिंशत्तत्त्वमयं जगदेतत् सच्चिदानन्दस्वरूपात् परमशिवादभिन्नमेव। नात्रारम्भवाद-परिणामवाद-विवर्तवादाः क्रमन्ते। प्रतिबिम्बवादसतत्त्वस्याभासवादस्यायं महिमा, येनाणव-मायीयकार्ममलोपेतो मानवः परमार्थतः परमशिवादभिन्नोऽपि न परिचिनोति स्वात्मस्वरूपम्। केचन वेदान्तिनोऽपि तमिममाभासवादमुररीकुर्वन्ति। दीक्षादिना मलेष्वपसृतेषु शक्तिपातमहिम्ना तत्त्वमस्यादिवाक्यैः प्रत्यभिज्ञायामुदि-तायां साधकस्य सच्चिदानन्दात्मकं स्वात्मस्वरूप प्रकाशते।

एवं च ज्ञानस्य स्वप्रकाशत्वमभ्युपगच्छन्तः सत्ख्यातिवादिनः प्राभाकरा नारम्भवादिभिः सह परिगणयितुं शक्यन्ते। विज्ञानवादिनो बौद्धा अपि विज्ञानं स्वयम्प्रभमेव मन्वते। "प्रायेणैव हि मीमांसा लोके लोकायतीकृता" (श्लो० १०) इत्येवं भट्टकुमारिलः श्लोकवार्त्तिकारम्भे भणति। भर्तृमित्रादिभिर्मीमांसा लोकायतीकृतेति तट्टीकाकारः पार्थसारथिः। भर्तृमित्र-भर्तृप्रपञ्च-भर्तृहरिप्रभृतयश्च महान्तो भारतीया दार्शनिकाः श्रूयन्ते। "मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमेव च" (पद्म० पु० ६।२६३।७१) इत्यपि स्मर्यते। यथाऽत्र दाक्षिणात्यानां वैष्णवानां प्रभावोऽन्विष्यते, तथा भट्टकुमारिलवचनमपि परीक्षणीयताकोटिप्रविष्टमेव निभालनीयम्। अभिनवगुप्तः—"प्राभाकरं मतं स्वमतेन समीकरोति" (ई० प्र० वि० वि०, i. २१९) इति, "सांख्य-जैमिनीयानां स्वप्रकाशा संविदिति स्थितम्। चिरन्तनवैशेषिकाणामपि चित्स्वभाव एवात्मा" (ई० प्र० वि० वि०, ii. ४३४) इति चाह। अतः सम्पूर्णस्य भारतीयदर्शनवाङ्मयस्य वैदिकस्यावैदिकस्य चौत्तराधर्यक्रमोऽद्वैतदृष्टिमवलम्ब्यापि पुनर्निर्धारणीय इति वर्ततेऽस्माकं सविनयं निवेदनम्। अत्र नूनमयं षड्दर्शनसूत्रसंग्रहः साहाय्यमाचरिष्यति॥

●

संस्कृति-साहित्यम्

- किमर्थमध्येयं संस्कृतम् ?
- काशी काशिष्यते क्लेशिष्यते वा ?
- संस्कृतेनैव संस्कृतिः संरक्षिता स्यात्
- किमेतद् उचितम् ?
- समालोचनार्हा भारतीया नैतिकता
- परमशैवः कालिदासः
- एकनीडतासम्पादिनो विश्वाहन्ता
- मत्संरक्षकाः श्रीमन्तः को० अ० सुब्रह्मण्य-अय्यरमहोदयाः
- परिषत्समर्पितजीवना गोपालचन्द्रसिंहमहोदयाः
- कविः साहित्यकारो मायाप्रसादस्त्रिपाठी
- करपात्रस्वामिकृतो वेदापौरुषयत्वविमर्शः
- कायावरोहणं नाम महातीर्थम्
- परस्परदेवो भव
- संस्कृतपत्रकारिता तत्समस्याश्च
- अन्तर्विद्यापीठीययुवजनसमारोहः
- आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्
- मयूरमरालसंवादः (१–५)

किमर्थमध्येयं संस्कृतम् ?

रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम् ।

रक्षार्थं भारतीयसंस्कृतेरध्येयं संस्कृतम् । वेदागमस्मृतिपुराणेतिहासज्ञो हि सम्यग् भारतीयां संस्कृतिं परिपालयिष्यति ।

ऊहः खल्वपि । प्रवर्तन्ते नाम साम्प्रतं नानाशाखा ज्ञानविज्ञानक्षेत्रयोः । किमत्र ग्राह्यं किं च त्याज्यमित्यस्य निर्णयं भावयिष्यति । "सारं ततो ग्राह्यमपास्य फल्गु" इति ह स्माह कश्चित् । नासंस्कृतज्ञः कर्तुमेतत् प्रभवति ।

आगमः खल्वपि । अपास्य फल्गु गृहीत्वा च सारमागमग्रन्थान् नूतनज्ञानविज्ञानप्रतिपादकान् निर्मास्यति । येन हि भवति सामञ्जस्यं भौतिकाध्यात्मिकवादयोः ।

लघ्वर्थं चाध्येयं संस्कृतम् । "एकमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः" इति हि समयः पाल्यते संस्कृतज्ञेन । स हि सूत्रवृत्त्यादिपद्धत्या लघुना सरलेन पथा सर्वं प्रतिपादयितुं क्रमते ।

असन्देहार्थं चाध्येयं संस्कृतम् । समुत्पन्नायां कर्मविचिकित्सायां वृत्तविचिकित्सायां वा संस्कृतं भवति मङ्गलतमं शरणम् ।

इमानि च भूयः संस्कृताध्ययनस्य प्रयोजनानि—सत्यनिष्ठा, न्यायनिष्ठा, अलोलुपता, विनीतता, गुरुजनादरः, संस्कृतिप्रेम, विश्वबन्धुता ।

बीजरक्षेत्येके ।

अध्यात्मप्रवणतेत्यपरे ।

ननु च भोः ! दृश्यन्ते पारङ्गता अपि श्रद्धालवोऽपि संस्कृतज्ञा अनृतभाषिणः, न्यायमूर्तयोऽप्यन्यायपरायणाः, त्यागिनोऽप्यर्थलोलुपाः, विपश्चितोऽपि स्वाभिमानशून्या मिथ्याभिमानिनः, संस्कृतच्छात्रा अपि गुरुजनतिरस्कारिणो वेशभूषादिष्वपि भारतीयसंस्कृतिप्रेमशून्याः, विद्वांसोऽपि धर्म-भाषा-जातिगत-विद्वेषकूपपतिताः ।

कालविलसितमेतदिति सम्प्रदायविदः । "जन्मसंस्कारविद्यादेः शक्तेः स्वाध्यायकर्मणोः । ह्रासदर्शनतो ह्रासः सम्प्रदायस्य मीयताम् ॥" इति ह स्माह कुसुमाञ्जलिकारिकाकार उदयनः । बीजं तु तत्र सन्निहितं तिष्ठति समेषामेषां गुणानाम् । तेन किल बीजरक्षा यथा स्यादित्यध्येयं संस्कृतम् ।

सदोषेयं दृष्टिरित्याधुनिकाः। प्रवर्तते साम्प्रतिकेषु भारतीयेषु विश्वविद्यालयेषु राजनीतिशब्दो वित्तलौल्यसंकीर्णतादीनां प्रतिनिधिभूतः, येन किल प्रकाममाक्रान्ता संस्कृतशिक्षा साम्प्रतिकी। कथं नाम कालविलासोऽयं न मोहयति पाश्चात्त्यान् विदुषः? कथं नु खलु दृश्यन्ते ते स्वप्रातिभप्रसूनसुरभीन् सर्वतो विकिरन्तो भूम्ना समस्तैरेभिर्गुणगणैरुपेताः? तैराविष्कृतो विकासवादः, सद्वाऽसद्वेत्यन्यदेतत्, प्रेरयति तानेतदर्थम्। आस्माकीनो ह्रासवादश्च मोहयत्यस्मान्। अतो हि प्रथमं विकासवादह्रासवादयोर्विवेच्यौ सम्यग् गुणदोषौ, येन खलु पुरुषकारसाहाय्येन दोषपरिहारिणो गुणाधायिनी च संस्कृतशिक्षाऽध्यात्मप्रवणा प्रवर्तेत। तदनु सर्वा भारतीया शिक्षाप्रणाली यथा स्यादध्यात्मप्रवणेत्यध्येयं संस्कृतम्।

पुरा किल अष्टादशविद्यानामध्ययनं संस्कृतभाषयैव भवति स्म। तदद्यत्वे न तथा। आंग्लभाषामधीत्य त्वरिता वक्तारो भवन्ति "सिद्धं नः सीमीहितम्, अनर्थकं संस्कृतम्" इति। तेभ्य एवं विप्रतिपन्नबुद्धिभ्यः सुहृत्संमिततयोच्यते—इमानि प्रयोजनानि, अध्येयं संस्कृतमिति॥

काशी काशिष्यते क्लेशिष्यते वा ?

औपनिषदज्ञानानां बुद्धोपदेशानां च प्रसवित्री काशी रामानन्द-कबीर-तुलसीदास-प्रसादप्रभृतीनपि प्रादुर्भावयामासेत्यत्र किमाश्चर्यम्। आश्चर्यमेतदेव यत्तस्यां काश्यां संस्कृतशिक्षाक्षेत्रे प्रवर्तते साम्प्रतं संकीर्णताया अर्थलोलुपतायाश्च नग्नं ताण्डवम्।

भगवतः शङ्करस्य त्रिशूलोपरि विराजमानेयं काशी त्रिलोकीतो भिन्नेति वर्ण्यते पुराणेतिहासेषु। अत एव सत्यवादी हरिश्चन्द्रोऽखिलमहीमण्डलतो भिन्नामेनां मत्वा विश्वामित्रायार्पितं स्वाराज्यं त्यक्त्वा अत्रागत्य च पत्नीपुत्रसहितं स्वात्मानं दक्षिणादानाय विचिक्रिये। विद्वत्ताया निकषग्रावेयमिति विचार्य शङ्कराचार्यभगवत्पादा अत्रागताः। तयैव भावनया प्रेरित आर्यसमाज-प्रवर्तकः स्वामी दयानन्दोऽप्यत्राजगाम। "काश्यां मरणान्मुक्तिः" इति शास्त्रवचने श्रद्दधाना भारतीया मरणमपि मङ्गलमयं विदधानास्तारकमन्त्राभिलाषुका अत्र निवसन्ति। विद्याध्ययनाय स्ववैदुष्यख्यापनाय वा समागतेषु विद्वत्सु केचन काश्यामेव स्थायिनीं वसतिमारचयन्ति। सन्ति परःशतमेतादृशा विद्वांसो ये भारतीयेभ्यो विभिन्नेभ्यः प्रदेशेभ्यः समागत्यात्र महनीयया स्वशिष्यपरम्परया ग्रन्थसम्पत्त्या चैनामलंचक्रिरे। सेयमियदवधि विद्यावयोवृद्धैर्विपश्चिद्भिरनारतं काशमाना काशी हन्त ! इतः परमपि काशिष्यते ? अथवा केवलं क्लेशयिष्यति तान् ? प्रश्नोऽयं जाज्वल्यमानः समुपस्थितोऽस्माकं पुरतः।

अखिलस्य भारतवर्षस्य सांस्कृतिकीं राजधानीं काशीं केचन साम्प्रतं स्वकीयं गृहनगरमुद्घोषयन्ति। बाह्या विद्वांसस्तेषामतिथय इति तेषां धारणा। अतिथिभिश्चातिथेयेङ्गितानुसरणशिष्टाचारो नूनमनुपालनीयः। मेषवृकन्यायमनुसरन्त इमे वदन्ति यद् बाह्यानामेतेषां विदुषां पूर्वजा अस्माकं पूर्वजानवमानितवन्त इति तेषां दायादा इमेऽस्माभिः शासनीयाः। स्पर्धितुमसमर्था इमे द्वेषेर्ष्यापिशाचीसमाविष्टा विनेयानविनयं शिक्षयन्ति, विदधति च तत्सर्वं येन हि भवति भारतीयाया आध्यात्मिकतायाः, संस्कृतेः, सभ्यतायाश्च कूलंकषो विनाशः। समाघ्राय संस्कृतगन्धम्, परिभ्रम्य च देशविदेशान् समागताः फुंकटमिश्रपादा दूरभाषवार्तादिषु नटवरलालधर्मतेजाप्रभृतीनां शिष्यतां गताः साम्प्रतमेतेषां नेतारो भवन्ति, ये हि पादस्पर्शविधिना व्यक्तिशः, अभिनवया पाश्चात्यया पाङ्क्तेयपद्धत्या च सामूहिकेन विधिना पावयन्ति प्रवञ्चनामयैरुपदेशैरादेशैः

स्वीयैः कार्यकलापैश्च हन्त ! सरलप्रकृतीन् पण्डितान्, संकीर्णताकूपमण्डूकांश्च तान् विदधतीत्यहो दैवदुर्विलसितम् ।

उपनयनपद्धतिषु किल श्रूयते—विधिवदुपनीतो बटुरध्ययनाय यथेच्छं कश्मीरं काशीं वा प्रत्यभिगच्छेदिति । आसीत् कदाचन काशीवत् कश्मीरमपि संस्कृताध्ययनस्य महत्केन्द्रम् । पद्धतिग्रन्थेषु स्मृतं तत् कश्मीरमधुना नाकर्षयति वेदागमेतिहासपुराणाध्येतॄन् । सर्वोऽयं प्रवाहः साम्प्रतमेकलः काशीं प्रत्युन्मुखो दृश्यते । तेन हि सत्यं तस्याः सांस्कृतिकराजधानीत्वं विद्योततेतराम् । किन्तु तामिमां काशमानां काशीं स्वकीयं गृहनगरं मन्यमाना द्वेषेर्ष्यावित्तलौल्यसंकीर्णतापिशाचीग्रस्ताः पूर्वचर्चिता महानुभावा अन्धे तमसि निपातयन्तो निभाल्यन्ते । ह्रासोन्मुखं तद् दृश्यते प्रौढपाण्डित्यं यदस्या वैशिष्ट्यमासीत् ।

साम्प्रतं पाश्चात्यशिक्षापद्धतेः सर्वे दुर्गुणाः शतमुखेन वेगेनात्र प्रवर्तन्ते । श्रूयन्ते परीक्षार्थिनो वदन्तः—गुरुवर ! समुपलब्धेऽपि पुस्तके नोपलब्धमस्माभिस्तस्य प्रश्नस्योत्तरमिति । वीरोत्तमैरेभिस्त्रासिता संस्कृतविद्या कुत्र नु साम्प्रतं शरणं लभताम् ? विद्याक्षेत्रेऽस्मिन् न कोऽपि कस्मैचन स्पर्धते, द्रुह्यति केवलम् । आधुनिकस्य ज्ञानविज्ञानस्य शाखाप्रशाखा देशीयेषु विदेशीयेषु वा विश्वविद्यालयेषु विशिष्टासु संस्थासु वा शरणं लप्स्यन्ते कस्माच्चन स्थानविशेषात् तिरस्कृताः । काशीतस्तिरस्कृतं तत्पङ्क्तिपाण्डित्यं प्रौढपाण्डित्यापरनामधेयं कुत्र नु स्थास्यति ? यद्धि हिन्दीप्रभृतिप्रादेशिकभाषाकवितानां भावावबोधायापि नितरामपेक्षितम् । "विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः" । किमेष विनिपातः कपोताक्षिनिमीलनप्रायैः समितीनां प्रतिवेदनैः संरक्ष्येत ? यदि काशी प्रकाशप्रदानात्मकं स्ववैशिष्ट्यमेव हास्यति, यदि तया दीयमानस्य प्रकाशस्य संरक्षका अत्र क्लेशयिष्यन्ते ? तर्हि कदाचन सा कश्मीरसदृशी समुपेक्षिता कथं न स्यादित्यत्रावहितेन शान्तेन चेतसा विचारणीयं विपश्चिद्भिः ।

साम्प्रतं काश्यां नानारूपधराः संस्कृतवणिजः प्रचरन्ति । केचन प्रशासनेन दीयमानस्यार्थिकसाहाय्यस्य सद्गतये छात्राध्यापकविहीनाः पाठशालाः संचालयन्ति, अपरे दानवीरैर्धनपतिभिर्भूस्वामिभिर्नरपतिभिश्च संस्कृताध्ययनाध्यापनाय समर्पितासु चलाचलसम्पत्तिषु तत्रत्यया दुरवस्थया चेखिद्यन्तः सुव्यवस्थोपपादनाय स्वस्वामित्वं ख्यापयन्ति, एके यज्ञयागादिषु समुपस्थितानामृत्विजां महाविद्यालयादिषु वृत्तिभाजां छात्राणां च कल्याणाय तदीयांशान् स्वात्मसात्कुर्वन्ति, अन्ये महाप्राणाः सम्पूर्णां संस्थामुत्तराधिकारोपलब्धामिव परिगणयन्तस्तत्र स्वदायादानेव नियोजयन्ति, तदर्थमेव च कृतस्य धनव्ययस्योप-

योगितां मन्यन्ते, केचित् पूर्वं तुलसोदलविष्कम्भकादीन् प्रदर्शयन्तोऽन्ते चारणाचरितमाचरन्ति, इतरे च नौटंकीकजरीभाणप्रसहनादिभिरभिनवाचार्यान् प्रीणयन्ति। एते हि मानयन्ति संस्कृतंमन्यान्, न तु संस्कृतज्ञान्। धर्मवणिजोऽपरे—

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं धृतिः क्षमा।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः॥
तत्र पूर्वश्चतुर्वर्गो दम्भार्थमपि सेव्यते।
उत्तरस्तु चतुर्वर्गो महात्मन्येव तिष्ठति॥

इति हितोपदेशवचनं स्मरन्तोऽपि, अर्थवादवाक्यानां प्राशस्त्यमात्रबोधकत्वं न तु विधिवाक्यानामिव तेषां स्वार्थे तात्पर्यमिति जानन्तोऽपि, परिहाय पादत्राणं प्रत्यहं प्रातर्गङ्गास्नानविश्वनाथदर्शनेन कूपोदकपानेन च सन्तुष्टा अहर्निशं प्रवञ्चनामयं जीवनं यापयन्ति। "सत्यं धृतिः क्षमा अलोभः" इति महात्मभिरनुष्ठेयं धर्ममार्गमवहेल्य संकीर्णतापिशाचीग्रस्ता एते सर्वे पूर्वोक्तान् मण्डल(जिला)वादप्रचारकानेव बहु मानयन्ति। काशीस्थानामेतेषां संस्कृतवणिजां धर्मवणिजां च शिष्यप्रशिष्या अन्यत्राप्येतदनुकारं चातुर्यभरितं स्वहस्तलाघवं प्रदर्शयेयुश्चेत् तत्र किमाश्चर्यम्! संस्कृतज्ञेषु समापतितं वित्तलौल्यसंकीर्णताख्यं व्याधिद्वयं नाशयिष्यति संस्कृतम्। संस्कृतविहीना च काशी क्लेशिष्यते केवलम्।

गाण्डीवस्य प्रत्येकं टङ्काकारारावो भीषयतां तानीर्ष्याद्वेषपिशाचीग्रस्तानातिथेयंमन्यान्, परिहरतु संस्कृतज्ञेषु समापतितान् दोषान्, रक्षतु शास्त्रमर्यादाम्, येन हि प्रचकास्तु नाम काशी सततमाध्यात्मिकप्रकाशदात्री न केवलं भारतस्य, अपि तु रागद्वेषभयाकुलस्य सम्पूर्णस्यास्य विश्वस्य सांस्कृतिकराजधानीत्वेन। तत्र च चित्तगङ्गा वहतु पुण्याय, न पापाय।

काश्यां निवसतां समेषां विदुषामविदुषां च भगवन्तौ श्रीमदन्नपूर्णापरमेश्वरौ आतिथेयौ—इति हि शास्त्रसम्मतः पन्थाः। एतद्विपरीतमाचरन्तो वित्तलौल्यसंकीर्णतापिशाचीसमाविष्टा विमूढाः शास्त्रोपदेशविधिना मानसिकेनोपचारेणानुशासनोया इति श्रीमन्तः परमश्रद्धास्पदाः करपात्रस्वामिमहोदयाः प्रार्थ्यन्ते॥

●

संस्कृतेनैव संस्कृतिः संरक्षिता स्यात्

संस्कृतवार्ताप्रसारः

प्रत्यहं प्रातर्नववादनवेलायामाकाशवाणीतः संस्कृतगिरा पञ्चक्षणावधिको वार्ताप्रसारः प्रारब्ध इति समेषां संस्कृतसंस्कृतिसमुपासकानां प्रमोदावहः संवादोऽयम् । स्वातन्त्र्यलाभानुकालमेवैष करणीय आसीत् । तदा भारतशासनस्य गर्वोक्तिरियं न खण्डिता स्यात् 'पश्चिम-जर्मन-रेडियो'–संचालकैर्यदिदम्प्रथमतया आकाशवाणीत एव संस्कृतगिरा वार्ताः प्रसार्यन्त इति । ते हि सूचयन्ति यदस्माकं देशे 'रेडियो' द्वारा संस्कृत-माध्यमेन वार्ताप्रसार इतः पूर्वंत एव क्रियत इति ।

स्थगनादेशः

अपरं च द्वितीयोऽयं सुसंवादो दृष्टो वृत्तपत्रेषु यत्सर्वोच्चन्यायालयेन रामेश्वरमन्दिराधिकारिभिस्तमिलनाडुप्रदेशप्रशासनस्य मन्दिरेषु संस्कृतभाषाप्रयोगप्रतिबन्धकस्यादेशस्य विरुद्धं समुपस्थापिता याचिका स्वीकृतेति ।

संस्कृतविरोधः

विडम्बनेयं भारतीयगणराज्यस्य यत् शङ्कराचार्य-रामानुजाचार्य-मध्वाचार्य-निम्बार्काचार्य-वल्लभाचार्य-प्रभृतीनामुत्पत्तिस्थले दक्षिणभारते विशेषतस्तमिलनाडुप्रदेशे साम्प्रतं न केवलं हिन्दीभाषायाः, प्रत्युत देवनागरलिपिसहितायाः संस्कृतभाषाया अपि बहिष्कारः कैश्चिद् राजनीतिकदलैरेव न, प्रत्युत प्रशासनेनापि साग्रहं साक्रोशं च विधीयते, या हि भाषा सम्पूर्णं देशं सांस्कृतिकसूत्रे चिरकालादाबध्नती राजतेतराम् । राजनीतिकदृष्ट्या सम्पूर्णं भारतवर्षं कदापि कस्यापि केन्द्रीयस्य प्रशासनस्य नियोजने नासीदिति प्रतिपादयन्ति साम्प्रतिका इतिहासविदः, किन्तु तेऽपि संस्कृतभाषायाः सम्पूर्णे देशे एकच्छत्रं साम्राज्यमासीदिति नैवापलपन्ति ।

युगपरिवर्तनम्

पङ्क्तीनामासां लेखको वारद्वयमगमद् दक्षिणभारतयात्रार्थम् । प्रथमा यात्रा १९५५ ई० वर्षे समजायत, यदा हि संस्कृतविश्वपरिषदश्चतुर्थमधिवेशनं भगवतो वेङ्कटेश्वरस्य पावनक्षेत्रपरिसरे तिरुपतिक्षेत्रे समायोजितमासीत् ।

द्वितीया चाध्ययनयात्रा १९६८ ई० वर्षे ग्रीष्मावकाशे सम्पन्ना। तत्र प्रथमायां यात्रायां सर्वत्र वार्तालापपरिचयादीनां माध्यममासीत् संस्कृतभाषा, या हि तत्रत्यासु पाठशालास्वधीयानैर्बालकैरपि निष्प्रत्यूहं धाराप्रवाहमुच्यते स्म। द्वादशवर्षेषु युगपरिवर्तनं श्रूयते। तदनुभूतं तत्र संस्कृतभाषामधिकृत्य द्वितीयायां यात्रायाम्। तत्र दक्षिणभारते संस्कृतभाषामधिकृत्य युगपरिवर्तनमेव संजातम्। अध्यापका अपि न तादृशं वावदूकाः समासन्, यादृशा हि दृष्टाः पूर्वस्यां यात्रायाम्। प्रशासनेन न केवलं माध्यमिकशालाभ्यः संस्कृतभाषा निष्काशिता, प्रत्युत बह्व्यः संस्कृतशोधसंस्था अपि मद्रपुरी-राजकीयहस्तलेखागार-तंजोरसरस्वतीमहलपुस्तकालयसदृश्योऽर्थसाहाय्यकार्श्याद् ग्रन्थप्रकाशनादिकार्यकलापेषु मन्दमन्दं प्रवर्तमानाः समवालोक्यन्त। प्रायस्त्रिंशद्वर्षपर्यन्तमनारतं प्रकाश्यमाना मैसूरराजकीयसंस्कृतमहाविद्यालयस्य त्रैमासिकी पत्रिकाऽर्थसाहाय्याभावान्न प्रकाश्यते साम्प्रतम्।

किमत्र कारणम् ?

पाश्चात्त्या कूटनीतिरत्र कारणमिति मन्यामहे वयम्। साम्प्रतिका पाश्चात्त्या भारतीयाश्च ऐतिहासिका आर्य-द्रविडविभागेषु सर्वा भारतीयाः प्रजा विभजन्ति। द्रविडा अत्रत्या मूलनिवासिनः। एते च मोहेंजोदड़ो-हड़प्पाप्रभृतिस्थानेषु उत्खननविधिना समुपलब्धायाः समुन्नतताया नगरसंस्कृतेः प्रातिनिध्यं कुर्वाणाः समासन्। ते हि वैदिकसंस्कृतिमनुसरद्भिरार्यैर्विदेशीयैः पराभूता दक्षिणे भारते स्ववसती रचयामासुः। गच्छता कालेन तत्रापि ब्राह्मणैरगस्त्यप्रभृतिभिः केनापि प्रकारेण प्रवेशो लब्धः, धिक्कृता च द्राविडी प्रजा। एते कथयन्ति यन्मर्यादापुरुषोत्तमो राम आर्याणां प्रातिनिध्यमाचरति, येन हि द्राविडसंस्कृतिप्रतीको रावणो व्यापादितः।

इतिहासव्यामोहः

कीदृशी विडम्बनेयं यदनेन विकृतेनेतिहासशास्त्रेण व्यामोहिता भारतीया प्रजा विस्मरति स्वीयं स्वरूपैश्वर्यम्। अर्धजरतीयमाश्रित्य रामकृष्णागस्त्यप्रभृतयो नैतिहासिकाः पुरुषा इति साम्प्रतिकेतिहासवचनमेकतो नाङ्गीकुर्वन्ति, अपरतश्च द्राविडार्यसंघर्षकथां सत्यां मन्वाना रावणं पूजयन्ति, तिरस्कुर्वन्ति च मर्यादापुरुषोत्तमं भारतीयसभ्यतासंस्कृतिप्रतीकं श्रीरामम्, यस्य प्रतिष्ठाऽऽधुनिकेतिहासदृष्ट्या श्रीमता रामानुजाचार्येण व्यधायि। तुष्यतुदुर्जनन्यायमनुसरन्तो वयं क्षणमेकं यदि साम्प्रतिकेतिहासशास्त्रस्य सत्यतां स्वीकुर्मः, तथापि किमर्थमेतन्न निभालयामो यद्विग्रहप्रदर्शकस्य तस्य प्राचीनेतिहासस्य

कल्पितः कालः प्रागैतिहासिक इति स्वयमेवोररीक्रियते तल्लेखकैः। स एष कल्पितो विग्रहकालः प्रामाणिकतयाऽङ्गीक्रियते, विस्मर्यते च स स्वर्णिमः कालो यत्र नाम दक्षिणदेशीयवैष्णवागमाद्युद्भूतभक्तिप्रभावेण आप्लावितः सम्पूर्णो देशः। यत्प्रयुक्तः "भक्ति द्राविड ऊपजी" इत्याभाणको राष्ट्रभाषायामनुश्रूयते।

दलतन्त्रशासनम्

वस्तुतस्तु साम्प्रतं भारते वर्षे जनतन्त्रापेक्षया दलतन्त्रं प्रवर्तते। राष्ट्रहितापेक्षया दलहितस्य गौरवातिशयोऽङ्गीक्रियते सर्वैं राजनीतिकदलैः। तेन हि घातयित्वा राष्ट्रहितं दलहिताचरणाय प्रक्रान्तोऽयं संस्कृतिविरोधो नाम दक्षिणे भारते। तत्रत्यानि 'द्रविड कडगम' प्रभृतीनि दलानि भाषाविद्रोहं संस्कृतविद्रोहं च समुत्पाद्य स्वार्थं साधयन्तो न पश्यन्ति सम्पूर्णस्य राष्ट्रस्य हितम्। एष च राष्ट्रस्य समूलकाषं विनाशाय भविष्यतीति विचारणीयं भारतीयया प्रजया, विशेषतो दक्षिणभारतस्थया। आधुनिकेतिहासदृष्ट्याऽपि भारतवर्षे साम्प्रतं द्राविडसंस्कृतिप्रभाव एव आगमिकतान्त्रिकपौराणिकवाङ्मयमुखेन बलिष्ठतर इत्यङ्गीक्रियते तैः। नानाविधैरेकतासूत्रैरोतश्च प्रोतश्च वर्तते सम्पूर्णो देशः। तेषु प्रमुखं स्थानं वर्तते संस्कृतभाषायाः। कूटकापटिकवचोभिस्तन्नोच्छेद्येतेति सावहितैरस्माभिर्निरीक्षणीयम्।

संस्कृतसंरक्षणम्

सम्पूर्णस्य राष्ट्रस्य एकताननताया रक्षायै शुभक्षणोऽयमस्माभिः स्वागतवाचाऽभिनन्दनीयो यदाकाशवाणीतः संस्कृतवार्ताप्रसारो नाम, यच्च सर्वोच्चन्यायालयस्य दक्षिणभारतीयदेवमन्दिरेष्वर्चाविधिषु संस्कृतभाषासंरक्षणं नाम। इदमपेक्षितं वर्तते यदन्यभाषास्विव संस्कृतभाषायामपि वार्ताप्रसारसमयो दशक्षणावधिकः स्यादिति, तमिलनाडुप्रदेशेनापि च राष्ट्रहिताय संस्कृतभाषाया न केवलं देवमन्दिरेषु, पाठशालाशोधसंस्थानादिष्वपि च सर्वविधं संरक्षणं क्रियेतेति॥

●

किमेतद् उचितम् ?

मानवधर्मशास्त्रे स्मर्यते—

उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिर्धर्मस्य शाश्वती ।
स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥
ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधि जायते ।
ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये ॥
(म० स्मृ० १।९८-९९)

जनतन्त्रशासनानुशिष्टे साम्प्रतिके जगति न कोऽपि प्रसरावसरो वचनानामीदृशानाम् । स्वतन्त्रता च समानता चेति स्तम्भयोर्द्वयोर्दृढमारोपितो ह्ययमभिनवो जनतन्त्रप्रासादः । तथापि दृश्यन्ते शास्त्रानुरागिणः संस्कृतज्ञास्तदनुशिष्टाश्च प्रजाः श्रद्धानता ईदृशेषु वचनेषु । तान् प्रति अस्माकमयं प्रश्नः—धर्मकोशस्य गुप्तये उत्पन्ना धर्मस्य शाश्वती मूर्तिरियं किं साम्प्रतं गोपायति धर्मम् ?

स्थालीपुलाकन्यायेन तावत् परीक्षामहे वाराणस्याः कस्याश्चन विशिष्टायाः संस्थाया अर्थचिन्ताविनिर्मोचितान् विप्रान् । किमेते धर्मकोशस्य गुप्तये, नहि नहि भारतराष्ट्रस्य, भारतीयसंस्कृतेः, सभ्यतायाः, संस्कृतभाषायाः, किमुत तस्या विद्यासंस्थाया गुप्तये किमपि कुर्वन्तोऽवलोक्यन्ते ? शतशो निषेधमुखेनैव प्रतिध्वनितं भवति दिग्दिगन्तेषु प्रश्नस्यास्य समुत्तरम् ।

आसीत् स धार्मिकः कालो यत्र भ्रातृविहीना कन्या शोच्यते स्म श्रुतिषु च स्मृतिषु च । अधुना त्वर्थप्रधानेऽस्मिन् युगेऽहमहमिकया एताः परिणीयन्ते वित्तक्षेत्रगृहादिलुब्धैर्धार्मिकम्मन्यैः । साम्प्रतं कोशशब्दः शब्दराशौ वित्तराशौ च प्रयुज्यमानो दृश्यते । धर्मकोशशब्दो ज्ञायते केवलं मनुस्मृत्यादिधर्मग्रन्थेषु । धर्मकोशस्य गुप्तिर्दूरं गच्छतु, साम्प्रतं संस्कृतशब्दकोशमपि रक्षितुमसमर्था वयं शिल्पकलादिग्रन्थेषु प्रयुक्तान् विशिष्टान् शब्दान् विस्मृत्य नूतनानन्यभाषाशब्दान् संस्कृतव्याकरणेन सिषाधयिषन्तः "पण्डकमुद्वाह्य मुग्धायाः पुत्रप्रार्थनम्" इति न्यायानुसारं स्वयमेव समुत्पादितामात्मन उपहासास्पदां स्थितिं नानुभवामः । अस्यां दुःस्थितौ "अर्थस्य पुरुषो दासः" इत्यादीनां नीतिवाक्यानां प्रसरं को

नामावरोद्धुं शवनुयान्नामशेषतां गतेषु ऋतामृतादिवृत्तिजीविषु विप्रवरेषु। कस्तावत् पालयति—

न लोकवृत्तं वर्तेत वृत्तिहेतोः कथञ्चन।
अजिह्मामशठां शुद्धां जीवेद् ब्राह्मणजीविकाम्॥ (४।११)

नेहेतार्थान् प्रसङ्गेन न विरुद्धेन कर्मणा।
न विद्यमानेष्वर्थेषु नार्त्यामपि कदाचन॥ (४।१५)

इत्यादीनि मनुस्मृतिवचांसि ?

कश्चनाह—ननु भोः ! न श्रुतो भवता—

स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च।
आनृशंस्याद् ब्राह्मणस्य भुञ्जते हीतरे जनाः॥ (१।१०१)

इति मनुस्मृतेरयं श्लोकः। तेन हि मन्यतां तावद् विप्रेतरमुद्दिश्येदमुच्यते "अर्थस्य पुरुषो दासः" इति। "दासस्त्वर्थो न कस्यचित्" इति तु रिक्तं वचः। न केवलमस्माकम्, किन्तु कलिकालेऽस्मिन्नुत्कोचभोगिनामस्मद्वयस्यानामपि तावत् किं नायं पामरोऽर्थो दासतामाचरति ?

तां संस्थामेव पश्यन्तु नाम, या हि केनचित् स्वप्नदर्शिना विप्राणामर्थदासत्वायाभिनवरूपप्रदानेन संवर्धिता। "नहि वरविघाताय कन्योद्वाहः" इति न्यायानभिज्ञ आसीत् सः। तत्रत्या विप्रवराः न केवलं 'स्वमेव' इत्यादिपूर्वोक्ते मनुवचसि बद्धादराः, अपि तु साम्प्रतिकसाम्यवादीयवर्गसंघर्षसिद्धान्तमपि बहु मानयन्ति। तेन हि शास्त्रेषु कृतभूरिपरिश्रमोऽपि विद्वानधिकारलिप्सायां प्रबलायां स्वकीयं वर्गमेकं स्थापितवान्, तस्मै द्रुह्यन्नभिनवाचार्यः सृजति द्वितीयं वर्गम्, बंगीयया मायया चात्रोत्पादितस्तृतीयो वर्गः। अर्थदासत्वायैते सर्वे विवदन्ते च सम्प्रवदन्ते च। तदितरे विप्रा एतेषामेव पुरतः पुच्छं चालयन्ति, चरणचटुलतां च विदधति। परस्परं कलहायमानाः सवर्गीयाः सत्यवसरे "वयं पञ्चोत्तरं शतम्" इति भारतवचनमनुपालयन्तोऽर्थदासत्वप्रतिबन्धकानधिकारिणः परवर्गीयान् धर्मयुद्धेन हतप्रभान् कुर्वन्ति, अभिनवं स्वामिनमासाद्य लब्धसाहसान् भषतो दन्तान् प्रदर्शयतश्चटुलानुपहसन्ति च तर्जयन्ति च सत्यवसरे दण्डयन्ति च। रसातलं गच्छतु संस्कृतं संस्कृतिः सभ्यता संस्था वा, अश्वतरीगर्भायमाणानामस्माकमर्थदासत्वव्यापारो निर्विघ्नः प्रसरेदित्येव मनोरथः सर्वेषामेतेषां वर्गसंघर्षप्रियाणाम्। किमेतद् उचितम् ?

अयं च गण्डस्योपरि स्फोटः, यद्वर्गसंघर्षप्रियाणामेतेषां च तत्प्रभूणां च प्रसादेन प्रयत्नेन च यत्र तत्र सर्वत्र प्रायो मण्डलस्य (जिला) एकस्य विप्रवराः! एव बाहुल्येन तृतीयचतुर्थश्रेणिकपदाभिधेयेषु स्थानेषु विराजन्ते। येषां हि—

अशक्तोऽहं गृहारम्भे शक्तोऽहं गृहभञ्जने।
घातयितुमेव नीचः परकार्यं वेत्ति न प्रसाधयितुम्।
पातयितुमेव शक्तिर्नाखोरुद्धर्तुमन्नपिटकम् ॥

इत्याद्या भणितीरनुपालयतां स्वप्रभूणां वचांसि वेदवाक्यानीव श्रद्धास्पदानि सन्ति। अत्राधीतिनां छात्राणामपेक्षया एते संख्यायामधिकाः संघबद्धाश्चेति चतुरा नेतारो तानेतान् यथेष्टं विनियोजयन्ति। किमेतद् उचितम्?

भो मानवोत्तमाः! विरमत तावद् यूयम्। शृणुत विचारयत क्षणमेकम्—

योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा सत्सु भाषते।
स पापकृत्तमो लोके स्तेन आत्मापहारकः॥
वाच्यर्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिसृताः।
तां तु न स्तेनयेद् वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः॥
(४।२२५-२२६)

भगवान् मनुरत्र किं वदतीति। न केवलं स्वयम्, शिष्यप्रशिष्यादिमुखेन 'दलाल-चमचा'पदवाच्यानां साहाय्येन च किं न कुरुथ यूयं वाचो विग्लापनमेतत्? "सा मा सत्योक्तिः परिपातु विश्वतः" (ऋ० १०।३७।२) इति श्रुतिवचनं श्रुतिपथमवतरति युष्माकम्? अवधीयते कदाचिद् यत्किमत्र मनुरवदत्—

उत्तमानुत्तमान् गच्छन् हीनान् हीनांश्च वर्जयन्।
ब्राह्मणः श्रेष्ठतामेति प्रत्यवायेन शूद्रताम्॥ (४।२४५)

"यन्मनुरवदत् तद्धि भेषजम्" (ता० ब्रा० २३।१६।७) इति च श्रुतिराह।

साभिमानं भणामो वयम्—"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" (ऋ० ९।६३।५) इति श्रुतिवाक्यम्—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ (२।२०)

इति मनुस्मृतिवचश्च। किमेभिरेव वञ्चकताप्रायैर्गुणैरुपेता वयं विश्वमार्यं करिष्यामः? अथवा आस्माकीनैरीदृशैररुन्तुदैर्गुणैराकृष्टाः साम्प्रतिका मानवा विडम्बनाबहुलं चरित्रमस्मदीयमनुकरिष्यन्ति? कुत्र नु तावद् वर्तते—

सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव।
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा ॥ (२।१६२)

इति मनुस्मृतिप्रतिपादितं तद् ब्राह्मण्यम्, यस्य चरणयोर्निपत्य विश्वमेतत् स्वं चरित्रं शिक्षेत ?

अयि विप्रवराः ! उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत। स्मरत च श्रीमद्भगवद्गीतावचनमेतत्—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ (३।२१)

युष्मत्पतनेनैव देशस्यैतत् परितो जृम्भमाणं नैतिकं पतनमवलोक्यते, येन विश्वगुरुरयं भारतो देशः साम्प्रतं विश्वनिन्द्यतामापाद्यते। पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरां मा नामोन्मत्ता भवत। बकव्रतिनो मार्जारलिङ्गिनश्च ब्राह्मणा वर्णिता मनुस्मृतौ (४।९५-९६)।

उत्तरप्रदेशस्य विश्वविद्यालयानां समेषां कुलपतिरुत्तरप्रदेशस्य राज्यपालो महामहिमो वदति वीतरागाणां श्रद्धास्पदानां श्रीमतां करपात्रस्वामिनां समक्षं यदहमिच्छामि संस्कृतविश्वविद्यालयो विश्वस्य श्रेष्ठतमोऽद्भुतश्च विश्वविद्यालयः स्यादिति। अत्यद्भुतं भूतं यक्षं ब्रह्म जिज्ञासमाना च समादधाना चेयं दैवी वाक्। तस्या विश्वविद्यालयेन तादृशेनैव भवितव्यम्। एतदर्थं तैः श्रीमन्तः करपात्रस्वामिनः प्रार्थ्यन्ते यदत्रत्याश्छात्रा विचारे चरित्रे च यथा श्रेष्ठाः स्युस्तदर्थं भवद्भिः प्रयतनीयमिति। अपूर्णेयं प्रार्थनेति वयमनुभवामः। विश्वविद्यालये ह्यस्मिन् सन्ति केचन पीठाधीशाः। दलतन्त्रवादिभिर्यथा देशहितापेक्षया दलहिताय गौरवातिशयः प्रदीयते, तथैतेऽपि स्वार्थसाधनाय विनेयान् यथेच्छं विनियोजयन्तः स्वीयामर्थदासतामेव तान् शिक्षयन्ति। किमेतद् उचितम् ?

पूर्वमेते पीठाधीशा यथा स्युरनुशिष्टास्तथा कुलपतिना स्वयं प्रयतनीयम्, तदर्थमेव च मान्याः करपात्रस्वामिमहोदयाः प्रार्थनीयाः।

•

समालोचनार्हा भारतीया नैतिकता

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥ (४।१३८)

इत्युपदिशति गृहस्थधर्मप्रकरणे भगवान् मनुः । "न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्" इत्यंशं समर्थयन्निव प्रवर्तते महर्षेर्वाल्मीकेरेष श्लोको रावणाय मारीचेनोपदिष्टः—

सुलभाः पुरुषा राजन् ! सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥ इति । (३।३७।२)

महाभारत, उद्योग पर्व, विदुरनीति (३७.१५)

सभापर्वान्तर्गतद्यूतपर्वणि तु तस्यैतस्य श्लोकस्य विदुरेण दुर्योधनाय श्रावितस्यायं पाठो दृश्यते—

लभ्यते खलु पापीयान् नरो नु प्रियवागिह ।
अप्रियस्य हि पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥ (६४।१६)

पथ्यमिति च परिणामे हितमुच्यते। अत एव—"यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्" (१८।३७) इत्येवं सात्त्विकं सुखं व्याख्यातं श्रीमद्भगवद्गीतासु । परिणामे हितस्यास्य अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च कथं नाम दुर्लभो भवतीत्यस्य उदाहरणमुखेनैव नु निबद्धा अग्रेतनाः सप्त अध्याया महाभारते, यत्र शोचनीयाया भारतीयाया नैतिकतायाः स्वरूपं विस्फुरति । पश्यामस्तावत् ।

द्यूते युधिष्ठिरे जिते सति शकुनिराह—

अस्ति ते वै प्रिया राजन् ग्लह एकोऽपराजितः ।
पणस्व कृष्णां पाञ्चालीं तयाऽऽत्मानं पुनर्जय ॥ (६५।३२)

आत्मानं पुनर्जय दास्यान्मोचय । नो चेद् द्रौपदी वाऽस्मद्दासी भविष्यतीति शकुनेरत्राभिप्रायः । शकुनिना एवमुक्ते युधिष्ठिरः षड्भिः श्लोकैर्द्रौपदीं संवर्ण्य तया दीव्यामीत्याह—

एवमुक्ते तु वचने धर्मराजेन धीमता ।
धिग्धिगित्येव वृद्धानां सभ्यानां निसृता गिरः ॥
चुक्षुभे सा सभा राजन् ! राज्ञां संजज्ञिरे शुचः ।
भीष्मद्रोणकृपादीनां स्वेदश्च समजायत ॥

शिरो गृहीत्वा विदुरो गतसत्त्व इवाभवत् ।
आस्ते ध्यायन्नधोवक्त्रो निःश्वसन्निव पन्नगः ॥....

धृतराष्ट्रस्तु तं हृष्टः पर्यपृच्छत् पुनः पुनः ।
किं जितं किं जितमिति ह्याकारं नाभ्यरक्षत ॥

जहर्ष कर्णोऽतिभृशं सह दुःशासनादिभिः ।
इतरेषां तु सभ्यानां नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम् ॥ (६५।४०-४४)

अत्र वृद्धस्य धृतराष्ट्रस्य स्वाभिप्रायगोपनासामर्थ्यं विशेषतोऽवधेयं पाठकैः ।

द्रौपदी जिता शकुनिनेति ज्ञाते दुर्योधनो धाष्टर्यातिशयं प्रदर्शयन् विदुरं वदति—"एहि क्षत्तर्द्रौपदीमानयस्व प्रियां भार्यां सम्मतां पाण्डवानाम्" (६६।१)।

विदुरप्रत्युक्तिषु द्वौ श्लोकावत्र पठनार्हौ—

न किञ्चिदित्थं प्रवदन्ति पार्था वनेचरं वा गृहमेधिनं वा ।
तपस्विनं वा परिपूर्णविद्यं भषन्ति हैवं श्वनराः सदैव ॥

मज्जन्त्यलाबूनि शिलाः प्लवन्ते मुह्यन्ति नावोऽम्भसि शश्वदेव ।
मूढो राजा धृतराष्ट्रस्य पुत्रो न मे वाचः पथ्यरूपाः शृणोति ॥

"श्वनरास्तु दुर्वाक्यादन्यन्न किञ्चिद्वदन्ति । भषन्ति हैवं श्वनराः शुनकतुल्या नरा आपत्सु धीरानुद्दिश्य भषन्ति । धीरास्तु धीरत्वादेव तन्न गणयन्ति" इति, "हितमप्यहितवद् दुष्टानां भातीत्याश्चर्यम्" इति च नीलकण्ठः ।

तत एवं प्रवर्तते कथाप्रवाहः । अत्र रेखाङ्किता अंशा विशेषतोऽवधानार्हाः ।

वैशम्पायन उवाच

धिगस्तु क्षत्तारमिति ब्रुवाणो **दर्पेण मत्तो** धृतराष्ट्रस्य पुत्रः ।
अवैक्षत प्रातिकामीं सभायामुवाच चैनं **परमार्यमध्ये** ॥ (६७।१)

दुर्योधन उवाच

प्रातिकामिन् द्रौपदीमानयस्व न ते भयं विद्यते पाण्डवेभ्यः ।
क्षत्ता ह्ययं विवदत्येव भीतो न चास्माकं वृद्धिकामः सदैव ॥

क्षत्ता विदुरः । विवदति विपरीतं वदति ।

प्रातिकाम्युवाच

युधिष्ठिरो द्यूतमदेन मत्तो दुर्योधनो द्रौपदि त्वामजैषीत् ।
सा त्वं प्रपद्यस्व धृतराष्ट्रस्य वेश्म नयामि त्वां कर्मणे याज्ञसेनि ॥

द्रौपद्युवाच

गच्छ त्वं कितवं गत्वा सभायां पृच्छ सूतज।
किं नु पूर्वं पराजैषीरात्मानमथवा नु माम्॥ ७॥

कितवोऽत्र युधिष्ठिरः।

वैशम्पायन उवाच

युधिष्ठिरस्तु निश्चेता गतसत्त्व इवाभवत्।
न तं सूतं प्रत्युवाच वचनं साध्वसाधु वा॥ ११॥

दुर्योधन उवाच

इहैवागत्य पाञ्चाली प्रश्नमेनं प्रभाषताम्।
इहैव सर्वे शृण्वन्तु तस्याश्चैतस्य यद्वचः॥ १२॥

द्रौपद्युवाच

एवं नूनं व्यदधात् संविधाता स्पर्शावुभौ स्पृशतो वृद्धबालौ।
धर्मं त्वेकं परमं प्राह लोके स नः शमं धास्यति गोप्यमानः॥ १५॥

"संविधाता ईश्वरः। स्पर्शौ सुखदुःखौ। वृद्धबालौ पण्डितमूर्खौ। शमं स्वास्थ्यम्। धास्यति करिष्यति" इति नीलकण्ठः।

सोऽयं धर्मो मात्यगात् कौरवान् वै सभ्यान् गत्वा पृच्छ धर्म्यं वचो मे।
ते मां ब्रूयुर्निश्चितं तत्करिष्ये धर्मात्मानो नीतिमन्तो वरिष्ठाः॥ १६॥

श्रुत्वा सूतस्तद्वचो याज्ञसेन्याः सभां गत्वा प्राह वाक्यं तदानीम्।
अधोमुखास्ते न च किञ्चिदूचुर्निर्बन्धं तं धार्तराष्ट्रस्य बुद्ध्वा॥ १७॥

द्रौपदी सभायामानेतव्यैवेति दुर्योधनस्य दृढमाग्रहं ज्ञात्वा अधोमुखाः सभासदः सूतवाक्यस्य न किञ्चिदप्युत्तरं ददुः।

युधिष्ठिरस्तु तच्छ्रुत्वा दुर्योधनचिकीर्षितम्।
द्रौपद्याः सम्मतं दूतं प्राहिणोद् भरतर्षभ॥ १८॥

एकवस्त्रा त्वधोनीवी रोदमाना रजस्वला।
सभामागत्य पाञ्चालि श्वसुरस्याग्रतो भव॥ १९॥

अथ त्वामागतां दृष्ट्वा राजपुत्रीं सभां तदा।
सभ्याः सर्वे विनिन्देरन् मनोभिर्धृतराष्ट्रजम्॥ २०॥

सर्वे सभ्या दुर्योधनं मनोभिर्विनिन्देरन्नित्यनेन तत्र दुर्योधनस्य आतङ्कातिशयो द्योत्यते।

ततस्त्वेषां मुखमालोक्य राजा दुर्योधनः सूतमुवाच हृष्टः।
इहैवैतामानय प्रातिकामिन् प्रत्यक्षमस्याः कुरवो वदन्तु ॥ २३ ॥

एषां पाण्डवानामन्येषां सभ्यानां च।

ततः सूतस्तस्य वशानुगामी भीतश्च कोपाद् द्रुपदात्मजायाः।
विहाय मानं पुनरेव सभ्यानुवाच कृष्णां किमहं ब्रवीमि ॥ २४ ॥

"मानं दुर्योधनस्य आज्ञाभङ्गेन तस्य श्रेष्ठत्वं विहाय तिरस्कृत्य" इति नीलकण्ठः।

दुर्योधन उवाच

दुःशासनैष मम सूतपुत्रो वृकोदरादुद्विजतेऽल्पचेताः।
स्वयं प्रगृह्यानय याज्ञसेनीं किं ते करिष्यन्त्यवशाः सपत्नाः ॥ २५ ॥

अवशाः, अस्मद्दासत्वात्।

ततः समुत्थाय सुदुर्मनाः सा विवर्णमामृज्य मुखं करेण।
आर्ता प्रदुद्राव यतः स्त्रियस्ता वृद्धस्य राज्ञः कुरुपुङ्गवस्य ॥२८॥

ततो जवेनाभिससार रोषाद् दुःशासनस्तामभिगर्जमानः।
दीर्घेषु नीलेष्वथ चोर्मिमत्सु जग्राह केशेषु नरेन्द्रपत्नीम् ॥२९॥

सा कृष्यमाणा नमिताङ्गयष्टिः शनैरुवाचाथ रजस्वलाऽस्मि।
एकं च वासो मम मन्दबुद्धे सभां नेतुं नार्हसि मामनार्य ॥३२॥

दुःशासन उवाच

रजस्वला वा भव याज्ञसेनि एकाम्बरा वाऽप्यथवा **विवस्त्रा**।
द्यूते जिता चासि कृतासि दासी दासीषु वासश्च यथोपजोषम् ॥३४॥

यथोपजोषं यथारुचि, स्वामिने यथा रोचते।

द्रौपद्युवाच

इमे सभायामुपनीतशास्त्राः क्रियावन्तः सर्व एवेन्द्रकल्पाः।
गुरुस्थाना गुरवश्चैव सर्वे तेषामग्रे नोत्सहे स्थातुमेवम् ॥३६॥

धर्मे स्थितो धर्मसुतो महात्मा धर्मश्च सूक्ष्मो निपुणोपलक्ष्यः।
वाचापि भर्तुः परमाणुमात्रमिच्छामि दोषं न गुणान् विसृज्य ॥३८॥

निपुणोपलक्ष्यः सूक्ष्मबुद्धिमद्भिरेव ज्ञेयः।

इदं त्वकार्यं कुरुवीरमध्ये रजस्वलां यत् परिकर्षसे माम्।
न चापि कश्चित् कुरुतेऽत्र कुत्सां ध्रुवं तवेदं मतमभ्युपेतः ॥३९॥

कुत्सां न कुरुते, किन्तु सर्वोऽपि जनस्त्वदीयं मतमभ्युपेतः।

धिगस्तु नष्टः खलु भारतानां धर्मस्तथा क्षत्रविदां च वृत्तम्।
यत्र ह्यतीतां कुरुधर्मवेलां प्रेक्षन्ति सर्वे कुरवः सभायाम् ॥४०॥
द्रोणस्य भीष्मस्य च नास्ति सत्त्वं क्षत्तुस्तथैवास्य महात्मनोऽपि।
राज्ञस्तथा हीममधर्ममुग्रं न लक्षयन्ते कुरुवृद्धमुख्याः ॥४१॥

राज्ञो धृतराष्ट्रस्य।

वैशम्पायन उवाच

दुःशासनश्चापि समीक्ष्य कृष्णामवेक्षमाणां कृपणान् पतींस्तान्।
आधूय वेगेन विसंज्ञकल्पामुवाच दासोति हसन् सशब्दम् ॥४४॥
कर्णस्तु तद्वाक्यमतीव हृष्टः संपूजयामास हसन् सशब्दम्।
गान्धारराजः सुबलस्य पुत्रस्तथैव दुःशासनमभ्यनन्दत् ॥४५॥
सभ्यास्तु ये तत्र बभूवुरन्ये ताभ्यामृते धार्तराष्ट्रेण चैव।
तेषामभूद् दुःखमतीव कृष्णां दृष्ट्वा सभायां परिकृष्यमाणाम् ॥४६॥

अस्यां दुःस्थितौ किमाह तत्रभवान् भीष्मपितामह इत्यधुना पाठकैः समालोचनीयम्—

भीष्म उवाच

न धर्मसौक्ष्म्यात् सुभगे विवेक्तुं शक्नोमि ते प्रश्नमिमं यथावत्।
अस्वाम्यशक्तः पणितुं परस्वं स्त्रियाश्च भर्तुर्वशतां समीक्ष्य ॥४७॥

भर्तुर्वशतां दासभार्यापि दास्येवेति भावः।

त्यजेत सर्वां पृथिवीं समृद्धां युधिष्ठिरो धर्ममथो न जह्यात्।
उक्तं जितोऽस्मीति च पाण्डवेन तस्मान्न शक्नोमि विवेक्तुमेतत् ॥४८॥
द्यूतेऽद्वितीयः शकुनिर्नरेषु कुन्तीसुतस्तेन निसृष्टकामः।
न मन्यते तां निकृतिं युधिष्ठिरस्तस्मान्न ते प्रश्नमिमं ब्रवीमि ॥४९॥

अत्र "स्त्रियाश्च भर्तुर्वशतां समीक्ष्य" इत्यस्य दासभार्यापि दास्येवेत्यर्थः। यथा व्याख्यातं नीलकण्ठेन। "उक्तं जितोऽस्मीति च पाण्डवेन" इत्यनेन युधि-

ष्ठिरेण स्वीयं दास्यभावमङ्गीकुर्वता द्रौपद्या अपि दासीत्वमङ्गीकृतम्, "न मन्यते तां निकृतिम्" इत्येतेषां पदानां च युधिष्ठिरेणैवान्वयः स्वारसिकः, तथापि भीष्मपितामहकृतमन्यायसमर्थनं नातीव समञ्जसमिति विचार्यैव टीकाकारेण नीलकण्ठेन एतौ द्वौ श्लोकावित्थं व्याख्यातौ—"जितोऽस्मीति वदताऽऽत्मैव पराजितो न तु स्त्री। न च राजजयेनैव त्वज्जयः सिद्ध्यति, द्यूतमर्यादाविदा शकुनिनैव तव पृथक्पणीकरणादित्याह—द्यूत इति। राजा तु पराज्ञया त्वां पणीकृतवानिति राज्ञोऽपि दोषो नास्ति। तथा च शकुनिबुद्ध्यैव त्वमजिता, तच्च शकुनिर्न मन्यत इत्याह—नेति। यतः पणीकृता, अतोऽजिता। यतश्चापरदासेन पणीकृता, ततोऽप्यजितैवेति भावः" इति। अत्र स्थलद्वयमसंबद्धमिव प्रतीयते। अन्तिमो निष्कर्षश्च टीकाकारस्य स्वकीयोऽभिप्रायः, न तु भीष्मवाक्यानामाशयः, द्रौपदीविकर्ण-विदुरादीनां वचनानामग्रेतनानामप्रसरप्रसङ्गात्। अस्तु। भीष्मपितामहप्रत्युत्तरेणासन्तुष्टा द्रौपदी पुनः पृच्छति कौरवसभाम्—

आहूय राजाऽकुशलैरनार्यैर्दुष्टात्मभिर्नैकृतिकैः सभायाम्।
द्यूतप्रियैर्नातिकृतप्रयत्नः कस्मादयं नाम निसृष्टकामः ॥५०॥
अशुद्धभावैर्निकृतिप्रवृत्तैरबुध्यमानः कुरुपाण्डवाग्र्यः।
सम्भूय सर्वैश्च जितोऽपि यस्मात् पश्चादयं कैतवमभ्युपेतः ॥५१॥

"आत्मपराजयावसानत्वाद् द्यूतस्य। कथं ततोऽप्युपरि देवितवान्" इति नीलकण्ठः।

तिष्ठन्ति चेमे कुरवः सभायामीशाः सुतानां च तथा स्नुषाणाम्।
समीक्ष्य सर्वे मम चापि वाक्यं विब्रूत मे प्रश्नमिमं यथावत् ॥५२॥

"विब्रूत विस्पष्टं ब्रूत, न तु भीष्मवत् संदिग्धमिति भावः" इति नीलकण्ठः। अत्र 'अपि'शब्देन भीष्मवाक्यानां परिग्रहः। भीष्मवाक्यं मम वाक्यं च समीक्ष्य विस्पष्टं ब्रूत, कस्य कथनमुचितमिति।

वैशम्पायन उवाच

अथ तान् दुःखितान् दृष्ट्वा पाण्डवान् धृतराष्ट्रजः।
कृष्यमाणां च पाञ्चालीं विकर्ण इदमब्रवीत् ॥ (६८।११)
याज्ञसेन्या यदुक्तं तद् वाक्यं विब्रूत पार्थिवाः।
अविवेकेन वाक्यस्य नरकः सद्यः एव नः ॥१२॥
भीष्मश्च धृतराष्ट्रश्च कुरुवृद्धतमावुभौ।
समेत्य नाहतुः किञ्चिद् विदुरश्च महामतिः ॥१३॥

भारद्वाजश्च सर्वेषामाचार्यः कृप एव च।
कुत एतावपि प्रश्नं नाहतुर्द्विजसत्तमौ ॥१४॥

ये त्वन्ये पृथिवीपालाः समेताः सर्वतोदिशम्।
कामक्रोधौ समुत्सृज्य ते ब्रुवन्तु यथामति ॥१५॥

सर्वतोदिशं सर्वदेशीयाः, अस्य 'पृथिवीपालाः' इत्यनेनान्वयः। कामक्रोध-पदावत्र रागद्वेषसूचकौ।

यदिदं द्रौपदी वाक्यमुक्तवत्यसकृच्छुभा।
विमृश्य कस्य कः पक्षः पार्थिवा वदतोत्तरम् ॥१६॥

एवं स बहुशः सर्वानुक्तवांस्तान् सभासदः।
न च ते पृथिवीपालास्तमूचुः साध्वसाधु वा ॥१७॥

उक्त्वाऽसकृत्तथा सर्वान् विकर्णः पृथिवीपतीन्।
पाणौ पाणिं विनिष्पिष्य निःश्वसन्निदमब्रवीत् ॥ १८ ॥

विब्रूत पृथिवीपाला वाक्यं मा वा कथञ्चन।
मन्ये न्याय्यं यदत्राहं तद्धि वक्ष्यामि कौरवाः ॥ १९ ॥

चत्वार्याहुर्नरश्रेष्ठा व्यसनानि महीक्षिताम्।
मृगयां पानमक्षांश्च ग्राम्ये चैवातिरक्तताम् ॥ २० ॥

एतेषु हि नरः सक्तो धर्ममुत्सृज्य वर्तते।
यथाऽयुक्तेन च कृतां क्रियां लोको न मन्यते ॥ २१ ॥

तदयं पाण्डुपुत्रेण व्यसने वर्तता भृशम्।
समाहूतेन कितवैरास्थितो द्रौपदीपणः ॥ २२ ॥

साधारणी च सर्वेषां पाण्डवानामनिन्दिता।
जितेन पूर्वं चानेन पाण्डवेन कृतः पणः ॥ २३ ॥

इयं च कीर्तिता कृष्णा सौबलेन पणार्थिना।
एतत्सर्वं विचार्याहं मन्ये न विजितामिमाम् ॥ २४ ॥

"एतत्सर्वं राज्ञो व्यसनित्वं जितत्वं परप्रवर्तितत्वं द्रौपद्याः साधारणत्वं चेति हेतुचतुष्टयम्" इति नीलकण्ठः।

एतच्छ्रुत्वा महान् नादः सभ्यानामुदतिष्ठत।
विकर्णं शंसमानानां सौबलं चापि निन्दताम् ॥ २५ ॥
तस्मिन्नुपरते शब्दे राधेयः क्रोधमूर्च्छितः।
प्रगृह्य रुचिरं बाहुमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥

कर्ण उवाच

दृश्यन्ते वै विकर्णेह वैकृतानि बहून्यपि ।
तज्जातस्तद्विनाशाय यथाग्निररणिप्रजः ॥ २७ ॥

एते न किञ्चिदप्याहुश्चोदिता ह्यपि कृष्णया ।
धर्मेण विजितामेनां मन्यन्ते द्रुपदात्मजाम् ॥ २८ ॥

त्वं तु केवलबाल्येन धार्तराष्ट्र विदीर्यसे ।
यद् ब्रवीषि सभामध्ये बालः स्थविरभाषितम् ॥ २९ ॥

न च धर्मं यथावत् त्वं वेत्सि दुर्योधनावर ।
यद् ब्रवीषि जितां कृष्णां न जितेति सुमन्दधीः ॥ ३० ॥

मन्यसे वा सभामेतामानीतामेकवाससम् ।
अधर्मेणेति तत्रापि शृणु मे वाक्यमुत्तमम् ॥ ३४ ॥

एको भर्ता स्त्रिया देवैर्विहितः कुरुनन्दन ।
इयं त्वनेकवशगा बन्धकीति विनिश्चिता ॥ ३५ ॥

दुःशासन सुबालोऽयं विकर्णः प्राज्ञवादिकः ।
पाण्डवानां च वासांसि द्रौपद्याश्चाप्युपाहर ॥ ३८ ॥

तच्छ्रुत्वा पाण्डवाः सर्वे स्वानि वासांसि भारत ।
अवकीर्योत्तरीयाणि सभायां समुपाविशन् ॥ ३९ ॥

ततो दुःशासनो राजन् द्रौपद्या वसनं बलात् ।
सभामध्ये समाक्षिप्य व्यपाक्रष्टुं प्रचक्रमे ॥ ४० ॥

वैशम्पायन उवाच

आकृष्यमाणे वसने द्रौपद्या चिन्तितो हरिः ।

असहाया सती अन्यत् किं कुर्यात् ?

यदा तु वाससां राशिः सभामध्ये समाचितः ।
ततो दुःशासनः श्रान्तो व्रीडितः समुपाविशत् ॥ ५५ ॥

धिक्शब्दस्तु ततस्तत्र समभूल्लोमहर्षणः ।
सभ्यानां नरदेवानां दृष्ट्वा कुन्तीसुतांस्तथा ॥ ५६ ॥

न विब्रुवन्ति कौरव्याः प्रश्नमेतमिति स्म ह ।
सुजनः क्रोशति स्मात्र धृतराष्ट्रं विगर्हयन् ॥ ५७ ॥

ततो बाहू समुत्क्षिप्य निवार्य च सभासदः।
विदुरः सर्वधर्मज्ञ इदं वचनमब्रवीत् ॥ ५८ ॥

विदुर उवाच

द्रौपदी प्रश्नमुक्त्वैवं रोरवीति ह्यनाथवत्।
न च विब्रूत तं प्रश्नं सभ्या धर्मोऽत्र पीड्यते ॥ ५९ ॥

सभां प्रपद्यते ह्यार्तः प्रज्वलन्निव हव्यवाट्।
तं वै सत्येन धर्मेण सभ्याः प्रशमयन्त्युत ॥ ६० ॥

"आर्तस्यात्राणेन सभ्यानां धर्मनाशोऽस्त्येव। यथोक्तम्—"न सभां प्रविशेत् प्राज्ञः सभ्यदोषाननुस्मरन्। अब्रुवन् विब्रुवन् वापि नरो भवति किल्विषी ॥" इति नीलकण्ठः। एष श्लोकः पाठान्तरेण सह मनुस्मृतौ (८।१३) समुपलभ्यते।

विकर्णेन यथाप्रज्ञमुक्तः प्रश्नो नराधिपाः।
भवन्तोऽपि हितं प्रश्नं विब्रुवन्तु यथामति ॥ ६२ ॥

यो हि प्रश्नं न विब्रूयाद् धर्मदर्शी सभां गतः।
अनृते या फलावाप्तिस्तस्याः सोऽर्धं समश्नुते ॥ ६३ ॥

यः पुनर्वितथं ब्रूयाद् धर्मदर्शी सभां गतः।
अनृतस्य फलं कृत्स्नं सम्प्राप्नोतीति निश्चयः ॥ ६४ ॥

जानन्नविब्रुवन् प्रश्नान् कामात् क्रोधाद् भयात्तथा।
सहस्रं वारुणान् पाशानात्मनि प्रतिमुञ्चति ॥ ७४ ॥

साक्षी वा विब्रुवन् साक्ष्यं गोकर्णशिथिलश्चवरन्।
सहस्रं वारुणान् पाशानात्मनि प्रतिमुञ्चति ॥ ७५ ॥

"गोकर्णशिथिल उभयपक्षस्पर्शी" इति नीलकण्ठः। "गोकर्णशिथिलः दोलायमानः। गोकर्णवत् शिथिलो नोच्चैर्न नीचैः स्पृशतीति" इति रत्नगर्भः।

विद्धो धर्मो ह्यधर्मेण सभां यत्रोपपद्यते।
न चास्य शल्यं कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः ॥ ७७ ॥

"स्वयं मिथ्यावादी सन् इतरं धर्मिष्ठं मिथ्यावादीति वदति, सोऽयमधर्मेण धर्मस्य वेधः। तत्र अवचनाद् मिथ्यावचनात् संदिग्धवचनाद्वा ये धर्मशल्यं न निकृन्तन्ति न छिन्दन्ति, त एव तेनाधर्मेण विद्धा भवन्ति" इति नीलकण्ठः। "अधर्मेण धर्मस्य त्रिविधो वेधः—संसदि अवचनात्, संशयवचनात्, मिथ्या-

वचनाच्चेति" इति रत्नगर्भः। श्लोकोऽयं पाठान्तरेण सह मनुस्मृतौ (८।१२) दृश्यते।

अर्धं हरति वै श्रेष्ठः पादो भवति कर्तृषु।
पादश्चैव सभासत्सु ये न निन्दन्ति निन्दितम्॥ ७८॥

अनैना भवति श्रेष्ठो मुच्यन्ते च सभासदः।
एनो गच्छति कर्तारं निन्दार्हो यत्र निन्द्यते॥ ७९॥

वैशम्पायन उवाच

विदुरस्य वचः श्रुत्वा नोचुः किञ्चन पार्थिवाः।
कर्णो दुःशासनं त्वाह कृष्णां दासीं गृहान् नय॥ ८९॥

तां वेपमानां सव्रीडां प्रलपन्तीं स्म पाण्डवान्।
दुःशासनः सभामध्ये विचकर्ष तपस्विनीम्॥ ९०॥

द्रौपद्युवाच

पुरस्तात् करणीयं मे न कृतं कार्यमुत्तरम्।
विह्वलास्मि कृतानेन कर्षता बलिना बलात्॥ (६९।१)

अभिवादं करोम्येषां कुरूणां कुरुसंसदि।
न मे स्यादपराधोऽयं यदिदं न कृतं मया॥

मृष्यन्ति कुरवश्चेमे मन्ये कालस्य पर्ययम्।
स्नुषां दुहितरं चैव क्लिश्यमानामनर्हतीम्॥७॥

किन्न्वतः कृपणं भूयो यदहं स्त्री सती शुभा।
सभामध्यं विगाहेऽद्य क्व नु धर्मो महीक्षिताम्॥८॥

धर्म्यां स्त्रियं सभां पूर्वे न नयन्तीति नः श्रुतम्।
स नष्टः कौरवेयेषु पूर्वो धर्मः सनातनः॥९॥

तामिमां धर्मराजस्य भार्यां सदृशवर्णजाम्।
ब्रूत दासीमदासीं वा तत् करिष्यामि कौरवाः॥११॥

अयं मां सुदृढं क्षुद्रः कौरवाणां यशोहरः।
क्लिश्नाति नाहं तत्सोढुं चिरं शक्ष्यामि कौरवाः॥ १२॥

जितां वाप्यजितां वापि मन्यध्वं मां यथा नृपाः।
तथा प्रत्युक्तमिच्छामि तत्करिष्यामि कौरवाः॥१३॥

भीष्म उवाच

उक्तवानस्मि कल्याणि धर्मस्य परमा गतिः।
लोके न शक्यते ज्ञातुमपि विज्ञैर्महात्मभिः ॥१४॥

बलवांश्च यथा धर्मं लोके पश्यति पूरुषः।
स धर्मो धर्मवेलायां भवत्यभिहतः परः ॥१५॥

"बलवान् कर्णदुर्योधनादिर्यद् ब्रूते स एव धर्मः। परन्तु दुर्बलेनोक्तोऽभिहितो धर्मोऽप्यधर्मो भवतीति भावः। अभिहितः परैरिति पाठे तु अधर्मवेलायामपि परैर्बलवद्भिरुक्त एव धर्मो भवति, न दुर्बलोक्त इत्यकारं प्रश्लिष्य योज्यम्" इति नीलकण्ठः।

न विवेक्तुं च ते प्रश्नमिमं शक्नोमि निश्चयात्।
सूक्ष्मत्वाद् गहनत्वाच्च कार्यस्यास्य च गौरवात् ॥१६॥

"ननु बलवत्तरस्त्वमेव सत्यं ब्रूहि—नेति। विवेक्तुं विविच्य वक्तुम्। अयमस्याशयः—यद्येतां जितासीति वक्ष्ये तदा न्यायं विना पीडितैषा सद्यः कोपेन कौरवान् नाशयेत्। तथा च द्रौपद्यपमानजो कुरुनाशजो वा दोषो महानिति संशये धर्मतत्त्वस्य सूक्ष्मत्वाद् दुर्विवेकत्वम्। देवकार्यमेव कौरवनाशेन भवतीत्यशक्यम्। सर्वेषां वध्यानामिह संप्रयोगाभावाद् गहनमिदम्। पाण्डवानामशस्त्रत्वात् परदासत्वाच्च। तत्स्वामिनां कौरवाणां नाशनं द्रौपद्या अपि दोषाय, स्वामिस्वामिनाशस्य सुतरामकार्यत्वादिति हेतुत्रयं विविच्याकथने" इति नीलकण्ठः। "पृथ्वीभारावतरणरूपस्य कार्यस्य सूक्ष्मबुद्धिविषयत्वात्" इति रत्नगर्भः।

नूनमन्तः कुलस्यायं भविता न चिरादिव।
तथाहि कुरवः सर्वे लोभमोहपरायणाः ॥१७॥

"ननु बलवत्कृतिरेव धर्मश्चेत् स्वधर्मेण बलवत्तराहमेतान् शापाग्निना धक्ष्य इत्याशङ्क्याह—नूनमिति। अवश्यम्भाविनि कार्ये न त्वया तपोव्ययः कर्तव्य इति भावः" इति नीलकण्ठः।

कुलेषु जाता कल्याणि व्यसनैराहता भृशम्।
धर्म्यान्मार्गान्न च्यवन्ते येषां नस्त्वं वधूः स्थिता ॥१८॥

उपपन्नं च पाञ्चालि तवेदं वृत्तमीदृशम्।
यत्कृच्छ्रमपि संप्राप्ता धर्ममेवान्ववेक्षसे ॥१९॥

एते द्रोणादयश्चैव वृद्धा धर्मविदो जनाः ।
शून्यैः शरीरैस्तिष्ठन्ति गतासव इवानताः ॥२०॥

युधिष्ठिरस्तु प्रश्नेऽस्मिन् प्रमाणमिति मे मतिः ।
अजितां वा जितां वेति स्वयं व्याहर्तुमर्हति ॥२१॥

अत्र भीष्मवचनव्याख्यानप्रसङ्गे कियानंशः परम्परायातः कियांश्च टीकाकाराणां स्वमनीषाप्रसूत इति प्राचीनानां टीकानामवलोकनेनैव ज्ञायेत। मान्याः पाठकाः ! भीष्मवाक्यान्यत्र मात्स्यन्यायमेवानुवदन्ति। पश्यन्तु भवन्तो भीष्मभणितिभिरेताभिरधर्मेण धर्मस्य वेधः संजातो न वेति ? द्रौपदी दासी संजाता न वेति प्रश्नोऽयं दूरे गच्छतु, भीष्मद्रोणकृपादिषु वन्दनीयेष्वस्मत्पूर्वजेषु समुपस्थितेषु द्रौपदी निर्वस्त्रा क्रियत इत्येष महानधर्मः कुरुसभायां प्रवृत्तो न वा ? किमत्र सूक्ष्मत्वं गहनत्वं कार्यस्य गौरवत्वं च ? अत्रैव व्याख्यानप्रसङ्गे विमलबोधेन समुद्धृत एष श्लोक एवात्र यथाकथञ्चित्समाधानं स्यात्—"साधु वा यदि वाऽसाधु कुर्वन् संसदि पार्थिवः। भृत्यैर्नैवानुयोक्तव्यो रहो वक्तव्य एव वा ॥" इति । किं तत्रभवतो भीष्मपितामहस्य कुरुसभायां भृत्यस्थानीयता समुचिता ? प्रकृतमनुसरामः—

वैशम्पायन उवाच

तथा तु दृष्ट्वा बहु तत्र देवीं रोरूयमाणां कुररीमिवार्ताम् ।
नोचुर्वचः साध्वथ वाप्यसाधु महीक्षितो धार्तराष्ट्रस्य भीताः । (७०।१)

साधुजनानामोदृशेन मौनेन दुर्जनाः कथं प्रबलायन्त इत्यत्रैव नैकवारं दृष्टम् । पुनरप्यवलोकनीयम्—

दृष्ट्वा तथा पार्थिवपुत्रपौत्रांस्तूष्णींभूतान् धृतराष्ट्रस्य पुत्रः ।
स्मयन्निवेदं वचनं बभाषे पाञ्चालराजस्य सुतां तदानीम् ॥२॥

तिष्ठत्वयं प्रश्न उदारसत्त्वे भीमेऽर्जुने सहदेवे तथैव ।
पत्यौ च ते नकुले याज्ञसेनि वदन्त्वेते वचनं त्वत्प्रसूतम् ॥३॥

अनीश्वरं विब्रुवन्त्वार्यमध्ये युधिष्ठिरं तव पाञ्चालि हेतोः ।
कुर्वन्तु सर्वे चानृतं धर्मराजं पाञ्चालि त्वं मोक्ष्यसे दास्यभावात् ॥४॥

धर्मे स्थितो धर्मसुतो महात्मा स्वयं चेदं कथयत्विन्द्रकल्पः ।
ईशो वा ते ह्यनीशोऽथवैष वाक्यादस्य क्षिप्रमेकं भजस्व ॥५॥

सर्वे हीमे कौरवेयाः सभायां दुःखान्तरे वर्तमानास्तवैव।
न विब्रुवन्त्यार्यसत्त्वा यथावत् पतींश्च ते समवेक्ष्याल्पभाग्यान् ॥६॥

स्मयातिरेकप्रसूतानि व्यङ्ग्योक्तिभरितानि गर्वोन्मत्तस्य दुर्योधनस्य वचनानीमान्याकर्ण्य नपुंसकप्रायायां तस्यां कौरवसभायां किं वृत्तमित्यधुना श्रोतव्यं श्रीमद्भिः—

ततः सभ्याः कुरुराजस्य तस्य वाक्यं सर्वे प्रशशंसुस्तथोच्चैः।
चेलावेधांश्चापि चक्रुर्नदन्तो ह्या हेत्यासीदपि चैवार्तनादः ॥७॥

चेलावेधान् वस्त्रभ्रामणानीति प्राचामेवार्थोऽत्र नीलकण्ठधृतः शोभनः।

श्रुत्वा तु तद्वाक्यमनोहरं तद्धर्षश्चासीत् कौरवाणां सभायाम्।
सर्वे चासन् पार्थिवाः प्रीतिमन्तः कुरुश्रेष्ठं धार्मिकं पूजयन्तः ॥८॥

अत्र "कुरुश्रेष्ठं धार्मिकं पूजयन्तः" इत्यतोऽधिकं किं नाम मानवतायाः पतनं स्यात्? किमाधुनिकान् दुर्योधनानपि तदनुयायिनस्तथैव साम्प्रतमपि न पूजयन्ति?

तदनु गर्वोन्मत्त ऐश्वर्यमदमोहितः स दुर्योधनः किं चकारेत्यधुना शृण्वन्तु तत्रभवन्तः—

युधिष्ठिरमुवाचेदं तूष्णीभूतमचेतनम् ॥ (७१।८)
भीमार्जुनौ यमौ चैव स्थितौ ते नृप शासने।
प्रश्नं ब्रूहि च कृष्णां त्वमजितां यदि मन्यसे ॥९॥

एवमुक्त्वा तु कौन्तेयमपोह्य **वसनं स्वकम्**।
स्मयन्निवेक्ष्य पाञ्चालीमैश्वर्यमदमोहितः ॥१०॥

अभ्युत्स्मयित्वा राधेयं भीममाधर्षयन्निव।
द्रौपद्या प्रेक्षमाणायाः **सव्यमूरुमदर्शयत्** ॥१२॥

हा नैतिकते! क्वासि। मन्ये निष्प्राणाः पाषाणमूर्तयो भीष्मादयो नैनं पाशवं व्यवहारं ददृशुः।

विदुर उवाच

परं भयं पश्यत भीमसेनात्तद् बुध्यध्वं पार्थिवाः प्रातिपेयाः।
दैवेरितो नूनमयं पुरस्तात् परोऽनयो भारतेषूदपादि ॥६॥

अतिद्यूतं कृतमिदं धार्तराष्ट्रा यस्मात् स्त्रियं विवदध्वं सभायाम् ।
योगक्षेमौ नश्यतो वः समग्रौ पापान् मन्त्रान् कुरवो मन्त्रयन्ति ॥१७॥

अतिद्यूतं पणितद्रव्यमर्यादामतिक्रान्तम् ।

इमं धर्मं कुरवो जानताशु ध्वस्ते धर्मे परिषत् संप्रदुष्येत् ।
इमां चेत्पूर्वं कितवोऽग्लहिष्यदीशो भविष्यदपराजितात्मा ॥१८॥

स्वप्ने यथैतद्विजितं धनं स्यादेवं मन्ये यस्य दीव्यत्यनीशः ।
गान्धारराजस्य वचो निशम्य धर्मादस्मात् कुरवो माऽपयात॥१९॥

"यस्य येन धनेनानीशो दीव्यति तत्स्वप्ने यथा धनमाभासजितम्, तद्वदित्यर्थः। "यस्यैते तस्य तद्धनम्" इति स्मृतिस्तु दासभावेऽर्जितं धनं स्वामिगामीत्याह, न तु ततः प्राक्तनमपीति" इति नीलकण्ठः ।

दुर्योधन उवाच

भीमस्य वाक्ये तद्वदेवार्जुनस्य स्थितोऽहं वै यमयोश्चैवमेव ।
युधिष्ठिरं ते प्रवदन्त्वनीशं यथा दास्यान्मोक्ष्यसे याज्ञसेनि ॥२०॥

अर्जुन उवाच

ईशो राजा पूर्वमासीद् ग्लहे नः कुन्तीसुतो धर्मराजो महात्मा ।
ईशस्त्वयं कस्य पराजितात्मा तज्जानीध्वं कुरवः सर्व एव ॥२१॥

वैशम्पायन उवाच

ततो राज्ञो धृतराष्ट्रस्य गेहे गोमायुरुच्चैर्व्याहरदग्निहोत्रे ।
तं रासभाः प्रत्यभाषन्त राजन् समन्ततः पक्षिणश्चैव रौद्राः ॥२२॥

तं वै शब्दं विदुरस्तत्त्ववेदी शुश्राव घोरं सुबलात्मजा च ।
भीष्मो द्रोणो गौतमश्चापि विद्वान् स्वस्तीत्यपि चैवाहुरुच्चैः ॥२३॥

ततो गान्धारी विदुरश्चापि विद्वांस्तमुत्पातं घोरमालक्ष्य राज्ञे ।
निवेदयामासतुरार्तवत् तदा ततो राजा वाक्यमिदं बभाषे ॥२४॥

धृतराष्ट्र उवाच

हतोऽसि दुर्योधन मन्दबुद्धे यस्त्वं सभायां कुरुपुङ्गवानाम् ।
स्त्रियं समाभाषसि दुर्विनीत विशेषतो द्रौपदीं धर्मपत्नीम् ॥२५॥

एवमुक्त्वा धृतराष्ट्रो मनीषी हितान्वेषी बान्धवानामपायात् ।
कृष्णां पाञ्चालीमब्रवीत् सान्त्वपूर्वं विमृश्यैतत्प्रज्ञया तत्त्वबुद्धिः॥२६॥

वरं वृणीष्व पाञ्चालि मत्तो यदभिवाञ्छसि ।
वधूनां हि विशिष्टा मे त्वं धर्मपरमा सती ॥२७॥

द्रौपद्युवाच

ददासि चेद् वरं मह्यं वृणोमि भरतर्षभ ।
सर्वधर्मानुगः श्रीमानदासोऽस्तु युधिष्ठिरः ॥२८॥

धृतराष्ट्र उवाच

एवं भवतु कल्याणि यथा त्वमभिभाषसे ।
द्वितीयं ते वरं भद्रे ददानि वरयस्व ह ।
मनो हि मे वितरति नैकं त्वं वरमर्हसि ॥३१॥

द्रौपद्युवाच

सरथौ सधनुष्कौ च भीमसेनधनञ्जयौ ।
यमौ च वरये राजन्नदासान् स्ववशानहम् ॥३२॥

धृतराष्ट्र उवाच

तथास्तु ते महाभागे यथा त्वं नन्दिनीच्छसि ।
तृतीयं वरयास्मत्तो नासि द्वाभ्यां सुसंस्कृता ।
त्वं हि सर्वस्नुषाणां मे श्रेयसी धर्मचारिणी ॥३३॥

द्रौपद्युवाच

लोभो धर्मस्य नाशाय भगवन्नाहमुत्सहे ।
अनर्हा वरमादातुं तृतीयं राजसत्तम ॥३४॥

पापीयांस इमे भूत्वा संतीर्णाः पतयो मम ।
वेत्स्यन्ति चैव भद्राणि राजन् पुण्येन कर्मणा ॥३६॥

समालोचनार्हमेतद् यदत्र भीष्मपितामहः किमर्थं विदुरेण प्रतिपादितं धर्मवेधं पश्यन्नपि न पश्यति । "युधिष्ठिरस्तु प्रश्नेऽस्मिन् प्रमाणमिति मे मतिः" (६९।२१) इति वदन् स क्षते क्षारमिव नाचरति किम् ? कुरुवृद्धमुख्यैर्द्रोण-कृपादिभिश्च गतासुभिरिव शून्यशरीरैः कथं नामायमुदग्रोऽधर्मो न लक्षितः ? कथं कौरवसभायां समुपस्थिताः सभ्या दुर्योधनं धार्मिकं मन्यन्ते, प्रशंसन्ति

तम्, तद्वचनेन च संजातहर्षा वस्त्रखण्डान् भ्रामयन्ति ? यो हि ग्राम्यजन इव स्मयन्नपोह्य वसनं स्वकं सव्यमूरुं दर्शयति दुःखितां द्रौपदीम्। किमेतदेवो-दाहरणं भारतीयाया नैतिकतायाः ? तदाप्रभृत्येव चिरप्ररूढोऽयं महान् दोषो भारतीयेषु यत्ते सति समयेऽन्यायं प्रतीकर्तुं नैव चेष्टन्ते, गुणदोषविवेकं च यथातथं नैव कुर्वन्ति। अत एव प्रतिबोधितं केनापि सूक्तिकारेण—

नीरक्षीरविवेके हंसाऽऽलस्यं त्वमेव तनुषे चेत्।
विश्वस्मिन्नधुनाऽन्यः कुलव्रतं पालयिष्यति कः॥

भीमसेनस्य हृदयहारिणं पद्यमेकं समुद्धृत्य समालोच्य च परिसमाप्यते निबन्धोऽयम्। इदं तावत् तत् पद्यम्—

भवन्ति गेहे बन्धक्यः कितवानां युधिष्ठिर।
न ताभिरुत दीव्यन्ति दया चैवास्ति तास्वपि॥(६८।१)॥

गुणदोषविवेकाभावेन अनेन पीडिताः साधवो विमनायन्ते, प्रबलायन्ते च पण्डितमानिनो दुर्जनाः। भारतीयया आध्यात्मिक्या दृष्ट्या शून्यप्राये साम्प्रतिक-पाश्चात्त्यभौतिकसंस्कृतिप्रतिनिधिभूते 'अमेरिका'-देशे 'वाटरगेट'-काण्डेन सर्व-शक्तिसम्पन्नस्तत्रत्यो राष्ट्रपतिः सिंहासनाच्च्यावितः। किमेतद् भारते वर्षे संभाव्यते ? भारतीयाः पत्रकाराः "रामाय स्वस्ति रावणाय स्वस्ति" इत्या-भाणकं चरितार्थयन्तः स्वप्रभूणामेव मनांसि समनुरञ्जयन्ति। अत्रत्यानां विश्व-विद्यालयानामुपकुलपतयो दलतन्त्रवादिना राजनीतिज्ञेन, अर्थलोलुपता-संकीर्णता-प्रवञ्चकतादिविगुणग्रामकवलितेन केनचिद्वर्गप्रभुणा वा संचालिताः काष्ठपुत्त-लिकावदाचरन्ति। तामिमां सूत्रचालिकामनङ्गीकुर्वन्तो गुणदोषविवेकक्षमाश्च नैव दृश्यन्ते ते। संमान्याः श्रीमन्तो विनोवाभावेमहोदया भारतस्य प्रधानामात्यं (तदानीन्तनं) श्रीजयप्रकाशनारायणं च यदा सहैव स्वीयैराशीर्वादैः सभाज-यन्ति, तदा स्मारयन्ति ते भीष्मपितामहचरितमुपरि वर्णितम्। ते हि उभयो-रनयोर्गुणदोषविवेकं कर्तुं क्षमा इत्यत्र न कस्यापि विमतिः स्यात्। किमर्थं न कुर्वन्ति, भीष्मपितामहेन वा किमिति न कृतमित्येष प्रश्नोऽसमाहितोऽद्यापि।

वचनस्यास्य वक्ता भीमसेनो द्रोणपर्वणि संजयमुखेन वदति—

पुत्राणां तव सर्वेषां निहतानां वृकोदरः।
शोचत्यतिभृशं दुःखाद् विकर्णं पाण्डवप्रियम्॥

प्रतिज्ञेयं मया वृत्ता निहन्तव्यास्तु संयुगे।
विकर्ण तेनासि हतः प्रतिज्ञा रक्षिता मया॥ (१३७।३१-३२)

भीमसेनेन हि—

धार्तराष्ट्रान् रणे हत्वा मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
शमं गन्तास्मि न चिरात् सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ (सभा० ७७।२२)

इत्येषा प्रतिज्ञा पुरस्तात् (६८ तमेऽध्याये) समुद्धृतेभ्यो विकर्णवचनेभ्यः परस्तात् (७७ तमेऽध्याये) कृता । प्रतिज्ञेयं विकर्णं विहाय कर्तव्याऽऽसीदित्येवौचितीमनुभजते । यथाकथञ्चित्कृतायामपि तस्यां कृतज्ञतानुपालनाय विकर्णः सुतरां रक्षितव्य एवासीदिति सहृदयाः सुधिय एवात्र प्रमाणम् ।

अन्ते च सुभाषितमेतत् श्राव्यते श्रीमद्भ्यः—

विप्रास्मिन् नगरे महान् कथय कस्तालद्रुमाणां गणः
को दाता रजको ददाति वसनं प्रातर्गृहीत्वा निशि ।
को दक्षः परवित्तदारहरणे सर्वोऽपि दक्षो जनः
कस्माज्जीवसि हे सखे विषकृमिन्यायेन जीवाम्यहम् ॥



परमशैवः कालिदासः

को नाम मनीषी न स्मरति महाकवेः कालिदासस्य प्रथिततमं "वागर्थाविव संपृक्तौ" इत्यमुं पद्यम्। अत्र भगवन्तौ पार्वतीपरमेश्वरौ वागर्थाविव संपृक्तत्वेन स्तुतौ। वागर्थात्मकषडध्वशोधनमुखेनैव परां निर्वृतिमामनन्ति शिवभागवताः। "या सृष्टिः स्रष्टुराद्या" इत्यस्मिन्नभिज्ञानशाकुन्तलाद्यपद्येऽष्टमूर्तिः शिवो महाकविना स्तुतः। स एव पूर्वमेघेऽष्टसु श्लोकेषु (३०-३७) उज्जयिनीमुपवर्णयन् चतुर्षु श्लोकेषु (३३-३६) महाकालनाथं शिवं समुपवर्णयति। यशस्तिलकानुशीलनकारो डॉ० कृष्णकान्तहाण्डीकीमहोदयस्तदिदं मालवप्रदेशे शिवपूजायाः प्राचीनतमं निदर्शनं संमनुते (पृ० ४७२)। शिवपूजायाः प्राचीनतां प्रतिपादयन्नपि स न स्मृतवान् रघुवंशस्थमिदं पद्यम्—

अथ रोधसि दक्षिणोदधेः श्रितगोकर्णनिकेतमीश्वरम्।
उपवीणयितुं ययौ रवेरुदयावृत्तिपथेन नारदः॥ (८।३२)

महर्षिर्नारदो यं गोकर्णस्थानाधिपतिं शिवमुपवीणयितुं जगाम कदाचित्, तमेवाराधयितुं पङ्क्तीनामासां लेखक इतोऽष्टवर्षपूर्वं गत आसीत्, "मदीयाऽध्ययनयात्रा" इत्यत्र च तदुपवर्णितम्। अवधेयमेतदत्र यद् भगवतो नयपालनिकेतनस्य यजमानमूर्तेः पशुपतिनाथस्यार्चका गोकर्णाभिजना एव जना भवन्तीति। यद्यपि द्वादशज्योतिर्लिङ्गेषु शिवस्याष्टमूर्तिषु च नास्य स्थानस्य परिगणनम्, तथापि कालिदासप्रामाण्येन प्राचीनताऽस्य स्थानस्य महत्त्वं च सिद्ध्यति। एवं नानारूपं नानास्थानेषु कृतनिकेतनं शिवं विक्रमोर्वशीयमालविकाग्निमित्रादिष्वपि स्तुवन् महाकविः कालिदासो निश्चप्रचं परमशैव इत्यत्र नास्ति संशीतिलेशोऽपि।

●

एकनीडतासम्पादिनी विश्वाहन्ता

अस्ति किल कवीन्द्ररवीन्द्रस्थापितः शान्तिनिकेतनस्थो विश्वभारती-नाम विश्वविद्यालयः। प्रकाशिता भवति ततो विश्वभारती त्रैमासिकी पत्रिका आङ्गलभाषामयी। तस्यामिमानि शाश्वतवाक्यानि दरीदृश्यन्ते—"अथेयं विश्वभारती। यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्। प्रयोजनम् अस्याः समासतो व्याख्या-स्यामः। एष नः प्रत्ययः—सत्यं ह्येकम्। पन्थाः पुनरस्य नैकः। विचित्रैरेव हि पथिभिः पुरुषा नैकदेशवासिन एकं तीर्थमुपसर्पन्ति—इति हि विज्ञायते। प्राची च प्रतीची चेति द्वे धारे विद्यायाः। द्वाभ्यामप्येताभ्याम् उपलब्धव्यमैक्यं सत्यस्याखिललोकाश्रयभूतस्य—इति नः संकल्पः। एतस्यैव ऐक्यस्य उपलब्धिः परमो लाभः, परमा शान्तिः, परमं च कल्याणं पुरुषस्य—इति हि वयं विजानीमः। सेयमुपासनीया नो विश्वभारती विविधदेशग्रथिताभिर्विचित्र-विद्याकुसुममालिकाभिरिति हि प्राच्याश्च प्रतीच्याश्चेति सर्वेऽप्युपासकाः सादरमाहूयन्ते" इति।

विश्वाहन्ता नाम विश्वस्मिन् ब्रह्मादिस्थावरान्ते निखिलेऽपि जगति अहन्ताया अहमेव सर्वमिति सार्वात्म्यभावनायाः साक्षात्कारः। पूर्णाहन्ता-पदेनापि साऽभिधीयते। सर्वं सर्वात्मकमिति हि साधयामासुः सोमानन्दपादाः शिवदृष्टौ। तदिदं प्रत्यभिज्ञादर्शनं काश्मीराणां तान्त्रिकाणाम्। तेन हि प्रत्यभि-जानाति साधकः स्वात्मनः सार्वात्म्यम्। तदिदं जीवातुभूतम् अरविन्ददर्शनस्य। तान्त्रिकदर्शनसंस्कृतीभ्यामनुप्राणिता वङ्गभूमिः। तत्र प्रतिष्ठितेयं विश्वभारती। प्राच्याश्च प्रतीच्याश्च मनीषिणस्तया सादरमाहूयन्ते विश्वस्य एकनीडतायै।

बहुधा ह्यागमैर्भिन्नाः पन्थानः सिद्धिहेतवः।
त्वय्येव निपतन्त्योघा जाह्नवीया इवार्णवे॥

इत्याह तत्रभवान् महाकविः कालिदासः। महिम्नस्तुतिकारः श्रीमान् पुष्पदन्तोऽप्यनयैव भङ्ग्या भणति—

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥ इति।

बादरायणप्रणीतेषु ब्रह्मसूत्रेषु प्रथमे समन्वयाध्याये सर्वासां श्रुतीनां समन्वयः साध्यते। भगवद्गीता कृतान्तपञ्चकसमन्वयमातनोति। प्रपञ्चसारादिषु सर्वासां तान्त्रिकोपासनानां समाहारः समवलोक्यते। फलतः "उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्" इत्युन्मिषति उदारा भारतीया दृष्टिः। प्राचीनेषु धर्मेषु दर्शनेषु च यथाऽनया संपादितः समन्वयस्तथेयं साम्प्रतिकेषु धर्मेषु च वादेषु च विरोधपरिहारप्रवणा प्रवर्तेत समन्वयाय। तान्त्रिकं दर्शनं व्यवहारं नातिक्रामति। विश्वस्य प्रत्येकं प्राणिषु तद् विश्वाहन्ताया विकासं स्वत्वसंकोचपरिहारपथा समुपदिशति। मानवो हि धर्म-भाषा-राज्य-राष्ट्रादिषु स्वीयं स्वत्वं संकोचयति। विश्वाहन्तायाः प्रकाशेन तस्यायं संकोचः प्रणश्येत। तेन हि समुन्मिषिता जायेत विश्वसंस्कृतिः। सैव कल्पेत विश्वस्य एकनीडतायै। प्रवर्ततां नाम विश्वस्य प्राचीनतमा वाणी संस्कृतं पावनाय तस्मै कर्मणे। गाण्डीवं तदर्थं संस्कृतज्ञान् समाकारयति॥

मत्संरक्षकाः श्रीमन्तः को० अ० सुब्रह्मण्य-अय्यरमहोदयाः

'ऋतम्' इत्याख्यायाः पत्रिकायाः प्रो० को० अ० सुब्रह्मण्य-अय्यर-अभिनन्दनविशेषाङ्के १९७५ ई० वर्षे प्रकाशिते "श्रद्धेय प्राध्यापक आदर्श मानव" इति शीर्षकेण जीवदवस्थायां शब्दसुमनोऽञ्जलिभिः समर्चिता अस्माभिः श्रद्धेयचरणा अय्यरमहोदयाः। साम्प्रतमस्माकं समक्षं पाञ्चभौतिकेन देहेन न ते सन्तीति चिन्तयतामस्माकं चेखिद्यते चेतः। अकारणकरुणावरुणालयाः केरलाभिजना एते राजस्थानाभिजनस्य गुर्जरस्याऽस्य जनस्य संरक्षणे कथं नाम बद्धपरिकरा आसन्निति जानन्त्वद्य सहृदयाः सुरभारतीसमुपासकाः सूरयः।

१९५० ई० वर्षे काशिकराजकीयसंस्कृतमहाविद्यालयस्य प्रधानाचार्य-(प्रिंसिपल)पदमलङ्कर्तुमेते समागता आसन्। तदाऽत्र महाविद्यालयपत्रिकायाः 'सारस्वती सुषमा' इत्याख्यायाः सहायकसम्पादकपदं रिक्तमासीत्। एतत्पदाभिलाषुकाः पञ्च प्रार्थिनस्तेषां समक्षमासन्। तेष्वेकस्य केचन महान्तो नेतारो विद्वांसश्च सहायका अभूवन्। अय्यरमहोदयानामागमनात् पूर्वमेव तस्य नाम तदर्थं प्रस्तावितमप्यभूत्, प्रथमदृष्ट्या अय्यरमहोदयैरपि तदनुमोदितम्। किन्तु नाऽत्र त्वरा विधेया, परीक्ष्य सर्वान् प्रार्थिनो भवता कस्यचनैकस्य नाम्नः संस्तुतिर्विधेयेति शासनाधिकारिणां प्रस्तावमुपलभ्य अय्यरमहोदयैर्मासचतुष्टयं यावत् परीक्षिताः सर्वेऽपि प्रार्थिनः, ये हि तदा सरस्वतीभवनपुस्तकालये विभिन्नेषु पदेषु कार्यव्यापृता आसन्। अन्ते च तैर्मदीयं नाम प्रस्तावितं सत्यपि महति संमर्दे। मदीया नियुक्तिरस्मिन् पदेऽवश्यं संजाता, अय्यरमहोदयानां निदेशमनुपालयता मया च सा संस्कृतपत्रिकाऽनुसन्धानपत्रिकात्वेन प्रतिष्ठापिता, किन्तु पूर्वोक्तो महाजनसम्मर्दोऽस्याः संस्थायाः कृतेऽलाभकरः सम्पन्नः, अय्यरमहोदया हि पुनर्लक्ष्मणपुर(लखनऊ)विश्वविद्यालये परावृत्ता इति। एतदर्थमहमात्मानमपराधिनं मन्ये, अय्यरमहोदयानामुपस्थितौ हि महाविद्यालयस्यास्य स्वरूपमन्यविधमेव सम्पन्नं स्यादिति। को हि नाम भवितव्यतां निवारयितुमीष्टे।

१९५८ ई० वर्षे राजकीयसंस्कृतमहाविद्यालयो वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालयत्वेन परिणतोऽभूत्। अय्यरमहोदयाः १९६० ई० वर्षे उपकुलपति-

पदमलङ्कर्तुं पुनरत्र समागताः। विश्वविद्यालये मदीया नियुक्तिः प्रकाशनाधिकारिपदे समजायत, किन्तु वेतनविषयकः प्रश्नोऽद्य'प्यसमाहित एवासीत्। पूर्वनिश्चिताऽपि लक्ष्मणपुरयात्रा मदीयपत्रावल्यलाभे स्थगिता एभिः, महताऽऽयासेन च वर्षत्रयं यावदसमाहितः प्रश्नोऽयं ससम्मानं निर्णयपदवीमानीतः। इत्थं मदीयाः संरक्षका इमे पुनरपि मां रक्षितवन्तः, स्वयं तु रुग्णाः सन्तो विश्वविद्यालयतस्त्यागपत्रं दत्त्वा पुनर्लक्ष्मणपुरमेव परावृत्ताः।

१९६२ ई० वर्षे रुष्टेन तदानीन्तनेनोपकुलपतिना उत्तरप्रदेशराजकीयसेवायां त्वया गन्तव्यमिति समादिष्टोऽहमशरणशरण्यस्य अय्यरमहोदयस्यैव चरणौ समासादयम्। सत्वरमेव सचिवालयं गत्वा ते तत्र प्रतिबन्धात्मकमुपायं व्यदधुः, उपकुलपतिमहोदयानां च कृते पत्रमेकं मह्यं सदयं प्रादुः। सौभाग्यात्तदा ते उपकुलपतिनामनिर्वाचनसमितिसदस्येष्वन्यतमाः कतिचिदेष्वेव दिनेषु सम्पादयिष्यमाणे दीक्षान्तसमारोहे दीक्षान्तभाषणं कर्तुमाहूताश्च आसन्। लक्ष्मणपुरस्थानके (लखनऊ स्टेशन) धूमशकटिकाप्रस्थानवेलायां मज्जीवातुभूतं तत्पत्रं स्थितस्य यानस्याधस्तात् पुस्तकेन सह पतितम्। पतनवेलायां भाग्यवात्याप्रेरितं तत्पत्रं शुष्के लौहमार्गे, पुस्तकं च जले न्यपतत्। यानगमनवेलायां कथं तस्याधस्ताद् गत्वा तद् ग्राह्यमिति शङ्काकुलेऽपि चेतसि तत्पत्रं गृहीतमेव मया। यथासमयं च उपकुलपतिमहोदयेभ्यस्तत्समर्प्य निरापदोऽहमभवम्।

१९७३ ई० वर्षे तदानीन्तनेनोपकुलपतिना पुनरपि राजकीयसेवायां प्रेषितो नाहं तत्रागच्छम्। वारं वारमेनं क्षुद्रं जनमय्यरमहोदया रक्षन्तीति केचन महान्तस्तथा प्रयासमकुर्वन्, येन हि ते मत्संरक्षणकार्यात् पराङ्मुखा भवेयुरिति, किन्तु ते तत्र सफलिनो नाऽभूवन्। अधिकारिणस्तदनुवर्तिनः कर्मचारिणश्च कलहे प्रायो जनाः कर्मचारिणमेवापराधिनमुद्घोषयन्ति। समयेनाऽनेन पीड्यमानाः प्रायो दृश्यन्ते बहवः कर्मचारिणो निरपराधाः सन्तोऽपि। गुणदोषविवेचकैर्विपश्चिद्भिस्तु नैवं क्रियत इति वर्षत्रयात्मकेऽस्मिन् कठिने कालेऽपि तेषामन्येषां च महात्मनां स्नेहसिक्तायां कृपाच्छायायां निषण्णोऽहं सुखेन जीवनयात्रामयापयम्। न्यायाधीशचराः श्रीमन्तो गोपालचन्द्रसिंहमहोदया अखिलभारतीयसंस्कृतपरिषत्संस्थापकास्तन्मन्त्रिणश्च न्यायिककर्मसु मत्साहाय्यार्थं तैः प्रेरिता मत्कल्याणकरं सर्वविधं कार्यजातं समपादयन्। एकस्मिन् दिने चाकस्मान्मया उत्तरप्रदेशराज्यपालस्य महामहिम्नः श्रीमती डॉ० एम० चेन्नारेड्डीमहोदयस्य नैमिषारण्यपुराणानुशीलनसंस्थानविषयकं पत्रमुपलब्धम्, तेषामेव कृपातरणि-

मवलम्ब्य अन्ततश्च मया तीर्णा सा दारुणा न्यायनदी । अस्मिन् तारके कर्मणि श्रीमतामय्यरमहोदयानामन्तःसरन्ती सरस्वती एव प्रधानं कारणमासीदित्येवाहमद्यापि तर्कयामि। महान्त उपकृत्याऽपि किल न वाचा तं प्रकाशयन्ति ही ! प्रत्युत स्वकीयं महत्त्वमन्यत्र संक्रामयन्ति। उदाहरणतया २९-१२-७५ दिनाङ्के लिखितस्य तदीयस्य पत्रस्य कियानंशोऽत्र दीयते—"बहुत दिन से मैंने इतना आनन्दप्रद समाचार नहीं सुना था। '' यह भगवान् की ही कृपा है कि इतना दुःख सधैर्य सहने के बाद इस मामले का अन्तिम परिणाम न्याय्य निकला। संकट में धैर्य का आपने हम लोगों के लिये अच्छा प्रदर्शन किया। विद्वत्ता के अरिरिक्त आपके पास धैर्य भी है, जो एक चारित्रिक निधि है और प्राध्यापक पद से कहीं अधिक मूल्यवान् है। ''' यह हम लोगों का सौभाग्य है कि हमको आपको जीवन के इस घट्ट में निकट से देखने का अवसर प्राप्त हुआ"।

वाराणसेयाः प्रबलायिता वर्गवादिनो विद्वांसो योगतन्त्रविभागाध्यक्षपदे मदीयां नियुक्तिं नैव वाञ्छन्ति स्म। प्रवर्तमाने प्रवर्धमानेऽपि चाऽस्मिन् विरोधे स्वनामधन्याः श्रीमन्तो बदरीनाथशुक्लमहोदया दर्शनगोष्ठीगरिष्ठाश्चयनसमितिसंस्तुतिमनुसृत्य मां तत्र नियोजितवन्तः। तेषां हार्दिकमभिनन्दनं कुर्वन्तो निर्णयमेनं प्रशंसन्तश्च अय्यरमहोदयास्तान् भीषणादस्माद् वात्याचक्रात् समुद्धरन्तो यावज्जीवं मत्संरक्षणमाचरन्तश्च कथं नाम शब्दसुमनोऽञ्जलिभिरेभिर्न वन्द्याः स्युः।

प्रसङ्गेऽस्मिन् मातृतुल्या श्रीमती डॉ० टेरेसा-जद्विग-अय्यरमहोदया सादरं स्मर्यते। अय्यरमहोदयानामुपकुलपतित्वकाले सा काश्यां रुग्णानामभावग्रस्तानां च स्त्रीणां सेवायां व्यापृताऽऽसीत्। स्नेहस्य करुणायाश्च प्रतिमूर्तिरपि सा अय्यरमहोदयानां स्वास्थ्यमभिलक्ष्यातीव सावधाना नियमनियन्त्रिता चासीत्। किन्तु कठिनायामपि परिस्थितौ नाऽहं मातृस्नेहेन कदापि वञ्चितोऽभवमिति वन्दे तस्याश्चरणौ।

एतेषां सारल्यं निरभिमानित्वं च मया प्रथमस्यां दक्षिणभारतयात्रायामेवावलोकितमासीत्। संस्कृतविश्वपरिषदश्चतुर्थमधिवेशनं १९५५ ई० वर्षे तिरुपतिनगरे सम्पन्नमभवत्। तदा श्रीपर्वतवसतेर्भगवतो वेङ्कटेश्वरस्य दर्शनयात्रायाम्, मद्रपुरी(मद्रास)यात्रायां च अय्यरमहोदया डॉ० वे० राघवन्महोदयाश्च सहयात्रिण आसन्। एतौ महानुभावौ सम्पूर्णयोरनयोर्यात्रयोः कदापि स्वीयवैशिष्ट्यख्यापनतत्परौ नैव दृष्टौ, प्रत्युत रानीगुण्टा-स्थासके

धूमशकटीपरिवर्तनसमये भारवाहकमन्वेषयत एकस्योत्तरभारतीयस्य सहयात्रिणः साहाय्यमाचरितवन्तौ, तस्यापरधूमशकटीग्रहणे कालातिपातो मा भूदिति। एवमेवापरस्यां दक्षिणभारतयात्रायां मया डॉ० वे० राघवन्महोदयाः कुप्पूस्वामिशोधसंस्थानप्राङ्गणे निरावरणायां निरास्तरणायां वालुकाभरितायां भूमौ समुपविष्टाः सन्तः संगीतानन्दमनुभवन्तो दृष्टाः। दक्षिणभारतीयविदुषामेतत् सारल्यं निरभिमानित्वं च नूनमनुकरणार्हम्।

१९५१ ई० वर्षे सम्पन्नस्य राजकीयसंस्कृतमहाविद्यालयस्य दीक्षान्तसमारोहावसरे क्रीतानि उष्णीषवस्त्रादीनि काष्ठोपकरणानि च स्वयं सुपरीक्ष्य एभिः संगृहीतानि, त्रुटिपूर्णानि च नैवाऽङ्गीकृतानि। तेषामितो गमनानन्तरं तत्सामग्रीसंबद्धस्य एकस्य गलितवयसो व्यापारिणो मुखादनायासं निस्सृता वाणी मम भाविजीवनस्य पथप्रदर्शिका समजायत, यन्नैव मया स्वकीये जीवने ईदृशः संस्थया सह स्वात्मीकारमाविष्कुर्वन् निस्पृहश्चाधिकारी कदापि कुत्रापि दृष्ट इति। प्रकाशनाधिकारिपदमधितिष्ठता त्वया संस्थाया अस्याः स्वयोग्यतानुरूपा सेवा समाचरणीया, नहि पदान्तराभिलाषे स्वात्माऽऽयासयितव्य इति तदेतस्य स्वात्मीकारस्य पराकाष्ठा तेषां मनसि जार्गति स्म। स्वसंबद्धया संस्थया ईदृशं स्वात्मीकारमादधानाः कति कति वा जना दृश्यन्ते साम्प्रतम्।

तदेतादृशान् सरलमतीन् निरभिमानिनो निस्पृहान् सहृदयान् कर्तव्यनिष्ठान् करुणावरुणालयान् यावज्जीवं मत्संरक्षणतत्परान् अग्रयरमहोदयान् स्मारं स्मारं विलक्षः कातरोऽपि श्रद्धावनतः सन् वन्दे तच्चरणौ॥

परिषत्समर्पितजीवना गोपालचन्द्रसिंहमहोदयाः

अखिलभारतीय-संस्कृत-परिषदनुसन्धान-पत्रिकायाम् 'ऋतम्' इत्या-ख्यायां प्रकाशिते "श्रद्धेय प्राध्यापक : आदर्श मानव" इति शीर्षके हिन्दी-भाषा-निबन्धे, तत्रत्यायामेव संस्कृत-त्रैमासिक्याम् 'अजस्रायां' च प्रकाशिते "मत्सं-रक्षकाः श्रीमन्तः को० अ० सुब्रह्मण्य-अय्यर-महोदयाः" इत्याख्ये संस्कृत-भाषा-निबन्धे च मया परिषदोऽस्याः संस्थापकेषु जीवातुभूतानां श्रीमतां को० अ० सुब्रह्मण्य-अय्यर-महानुभावानां किमप्यनितरसाधारणं वैशिष्ट्यं वैदुष्यं च वर्णितम्। १९५०-१९५१ वर्षयोर्नवमासपर्यन्तं काशीस्थ-राजकीय-संस्कृत-महा-विद्यालयस्य प्रधानाचार्यपदमलङ्कृत्य १९५१ ई० वर्षीये जुलाई-मासे पुनरेते लक्ष्मणपुरीमेव परावृत्ता आसन्। तदा कार्यवशादहं लक्ष्मणपुरीमगमम्। अय्यर-महोदयानां दर्शनाय तेषां निवासस्थानमधिगत्य तत्र महान्तं विद्वत्संमर्दमपश्यम्। तत्र समुपस्थितः प्रत्येकं सदस्यः स्वयमेव स्वीयं परिचयं समुपस्थापयति स्म। स्मरामि स एव पुण्यतमो दिवसः परिषदोऽस्याः स्थापनाया इति।

न्यायाधीशचराः श्रीमन्तो गोपालचन्द्रसिंहमहोदयाः "अखिल-भारतीय-संस्कृत-परिषत्"-संस्थापकाः सन्मन्त्रिणश्च न्यायिककर्मसु मत्साहाय्यार्थं तैः प्रेरिता मत्कल्याणकरं सर्वविधं कार्यजातं समपादयन्निति मयोक्तपूर्वमय्यर-महोदयेभ्यः श्रद्धाञ्जलिनिवेदनवेलायाम्। भगवतः शिवस्य क्रियाशक्त्यवतारा इमे गुरुऋणमपाकर्तुमिव स्वविद्यागुरोः श्रीमतोऽय्यरमहोदयस्य संकल्पं संस्कृत-परिषत्स्थापनमुखेन कार्य्यकलापेन साकारमकुर्वन्। साम्प्रतमत्र संस्कृतवाङ्मय-संबद्धानां मुद्रितग्रन्थानां पाण्डुलिपीनां च महान् संग्रहो विद्यते। 'ऋतम्' इत्याख्या शोधपत्रिका षाण्मासिकी, 'अजस्रा'नाम्नी संस्कृतत्रैमासिकी च प्रकाश्येते अनया संस्थया नियतसमये। अत्र संगृहीतानां संस्कृतग्रन्थमातृकाणां खण्डचतुष्टयात्मिका विवरणात्मिका सूची, अन्ये च बहवो ग्रन्था न केवलमाधुनिक-शोधसम्पादनपद्धतिनिदर्शनभूताः, अपितु साम्प्रतिकमुद्रणविधिचूडायमाना इतः प्रकाशिताः। श्रद्धेयचरणानां महामहोपाध्याय-पद्मविभूषणादिनानाविरुदधारिणां श्रीमतां गुरुवर्याणां श्रीश्रीगोपीनाथकविराजमहोदयानामभिनन्दनग्रन्थः परिषदा प्रकाशितः स्वीयं किमपि वैशिष्ट्यं बिभर्ति। एवमेव 'ऋतम्' इति षाण्मासिकपत्रिकाया विशिष्टाङ्कौ श्रीमतां श्रद्धेयचरणानां को० अ० सुब्रह्मण्य-अय्यर-महोदयानाम्, प्रसिद्धस्य पाश्चात्त्य-विदुषो डॉ० लुडविकस्टर्नबाख-

महोदयस्य चाभिनन्दनात्मकौ स्वीयया विशिष्टया प्राच्यैः पाश्चात्यैश्च मनीषिभिः सममेव ग्रथितया शोधसामग्र्या मुद्रणविधया चेदृशान् सर्वानप्यभिनन्दनग्रन्थानतिशाययतः। सर्वेष्वेषु कार्यकलापेषु श्रीमतां गोपालचन्द्रसिंहमहोदयानां क्रियाशक्तिरेव प्राधान्येन प्रसरति स्मेति निश्चप्रचम्।

परिषदाऽनया कविराजमहोदयेभ्योऽभिनन्दन-ग्रन्थः १९६७ ई० वर्षीये सितम्बरमासे तज्जन्मदिवसे समर्पित आसीत्। मदीया च नियुक्तिः प्राध्यापकपदे योगतन्त्रविभागीये तस्मिन्नेव हायनेऽगस्तमासे संजाता। श्रद्धेयाः कविराजमहोदया विभागस्याऽस्य अध्यक्षा आसन्, तेषां गृह एव च विभागस्यानुसन्धानप्रकाशनादिकः कार्यकलापः प्रचलति स्म। तत्रैव स्थितस्य मम परिचयोऽभिनन्दनोत्सवावसरे काश्यां समागतैः श्रीगोपालचन्द्रसिंहमहोदयैः सह संजातः। स च शनैः शनैः प्रवर्धमानः १९७० ई० वर्षपर्यन्तं नितान्तं प्रगाढः संवृत्तः। सज्जनानां खलु मैत्री दिनस्य परार्धे वर्तमानायाश्छायायाः सदृशी प्रारम्भे क्षीणाऽपि सती शनैरुपचीयते। "लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्" इति हि कस्यचित् सुभाषितम्।

तदात्वे हि कस्यचन विशिष्टस्य कार्यस्य सम्पादनाय कृतं साहाय्यमेतेषामवश्यमेव चर्चायोग्यमस्ति। जबलपुराभिजनेभ्य एतेषां भगिनोपतिभ्यः श्रीमद्भ्यः कुँवरबहादुरसिंहमहोदयेभ्यो मध्यप्रदेशीयोच्चन्यायालयस्य वरिष्ठबैरिष्टरपदवीमलङ्कुर्वद्भ्यो लिखितं पत्रमेकमादायाऽहं तत्राऽगच्छम्। दिनद्वयं यावत् तत्राहं स्वगृहनिर्विशेषं न्यवसम्। यानचालकस्यानुपस्थितौ श्रीमतां बैरिष्टरमहोदयानां यानचालनदक्षा पुत्री पितुराज्ञामुपलभ्य मां तत्र तत्र नीतवती। सम्पूर्णस्य कुटुम्बस्य स्नेहसिक्तः स व्यवहारो नाऽद्यापि मम स्मृतिपदवीं जहाति। अतिथिदेवानां भारतीयानामीदृशो व्यवहारः साम्प्रतं विरल इव दृश्यते।

१९७३-१९७५ वर्षेष्वहं विश्वविद्यालयसेवातो राजकीयसेवायां प्रेषितो न्यायालयशरण्यतां गतो न्यायाधीशचराणां श्रीगोपालचन्द्रसिंहमहोदयानां साहाय्येन परामर्शेन च तत्कालमयापयम्। तदा सिंहमहोदयाः सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय-कार्यपरिषदः सदस्या आसन्। सम्पूर्णस्य वादस्य न्यायालयोपयुक्तायाः सामग्र्याः सारं संकलय्य, तदुपपादनसमर्थानि प्रमाणानि च प्रदाय तदा महदुपकृतमेभिर्महानुभावैः। लक्ष्मणपुरप्रवाससमये परिषत्पुस्तकालयभवने, महानगरस्थे स्वभवने च यथेच्छं निवाससौकर्यमुपकल्पयतामेतेषां महानुभावानामौदार्य्यं सत्यम् "उदार-चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्" इत्याभाणकं स्मारयति।

१९७५ ई० वर्षीये ग्रीष्मर्तौ उत्तरप्रदेशस्य तदानीन्तना राज्यपाला महामान्याः श्रीमन्तो डॉ० एम० चेन्नारेड्डीमहोदया उत्तरप्रदेशस्य कदाचन ग्रीष्मकालीनराजधानीं नैनीतालनगरीं जिगमिषव आसन्। स्वसंबद्धं सर्वं वृत्तं क्रोडीकृत्य प्रार्थनापत्रमेकं महामान्यराज्यपालमहोदयायाऽद्यैव देयमिति राज्यपालसचिवमुखादवगत्य किंकर्तव्यविमूढोऽहं तस्यां ललाटन्तपायां निदाघवेलायां मध्याह्ने सर्वो लोको विश्रामाभिलाषुको भवतीत्यप्यविगणय्य "अर्थी दोषान्न पश्यति' इत्याभाणकं चरितार्थयन्निव सिंहमहोदयानां महानगरस्थं भवनमभ्यगाम्। मदीयां सर्वां परिस्थितिमेते पूर्वत एव जानन्ति स्मेति नूतनमुदन्तं श्रुत्वा संक्षिप्ततमं प्रार्थनापत्रमेकमेभिः प्रारूपितम्, येन किलान्ततो वर्षसमाप्तितः पूर्वमेव पुनरपि मया स्वकीयं सम्पूर्णानन्द-संस्कृतविश्वविद्यालयस्थं योगतन्त्रविभागीयं प्राध्यापकपदमधिगतमिति नूनं सर्वात्मनाऽभिनन्दनार्हा एतादृशाः पुण्यभाजो भवन्तीति किमु नाम चित्रम्।

साम्प्रतमशीत्युत्तरायां वयस्यपि कायेन वाचा मनसा च सर्वात्मना परिषदोऽस्याः सर्वविधसमुन्नतये बद्धपरिकरा निरलसा एते विराजन्त इति भूतभावनो ज्ञाननिधिर्नीलकण्ठः शिवः पराम्बा च भगवती परोपकारधनेभ्य एभ्यः शतायुःप्रदानाय परिषदोऽस्या भव्यायोदर्काय च शतशः प्रार्थ्येते॥



कविः साहित्यकारो मायाप्रसादस्त्रिपाठी

त्रिपाठीत्युपाह्वः श्रीमान् मायाप्रसादः स्वजनुषाऽभूषयद् वाराणसी-सारनाथनिकटवर्तिनं 'सौनहुला' इत्याख्यं ग्रामम्। आसीदस्य जननी श्रीमती मल्लिकादेवी, जनकश्च पण्डितो राजारामस्त्रिपाठी। प्रतिभासम्पन्नः कुशाग्र-बुद्धिरयमध्ययनकाले योग्यतमेषु छात्रेषु तारागणेषूडुराडिवाराजत। वाराणसेये राजकीये 'क्वींस कालेज' इत्याख्ये महाविद्यालये (यत्र हि समासन् ग्रिफिथ-थीवो-वेनिससदृशाः पाश्चात्त्या विद्वांसः प्रधानाचार्याः, म० म० गोपीनाथकविराज-आचार्यनरेन्द्रदेव-मनीषिप्रवरसम्पूर्णानन्दसदृशाश्चाध्येतारः), इलाहाबादविश्व-विद्यालये च सम्पादिताध्ययनोऽयम् एम० ए० परीक्षां भूगोलविषये, पी० सी० एस० प्रतियोगितापरीक्षामपि च समुत्तीर्णवान् ससम्मानम्। आङ्ग्लसंस्कृत-हिन्दीवादविवादप्रतियोगितासु बहवः पुरस्काराः समुपलब्धा अनेन।

अध्ययनसमाप्त्युत्तरकालमेष वाराणसेय-उदयप्रतापमहाविद्यालये, काशी-हिन्दूविश्वविद्यालये च भूगोलविभागाध्यक्षपदे प्राध्यापकपदे च क्रमशः कियन्ति वर्षाण्यध्ययनाध्यापनमुखेन वरदां वाणीमसेवत। ततः परमनेकेषु स्थानेषु विभिन्नेषु प्रशासनिकेषु पदेषु नियुक्तः ससंमानं योग्यतया निष्पक्षपातं ताटस्थ्येन नातिचिरादेव लब्धस्वातन्त्र्यलक्ष्मीसौभाग्याया भारतीयाया जनतायाः सेवा-निरतोऽभूत्। चिरपारतन्त्र्याऽन्दुकनिगडिताया दोषदृष्टिभूयिष्ठाया अनैतिकतागर्ते गाढं बाढमवगाहन्त्या जनभावनाया निष्करुणेन चीत्कारेण वा, वैदेशिकशासन-घोरदंष्ट्राचर्बितस्वाभिमानानामभारतीयप्रायाणां स्वकीयराष्ट्रभाषासंस्कृतिप्रेम-शून्यानामभिनवशासकानां मिथ्याभिमानाऽहिफेनतन्द्राक्रान्ततया वा, कर्णेजपि-त्वादिदोषचयमस्पृशन्त्या त्यागतपस्यादिगुणगणमनुवर्तन्त्या भारतीयर्षिमुनिभि-श्चिराराधितया निश्छलया ब्राह्मण्यानुगुणया स्वाभिमानभावनया वा एकपदे तिरस्कृत्य तां शासकपदवीं पुनरपि भगवत्याः सरस्वत्या एव समाराधने तत्परोऽभूत्।

प्रयागनगरमासीदस्य प्रथमं कार्यक्षेत्रम्। प्रयागनगरमधिवसताऽनेन नैके ग्रन्था आङ्ग्लभाषयाऽनूदिताः, पाठ्यग्रन्थाश्च कतिपये लिखिताः। अत्रैव निवसता महानुभावेनानेन वेदेषु पुराणादिषु बौद्धजैनवाङ्मययोश्च प्रतिपादितं प्राचीनं भारतीयं भूगोलशास्त्रमधिकृत्याभिनवया पाश्चात्त्यया गवेषणापद्धत्या तुलनात्मकं समीक्षात्मकमैतिहासिकं सांस्कृतिकं चानुशीलनं समाचरितम्।

शासकपदं परित्यजताऽनेनेतः परं राजकीयं सेवाकर्म आर्थिकं साहाय्यं वा कदापि न ग्रहीष्यत इति प्रतिज्ञातमासीत्। तामिमां प्रतिज्ञां कुर्वतोऽस्य धीरस्य त्यागवीरस्य मनसि —

अङ्गणवेदी वसुधा कुल्या जलधिः स्थली च पातालम्।
वल्मीकश्च सुमेरुः कृतप्रतिज्ञस्य धीरस्य॥

इति महाकवेर्हर्षचरितकारस्य बाणस्य भणितिः स्मृतिपथमारूढा भाविनो जीवनस्य संबलमासीत्। तदनुपालनायैव गार्हस्थ्याश्रममप्यनङ्गीकुर्वताऽनेन स्वकीयस्य भाविनो योगक्षेमस्य संचालनाय लेखनी स्वसाचिव्ये नियोजिता। कुर्वन्ति विदेशेषु साम्प्रतं लेखकाः ससम्मानं स्वात्माभिमानं सर्वात्मना रक्षन्तो वैभवविलासभरितं जीवनयापनम्। अस्मिन्नपि क्षेत्रे हन्त! भारतीयानां दशा शोचनीयैव। मन्ये भारतीयानां प्रकाशकानां मत्कुणा गुरवः। उत्प्रेक्षितं केनापि सूक्तिकारेण —

क्षीराब्धौ तु हरिः शेते हरः शेते हिमालये।
कमले कमला शेते मन्ये मत्कुणशङ्कया॥ इति।

भारतीयैरेभिः प्रकाशकमत्कुणैराक्रान्ता लेखकाः कुत्र नु नाम विश्वस्तं विश्रमेरन्नित्यभिनवेन केनचित् कविनोत्प्रेक्ष्यम्।

न केवलं लेखका एव प्रकाशकैः प्रतार्यन्ते, पीयते प्रतिभा पण्डितानां मण्डलेश्वरादिविरुदधारिभिः साधुभिः, अनुसन्धानच्छात्राणां विभागाध्यक्षैरन्यैश्चाध्यापकैः, ज्ञानविज्ञानादिसंस्थासंचालकैश्च तत्र कार्यव्यापृतानां कुशलानां कर्मकराणाम्। साभिमानं भणामो वयम्—"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" इति श्रुतिवाक्यम्, "एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥" इति मनुस्मृतिवचश्च। किमेभिरेव वञ्चकताप्रायैर्गुणैरुपेता वयं विश्वमार्यं करिष्यामः? अथवा आस्माकीनैरीदृशैररुन्तुदैर्गुणैराकृष्टाः साम्प्रतिका मानवा विडम्बनाबहुलं चरित्रमस्मदीयमनुकरिष्यन्ति? कुत्र नु तावद् वर्तते —

सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव।
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वतः॥

इति मनुस्मृतिप्रतिपादितं तद् ब्राह्मण्यम्, यस्य चरणयोर्निपत्य विश्वमेतत् स्वं चरित्रं शिक्षेत? त्रिपाठिसदृशा विगताहङ्काराः सम्माननिरपेक्षा विरला एव विद्वांसस्तत्कर्म कुर्युरिति वयं सविनयं वदामः।

अस्मत्सुहृदा त्रिपाठिनाऽनेन मायाप्रसादेन चिरमनुभूतमेतन्मत्कुणाचरितं साम्प्रतमप्यनुभूयते च।

स्वकीयभूगोलविषयकानुसन्धानकार्यप्रसङ्गेन स सरस्वतीभवनस्थाः काश्चन मातृका अन्यत्राऽसुलभान् ग्रन्थांश्च द्रष्टुमागतो वाराणसीं श्रद्धास्पदानामनुकरणीयचरितानां श्रीमतां क्षेत्रेशचन्द्रचट्टोपाध्यायानां तदात्वे वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालयीयानुसन्धानसंस्थानसंचालकानां सान्निध्येन १९६० तमे ई० वर्षे सुहृत्संबन्धेन गाढं बाढमवबद्धः। साम्प्रतिकेषु पाश्चात्याध्ययनपद्धत्या संचालितेषु विश्वविद्यालयेषु गृहीतदीक्षाः संस्कृतभाषाध्येतारो विरला एव भवन्ति देववाण्यां वावदूकाः, लेखनीमाध्यमेन स्वाभिप्रायस्य सुव्यक्तमभिव्यञ्जकाश्च। कवयस्तु विरलतमा एव। अकार्पण्यमलोलुपता, निस्पृहत्वं स्पष्टवादिता, स्वाभिमानित्वं विनयशीलता चेति संस्कृतविदुषां स्वाभाविका गुणा हन्त ! साम्प्रतं प्रायो न दृश्यन्ते तेषु। समेषामेषां गुणानामेकपद एव समवायो दृश्यतेऽस्मिन् त्रिपाठिनि मायाप्रसादे। परोक्षे कार्य-हन्तारः प्रत्यक्षं प्रियवादिनो जिह्मगप्रायाः साम्प्रतिका जनाः। संमुखीनं जनं यं स्तुवन्ति तदीयगुणावलीगानैस्तमेव पृष्ठीभूतं दोषचयैर्विभूषयन्ति, "स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपं हितान्न यः संशृणुते स किंप्रभुः" इति भारविभणितिमनुकुर्वन्, "अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः" इति सूक्ति च चरितार्थयन् विरल एव जनो दृश्यते साम्प्रतिके जगति। वर्ततेऽस्माकं मायाप्रसादस्तादृश एव। न स परोक्षे कमपि निन्दति, यस्मै यत् कथनीयं तत्समक्षमेव तत् स्पष्टं वदति च।

स्वभावसिद्धेन कविनाऽनेन बहुसंख्याकानि संस्कृतगीतानि, पञ्चशतीप्राया हिन्दीकविताः, सहस्रप्राया आङ्ग्लभाषागीतयश्च विरचिताः। आङ्ग्लभाषागीतयो वैदेशिकीषु पत्रिकास्वपि ससम्मानं स्थानमलभन्त। कवयितुरस्य "सिन्दूररागविकिरणम्, धूमाधारप्रपातः, श्रवणा शृणोतु, वेलानयनोन्मेषः" इत्याद्या गीतयः प्रज्ञापत्रिकायां हिन्दूविश्वविद्यालयतः प्रकाशितायाम्, वाराणसेये गाण्डीवम्-पत्रे, सूर्योदये च प्रकाशिताः सन्ति सुरभारतीसमुपासकस्य।

श्रीमतस्त्रिपाठिनः कविकर्मपाटवं नूनं सहृदयहृदयमावर्जयेदिति निर्विचिकित्सं प्रतिपादयितुं शक्यते। "सिन्दूररागविकिरणम्" इतीमां गीतिमेव पठन्तु नाम सहृदयाः। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्राख्ययोर्वृत्तयोर्ग्रन्थितायामस्यां गीतौ सन्ध्याकालं वर्णयता भावुकेन कविनाऽक्रमध्वनेरुद्दीपनविभावः स्पष्टं चित्रितः। तद्द्वाराऽभिव्यञ्जितं भावध्वनिं परिपोषयति वैदर्भी रीतिमनुसरन् प्रसादगुणगरिमा।

शीर्षकमप्येतदीयं काव्यानुगुणम्। कवित्वमाधुर्येण स्वकीयेन कविरयं महाकवीन् स्मारयतीव।

विंशतिप्रायेषु मुद्रितेष्वस्य ग्रन्थेषु सुरभारत्या भारतवर्षस्य संस्कृतज्ञानां च गौरवमभिवर्धयन्तो ये ग्रन्था विराजन्ते, तेषु, "कथाशेष, अतीत का अभिनवालोक, आविष्कारों का आवाहन" इति राष्ट्रभाषायां विरचिताः, प्राचीन-भारतीयभूगोलवर्णनापरश्च आङ्गलभाषामयो ग्रन्थः सविशेषं वैशिष्ट्यं भजन्ते। ग्रन्थकारस्यास्यैते ग्रन्थास्तत्राभिव्यक्ता विचाराः कविताश्च न केवलं कविवरसुमित्रानन्दनपन्त–"डॉ० हजारीप्रसादद्विवेद्वि–श्रीबलदेवोपाध्याय–डॉ० अवधकिशोरनारायण–डॉ० प्रियव्रतशर्मप्रभृतिभिर्भारतीयैर्विद्वद्भिः, अपि तु अमेरिकाराष्ट्रपति-'आइसनहावर'–आस्ट्रेलियास्थितराष्ट्रीयविश्वविद्यालय-प्राध्यापक–डॉ० ए० एल० वासमसदृशैर्वैदेशिकैश्च सुधीभी राजनीतिज्ञैश्च प्रशंसिता। लिखति साम्प्रतं भूगोलनेपथ्याभिधानं नूतनं ग्रन्थं संस्कृतभाषायाम्। संस्कृतज्ञानां सुरभारतीसेवानिरतानां संस्थानानां च सहयोगेन, साहाय्येन, प्रोत्साहनेन च स सत्वरमेव पूर्णताभिगामिनीं त्वरितां गतिमुपलभेतेति विद्यागुरुं भगवन्तं भवानीपतिं भूतभावनं विश्वनाथमुपस्तुवाना विरमामोऽस्माद् वाग्व्यापारादिति शम्॥



करपात्रस्वामिकृतो वेदापौरुषेयत्वविमर्शः

वन्दनीयचरणाः श्रीमन्तः करपात्रस्वामिमहाभागा वेदार्थपारिजात-वेदस्वरूपविमर्शादिग्रन्थेषु महताऽऽटोपेन वेदापौरुषेयत्वं साधितवन्तः। जिज्ञासूनां प्रबोधाय तदत्र संक्षिप्य सरलया संस्कृतगिरा प्रदर्श्यते।

"वेदा अपौरुषेयाः, सम्प्रदायाविच्छेदे सत्यस्मर्यमाणर्तृकत्वात्, आत्मवत्, यन्नैवं तन्नैवम्, यथा महाभारतादि" इत्यनुमानप्रयोगेण हि वेदानामपौषेयत्वं सिद्ध्यति। न च प्रलये सम्प्रदायविच्छेदोऽवश्यंभावीति वाच्यम्, पूर्वमीमांसारीत्या प्रलयानङ्गीकारात्। वेदान्तिरीत्या वा प्रलयाङ्गीकारेऽपि परमेश्वरकृपया विशिष्टकर्मोपासनादिसंस्कारवत्सु हिरण्यगर्भादिषु सुप्तप्रतिबुद्धन्यायेन प्राक्कल्पीय-वेदानुपूर्वीं स्मरत्सु सम्प्रदायाविच्छेदोपपत्तेः।

यत्तु सामान्यतोदृष्टं वाक्यं वितथमुपलभ्य वाक्यत्वसाम्येन वेदस्यापि वैतथ्यं शङ्क्यते, तदज्ञानविजृम्भितम्, वाक्यत्वस्याप्रामाण्याप्रयोजकत्वात्। पौरुषेयवाक्यस्य तु पुरुषाश्रितदोषादिभिरेवाप्रामाण्यम्, न वाक्यत्वप्रयुक्तम्। वेदे तु संशयविपर्ययाजनकत्वात्, बोधकत्वात्, बाधकाभावाच्चानधिगतासंदिग्धा-बाधितार्थविषयकज्ञानजनकत्वदर्शनेनाप्रामाण्यकारणाभावात् स्वाभाविकं प्रामाण्यमेव।

ननु "वेदाः पौरुषेयाः, वाक्यकदम्बरूपत्वात्, महाभारतादिवत्" इत्याद्य-नुमानैर्वेदानां पौरुषेयत्वमेवेति चेन्न, स्मर्यमाणकर्तृकत्वस्योपाधित्वात्। पौरुषेयमहाभारतादिवाक्यं स्मर्यमाणकर्तृकमेव। न च तथा वेदे तत्साधयितुं शक्यते।

नन्ववश्यं वाक्यानि केनचित् प्रणीतानि, तथैव शब्दानामर्थैः सह संबन्धोऽपि सकर्तृक एवाभ्युपेय इति चेन्न, कर्तुरनुपलम्भात्। यदि स्यात् कर्ता, प्रत्यक्षादिप्रमाणैरुपलभ्येत। यद् दर्शनयोग्यमुपलम्भसामग्रीसत्त्वेऽपि नोपलभ्यते, तन्नास्त्येवेति मन्तव्यम्, यथा शशशृङ्गादिकम्। न च चिरवृत्तत्वात् कर्ता नोपलभ्यते, नासत्त्वादिति वाच्यम्, तथात्वेऽपि तत्स्मरणस्यावश्यकत्वात्। नहि चिरवृत्तोऽपि न स्मर्यते। तथा च वेदकर्तुः स्मरणाभावान्नास्त्येव कश्चिद् वेदकर्तेति प्रतीयते।

ननु क्वचिदरण्यादिप्रदेशेषु कूपारामादीनां मुक्तकश्लोकानां च सन्तोऽपि कर्तारो न स्मर्यन्ते, तथेहापि समयव्यवहारयोः कर्त्रस्मरणमुपपन्नमिति; तदसारम्, देशोत्साद-कुलोत्साद-सम्प्रदायविच्छेदादिभिः पूर्वोक्तकर्तृ णामस्मरणोपपत्तावप्यध्ययनाध्यापनतदर्थानुष्ठानशब्दार्थव्यवहारपारम्पर्याविच्छेदेऽपि कर्तृविस्मरणानुपपत्तेः।

न च घटकर्तृकुलालस्मरणवद् वेदतत्पदार्थसम्बन्धकर्तृस्मरणे व्यवहर्तॄणां निष्प्रयोजने इति कर्तृविस्मरणमुपपद्यत एवेति वाच्यम्, वैषम्यात्। तथाहि—निष्प्रयोजनत्वात् कुलालविस्मरणमुपपद्यते। न तु तथा वेदकर्तादिस्मरणं निष्प्रयोजनम्, व्यवहाराणां तदधीनत्वात्। नहि पाणिनेर्विस्मरणे आदैचां वृद्धिशब्देन व्यवहारः संभवति। तथा च यः पदपदार्थसंबन्धं करोति, यश्च वेदं निर्माय तदध्ययनाध्यापनतदर्थयोगोपासनज्ञानादिव्यवहारं प्रवर्तयति, न तस्य विस्मरणे व्यवहारः संभवति। वाक्यादर्थप्रतिपत्तिस्तदर्थानुष्ठानं च वाक्यकर्तुस्तदाप्तत्वस्य च स्मरणमन्तरा न संभवतः, अनाप्तवाक्यात् तददर्शनात्, यागादेः स्वर्गादिसाधनतायाः प्रमाणान्तरागोचरत्वात्। कर्तरि विश्रम्भादेव सर्वे वेदार्थयागाद्यनुष्ठाने प्रवर्तेरन्निति कथं कर्ता विस्मर्येत? तेनावश्यस्मर्तव्यत्वे सत्यस्मर्यमाणः स्वस्याभावमेवावगमयिष्यति। पाणिनिभिन्नस्य पाणिनिमताननुसारिणो वा वृद्धिशब्दव्यवहारतो न केचिदादैचोऽवगच्छन्ति, यथा वाऽपिङ्गलस्य पिङ्गलननुसारिणो वा मकारव्यवहारतो न केचित् सर्वगुरुत्रिकं प्रतिपद्यन्ते, किन्तु वृद्धिरादैजिति वृद्धिसंज्ञाकर्तुः पाणिनेर्वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धमिति व्यवहारतो वृद्धिशब्देनादैचो जानन्ति। एवमेव सर्वगुरुर्म इति मगणसंबन्धकर्तुः पिङ्गलाचार्यस्य व्यवहारतः सर्वगुरुत्रिकं प्रतिपद्यन्ते। तथैव वेदवाक्यादर्थप्रतिपत्तृभिरवश्यं पदपदार्थसंबन्धकर्ता तादृशपदकदम्बात्मकवेदवाक्यकर्ता चैक एव, स चाप्त इति स स्मर्तव्यः, न च स्मर्यत इति नास्त्येव वेदकर्तेति मन्तव्यम्।

समयव्यवहारयोरेककर्तृकत्वविस्मरणे च नार्थनिश्चयः। प्रकृते च विनापि कर्तृस्मरणं वेदवाक्यादर्थनिश्चयस्य प्रसिद्धत्वान्न कश्चिद् वेदकर्ता सिद्ध्यति। यदि कथञ्चिद् विस्मरणमुपपद्येत, तथापि प्रमाणमन्तरेण न कर्तृनियमः कर्तुं शक्यः। केवलस्यानुपलम्भस्य वस्त्वभावासाधकत्वेऽपि प्रमाणाभावसहकृतस्य शशविषाणादिवत् तथात्वे बाधकाभावात्। ये पौरुषेयतां समर्थयन्ते, तेऽपि परम्परया कर्तृविशेषस्मरणं वक्तुं न शक्नुवन्ति। सामान्यतोदृष्टेन कर्तारमनुमाय स्वाभिमतं कञ्चन कर्तारं साधयन्ति। केचिदीश्वरम्, अन्ये हिरण्यगर्भम्, केचित् प्रजापतिम्, अपरेऽग्न्यादीन् देवान्। मन्वादिवत् स्मर्यमाणे वेदकर्तरि नैतादृशी विप्रतिपत्तिर्युज्यते।

स्मर्तव्यत्वे सत्यस्मरणात् कर्त्रभाव एवाध्यवसीयते। "ब्रह्म स्वयम्भु" (तै० आ० २।९), "वाचा विरूपनित्यया" (ऋ० सं० ८।७५।६), "अनादि-निधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा" (म० भा० १२।२३२।३५), "अत एव च नित्यत्वम्" (ब्र० सू० १।३।२९) इत्यादिश्रुतिस्मृत्यनुसारेण वेदानां नित्यत्वावगमाच्च कर्त्रभावोऽध्यवसीयते। अत एव—"तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे" (ऋ० सं० १०।९०।९), "अग्नेर्ऋग्वेदः" इत्यादिवचनानां तु सम्प्रदायप्रवर्तकबोधप्रदत्वमेव, न तु कर्तृबोधकत्वम्, "यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै" (श्वे० उ० ६।१८) इति श्रुत्यनुरोधात्। चतुर्मुखस्य विधाताऽपीश्वरो न वेदान् विदधाति, किन्तु विद्यमानानेव ब्रह्मणो हृदि प्रहिणोतीति हि तदभिप्रायात्।

अपि च, को वेदकर्ता भवेत्? कश्चिन्मनुष्यो वा, योगी वा, ईश्वरो वा? नाद्यः, मनुष्येषु धर्मादिज्ञानस्य वेदजन्यत्वादेव तत्कर्तृत्वासंभवात्। न द्वितीयः, धर्माधर्मादिविज्ञानं योगिनो बाह्येन्द्रियजन्यं मनोजन्यं वा? नाद्यः, धर्माधर्मादेर्बाह्येन्द्रियायोग्यत्वात्। न द्वितीयोऽपि, आत्मनस्तद्योग्यगुणातिरिक्तज्ञानजनने मनसोऽसामर्थ्यात्। धर्माधर्मयोरात्मगुणत्वेऽप्ययोग्यत्वान्न मनोविषयत्वं संभवति। अपिच, योगिनो योगसामर्थ्यमपि निर्हेतुकं सहेतुकं वा? तत्र न प्रथमः कल्पः प्रभवति, सर्वेषामपि तथात्वापातात्। नाप्यन्त्यः, योगादिलक्षणधर्मस्य हेतुत्वे ततः प्राक् तज्ज्ञानमावश्यकमेवेति तद्वतोर्वेदस्य प्राकृतसिद्धत्वस्याभ्युपेयत्वात्। नापि तृतीयः, वेदादीश्वरसिद्धिः, ईश्वरश्च वेदानां प्रणेता इत्यन्योन्याश्रयात्।

इह स्वल्पमपि कर्म पित्रा मात्रा वोपदिश्यमानं तद्वचनप्रत्ययादनुष्ठीयते। तदियाननेकक्लेशवित्तव्ययादिनिर्वर्त्यो वैदिकः कर्मकलाप एवमेव तदुपदेशिनमाप्तमस्मृत्वैव क्रियत इति महान् प्रमादः। उच्चावचकविरचितजरत्पुस्तकलिखितकाव्यवदस्मर्यमाणकर्तृकेण वेदेन व्यवहारानुपपत्तेरवश्यस्मरणीयस्तत्र कर्ता स्यात्। न च कदाचन वेदेषु व्यवहारविच्छेदः संभाव्यते, येन तत्कृतं जरत्कूपारामादिष्विव कर्त्रस्मरणं स्यात्। तस्मादवश्यं कर्ता स्मर्येत। न च स्मर्यत इति नास्ति कर्ता कश्चन वेदस्य सिद्ध्यति।

अपि च, वेदाध्ययनं गुर्वध्ययनपूर्वकम्, वेदाध्ययनत्वादित्यनुमानेनापि वेदापौरुषेयत्वं सिद्ध्यति। यथेदानीन्तनाः पित्रादिपूर्वकास्तथैव पूर्वे पित्रादयोऽपि पित्रादिपूर्वकाः। तथैव सर्वं वेदाध्ययनं गुर्वध्ययनपूर्वकमेव। अत एव वेदस्यानुश्रवेत्यन्वर्थं नाम। गुरोर्मुखादनुश्रूयते इत्यनुश्रवः। गुरोर्मुखादनुश्रूयते

एव, परं न केनापि क्रियत इति वेदे कर्तृत्वाभावः सिद्ध इति सुष्ठूक्तं सम्प्रदायाविच्छेदे सत्यस्मर्यमाणकर्तृकत्वाद् वेदानामपौरुषेयत्वमिति ।

सोऽयं विषयः प्राच्यपाश्चात्त्यमतनिरासपूर्वकं स्वामिपादैर्विस्तरेण स्वकीयग्रन्थेषु व्याख्यात इति विशेषजिज्ञासुभिस्तत एव द्रष्टव्य इति संप्रार्थ्य विरम्यते ॥



कायावरोहणं नाम महातीर्थम्

विशुद्धमुनिविरचिते आत्मसमर्पणे, स्कन्दपुराणस्य माहेश्वरखण्डान्तर्गतकौमारिकाखण्डे, शिवपुराणस्य शतरुद्रसंहितायां वायवीयसंहितायां च, वायुपुराणे, लिङ्गपुराणे, कूर्मपुराणे च श्वेतादिलकुलीशान्तानां शिवावतारभूतानामष्टाविंशतियोगाचार्याणां नामावली दृश्यते । वर्ण्यन्ते च योगाचार्याणामेषां प्रत्येकं चत्वारः शिष्या इति सर्वेषामेषां योगाचार्याणां परिचयोऽस्मदीये "पुराणवर्णिताः पाशुपता योगाचार्याः" इति शीर्षके पुराणपत्रिकायां (व० १४, अ० २, जुलाई १९८२) मुद्रिते निबन्धे द्रष्टुं शक्यते । एतेष्वन्तिमो योगाचार्यो लकुलीशः प्रथमायां द्वितीयायां वा शताब्द्यां बटोदर(बड़ोदरा)नगरं निकषा वर्तमाने कायावरोहणमहातीर्थे प्रादुर्बभूवेति प्रतिपादयन्ति साम्प्रतिका ऐतिहासिका अपि ।

तन्त्रयात्रा-नामकेऽस्मदीये ग्रन्थे संगृहीते "मदीया प्रथमा अध्ययनयात्रा" इति शीर्षके निबन्धे वर्णिता मया मदीया प्रथमा बटोदरयात्रा । तदाऽस्य महातीर्थस्य यात्रा नैव सम्पन्ना । अधुना दुर्गापूजावकाशदिनेषु पुनरपि कृता मया बटोदरस्य उदयपुरस्य च अध्ययनयात्रा दीपिकासहितस्य योगिनीहृदयस्य, ज्ञानदीपविमर्शिन्याश्च विद्यानन्दकृतायाः परिष्कृतं संस्करणं सम्पादयितुम् । तन्त्रयात्रायामेव संगृहीते "महाराणाप्रतापभूर् उदयपुरम्" इति शीर्षके निबन्धे उदयपुरस्य तत्समीपवर्तिनां कैलाशपुरी(एकलिङ्गजी)-नाथद्वाराप्रभृतितीर्थानां च वर्णनं कृतमिति साम्प्रतमस्मिन् निबन्धे केवलं कायावरोहणतीर्थमेव विशेषतो वर्ण्यते ।

बटोदरनगरस्य मृत्तैलयानस्थासकात् (बस स्टैण्ड), न्यायमन्दिराख्यात् स्थानाच्च बहूनि मृत्तैलयानानि प्रचलन्ति, प्रायो होराभ्यन्तर एव च कायावरोहणतीर्थं प्रापयन्ति। मियागामकर्जन-डभोईबाष्पयानमार्गेणाऽपि तत्र गन्तुं शक्यते। बड़ौदा-भड़ोचराजमार्गे मध्येमार्गं स्थितात् पोरनामकग्रामान्नातिदूरं वर्तते तन्महातीर्थम्।

गायकवाड़शोधसंस्थानतः पाशुपतदर्शनवर्णनपरा सटीका गणकारिका प्रकाशिता। तत्र वर्तते कारवणमाहात्म्यमपि। कायावरोहणतीर्थमेव साम्प्रतं लोकभाषायां कारवणनाम्ना प्रथते। कारवणमाहात्म्ये लकुटपाणेर्भगवतो लकुलीशस्य प्रादुर्भावकथा वर्णिता। अत्रिवंशसमुद्भवो विश्वरूपोऽस्य पिता, माता च सुदर्शनानाम्नी वर्तते स्म। अत्रिः, आत्रेयः अग्निशर्मा, सोमशर्मा, विश्वरूपः, लकुलीश इति हि वर्तते वंशपरम्परा तस्य। चैत्रमासस्य शुक्लचतुर्दश्यामवततार एष महानुभावः। तीर्थमेतत् कृतयुगे इच्छापुरीनाम्ना, त्रेतायां मायापुरीनाम्ना, द्वापरे मेधावतीनाम्ना, कलौ च कायावरोहणनाम्ना प्रथितमभूत्। बालरूपधरस्य लकुलीशस्य बहुविधा लीलास्तत्रैव वर्णिता द्रष्टव्याः। तस्य कुशिक-गार्ग्य-मित्र-कारूष्यनामानश्चत्वारः शिष्या आसन्। तेषु कुशिको मथुरायाम्, गार्ग्यः काशीपुर्याम्, मित्रो दक्षिणभारते, कारूष्यश्च मध्यदेशे लाकुलीशं पाशुपतं मतं प्रचारयामासुः।

भगवान् लकुलीश एव पाशुपतमतं प्रतिष्ठापयामासेति कथयन्ति साम्प्रतिका ऐतिहासिकाः। महाभारते शान्तिपर्वणि नारायणीयोपाख्याने तु श्रीकण्ठः पाशुपतमतस्य प्रतिष्ठापकत्वेन चर्च्यते। लाकुलीशं पाशुपतं दर्शनं सायणमाधवेन सर्वदर्शनसंग्रहे संक्षिप्य निदर्शितम्। तत्र लकुलीश इति विशेषणमेव प्राचीनात् पाशुपतमताल्लकुलीशप्रवर्तितस्य तस्य भिन्नतां द्योतयति। एतच्चास्मदीयायामागममीमांसायां विशेषतो विवेचितं द्रष्टव्यम्।

गोकर्णं नाम आद्यं पशुपतेः स्थानमिति महाभारते आदिपर्वणि वर्ण्यते। "अथ रोधसि दक्षिणोदधेः श्रितगोकर्णनिकेतमीश्वरम्" इति रघुवंशपद्ये नारदो गोकर्णनिकेतनमीश्वरमुपवीणयितुमाकाशमार्गेण गच्छन् वर्णितः। गोकर्णनिवासिनोऽर्चका एव साम्प्रतं नेपालराष्ट्रे पशुपतिनाथं समर्चयन्ति। मेवाड़राज्याधिपतिः पशुपतिनाथः पञ्चवक्त्रस्तत्र एकलिङ्गजीपदेन भण्यते। तदेतस्य पाशुपतमतस्य समुद्धारको लकुलपाणिर्लकुलीशोऽत्र मानवकायेऽवरोहणं कृतवानिति तत्स्थानं कायावरोहणनाम्ना प्रथितमभूत्। गच्छता कालेन च लोकभाषायां कारवणनाम्ना प्रसिद्धिं जगाम।

प्राचीने कारवणग्रामे प्रायश्चत्वारिंशत्परिमितानि मन्दिराणि राजन्ते। एतेषु राजराजेश्वरमन्दिरं प्रमुखम्। तत्र हि पूर्वं लकुलीशस्य भगवतः शिवलिङ्गनिविष्टा मूर्तिविराजते स्म। साम्प्रतमेषा मूर्तिः कायावरोहणतीर्थसेवासमाजद्वारा निर्मिते नूतने लकुलीशप्रासादे प्रतिष्ठापिता। भव्येऽस्मिन् प्रासादे भगवता लकुलीशेन प्रणीतानि पाशुपतसूत्राणि, गणकारिका, कारवणमाहात्म्यम्, महिम्नस्तवः—इत्यादयो ग्रन्थाः, विभिन्नानि योगासनानि, ध्यानमुद्राः, करमुद्राः, विविधा बन्धमुद्राश्च मण्डपभित्तिषु खचितानि सन्ति। भूगर्भतो ज्योतिर्लिङ्गं प्रादुर्भवति। अत्रत्ये भूगर्भीयेऽन्तिमे तले ज्योतिर्लिङ्गचतुर्दिक्षु ब्रह्मणश्चत्वारि मुखानि, तदुपरिस्थे तले च विष्णोश्चत्वारि स्वरूपाणि वासुदेव-बलभद्र-प्रद्युम्न-अनिरुद्धाख्यानि स्थापितानि। पुराणवर्णिता ज्योतिर्लिङ्गकथा साऽत्र स्मार्यते, यत्र हि ब्रह्मा विष्णुश्च ज्योतिर्लिङ्गस्याद्यन्तावगमाय प्रयतेते।

कारवणग्रामे साम्प्रतं पुरातत्त्वविभागेन संग्रहालयः स्थापितः, यत्र पुरातत्त्वदृष्ट्या महत्त्वपूर्णाऽत्रत्या सामग्री संगृह्यते। परमेतावदेव न पर्याप्तम्। वर्तते नाम लकुलीश ऐतिहासिको महापुरुषः। तेन तच्छिष्यैश्च ईशवीयप्रारम्भशताब्दीषु निगमागमधर्मयोः सेतुभूतः पाशुपतः शैवो धर्मः प्रचारितः। विस्मारितः स पुरुषधौरेयोऽस्माभिः। जयन्त्याद्युत्सवायोजनेन पाशुपतयोगप्रचारादिना च संमानार्हः सोऽयं महापुरुषोऽस्माकमित्येतदर्थं वाग्विशुद्धस्य तस्य चरणयोर्वाङ्मयः श्रद्धासुमनोऽञ्जलिरयं समर्प्यते॥

परस्परदेवो भव

"मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, अतिथिदेवो भव" (१।११) इतीमानि वाक्यानि दृश्यन्ते तैत्तिरीयोपनिषदि शीक्षाध्याये। "परस्परदेवो भव" इति तदनुकारं विलक्षणमेव वाक्यमिदम्प्रथमतया मदीयं दृष्टिपथमावर्जयत् तदा, यदाऽहं २०३८ तमे वैक्रमीये वत्सरे शिवरात्रिपर्वणि गणेशपुरीमधिवसतां नित्यानन्दस्वामिचरणरजःशरणानां धन्यानां श्रीमतां मुक्तानन्दस्वामिपादानां दर्शनार्थं तत्र पर्यगाम्।

मुम्बापुरीं (बम्बई) निकषा वज्रेश्वरीतिनाम्ना प्रथिता तप्तसलिलस्रोतस्थली संराजते। एवमेव गणेशपुर्यां नित्यानन्दस्वामिसदनं समया शोभतेऽपरं तप्तकीलालकुण्डम्। अनयोर्मध्ये विद्यते एकतो भगवत्या वज्रेश्वर्या मन्दिरम्, अपरतश्च भव्यैः प्रासादोपमैर्भवनैरारामैश्चोपशोभितमाश्रमपदं साम्प्रतं गणेशपुरीति नाम्ना प्रथितम्। काश्मीरागमानुसारिणो योगशास्त्रस्य विज्ञानभैरवस्य मदीयं भाषानुवादमवलोक्य मुक्तानन्दस्वामिनोऽमेरिकादेशतो मां भृशमभ्यनन्दन्। विदेशतः परावृत्तानां तेषां दर्शनार्थमहं तत्रागच्छम्। हन्त! कतिपयमासानन्तरमेव ते शिवसायुज्यमापन्ना इति साम्प्रतमेतन्निवेदयतामस्माकं चेखिद्यते चेतः।

विस्मृतप्रायाऽऽसीदेषा वार्ता। साम्प्रतमेव कृतायां वटोदर(बड़ौदा)-यात्रायां वटोदरसंस्कृतमहाविद्यालयप्राचार्यैः श्रीमद्भिः डॉ० ज० रा० पाठकमहोदयैस्तत्रत्यायाः सुरभारतीयपत्रिकाया विंशतितमो वार्षिकाङ्कः प्रदत्तो मह्यम्। तत्र पुनरपि मया "परस्परदेवो भव" इति वाक्यं दृष्टम्। शीर्षकेणानेन तत्र प्रकाशिते निबन्धे नर्मदातीरस्थं नारेश्वराख्यं तीर्थमधिवसतां श्रीमद्रङ्गावधूतस्वामिपादानां चरित्रं चकासितम्, महर्षिकल्पेनानेन महानुभावेन तैत्तिरीयोपनिषदनुकारं छात्रदेवो भव, परस्परदेवो भव—इति वाक्यद्वयमिदम्प्रथमतया शिष्येभ्य उपदिष्टमिति च निदर्शितम्।

यद्वा तद्वा भवतु। सत्यं "परस्परदेवो भव" इति वाक्यमावर्जयतु नः स्वान्तानि। भगवती भागवती गीता भणति—

देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥ (३।११) इति।

अधुना तद् यज्ञाख्यं कर्म न तथा प्रचलति, यथा हि गीतोपदेशकाले प्रचलदासीत्।

"स्वात्मैव देवता प्रोक्ता ललिता विश्वविग्रहा" (त० रा० ३५।१२) इति च शाक्तागमा उपदिशन्ति, "सर्वं शिवमयम्" (स्व० त० ४।३१३) इति चाद्वैतवादिनः शैवागमाः। शैवशाक्तागमराद्धान्तमिममनुसृत्य भवन्तु नाम सर्वे मानवाः परस्परं देवताबुद्धिमुद्बोधयन्तः, गीतोक्तदिशा परस्परं भावयन्तश्च। प्रचलतु नाम नूतनमिदं यज्ञाख्यं कर्म, मोह-मद-मात्सर्यादिविरहिताश्च मानवा द्वेषबुद्धिं दूरीकृत्य सर्वत्र रागात्मिकया वृत्त्या पर्यन्ते प्रेम्णि पर्यवसितया प्लावयन्तु सम्पूर्णं मानवं लोकम्।

योगिराड् अरविन्दमहोदयः शैवीं शाक्तीं च पूर्वोक्तामेनां दृष्टिमवलम्ब्यैव स्वीयं विशिष्टं दर्शनमुपदिष्टवान्। स मानवमनसोऽत्युन्नतां दैवीं स्थितिं परिकल्पयति स्म। मनसश्च सा स्थितिस्तदैव समेयात्, यदा हि नाम मानवः परस्परदेवो भवेत्।

श्रद्धेयचरणा गुरुवर्याः श्रीमन्तो गोपीनाथकविराजमहोदया अखण्ड-महायोगेन सा स्थितिः सम्यगधिगन्तुं शक्येति समुपदिशन्ति। अखण्डमहायोगः खलु समग्रस्य विश्वस्य सम्भूयसमुत्थानाय कल्पते। अखण्डमहायोगस्य साधकः किल मोक्षपथमारोढुं नैव कामयते। स महाशक्तिसम्पन्नः सन्नस्मिन्नेव दुःख-व्याधिजराग्रस्ते जगति विहरति सर्वेषां दुःखापाकरणाय, यथाहि बोधिलाभा-नन्तरं महाकरुणाप्रेरितो भगवान् बुद्धो विजहार। स शिवसंकल्पः साधकः सर्वत्र प्रेम्णः साम्राज्यं विस्तारयति। महाप्रेमावस्थायां सिद्धायां योगी महाप्रकाशमयः संजायते, तस्य स्वातन्त्र्यशक्तिश्च प्रस्फुटा भवति। एष शिवभावापन्नः साधकः कथं किल मानवेषु परस्परं देवताबुद्धिं नोत्पादयेत्! यदा हि नाम साधारणोऽपि जनो मनसोऽसूयात्मिकां वृत्तिं परित्यज्य, स्वात्मनि स्पर्धामनुत्पाद्य,

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

इति गीतोक्तां समतादृष्टिं च व्यवहारेऽपि विकचीकृत्य,

नश्यन्तु दुःखानि जगत्यपैतु लोभादिको दोषगणः प्रजाभ्यः।
यथात्मनि भ्रातरि चात्मजे वा तथा नरस्यास्तु जनेऽपि भावः॥

इति च कामयमानः परस्परं मानवेषु देवताबुद्धिं समुत्पादयितुं नूनं क्षमो भवेत्।

अकृत्वेर्ष्यां विशिष्टेषु हीनाननवमत्य च ।
अगत्वा सदृशैः स्पर्धां त्वं लोके श्रेष्ठतां गतः ॥

इति च मातृचेटो भगवन्तं बोधिसत्त्वं स्तौति । एवं च सम्पूर्णस्य मानवमनसः परिष्काराय सुष्ठु खल्विदमुच्यते—"परस्परदेवो भव" इति ॥

●

संस्कृतपत्रकारिता तत्समस्याश्च

संस्कृतपत्रकारितायाः किमपि प्राचीनमितिवृत्तं नोपलभामहे । काशिकराजकीयसंस्कृतमहाविद्यालयात् साम्प्रतं सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयनाम्ना प्रथितात् षट्षष्टयुत्तराष्टादशशततमे (१८६६ ई०) ईशवीयवत्सरे जूनमासस्य प्रथमे दिनाङ्के पण्डितापरपर्यायं काशीविद्यासुधानिधिनामकं संस्कृतमासिकपत्रं सर्वप्रथमं प्रकाशितमभूदिति ज्ञायते । अग्रिमे सप्तषष्ट्युत्तराष्टादशशततमे (१८६७ ई०) वत्सरे तत एव प्रकाशिता 'प्रत्नकम्रनन्दिनी' नाम्नी पत्रिका । उभयोरनयोः पत्रिकयोः सम्पादकाः पाश्चात्त्या विद्वांस आसन् तस्मिन् महाविद्यालयेऽधिकृताः । तत आरभ्याद्यावधि शतद्वयादप्यधिकाः पत्रपत्रिकाः प्रकाशिता अभूवन्नित्येतेषां नामानि श्रीरामलखनप्रसादेन काशीस्थेन लिखिते "कालक्रमेण संस्कृतपत्रपत्रिकाणां (संस्कृतमिलितानामपि) नामावली" इति शीर्षके निबन्धे साप्ताहिकगाण्डीवपत्रस्य संस्कृतप्रगतिविशेषाङ्के प्रथमे प्रकाशितानि । एतासु काश्चन गुजराती-उडियादिभाषामिश्रिता अप्यासन् । काशीस्थः 'सूर्योदयः' कदाचन संस्कृतमासिकरूपेण कदाचिच्च त्रैमासिकत्रैभाषिकरूपेण प्रकाश्यमानः साम्प्रतमपि यथाकथञ्चित् श्वसिति । प्रकाश्यमानेषु संस्कृतपत्रेषु प्राचीतनम एष इति वक्तुं शक्यते । साम्प्रतं सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य शोधपत्रिका त्रैमासिकी "सारस्वती सुषमा" स्वीयां प्राचीनतरां परम्परां बिभर्ति । सा हि "काशीविद्यासुधानिधि" (दी पण्डित) प्रथममालायाः, द्वितीयमालायाः, तदनु "सरस्वती भवन स्टडोज" इत्याख्याया आङ्ग्लशोधपत्रिकायाः, "सारस्वतालोक" इति संस्कृतपत्रिकायाश्चानुस्यूतिं धत्ते । एवं सत्यपि

सर्वास्वेतासु पत्रपत्रिकासु कालव्यवधानं स्वरूपवैचित्र्यं च विद्यत एव। "सारस्वती सुषमा" कदाचन त्रिभाषामयी आसीत्। साम्प्रतं तु सा संस्कृत-भाषामयान् शास्त्रीयान् अनुसन्धानात्मकांश्च निबन्धान् प्रकाशयति। अधुना प्रकाश्यमानानां त्रैमासिकानुसन्धानपत्रिकाणां प्रकाशस्तम्भायमानेयमिति वक्तुं शक्यते। वाराणसीतः (रामनगरतः) एव प्रकाश्यते षाण्मासिकी पत्रिका पुराणं नाम। अत्र आङ्गलभाषामयाः संस्कृतभाषामयाश्च निबन्धाः प्रकाश्यन्ते। आङ्गलभाषानिबन्धानां संक्षिप्तः संस्कृतानुवादः, संस्कृतभाषानिबन्धानाम् आङ्गलभाषामयः संक्षिप्तोऽनुवादोऽस्य पत्रस्य स्वीयं वैशिष्ट्यम्। त्रैमासिकी शोधपत्रिका सागरिकाऽपि साम्प्रतं काशीत एव प्रकाश्यते। बहुभिर्मनीषिभिः संस्कृतपत्रपत्रिकाणामितिवृत्तमुट्टङ्कितम्। तस्य परिचयो गाण्डीवस्य द्वितीये संस्कृतप्रगतिविशेषाङ्के प्रकाशितेन 'संस्कृतपत्रकारिता' इति शीर्षकेण निबन्धे-नाधिगन्तुं शक्यते।

द्विशताधिकासु उपरि सूचितासु संस्कृतपत्रिकासु काशीविद्यासुधानिधिः, मित्रगोष्ठी, संस्कृतम्, सूर्योदयः, संस्कृतचन्द्रिका, सूनृतवादिनी, उच्छृङ्खलम्, सारस्वती सुषमा, मैसूरमहाविद्यालयपत्रिका, वैदिकमनोहरा, उद्यानपत्रिका, सूक्तिसुधा, भवितव्यम्, संस्कृतप्रतिभा, सागरिका, विश्वसंस्कृतरत्नाकरः, गाण्डीवम्, सुधर्मा, वल्लरी, शारदा इत्येतेषामन्येषां च स्वीयं किमप्यनितर-साधारणं वैशिष्ट्यं राजते। आसंश्च म० म० विधुशेखरभट्टाचार्य-अप्पाशास्त्रि-राशिवडेकर-म० म० गङ्गाधरशास्त्रि-म० म० कालीप्रसादशास्त्रि-म० म० प० गिरिधरशर्मचतुर्वेदि-म० म० नारायणशास्त्रिखिस्ते-क्षितीशचन्द्रचट्टोपाध्याय-राम-बालकशास्त्रिसदृशाः सम्पादकवर्याः। तान् शुभावसरेऽस्मिन् स्मरामो वयं नमोवाकं च तेभ्यो व्याहरामः।

संस्कृतपत्रपत्रिकासु काश्चन केषाञ्चन महत्वाकाङ्क्षापूत्यर्थं प्रादुरभूवन्, अभीष्टसिद्ध्यनुकालं च ता विलीनाः। काश्चन पत्रिकाश्च तत्सम्पादकैः प्राणपणेनापि संरक्षिताः। को नाम न जानीते संस्कृतानुरागी म० म० अप्पाशास्त्रिराशिवडेकर-कालीप्रसादशास्त्रि-क्षितीशचन्द्रचट्टोपाध्यायसदृशान् सम्पादकवर्यान्। यावज्जीवमेभिर्यथाकथञ्चित् पालिताः संवर्धिताश्च पत्रपत्रिका-स्तेषां जीवनानुकालं कालेन कवलीकृताः। अपवादरूपेणात्र केवलं गाण्डीवं वर्तते। पत्रमिदं श्रीमतां स्वनामधन्यानां पण्डितप्रवररामबालकशास्त्रिणां तिरोभावानुकालं विलीनप्रायमेवासीत्। किन्तु तस्य रक्षायै दृढपरिकरप्रतिज्ञः श्रीमान् जगन्नाथोपाध्यायः समागच्छत्, यस्योद्योगेन साम्प्रतमपि जीवत्येतत् साप्ताहिकं पत्रम्।

संस्कृतदैनिकपत्रेषु सुधर्माख्यमिदम्प्रथमतया प्रवृत्तम्। इतः पूर्वं कुत्रचित् कदाचित् किञ्चित् संस्कृतदैनिकपत्रं प्रकाशितं स्यादिति नास्माभिः श्रुतं दृष्टं वा। वर्षासु मण्डूका इव विशिष्टेष्ववसरेषु प्रादुर्भूताः केषाञ्चन पत्राणां केचनाङ्काश्चापलाय प्रचोदिता इति न्यायेन तेषां तेषां केवलां लोकैषणामेव पूरयन्ति। संस्कृतभाषायाः संरक्षां तान्येव पत्राणि त एव च सम्पादकाः कर्तुं प्रभवेयुः, ये हि पण्डितरामबालकशास्त्रिसदृशा लोकैषणातो वित्तैषणातश्च मुक्ताः सन्तः सुरभारतीं समुपासेरन्।

साम्प्रतं प्रकाश्यमानेषु संस्कृतसाप्ताहिकपत्रेषु 'भवितव्यम्' सर्वोत्तममिति सुसंस्कृतं सुपरिशुद्धं सुरुचिपूर्णं च स्वरूपमस्यावलोक्य वक्तुं शक्यते। एतदर्थं भवितव्यपरिवारस्तत्सम्पादकाश्च श्रीमन्तः श्रीधरशास्त्रिवर्णेकरमहोदया अभिनन्दनार्हाः।

संस्कृतपत्रपत्रिकाणां प्रथमा प्रमुखा समस्या वर्तते तेषामनारतं यथासमयं प्रकाशनं नाम। विरमतु वार्ता महत्त्वाकाङ्क्षापूर्तये प्रवर्तितानां पत्रपत्रिकाणाम्, को हि नाम तेषां रक्षायै समर्थो भवेत्। यास्तु पत्रपत्रिका महद्भिस्त्यागमूर्तिभिः संचालिता बहूनि हायनानि यावदनारतं प्रकाश्यमानाश्च सन्ति, तासां प्रकाशनं तेषां तेषां सम्पादकवर्याणामभावेऽपि निर्विघ्नं कथं किल प्रवर्तेतेति विचारणीयोऽयं महत्त्वपूर्णः प्रश्नः। पत्राणामीदृशानां संरक्षा कौटिलीयार्थशास्त्रादिषु धर्मशास्त्रग्रन्थेषु च प्रतिपादितेन सम्भूय-समुत्थानन्यायेन कर्तुं शक्यते।

धर्ममधरीकृत्यार्थप्रधानोऽयं युगः प्रवर्तते। प्रथमेन प्रश्नेनानुस्यूतो वर्तते द्वितीयः प्रश्न आर्थिको नाम। पण्डितरामबालकशास्त्रिसदृशाः कति कति सम्पादकाः सन्ति, ये स्वधर्मपत्न्या आभूषणान्यपि पणीकृत्य पत्रं संचालयेयुः, चिटिकासंयोजनकर्मणि च गुडधानाप्रलोभनेन स्वनप्तॄन् नियोजयेयुः। श्रीमतामप्पाशास्त्रिराशिवडेकरमहोदयानाम्, संस्कृतसम्पादकानां श्रीमतां कालीप्रसादशास्त्रिणां चरितमप्यत्र निदर्शनभूतम्। नास्ति कश्चन तादृशः साम्प्रतमिति न वक्तुं शक्यते, किन्तु "राजा कालस्य कारणम्" इति भणित्यनुसारं साम्प्रतिकानां धर्मनिरपेक्षाणामर्थकामकलुषितानां शासकानां प्रभावः सर्वत्राप्रतिहतमेधमान आस्ते, इति साम्प्रतिकपत्रपत्रिकाणां जीवनमर्थाधीनमेव संजातम्। केन्द्रीयप्रशासनेन राज्येषु केषुचित् प्रतिष्ठापिताभिः संस्कृतसंस्थाभिश्च दीयमानमार्थिकं साहाय्यं शाकाय वा स्याल्लवणाय वा स्यादित्यहो दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वेत्यत्र प्रथमः पक्षो व्याहत इव दृश्यते। संस्कृतपत्रसम्पादकैः सम्प्रति जगदीश्वर एव शरणीकरणीयः।

"सा दृष्टेन्दुः सिनीवाली सा नष्टेन्दुकला कुहूः" इत्यमरो भाषते। अमायां सिनीवालीसमाख्यायां केनचिद् भाग्यशालिना कदाचित् चन्द्रकला दृष्टा स्यात्। सेयं दशा वर्तते संस्कृतपत्रपत्रिकाग्राहकाणाम्। अध्ययनमध्यापनम्, यजनं याजनम्, दानं प्रतिग्रहश्चेति वर्तन्ते कर्माणि षट्। संस्कृतज्ञैः साम्प्रतं तेषु त्रयमेव पाल्यते। यदृच्छोपेतं पत्रमपि न ते पठन्ति। पुस्तकं च मूल्यमादाय पुस्तकविक्रेत्रे ददति भूयांसोऽस्मद्बन्धवः। अवस्थायामस्यां ग्राहकसंख्या कथं नाम वृद्धिमियात्। एवं च संस्कृतपत्रिकाणामार्थिक्याः समस्यायाः समाधानायास्माभिः सुविमृष्टव्यम्। संस्कृतानुरागिणां धनिकानां संख्या दिनानुदिनं क्षीणा भवन्ती दरीदृश्यते समन्तात्। साम्प्रतं संस्कृतानुरागिणो मठाधीशा धर्माचार्याश्च भवन्तु संरक्षकास्तेषामित्याशास्महे।

दैनिक-साप्ताहिक-पाक्षिक-मासिक-त्रैमासिक-षाण्मासिक-वार्षिकपत्रपत्रिकाणां स्वरूपविषयिणी वर्ततेऽपरा समस्या, तदनुस्यूता च लेखकविषयिणी। प्रायो विंशतिवर्षं यावन्मया सहसम्पादकत्वेन "सारस्वती सुषमा" सम्पादिता। स्वनामधन्यैः स्वर्गीयैः श्रीमद्भिः को० अ० सुब्रह्मण्य-अय्यरमहोदयैः काशिकराजकीयमहाविद्यालयप्रधानाचार्यचरैश्चिन्तितं शोधपत्रिकाणां स्वरूपं विरलविरलमेवावलोक्यते। समस्यापूर्तिप्रधानः कविताकामिनीमोहो न परिजहाति संस्कृतज्ञान् नानाविषयसमाकुलेऽप्यस्मिन् युगे। "सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते" इति वक्ति कविकुलगुरुः कालिदासः। पाश्चात्यशोधपद्धतिरस्माभिर्गाम्भीर्येणानुशीलनीया। शास्त्रीयेषु निबन्धेषु विद्वांसः प्रायः कस्यचनैकस्य ग्रन्थस्यानुपूर्वीमुद्धृत्य कृतकृत्या भवन्ति। नैकत्र प्रतिपादितस्य समानस्य विषयस्य तौलनिकमध्ययनं पूर्वपक्षोत्थापनमुखेन भारतीयैर्मनीषिभिरपि क्रियते स्म, विधीयते च। तत्र पाश्चात्त्या दृष्टिरपि समावेशार्हा। "अमरसिंहो हि पापीयान् सर्वं भाष्यमचूचुरत्" इति वर्तते प्रथित आभाणकः। स स्वयमपि वदति—"समाहृत्यान्यतन्त्राणि संक्षिप्तैः प्रतिसंस्कृतैः" इति। नूतनविषयप्रतिपादनवेलायामद्यापि सैषा पद्धतिरनुसर्तव्या नूनम्। साहित्यविधासु लघुकथा-वार्तालाप-उपन्यास-यात्रावर्णन-चरित्रचित्रणप्रभृतयो नैके नूतनाः प्राचीनाश्च विषया यथायोग्यं दैनिकादिपत्रेषु नीतिवाक्यानि च समावेशमर्हन्ति।

अत्र वर्तते लेखकानां महती भूमिका। संस्कृताध्ययनपद्धतौ लेखनकलायाः साम्प्रतं प्राय उपेक्षैव दृश्यते। सर्वविधपत्रपत्रिकाणां कृते स्वातन्त्र्येण लेखकाः समुपलब्धाः स्युरित्येतदर्थमप्यस्माभिः प्रयतनीयमेव। लेखकैः स्वयमेव स्वीया अभीष्टा विषया निश्चेतव्याः। नहि सर्वः सर्वं जानीयात्। दैनिक-

साप्ताहिकपाक्षिकपत्रेषु दिनानुदिनं घटमानानां जागत्कवृत्तानां प्राच्यपाश्चात्त्य-ज्ञानविज्ञानशाखानां च परिचयः प्राधान्येन समावेशार्हः। त्रैमासिकषाण्मासिक-पत्राणि शोधप्रधानान्येव भवेयुरित्यत्रावधातव्यम्। वार्षिकपत्राणि प्रायो विशिष्टाभिः संस्थाभिः स्वेतिवृत्तप्रख्यापनाय प्रकाश्यन्ते। अत्रापि विशिष्टा गवेषणात्मका निबन्धास्तत्रत्यैरेव विद्वद्भी रचयितुं शक्यन्ते। सन्ति विभिन्नेषु ग्रन्थालयेष्वप्रकाशिता महत्त्वपूर्णा लघुकाया ग्रन्थाः। तेषामपि प्रकाशन त्रैमासिक-षाण्मासिक-वार्षिक-पत्रेषु कर्तुं शक्यते। विशिष्टासु पत्रपत्रिकासु प्रकाशितानां विशिष्टानां निबन्धानाम्, ग्रन्थमालासु प्रकाशितानां ग्रन्थानां च परिचयोऽपि परमोपयोगी स्यात्।

संस्कृतसम्पादकेन साकेतनिवासिना श्रीमता कालीप्रसादशास्त्रिणा भणितमासीत्—"संस्कृतं हिन्दीज्ञैर्मर्धिते। यदि ते संस्कृतं कृपापात्र जानन्ति तर्हि तत् त्यजेयुः। इत्थं संस्कृतप्राणाः सुरक्षिता भविष्यन्ति। संस्कृतभाषा राष्ट्रभाषा च भवेदिति यदुच्यते तत्केवलं देशस्य हिताय, संरक्षणाय, सौख्यवृद्ध्यै च। संस्कृतं तदा मृत्युमाप्स्यति यदा समस्तं जगन्नश्येत। किञ्चेयममृता ब्राह्मी कल्पान्तेऽपि तिष्ठति, प्रलयान्तेऽपि च। अहं हिन्दीसमर्थकान् सादरं निवेदयामि यत्ते स्वविवादे संस्कृतं न पातयेयुः। अकारणं स्वोदरेषु व्यथां नोत्पादयेयुः। वयमिच्छायो यत् संस्कृते न कश्चिद् आक्षेपं कुर्यात्" इति। परं हन्त! साम्प्रतं हिन्दीसमर्थका आङ्ग्लभाषासमर्थकाश्च सर्वत्र संस्कृतभाषाप्रातिनिध्यमाचरन्ति। तेन च केचन हिन्दीविरोधिनो देववाण्या देवनागरीलिपेश्च विरोधमाचरन्ति। ते सानुरोधमस्माभिरभ्यर्थ्यन्ते —परिचिन्वन्तु ते सुरभारत्याः सौरभं स्वीयासु भाषास्वपि। जगतः प्राचीनतमा भाषा संस्कृतं नाम। "संस्कृतं नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः" इति हि भाषते महाकविर्दण्डी। साम्प्रतिकाः पाश्चात्त्या विद्वांसोऽपि नूनं मन्यन्ते प्राचीनतमं मानवीयं वाङ्मयम् ऋग्वेदं नाम।

"सारं ततो ग्राह्यमपास्य फल्गु" इति भणित्यनुसारं यदत्र शोभनं स्यात्तद् ग्राह्यं श्रीमद्भिरिति विनिवेद्य विरम्यतेऽस्माद् वाग्व्यापारात्॥

अन्तर्विद्यापीठीययुवजनसमारोहः

विगतावटूबरमासस्य २६-२७-२८ दिनाङ्केषु जम्मू-कश्मीर-राज्यस्य ग्रीष्मकालीनराजधान्यां जम्मूनगर्यां तृतीयाऽन्तर्विद्यापीठीययुवजनसमारोहः सम्पन्नः। श्रीरणवीरकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठेन जम्मूस्थेन सप्तमदीक्षान्तसमारोहावसरेऽस्य समायोजनं कृतमासीत्।

अवसरेऽस्मिन् द्विदिवसीये (२४-२५ अ०) सारस्वतमहोत्सवे विदुषां विशिष्टानि व्याख्यानानि, तत्र वादप्रमुखो विचारविनिमयश्च प्राचलन्। विचार-गोष्ठ्या अस्या अध्यक्षा आसीद् जम्मूविश्वविद्यालयस्य संस्कृतविभागाध्यक्षा डॉ० कौशल्लावल्ली शैवदर्शनानां विदुषी म० म० श्रीश्रीगोपीनाथकविराज-महोदयानां सांनिध्येन लब्धशक्तिपाता। वक्तारश्चासन् श्रीमन्तो व्रजकिशोरझा-(दरभंगा)-डॉ० वनेश्वरपाठक (राँची)-डॉ० शिवकुमार मिश्र (प्रयाग)-पण्डितदीनानाथयक्ष(कश्मीर)-डॉ० दुर्गाप्रसादोपाध्याय(नेपाल)- पण्डित-व्रजवल्लभद्विवेदाः (वाराणसी)। ग्रहणम्, मम्मटाचार्याभिमतः शब्दशक्ति-विवेकः, प्राच्यभारतीयध्वनिविज्ञानम्, कश्मीरे संस्कृतम्, कर्ममीमांसा, आगमीयं दर्शनमिति विषयान् क्रमेणाधिकृत्य निबन्धवाचनमेभिः कृतम्। गोष्ठ्या अस्याः संयोजकावास्तां डॉ० राघवप्रसादचौधरी श्रीशान्तिप्रकाशशास्त्री च। विद्यापीठस्यास्य प्राचार्यैः डॉ० मुरलीधरपाण्डेयमहोदयैः समागतानां विदुषां स्वागतं व्याहृतम्। विचारविनिमये च जम्मूविद्यापीठीयैरन्यैश्च समागतैर्विद्वद्भिः कश्मीरेषु लब्धप्रतिष्ठैः श्रीमद्भिः पण्डितबलजिन्नाथप्रभृतिभिर्भागो गृहीतः।

दीक्षान्तसमारोहस्य प्रारम्भः श्रौतस्मार्तयागेन समभवत्। अत्र प्रधानोऽध्वर्युरासीद् राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानस्य निदेशको डॉ० मण्डनमिश्रः। दीक्षान्तसमारोहे मुख्यातिथिः प्रवचनकारश्च श्रीमान् डॉ० गौरीनाथशास्त्री वारद्वयं सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य कुलपतिपदस्यालङ्कर्ता। शास्त्रचर्चा-समस्यापूर्ति-निबन्धलेखन-प्रतियोगितादीनां कृते निर्धारितानां विषयाणां सूचना डॉ० रामकरणशर्मणा सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य कुलपतिना सम्यग् विषयोपस्थापनमुखेन विनेयान् शिक्षयता ललितया गीर्वाणगिरा प्रदत्ता।

समस्यापूर्तौ विंशतिप्रायैर्विविधशास्त्रचर्चासु च नवतिमितैश्छात्रैर्भागो गृहीतः। शास्त्रचर्चा दिनद्वयं यावत् प्राचलत्। एषु कार्यक्रमेषु, दिनत्रयं

यावद् रात्रौ सार्धषड्वादनत एकादशवादनपर्यन्तं प्रचलितेषु सांस्कृतिककार्य-क्रमेषु च पुरी-प्रयाग-जम्मू-दिल्ली-जयपुर-तिरुपति-गुरुवायूरविद्यापीठेष्वधीयानैः शोधकार्यव्यापृतैश्च छात्रैः प्रवचनाध्यापकैश्च स्वीयः सहयोगोऽदायि ।

अन्तिमे दिवसेऽन्त्याक्षरीप्रतियोगिताऽपि प्राचलत् । डॉ० जयमन्तमिश्रो दरभङ्गाविश्वविद्यालयस्य कुलपतिरत्राध्यक्ष आसीत्, किन्तु स नागच्छत् । शास्त्रचर्चायां निर्णायकावास्तां कश्मीरस्थः पण्डितदीनानाथयक्षः पञ्चस्तव्यादिग्रन्थानां व्याख्याता भगवत्याः शारदाया विहाय वित्तैषणां लोकैषणां च समुपासकः, काशीस्थः पण्डितव्रजवल्लभद्विवेदश्च । महात्मनो यक्षमहोदयस्य द्वित्रा ग्रन्था अद्याप्यप्रकाशिताः सन्ति विद्यारसिकमुदारं कञ्चन प्रकाशकं प्रतीक्षमाणाः । शास्त्रचर्चायां निर्णायका आसन् श्रीमन्तो दीनानाथयक्ष-डॉ० वेदवतीघई-व्रजवल्लभद्विवेदाः । अन्ते विभिन्नानां प्रतियोगितानां पुरस्कार-वितरणं जम्मूविश्वविद्यालयस्य कुलपतिना श्री एम० आर० पुरी-महोदयेन कृतम् । पुरीविद्यापीठेन सर्वाधिकाः पुरस्काराश्चलवैजयन्ती च जिताः । प्रतियोगिताविजेतॄन् समागतान् सभ्यांश्च संबोधयता डॉ० पुरीमहोदयेन पुरीविद्यापीठेन चलवैजयन्ती जितेति प्रमोदभरः प्रकटितो मदीयेन नाम्नाऽस्य विद्यापीठस्य नाम्नः किञ्चिदिव साम्यं विद्यत इति ।

दीक्षान्तसमारोहावसरे पूर्वं जम्मूविद्यापीठप्राचार्येण डॉ० मुरलीधर-पाण्डेयेन संस्थायाः परिचयो दत्तः । दीक्षान्तभाषणं कुर्वता मनीषिप्रवरेण डॉ० गौरीनाथशास्त्रिणा नैषधमहाकाव्यकारस्य श्रीहर्षस्य—"अधीतिबोधाचरण-प्रचारणैः" इति वचनं समुद्धरता स्नातकाः प्रबोधिता यद् भवद्भिर्विद्यापीठेऽस्मिन्नधीतेर्बोधस्य च सम्यक् शिक्षा गृहीता । अधुना प्रवर्तते आचरणप्रचारणयोः कालः । भवद्भिः स्वीयेनाचरणेन गीर्वाणवाण्याः प्रचारणेन च शिष्टयोरनयोः कार्ययोरपि सम्यक् पूर्तिर्विधेयेति । अध्ययनप्रचारणयोर्यथा तथा प्रायः सर्वेऽपि प्रवर्तन्ते, किन्तु बोधाचरणयोर्वर्तते किमपि वैशिष्ट्यम् । गुणाविमौ संस्कृतज्ञेषु साम्प्रतं शिथिलीभवन्ताविव संदृश्येते । अत्र विशेषतोऽवधातव्यं न केवलं विनेयैः, किन्तु तान् शिक्षयद्भिरपि ।

शास्त्रचर्याया इमे विषया आसन्—१. साहित्ये–वाक्यं रसात्मकं काव्यम्, २. व्याकरणे–संबन्धस्य कारकत्वम्, ३. न्यायदर्शने–ख्यातिवादः, ४. वेदान्तदर्शने–लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्, ५. ज्यौतिषे–किं कुर्वन्ति ग्रहाः सर्वे यस्य केन्द्रे बृहस्पतिः, ६. कर्मकाण्डे-संस्काराणां महत्त्वम्, ७. धर्मशास्त्रे–पूर्वाभावे परः परः, ८. पुराणेतिहासे–यन्न भारते तन्न भारते, ९. सांख्ययोगे–सत्कार्यवादः,

१०. मीमांसायाम्–वेदापौरुषेयत्वम् ११. जैनदर्शने–स्याद्वादः, १२. शिक्षाशास्त्रे–गुरुशिष्यसम्बन्ध इति। साहित्ये द्वादश, व्याकरणे दश, न्यायदर्शने षट्, वेदान्तदर्शने अष्टौ, ज्योतिषे षट्, कर्मकाण्डे षट्, धर्मशास्त्रे द्वौ, पुराणेतिहासे षट्, सांख्ययोगे एकादश, मीमांसायां षट्, जैनदर्शने षट्, शिक्षाशास्त्रे च एकादश वक्तार आसन्। दक्षिणभारतीयच्छात्रेषु वक्तृत्वकला हसन्तीव दृश्यते। समारोहेऽस्मिन् वक्तृत्वकलायां पुरीविद्यापीठीयाश्छात्रा अग्रेसरा आसन्।

दक्षिणभारते गीर्वाणवाणीं प्रति सर्वाधिका उत्साहसम्पत् साम्प्रतं कर्णाटकराज्ये दृश्यते। सुधर्मानाम्नी दैनिकी संस्कृतपत्रिका प्रकाश्यते मैसूर-नगरीतः। अनारतमबाधं प्रकाश्यमानाया अस्या दैनिकपत्रिकायाः पञ्च-दशवर्षाणि व्यतीतानीति विगते जुलाईमासे दिनत्रयं यावत् (१३–१५ दि०) अखिलभारतीयसंस्कृतसम्मेलनसमारोहः सम्पन्नः। "वदतु संस्कृतम्" इति कार्यक्रमे संस्कृतसंभाषोत्सवेषु च वर्तते तत्र महानुत्साहः। ईदृशेषु सम्मेलनेषु साहित्यगोष्ठीकविगोष्ठीनामायोजनं भवत्येव, महिलागोष्ठी पत्रकारगोष्ठी चास्य वैशिष्ट्यमासीत्। विविधासु गोष्ठीषु प्रायः पञ्चाशत्संख्यापरिमितैर्विद्वद्भि-र्ललितया देवगिरा स्वीया विचाराः प्रकटिताः। सर्वेष्वेव कार्यक्रमेषु गीर्वाणवाणीं प्रति भूयानादरस्तत्प्रचारार्थमुत्साहश्च दर्शनार्ह आसीत्। सर्वस्यास्य कार्य-क्रमस्य विस्तृतं विवरणमध्यक्षीयभाषणादिकं च सुधर्माया विभिन्नेष्वङ्केषु, पारितानां प्रस्तावादीनां स्वरूपं न गाण्डीवस्याङ्केषु द्रष्टुं शक्यते। अलमप्रा-सङ्गिकचिन्तया। प्रकृतमनुसरामः।

सांस्कृतिककार्यक्रमेषु संगीतस्य नृत्य-गीत-वाद्यात्मकस्य, अभिनयस्य च दिनत्रयं यावत् प्रचलितः कार्यक्रमः सामाजिकानां मनांसि दृढमावर्जयत्। पुरीविद्यापीठस्य गुरुवायूरविद्यापीठस्य च छात्रच्छात्राभिर्विविधानि भावपूर्णानि शास्त्रीयाणि नृत्यानि प्रदर्शितानि। दूरदर्शनकार्यक्रमेषु यदा कदाचन शास्त्री-याणि नृत्यानि प्रदर्श्यन्ते। समारोहेऽस्मिन् समायोजितानां नृत्यानां स्वीयं किमपि वैशिष्ट्यमासीत्। अनायासमुपस्थितेन स्वर्णावसरेण वञ्चितः खलु दूरदर्शन-विभागः। हन्त ! मन्त्रिणां परितो भ्रमता विभागेनानेन ईदृशेष्ववसरेसु दत्ताव-धानेन भाव्यमिति प्रस्तावप्रस्तुतिररण्यरोदनप्राया सिद्ध्येत। नृत्योपस्थापनेषु पुरीविद्यापीठगुरुवायूरविद्यपीठयोः किल कस्य वैशिष्ट्यमिति निर्णेतुमशक्नुवाना निर्णायिका उभयोः समानत्वमघोषयन्। लोकनृत्येषु जम्मूविद्यापीठेन प्रदर्शितं कृषकनृत्यमप्यतीव चित्ताकर्षकमासीत्।

एकपात्राभिनये तिरुपतिविद्यापीठेन प्रस्तुतो हरिश्चन्द्राभिनयोऽतीव भावपूर्ण आसीत्। एकेनैव पात्रेण स्थानपरिवर्तनविधानेनाभिनीता विविधा

भूमिका अतीव प्रभावोत्पादिका आसन्। पद्मप्राभृतकभाणे शूद्रककृते सन्ति भूयांसि पात्राणि, किन्तु प्रयागविद्यापीठेनाभिनीतेऽस्मिन् भाणे एकमेव पात्रं मुखरमासीत्। अन्यानि च सर्वाणि पात्राणि मूकाभिनयं कृतवन्तः। एकपात्राभिनये वाऽन्येष्वभिनयकार्यक्रमेषु वा पद्मप्राभृतकभाणीयविटस्य भूमिका सर्वोत्कृष्टाऽवर्तत, किन्तु तद्भूमिकानिर्वाहक आसीत् तत्रत्योऽध्यापक इति भासकृतस्याविमारकनाटकस्याभिनयं प्रस्तुवता जम्मूविद्यापीठेनाभिनयपुरस्कारो जितः। जयपुरविद्यापीठेन प्रस्तुते मध्यमव्यायोगाभिनये वृद्धब्राह्मणीया भूमिका हृदयहारिणी आसीत्। किन्तु जम्मू-दिल्ली-विद्यापीठीयाभिनयनिर्देशकैः प्रयागविद्यापीठीयदृष्टान्तेन गद्यपद्यभागीययतिविरामोच्चारणादिषु विशेषतो दत्तावधानैर्भाव्यम्।

राधाकृष्णयोर्गोपिकानां वा प्रसङ्गे कामिनीकोमलाङ्गानां वर्णनं मर्षयामो वयम्। तामेव पद्धतिमनुसरता तिरुपतिविद्यापीठेन प्रस्तुतमभिनयं पश्यन् आदरणीय एको महानुभावो रुष्टः सन् मध्य एव समुदतिष्ठत्। गीतगोविन्दस्य भाणादीनां च केषाञ्चन पद्यानामुच्चारणे सामाजिकाः सम्यगर्थं नावगच्छन्तीति वयं साहसं कुर्मः। कालातीता ईदृशा अंशा इदानीमभिनेतव्या वा न वेति प्रश्नो घटनयाऽनया समुन्मिषति। दिल्लीविद्यापीठेन प्रस्तुता मूकहास्यनाटिका (हुड़दग हेयर ड्रेसर), जम्मूविद्यापीठेन प्रस्तुतं कव्वालीगीतं च संस्कृतसंस्कृतिबहिर्भूतमेवासीत्। मूकहास्यनाटिकासमाप्तौ मुखेन फूत्कृता वारिधारा नापितेन श्मश्रुवपनानन्तरं शीशकनलिकया प्रहिता वारिविप्रुषः सर्वथाऽनुकुर्वन्ति स्म। सम्राडकब्बरस्य मन्त्री वीरवरो गोवेषधरं भण्डं प्रस्तरकणिकाघातेन स्पन्दमानं दृष्ट्वा स्वीयं दुकूलं तस्मै ददौ, स च तमेव बहु मेने। तादृश एव स्वाभाविक आसीदेषोऽभिनयः, किन्तु व्याहतमत्र औचित्यम्। मीरा संस्कृतगीतं गायतीति कथञ्चित् समर्थयितुं शक्यते, किन्तु तेन गीतेन मीरानिबद्धभजनानुकारिणा भाव्यम्।

शोभनान् सुरुचिपूर्णान् कार्यक्रमान् प्रस्तुवन्तो विविधविद्यापीठाधिकारिणः, समारोहस्यास्य सफलसमायोजका जम्मूविद्यापीठीयाः प्राचार्यास्तत्रत्या कार्यकर्तारोऽध्यापकाश्छात्राश्च नूनं धन्यवादार्हाः। ईदृशेषु युवजनसमारोहेषु संस्कृतविश्वविद्यालया अपि यद्याहूताः स्युस्तर्हि तत्रत्यानामध्यापकानां छात्राणां च संकीर्णा दृष्टिर्विस्तृता स्यात्। पर्वतसमीपं गत्वैव उष्ट्रः स्वव्यामोहं परित्यजति॥

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्

जगच्चित्रं समुल्लिख्य स्वेच्छातूलिकयात्मनि।
स्वयमेव समालोक्य प्रीणाति भगवान् शिवः॥ इति,

"स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति"

इति च वदन्तः शैवाः शाक्ताश्च दार्शनिकाः, "विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतम्" इति च भाषमाणा दक्षिणामूर्तिस्तोत्रकाराः सुरेश्वराचार्याः प्रकाशविमर्शात्मकस्वात्मशिवातिरिक्तमद्वयब्रह्मातिरिक्तं वा सर्वमपि निषेधयन्ति।

सत्यात्मनि परसंज्ञा स्वपरविभागात् परिग्रहद्वेषौ।
अनयोः सम्प्रतिपन्नाः सर्वे दोषाः प्रजायन्ते॥

इति भणन्तो भदन्तास्तु स्वात्मानमपि प्रतिषेधयन्ति।

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

इति सुभाषितानुसारं च उदारचरितानां भवति सम्पूर्णाऽपि वसुन्धरा कुटुम्बप्राया, किन्तु लघुचेतसामस्मादृशां लौकिकः सर्वोऽपि व्यवहारः स्वार्थं परार्थं च प्रवर्तते। तदेतादृशान् स्वार्थपरार्थप्रवृत्तान् मानवान् शतकत्रयकारो भर्तृहरिरेवं विभजति—

एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये।
तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये
ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे॥

जगत्यस्मिन् स्वार्थं परित्यज्य परार्थघटकानां सत्पुरुषाणाम्, निरर्थकं परहितघातिनां मानवनामधारिणां च सहैवावस्थितिर्लक्ष्यते। "शठे शाठ्यं समाचरेत्" "आर्जवं हि कुटिलेषु न नीति", "यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्यस्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः", "आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्" इत्येतादृशानि च नीतिवाक्यानि तत्र तत्र शास्त्रेषु श्रूयन्ते,

नहि वेरेण वेराणि सम्मन्तीह कदाचन।
अवेरेण च सम्मन्ती एस धम्मो सनत्तनो॥

इति च वर्तते भगवतो बुद्धस्य समुपदेशो धम्मपदाख्ये ग्रन्थे भगवद्गीतावत् सम्पूर्णाया मानवजातेः कल्याणाय निबद्धे। बोधिवृक्षच्छायायां कठोरं तपस्यता शाक्यसिंहेन बुद्धत्वावाप्तिसमनन्तरं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय काशीं निकषा मृगदावमागत्य यो हि नूतनो निर्वाणमार्ग उद्घाटितः, तस्य प्रतिध्वनिः पौराणिकेऽस्मिन् वचस्यपि श्रूयते—

न चाहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥ इति।

"जनस्याप्युपकारमिच्छन्" इति च भाषते प्रत्यभिज्ञादर्शनवेधाः श्रीमानुत्पलदेवः। सर्वेषां मानवानां हिताय दुःखापाकरणाय च "परस्परदेवो भव" इति वाक्यमनुसरद्भिरस्माभिः सर्वैः सन्नद्धैर्भाव्यमित्यनेनायाति।

अङ्गणवेदी वसुधा कुल्या जलधिः स्थली च पातालम्।
वल्मीकश्च सुमेरुः कृतप्रतिज्ञस्य वीरस्य॥

इति गद्यकाव्यनिकषोपलायमाणस्य बाणस्य महाकवेर्वचनानुसारं कृतप्रतिज्ञस्य वीरस्य कृते सम्पूर्णाऽपि वसुधाऽङ्गणवेदिसमा आसीदेव, किन्तु साम्प्रतं दूरसंचारादिसाधनैः साऽस्माकमपि कृते गोष्पदीकृता वर्तते। शारीरिकदृष्ट्या समीपमायातोऽपि मानवः साम्प्रतं मानसिकदृष्ट्या सुदूरं पलायित इव दृश्यते। मानवाः पूर्वमपि कलहायमाना आसन्, किन्तु साम्प्रतिकेऽस्मिन् परमाणुयुगे संसारस्य दशाऽतिभीषणा महासंघर्षभरिता च दरीदृश्यते। परितो गीताप्रोक्तानामासुरवृत्तीनां साम्राज्यमेधमानमास्ते। "मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना कुण्डे कुण्डे नवं पयः" इति सूक्तिमनुसरन्तश्च मानवाः केचन अर्थवैषम्यम्, अन्ये वासनाविलसितम्, अपरे भौतिकवादप्रसारम्, इतरे च राजनीतौ प्रविष्टानां मानवानामदूरदर्शितामस्या दुरवस्थायाः कारणमामनन्ति।

अधुना हि व्यक्तिषु, देशेषु, जातिषु च महत्त्वाकाङ्क्षाऽहम्भावभरितोऽविश्वासशल्यः पारस्परिकः सुदृढं निखात इव दृश्यते। केचन व्यक्तिस्वातन्त्र्यार्थिकसाहाय्यव्याजेन साम्प्रतं समस्तं विश्वं वशयन्तोऽवलोक्यन्ते। अपरे च सामूहिकं हितमेव बहु मन्यन्तो जगज्जिगीषवः सन्ति। समन्वयः, सामञ्जस्यम्, सहनशीलता, औदार्यमित्येतादृशान् शब्दान् न ते जानन्ति, परस्परमविश्वस्ताश्च भीषणतमानायुधानाविष्कुर्वन्ति। कथमयमविश्वासशल्य उद्ध्रियेत, इत्येतदर्थं भारतीयैर्मनीषिभिरिदमुद्घोष्यते—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥ इति।

महर्षेर्व्यासस्य वचनमिदमिति वदन्ति विज्ञाः। महाभारते तन्नोपलभ्यते। अतिविशालस्य पुराणवाङ्मयस्यापि वक्ता द्वैपायनो वेदव्यास एव श्रूयते। तत्र वचनमिदमुपलभ्येत। राजपुत्रेभ्यो नीतिशास्त्रशिक्षणाय विष्णुशर्मणा निर्मिते पञ्चतन्त्रे खलु काकोलूकीये तृतीये तन्त्रे दृश्यते पञ्चोत्तरशतसंख्याकः श्लोक एषः। अस्यैवोपबृंहको वर्ततेऽपरः श्लोकः—

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥ इति।

उभयोरनयोः श्लोकयोः समान एवाभिप्रायो वर्तते। अपि च—

प्रत्याख्याने च दाने च सुखदुःखे प्रियाप्रिये।
आत्मौपम्येन पुरुषः प्रमाणमधिगच्छति ॥

इत्येवमात्मौपम्येन प्रमाणमधिगच्छन्तो जनाः कस्याप्यहितचिन्तने न प्रवर्तन्ते। इदमेव धर्मसारसर्वस्वं श्रोतव्यत्वेन मन्तव्यत्वेन चात्र निर्दिष्टम्। धर्मस्यास्य अनुष्ठानं नूनं लोकानां सुखशान्तिकरं स्यात्।

आत्मौपम्यैन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥

इति भगवता कृष्णेनापि गीतं भगवद्गीतासु। "योगः कर्मसु कौशलम्" इति तत्रत्ये वचनान्तरे स्वस्वकर्मणां सम्यक्सम्पादनकुशलतैव योग इत्यभिहितम्। एवं च स्वस्मै निर्धारितानां कर्मणां सम्यङ्निष्पादका एव योगिनोऽत्र मन्तव्याः। ते हि—"योगिनां तु विशेषोऽयं सम्बन्धे सावधानता" इति विज्ञानभैरव-वचनानुसारं सावधानमैकाग्र्येण स्वीयं कार्यजातं निष्पादयन्ति। अपि च, "आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति" इति वचनानुसारं यदात्मनोऽनुकूलं तत् परेषामपि प्रसादाय कल्पेत, यच्चात्मनः प्रतिकूलं तत्परेषामपि प्रतिकूलमेव प्रतीयेतेति भावनया प्रतिकूलवर्जनानुकूलाचरणरूपो धर्मः सकल-लोकहितावहो मानवताविकासमूलं सुखसमृद्ध्याधारभूतश्च भवेदित्यत्र कस्य नाम विमतिः स्यात्। आत्मवत् सर्वभूतानि पश्यन्ती प्रवृत्तिरियं परमोदात्ता सर्वहितसाधिका सर्वाभिलषणीया चास्ते। अस्या विकासाय सर्वे धर्माः सर्वाणि च दर्शनानि प्रवर्तनीयानि। परमात्मनो जगत्पितुः सर्वेऽपि वयं पुत्रा इति भावनाया विकासश्च करणीयः। "अमृतस्य पुत्राः" इति, "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः" इति च गायति श्रुतिः।

साम्प्रतं स्वार्थपरवशा जना आत्मनः प्रतिकूलमेव परेषामाचरन्ति। अन्यान् प्रतारयन्तः क्षणमप्येकं विचारयितुं न तिष्ठन्ति यत्ते प्रतारिताः सन्तः

पुनः कथं किल कीदृशं कष्टमनुभविष्यन्ति। यो हि जन आत्मने दुरुक्तं न वाञ्छति, किन्तु परस्मै दुरुक्तानि प्रयुङ्क्ते; आत्मनेऽत्याचारमपमानं च न रोचते, किन्तु परेष्वत्याचाराचरणं नाम साधारणी वार्तेति मनुते; आत्मनो मातुर्भगिन्याः कन्यायाश्चापमानं न दिदृक्षते, परन्त्वपरेषां मातृषु भगिनीषु कन्यासु च दुर्व्यवहारमाचरन् न लज्जते; को नाम तस्मात् परो धृष्टतरः। दुरुक्तप्रयोगे, आघातप्रत्याघातकरणे, अत्याचारापमानाचरणे च यादृशं दुःखं वेदना वा आत्मनो भवति, तादृशमेव दुःखं वेदना वा परस्यापि भवतीत्यनुभवनीयं तावत् सर्वैः।

वस्तुतस्तु सर्वोऽपि विवादः स्वपरभेदकृत एव। वयं कांश्चित् स्वान् कांश्चिच्च परान् मन्यामहे। सर्वत्र स्वजनानामानुकूल्यं कामयामहे, सुखमभिलषामः, दुःखं जिहासामः। स्वस्य कृते सुखसंभोगान् प्राप्तुं परानुपेक्षामहे, अमानुषिकानत्याचारांश्च तेषु कदाचन समाचरामः। एवमयं स्वपरभेदः सर्वं जगद् व्याकुलीकुर्वन्नास्ते। भेदश्चायं व्यक्तिजातिदेशभेदेन नानारूपतां धत्ते। एका व्यक्तिः स्वसुखाय अनुकूलतायै वा, स्वकुटुम्बस्य स्वजातेः, स्वदेशस्य च सुखाय अनुकूलतायै वा परेषु व्यक्तिजातिदेशेषु अत्याचारमाचरितुं संकोचं न विदधाति। एवं यदि सर्वेऽपि पुरुषा जातयो देशा वा स्वपरभेदज्वालावलीढाः स्युः, तदा शान्तेः का प्रत्याशा नाम।

त्रैवर्णिकानां शूद्रः परः, दक्षिण-अफ्रीकादिदेशवास्तव्यानां यूरोपीयानां कृते तत्रत्यो मूलनिवासी परः, यूरोपाऽमेरिकादिवासिनां कृते एशियादेशवास्तव्यः पर इत्येवं सर्वत्र परत्वमवलोक्यते। परस्मै च सर्वो द्रुह्यत्येव, नैव कश्चित् स्निह्यति। अत एवाद्य नरकीभूतमिदं जगत्। तदयं संकीर्णः स्वपरभेद एव यदि मूलत उत्खन्येत, सर्वत्र एकात्मतानुभूतिश्च उद्भाव्येत, सर्वे स्वात्मान एव दृश्येरन्, तदा कः किमिति कञ्चन पीडयेत्। यदि सर्वस्यापि दुःखमात्मन एव दुःखमिति समवेदनात्मको भाव उदियात्, न भवेत्तदा कुत्रापि पापमत्याचारो वा। सत्याहिंसाकरुणादानादिषु सेयं समवेदनैव प्रोच्छलन्ती राजते।

अयमेकात्मतानुभवः समवेदनाभावश्चैव देवभावः, यो हि भगवता कृष्णेन भगवद्गीतासु उपन्यस्तः। एतेन हि भावेन भाविता मानवाः साक्षाद् देवतारूपा जायन्ते। यदि सर्वोऽपि मानवसमाज एतद्भावभावितः स्यात्, तर्हि मानवलोकोऽयं साक्षाद् देवलोकः सम्पद्येत, विश्वशान्तिश्च स्वयंसिद्धा जायेत। ततश्च विश्वकल्याणाय एकात्मतानुभूतिः समतादृष्टिश्च सर्वथा सर्वदा सर्वैरादरणीया, यां विनाऽद्य समस्तोऽयं संसारः सर्वतः कलहपूरितो वर्तते, सर्वत्र पीडितानां चीत्कार एव श्रूयते, जीवनं च सर्वेषां क्लेशाक्रान्तं विद्यते। विश्वशान्तये भूमण्डलवर्तिनो निखिला नीतिविशारदाः सम्भूयसमुत्थानाय तामिमामेकात्मतानुभूतिं समतादृष्टिं

चावलम्ब्य शान्तिभरितस्य जगतो निर्माणाय संलग्नाः स्युरिति वयं कामयामहे। कूटनीतेराधारेण विश्वशान्तिः कदापि नोपलब्धा स्यात्। संकीर्णं स्वं व्यापकीक्रियेत, स्वपरभेदरज्जुः सर्वथा कर्त्येत, सर्वत्र स्वात्मैव देवता व्यापकीभूता दृश्येत, तदा विश्वशान्तिः करतलामलकवदधिगता स्यात्। भारतीयमनीषिभिः सत्यमेतत् पूर्वमेव प्रत्यक्षीकृतमासीत्, यथाहि पूर्वोद्धृतपद्येभ्यः प्रतीयते। अपि च—

वर्णिताः खलु शिबिदधीचिसदृशाः पुराणपुरुषा इतिहासपुराणेषु परार्थं स्वशरीरमप्यर्पयन्तः। स्वपुत्राणां हन्तारं विश्वामित्रं शस्त्रपाणिनं वसिष्ठो ब्रह्मर्षिः शास्त्रपाणिः क्षमयैव विजिग्ये। नारदेन मुनिना सौम्येन व्यवहारेणैव लुण्टाकवृत्तिं त्याजितो वाल्मीकिर्महर्षित्वमवाप, क्रान्तद्रष्टा महाकविश्च संजातः। भगवता बुद्धेन च क्रूरकर्माऽङ्गुलिमालोऽहिंसयैव स्वशिष्यतां नीतः। वर्तते मुनिवृश्चिककथाऽत्र निदर्शनभूता। तप्तवालुकोपरि विचेष्टमानं वृश्चिकं कश्चन मुनिर्वारं वारं तेन सन्दष्टोऽपि ररक्ष। गच्छता पथिकेन पृष्टश्च प्रत्युवाच यद् यदा एष वृश्चिकः स्वस्वभावं न परित्यजति, तदा कथमहमनेन पीडितो मुनिस्वभावं परित्यजेयमिति।

किं बहुना, साम्प्रतं महात्मना गांधिना स एव धर्मो मानवजातेः संरक्षणाय पुरस्कृतः। अत्याचारपरायणाः शासकास्तेन क्षमयैव जिताः। प्रतीकारभावनां स पापमेवाऽमन्यत। मा कश्चिदस्मत्तो दुःखं प्रापदित्यासीत् तस्य सुदृढः संकल्पः। वैरभावमाचरन्तोऽपि परेऽस्माभिर्नैव द्रोग्धव्याः, प्रत्युत तेष्वपि आत्मवदेव व्यवहर्तव्यमिति निश्चित आसीदस्य सिद्धान्तः। स हि नैव कञ्चिदपि परकीयभावनयाऽपश्यत्। तेन हि सदा स्वस्मै दुरुक्तिं प्रयुञ्जानानामपि कृते नापभाषितम्। अन्ततश्च प्राणपणेनापि विरोधिनः संरक्षिताः।

मानवमनसः शनैः शनैर्विकासेन दिव्यमानवतायाः प्रादुर्भावो भवितेति योगिनोऽरविन्दस्य मतम्। अखण्डयोगमाध्यमेन तत्सेत्स्यतीति श्रद्धेयचरणाः श्रीमन्तो गोपीनाथकविराजमहोदयाः प्रत्यपीपदन्। अखण्डसंस्कृतेः किमुत विश्वसंस्कृतेर्निर्माणमनु तद्भविता। तस्याश्च विकासस्य प्रथमं सोपानं वर्तते आत्मनः प्रतिकूलानामाचरणानां परेभ्यो वर्जनं नामेति सुष्ठु इदमुच्यते—

"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्" इति।

भारतीयायाः संस्कृतेरयं संदेशोऽद्यतनीने मानवाधिकारदिवसेऽस्मिन् सर्वैरवश्यं श्रोतव्यो मन्तव्यश्चेत्युक्त्वा साम्प्रतं विरम्यते॥

●

मयूरमरालसंलापः

– १ –

मयूरः—वन्दे गुरुदेव !

मरालः—चिरं जीव वत्स ! संवत्सरानन्तरम् इह आगतः। त्वया विना शून्यमिदं संस्कृतमन्दिरम्। पण्डितरामबालकशास्त्रिणि दिवंगते सति त्वमपि न जाने कुत्र अन्तर्हितो जातः। कथय किं वृत्तमानीतम् ? कुत्र च भ्रमणं कृतं त्वया ?

मयूरः— गुरुदेव ! भारतदर्शनाय गत आसम्। यत्र तत्र सर्वत्र "संस्कृत-साप्ताहिकगाण्डीवम्" वृत्तपत्रस्य यशःप्रशस्तिमहमशृणवम्। काशीत इदानीमस्य पत्रस्य प्रकाशनं च प्रचलतीति ज्ञात्वा भारतवर्षस्य सर्वेषां संस्कृतप्रणयिनां हृदयमत्यन्तं दूयते।

मरालः—सत्यं वत्स ! अनेन वृत्तेन महती वेदना जायते। अधुना काश्यां संस्कृतजनाः किं विचिन्तयन्ति ?

मयूरः— परमाह्लादकारको विषयो यत् संस्कृतविश्वविद्यालये कुलपतेरध्यक्ष-तायां स्वर्गीयपण्डिरामबालकशास्त्रिणः श्राद्धदिवसो गाण्डीवम्-दिवस-रूपेण समायोजितः।

मरालः—इदं ज्ञात्वा परममामोदमनुभवामि, शिष्य ! तस्यां सभायां शास्त्रिसदृशः संस्कृतसेवकः कश्चिद् दृष्टौ आपतितो न वा ?

मयूरः— आम्, गुरुदेव ! तत्र दर्शने दृष्टः साक्षाद् रामबालकशास्त्री।

मरालः—रे मूर्ख ! एवं किं जल्पसि ? अदर्शनस्य दर्शनं दर्शने कथं करोषि ?

मयूरः— प्रसीद, गुरुदेव ! सत्यं वदामि—अहं रामबालकः, त्वं रामबालकः, सर्वे रामबालकाः सन्तीत्युक्त्वा लम्बकूर्च एको वृद्धः केसरी सभामध्ये गर्जनं कृत्वा गाण्डीवशरसन्धानाय सन्नद्धो जातः।

मरालः—महद् आश्चर्यमिदम्। केसरी-दर्शनमिह को न जानाति शुभावहम्।

मयूरः— केसरीदर्शनं नूनं सत्यं जातम्। देवोत्थानैकादश्यां तेन गाण्डीवशर-सञ्चालनं कारितम्।

मरालः—साधु, साधु।

मयूरः— अपरं वृत्तं शृण्वन्तु। गाण्डीवस्य प्रतिद्वयं मयापि प्राप्तम्। एकैका प्रतिः स्वर्गीयशास्त्रिणो भार्यायै दुहित्रे च प्रदत्ता मया।

मरालः—द्वयोः का प्रतिक्रिया आसीत्?

मयूरः— तस्य वृद्धा भार्या गुञ्जेश्वरी तूष्णीं भूत्वा न जाने किं किं कल्पयति स्म, किन्तु तस्य दुहिता सावित्री अश्रुपूरिताभ्यां नेत्राभ्यां पितुश्चित्रं दृष्ट्वा अनुक्त्वैव किञ्चित् पार्श्वप्रकोष्ठे गता।

मरालः—आः! अनेन वृत्तेन त्वया द्रावितं हृदयम्। इदानीं गच्छ गृहान्॥

– २ –

मयूरः— वन्दे गुरुदेव!

मरालः—चिरं जीव वत्स। अस्ति कश्चिद् वृत्तविशेषः?

मयूरः— आम्, गुरुदेव! नवप्रकाशिते गाण्डीवपत्रेऽशुद्धयः काश्चन दृष्टाः।

मरालः—वत्स! दृष्टिदोषाऽनवधानादिजा अशुद्धयः परिमार्जयिष्यन्ते तत्र व्यापृतेन विद्वद्वृन्देन। किन्तु अयि दोषज्ञ! अन्यदपि किञ्चित् तत्र पठितं त्वया।

मयूरः— क्षमस्व गुरुदेव! अशुद्धीः परिमार्गयता मया अन्यत् किमपि न परिज्ञातम्। दृष्ट एको वाकोवाक्यस्तम्भः, यत्र नास्तिक्यप्रयोजिका सामग्री दीयते।

मरालः—मैवं मन्यस्व भोः! न साम्प्रतं बौद्धा जैनाश्चार्वाका वा प्रतिपक्षिणः सनातन्या भारतीयसंस्कृतेः। भौतिकवादः साम्प्रतमाक्रामति अध्यात्मवादम्। पूर्वपक्षमविज्ञाय न तदपाकर्तुं शक्यते। अपि च, किं न श्रुतस्त्वया कालिदासस्य—"पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि सर्वं नवमित्यवद्यम्" इत्ययं श्लोकः?

मयूरः— पठित एष श्लोको मया। किन्तु तत्रैव "सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते" इति तेन कविना उक्तम्।

मरालः—आयातोऽसि मार्गे। नूतनानां विचाराणां परीक्षायै प्रवर्तते एष स्तम्भः।

मयूरः— अङ्गीकरोमि भगवन् ! किन्तु भोग्यत्वादिविवादाः किं प्रयोजना इति नावगच्छामि ।

मरालः—शृणु वत्स ! प्रकृते रम्यतरेषु स्थलेषु तीर्थभावनां प्रचारयति प्राच्या संस्कृतिः, प्रतीच्या च तत्र होटल-निर्माणं भावयति । "होटल-सिनेमा-क्लब" इत्याख्येषु स्थानत्रयेषु साम्प्रतं समाक्रामति प्राच्यां संस्कृतिं प्रतीच्या संस्कृतिः । तस्या नूतनायाः संस्कृतेश्चाकचिक्यमेतत् ।

मयूरः— साधु साधु गुरुवर ! साम्प्रतमेकः प्रश्नो दुनोति मे हृदयम् । सम्पादकीये पठितं मया—अयं केरलीयोऽयमुत्कलीय इति । किमेतत् ?

मरालः—भारतं राष्ट्रमधुना भाषानुसारिराज्येषु प्रविभक्तम् । संस्कृतमेकला भाषा निखिलस्य भारतस्य । किन्तु संस्कृतभाषिणोऽप्यखिलभारतीयां दृष्टिं न बिभ्रति । तेषु तेषु राज्येषु तत्तद्भाषाभाषिण एव संस्कृतविद्वांसो नियोज्यन्ते, नान्यराज्यीयाः । तन्मा भूदित्येव तत्र प्रदर्शितम् । मूढ ! कोऽत्र प्रश्नस्यावसरः ?

मयूरः— क्षमस्व गुरुदेव ! किं सांस्कृतिकराजधान्यां काश्यामपि प्रवृत्तिरेषा दृश्यते ?

मरालः—आः ! धृष्ट ! तूष्णीं भव तावत् ॥

– ३ –

मयूरः—वन्दे गुरुदेव !

मरालः—चिरं जीव वत्स ! अपि कुशली त्वम् ?

मयूरः—कुत्र मे कुशलं गुरुदेव ! पूर्वं श्रीमन्तो रामबालकशास्त्रिपादाः कालेन कवलीकृताः, अधुना तस्य जामाता पण्डितचन्द्रमौलिदत्तपाण्डेयोऽपि यमसदनातिथिः संजात इति नितान्तं दूयमानमानसोऽस्मि ।

मरालः—सत्यं वत्स ! वज्रपात एष तस्मिन् कुटुम्बे । त्यागतपस्यामूर्तिना शास्त्रिमहोदयेन सर्वस्वं गाण्डीवाय समर्पितमासीत् । अधुना तस्य कुटुम्बस्य यथाकथञ्चित् पालकोऽपि नावशिष्यते । शास्त्रिपादानां पत्नी च पुत्री च सहैव द्वाभ्यां बालकाभ्यां चतसृभिः कन्याभिश्च

भोजनं वस्त्रं यौतकमिति चिन्ताशतेन दूयमाने कथं यापयिष्यतो दिवसान् ? हा हन्त ! दैव ! नितान्तं निर्घृणोऽसि।

मयूरः—गुरुदेव किमेतद् यौतकमिति ?

मरालः—वत्स ! विवाहप्रसङ्गे कन्यापक्षेण वरपक्षाय दीयमानं द्रव्यं यौतकमित्यभिधीयते। किं न श्रुतस्त्वया—"कन्यापितृत्वं खलु नाम कष्टम्" इत्येष श्लोकः। यौतकपीडितेनैव केनचित् सहृदयेन स्वानुभूतिरेषा प्रकटीकृता।

मयूरः—किं क्रियते तेन द्रव्येण गुरुदेव !

मरालः—अरे मूढ ! इदमपि न जानासि ! भण्डेषु रण्डासु च तद् व्ययीक्रियते। दान-भोग-नाशातिरिक्ता चतुर्थीयं वित्तस्य गतिस्तुरीयावस्थासु स्थितानां योगिनां देशेऽस्मिन् भारते युज्यत एव।

मयूरः—शास्त्रिपरिवारस्य किं भविष्यति गुरुदेव ! वेपते मे हृदयम्।

मरालः—तदेव भविष्यति यद् दैवेन लिखितम्। एष हि भारतीयानामस्माकं दृढो विश्वासः। न केनापि किमप्यत्र कर्तुं शक्यते।

मयूरः— गुरुदेव ! पाश्चात्त्या जना एवंविधायां परिस्थितौ किमपि किमपि कुर्वन्तीति श्रूयते।

मरालः—आः पामर ! न जानन्ति ते पारलौकिकं रहस्यम्। तदभिज्ञा वयं मरणानन्तरमेव तस्य गुणान् स्मरामः, जीवितावस्थायां च केवलं दोषानेव। येन हि तस्य पारलौकिकं जीवनमुदर्काय भवेत्।

मयूरः— क्षमस्व गुरुदेव ! न मे रोचते पारलौकिकी एषा एकान्ता दृष्टिः। अभ्युदयायापि किमपि विचेष्टितव्यम्। न केवलाया व्यक्तेः, समाजस्यापि मङ्गलाय।

मरालः—अरे मूर्ख ! "सर्वे भवन्तु सुखिनः" इति श्लोकपाठेन वयं तत् साधयामः।

मयूरः— शिरोवेदना मे संजाता गुरुदेव ? अधुना गन्तुकामोऽनुज्ञामिच्छामि।

मरालः—नस्यमेतद् गृहाण वत्स ! गच्छाधुना पुनरागमनाय ॥

– ४ –

मयूरः— भगवन् ! नमस्ते ।

मरालः—अरे जाल्म ! "गुरुदेव ! वन्दे, अभिवादये" इत्यादिकान् पूर्वप्रयुक्तान् शब्दान् विहाय किमेवं 'नमस्ते' इति भाषसे । किमधुना त्वं सत्यार्थ-प्रकाशमधीषे ।

मयूरः— भगवन् ! मा मा एवं वदतु भवान् । सिक्खधर्मखण्डनपरोऽप्यंशस्तत्र विद्यत इति तेन व्याकुलीभूतास्तन्मतानुयायिनो हिन्दूनां विरोध-माचरन्तः साम्प्रतं पञ्जाबराज्ये प्रचरणशीलाः श्रूयन्ते । अहं तु सम्पूर्णेऽपि मानवसमाजेऽखण्डैक्यबोधकान् खण्डनखण्डखाद्य-चित्सुखी-अद्वैतसिद्धिसदृशान् ग्रन्थान् पठामि । "कविताकानने ह्यस्मिन् तुलसी जङ्गमस्तरुः" इति मधुसूदनसरस्वतीभणितिर्भवद्भिः श्रुता स्यात् । तदनुसारमेवाहं पवित्रे गुरुग्रन्थे संगृहीतान् भाषानिबन्धान् बहु मानये ।

मरालः—साधु वत्स ! साधु । तर्हि किमर्थमकारणमाविष्ट इवाङ्गानि चालयन् क्रमसे । संस्कृताधीतिना तु सौम्येन सरलेन भाव्यम् ।

मयूरः— गुरुदेव ! "यवनी नवनीतकोमलाङ्गी" इत्येतादृशानां पद्यानां गायकः पण्डितराजो जगन्नाथः शास्त्रेण शरीरेण च सबलो वर्तते साम्प्रतं मम आदर्शपुरुषः, न भवादृशः सौम्यवपुर्महात्मा । अधुना शास्त्रार्थेन मल्लयुद्धेन वा नूनं नूनं सर्वान् जेष्यामीति कृतनिश्चयोऽहं चाञ्चल्या-तिशयं भावये ।

मरालः—भद्र ! मैवं भण । सन्धानाय साधवः सज्जन्ते, न विग्रहाय । यदि वर्तते उत्साहातिरेकस्तदा संस्कृतसमाजे व्यापृतं भ्रष्टाचारमुन्मूलयितुं धृतसङ्कल्पो भव ।

मयूरः— भगवन् ! साधु स्मारितं भवता । अधुना हि संस्कृतसमाजे पाठशालानां व्यवस्थापकाः केचन अविनयमाचरन्तः सन्ति । अध्यापकेभ्यश्छात्रेभ्यः पुस्तकालयेभ्यश्च प्रदत्तं शासकीयं साहाय्यमुदरम्भरिण एते कवली-कुर्वन्ति । दुर्वृत्तानामधिकारिणां साहाय्येनापरे पामराः पाठशालाया-मध्यापकानां छात्राणामभावेऽपि शासकीयं साहाय्यं लभन्ते । विद्वांसोऽपि केचन विशेषज्ञा इति कृत्वा तत्र तत्र निर्वाचनमण्डलेषु प्रेषिता उत्कोचहस्ताः सन्तोऽयोग्यान् पुरस्कुर्वन्ति । सर्वानेतानहं नूनं नूनं शिक्षयिष्ये ।

मरालः—अपि च, वत्स ! एवं कुर्वता त्वया "गोकामा एव वयम्" इति जनकस्य सुवर्णशृङ्गा गा एव नावलोकनीयाः, किन्तु "अमृतत्वस्य तु नाऽऽशाऽस्ति वित्तेन" इति याज्ञवल्क्येनोक्ते प्रस्फुरितं "येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम्" इति मैत्रेय्या वचोऽपि न विस्मरणीयम्। "नहि वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः" इति चाह भगवती श्रुतिः। वित्तेन पूतो हि पूतो भवति न तीर्थस्नानेन। अहिफेन(अफीम)-दासो नवाबः क्रमशो नियुक्तैश्चतुर्भिः सेवकैर्वञ्चितोऽन्ततः पात्र-प्रक्षालनोदकेनैव तृप्तिं लेभे। तथा त्वं न करिष्यतीति मे विश्वासः। ज्ञानोदयो यदा तदा भवतु, स अभिनन्दनार्ह एव।

मयूरः— भगवन् ! एतादृग्भिरुपदेशवचोभिरेव उद्वेजितोऽहं पूर्वप्रयुक्तान् शब्दान् परित्यज्य भवद्भ्यो 'नमस्ते' इति पदं प्रयुक्तवानस्मि। अधुना साधयाम्यहम्।

मरालः—बालिश ! स्वस्ति भवते। इदं च मा विस्मर—संस्कृताधीतिना निर्लोभिना निष्कपटेन तपस्विना भाव्यमिति वर्ततेऽभिलाषो वर्तमान-स्यापि जनस्येति ॥

– ५ –

मयूरः— गुरुदेव। वन्दे।

मरालः—आम् ! अयमस्ति समुदाचारो विनेयानां बद्धकच्छानाम्। पूर्वं तु त्वं 'पेन्ट-बुसशर्ट' धारिच्छात्रवद् 'नमस्ते' इति कुर्वन्नासीः। वत्स ! स्वस्ति भवते।

मयूरः— भगवन् ! उड्डीय कुलायात् स्वात् त्रिलोकीतो भिन्नायां सांस्कृतिक-राजधानीतिश्रुतायां वाराणस्यां वर्तमाने कस्मिंश्चित् सुसंस्कृत-संस्थाने निकामं निश्चिन्तं नर्तनेच्छयाऽगममहम्।

मरालः—शोभनं स्थलं त्वयाऽवचितम्। तत्र हि "नृत्यति पिनाकपाणौ नृत्यन्त्यन्येऽपि भूतवेतालाः" इति तवानुकृतिमाचरन्तो बहवो बान्धवास्त्वया दृष्टाः स्युः।

मयूरः— नहि बान्धवा गुरुदेव ! मत्पिच्छापहारकास्तत्रासन्। सुव्यक्तं लुञ्चितोऽहमश्रौषं दूराद् दूरतरप्रदेशेभ्यः समागतानां लब्धाङ्कपत्र-

आवेदनपत्रादिकं लब्धुकामानामाक्रन्दनम्। तत्रैकोऽधिकारिणं भाषते स्म—निबन्धन(रजिस्ट्री)पत्राणामपि भवद्भिरुत्तरं न प्रेष्यते। अधिकारिणा तु तत्र मौनमेव साधितम्।

मरालः—सांस्कृतिकराजधानीति गङ्गापुत्रसहोदराणां सूनृतं वचः समाकर्ण्य भवादृशास्तत्र बहवो गच्छन्ति। वर्तन्ते तत्र त्रयो विश्वविद्यालयाः। तत्र गत्वा सांस्कृतिकताया उत्क्रामतः प्राणान् पश्य।

मयूरः— सत्यमेव दृष्टमेतन्मया। उत्कोचग्रहणायैव नियुक्तोऽयं जनः सैरिभपत्नीपालकानां प्रवरः शास्त्रशून्य इति कस्यचन वाचं श्रुत्वा तमनुसरन् यावत् कतिचित् पदानि गच्छामि, तावत् तस्य मुखारविन्दात् कस्यचन सुकृतिनः स्तवाय निर्गलितानि लक्ष्मीसहोदरवचोवर्षीणि वचांसि श्रुतानि—अस्माकं गुरुचरणा दक्षिणामलब्ध्वा साक्षात्कारे न बृहस्पतिमपि सफलमनोरथं कुर्वन्तीति। गुरुदेव! शूर्पो वदेत, शतच्छिद्रस्तितउरपि प्रगल्भत इत्याश्चर्यम्।

मरालः—वत्स! शोभनेयं भणितिस्तव। त्वया यदुक्तं तद्राष्ट्रभाषायामेवं भण्यते—"सूप बोले सो बोले, चलनी क्या बोले, जिसके बहत्तर छेद"। चालन्या द्वासप्ततिरेव छिद्राणि भवन्ति किमिति वर्तते गम्भीराया गवेषणाया विषयः।

मयूरः— धन्योऽसि गुरुवर्य! नान्यस्मै भवद्भिर्वक्तव्यम्। अहमेव विद्यावारिध्युपाधये विषयमेनमधिकृत्य निबन्धयिष्ये।

मरालः—वत्स! शुभास्ते पन्थानः सन्तु। साधय मनोरथान्॥

●

विचारविप्रुषः

- "' प्रादेशिकतापिशाचीग्रस्ता प्राच्यवाणी ""
- भारतीयानां विभाजनप्रक्रियाऽवरोद्धव्या
- संस्कृतीनां धर्माणां च संघर्षः
- कण्टकावरणमेव केदारं कवलीकृतवान्
- धर्माध्यक्षाणां राजनीतौ प्रवेशो वर्जनार्हः""
- विरमत विरमत आर्याः !
- भ्रष्टाचारपादपप्ररोहाः
- भारतस्याखण्डतायै सांस्कृतिकमैक्यमपेक्षितम्
- प्रवादे समुत्पन्ने पदत्यागं आवश्यकः "'
- गणतन्त्रदिवसावमाननविडम्बना
- स्वर्णमन्दिरग्रन्थीनां स्वात्मविघातिनी घोषणा
- गड्डरिकाप्रवाहे पतिताः संस्कृतज्ञाः
- भारतपाकिस्तानयोः संघबद्धता "'
- संस्कृतसंस्कृत्योरवमानना नोचिता "
- किमर्थमयं महान् कोलाहलः प्रवर्तते
- जनतन्त्रे सामूहिकं नेतृत्वमपेक्षितम्
- सम्भूयसमुत्थानमावश्यकम्
- इन्द्रासनं दोलायमानमास्ते
- इमे वराकाश्चारणचरिता बुद्धिजीविनः
- अखण्डा भारतीया संस्कृतिरपेक्षिता

विचारविप्रुषः

विश्वकवेः कालिदासस्य क्रान्तदर्शित्वम्

प्रबोधिनी-एकादशीतो निखिलेऽपि भारते विशेषतस्तल्लीलाभूम्यामुज्जयिन्यां कालिदासजयन्तीसप्ताहमहोत्सवः समारब्धः। कविरयं कालिदासो न केवलं भारते, साम्प्रतं सम्पूर्णेऽपि संसारे विश्वकवित्वेन निर्विवादं मान्यते। महाकवेरस्य रचनासु काव्यत्रयी नाटकत्रयी च सर्वमान्या, ऋतुसंहारमपि चास्यैव प्रथमवयसः कृतित्वेनाङ्गीक्रियते। प्रकृते रम्यतराणां स्वरूपाणाम्, मानवस्य कोमलतमानां भावानां च सममेव याथातथ्येन समुन्मीलनी महाकवेरस्य लेखनी चित्रकारतूलिकाप्रेरणास्रोतस्त्वेनानारतं प्रवहमाना आप्रलयान्तं स्थास्यति। अस्य प्रत्येकं श्लोकः प्रत्येकं वर्णनं च सर्वाङ्गभरितं ललितं चित्रं चेतसि पाठकस्य समुन्मीलयतीति को नाम सहृदयस्तथ्यमिदं न स्वीकुर्यात्। अभिज्ञानशाकुन्तलानुवादपठनेनैव पाश्चात्यानां विदुषां मनसि संस्कृताध्ययनाय रुचिरुदपद्यत, फलतः संस्कृतभाषा साम्प्रतं विश्वप्रतिष्ठामाप। कविर्हि क्रान्तदर्शी भवति। "पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि सर्वं नवमित्यवद्यम्" इति वदन् स स्वात्मनः क्रान्तदर्शित्वं स्फुटं ख्यापयति। सम्पूर्णस्य भारतोयवाङ्मयस्य, सर्वासां ललितकलानाम्, राजनैतिक-सामाजिक-परिस्थितीनां च तदानीन्तनीनां दिग्दर्शनं भवति महाकवेरस्य रचनासु। कविरयं भारतीयभूगोलस्यासाधारणो विद्वान्, समन्वयात्मिकाया भारतीयसंस्कृतेश्च महान् प्रतिष्ठापक आसीत्। विशालेन हृदयेन, सूक्ष्मया दृष्ट्या, व्यापकया कल्पनाशक्त्या चायं प्रकृतेर्मानवमनसश्च प्रच्छन्नान् प्रकाशांश्च स्वरूपान् भावांश्च तथा याथातथ्येन प्रकाशयति, यथा क्षणं तादात्म्यमापन्न इव, स्तब्ध इव, चकितचकित इव तिष्ठति मानवः। सत्यं तस्य रचनासु तदानीन्तनस्य भारतीयजीवनादर्शस्य सांस्कृतिकपरम्पराणां च यथार्थं चित्रं प्रतिफलितं भवति।

मध्यप्रदेशमुख्यमन्त्रिणा उज्जयिन्यां "कालिदास एकेडमी" इति संस्थायाः स्थापना प्रतिज्ञाता। अभिनन्दनार्ह एष निर्णयो मध्यप्रदेशप्रशासनस्य। सर्वप्रथममितो विश्वस्य सर्वास्वपि भाषासु प्रकाशितानां कालिदाससंबद्धानां ग्रन्थानां निबन्धादीनां च परिचायको ग्रन्थः (कालिदास बिब्लिओग्राफी) संगृहीतः स्यात्, कालिदासग्रन्थानां कस्यचन प्रामाणिकतरस्य संस्करणस्याधारेण

कालिदासपदावली च (कालिदास कंकार्डेंस) सम्पूर्णा स्थाननिर्देशपुरस्सरं प्रकाशिता स्यादिति भृशमपेक्ष्यते। कालिदासग्रन्थानां भूयांसि विशिष्टानि व्याख्यानटिप्पणादीनि साम्प्रतमप्रकाशितान्येव ग्रन्थागाराणां शोभां वर्धयन्ति। तानि सर्वाणि प्रकाशनीयानि। देशस्य मुख्येषु कतिपयेषु स्थानेषु संस्कृतनाटकानां विशेषतः कालिदासनाटकानां सर्वाङ्गसुन्दरोऽभिनयोऽनारतं प्रवर्तेत यथा, तथा सम्पादनाय भरतनाट्यशास्त्रवर्णितलक्षणैर्मण्डितानां नाट्यशालानां निर्माणमपि केन्द्रीयप्रान्तीयप्रशासनसहयोगेन कर्तव्यताकोटिमानेतव्यम्। एवंविधाभिरेव प्रवृत्तिभिः संचाल्यमानाभिस्तस्य महाकवेः समक्षं समुचितः श्रद्धासुमनोऽञ्जलिः समर्पितः स्यात्॥

हा हन्त ! डाक्टरशास्त्रिणो दिवंगताः

वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य उपकुलपतिचरा डॉ० मङ्गलदेवशास्त्रिणः प्रायः ८५ वर्षे वयसि २८.१०.८६ दिनाङ्के दिवंगता इति संसूचयतामस्माकं चेखिद्यते चेतः। उत्तरप्रदेशस्य 'बदायूं' मण्डलाभिजना इमे 'आक्सफोर्ड' विश्वविद्यालयतो 'डी० फिल०' इत्युपाधिमधिगत्य प्रथमं काशीविद्यापीठेऽध्यापकपदे, तदनु च काशिकराजकीयसंस्कृतमहाविद्यालयस्य सरस्वतीभवनपुस्तकालये पुस्तकालयाध्यक्षपदे नियुक्ताः। सत्वरमेव एते संस्कृतमहाविद्यालयीयपरीक्षाणां सम्यक् संचालनाय प्रस्तोतृ(रजिस्ट्रार)पदे, तदनु च प्रधानाचार्य-(प्रिंसिपल)पदे न्ययुज्यन्त। एषु सर्वेषु पदेषु सम्यक्तया कार्यं निर्वाहयद्भिरेतैर्महानुभावैः सरस्वतीभवनपुस्तकालयस्य, संस्कृतपरीक्षाणाम्, सरस्वतीभवनानुशीलनपत्रिकायाः (सरस्वतीभवन स्टडीज), सरस्वतीभवनग्रन्थमालायाश्च संचालनाय कापि नूतना सरणिरनुसृता, १९४२ ई० वर्षे च प्रक्रान्तं तैः "सारस्वती सुषमा" इति नामधेयायाः संस्कृतानुसन्धानपत्रिकायाः प्रकाशनम्। परम्परागतसंस्कृतशिक्षायामेभिर्महानुभावैराधुनिकविषयान् चिरकालतोऽध्ययनाध्यापनपरम्परासु समुपेक्षितान् प्राचीनाननेकविषयांश्च नूतने पाठ्यक्रमे संनिवेश्य संस्कृतपरीक्षाणामुपादेयता लोकप्रियता च वृद्धिमानीता। प्रायस्तत्प्रवर्तित एव संस्कृत-पाठ्यक्रमः साम्प्रतमखिलभारतीयं स्वरूपं बिभर्ति। देशस्य स्वातन्त्र्याधिगमसमकालमेव संस्कृतमहाविद्यालयोऽयं संस्कृतविश्वविद्यालयस्वरूपं धारयतु—इति धिया तैस्तदानीन्तनाः प्रशासका भृशं प्रेरिताः, विश्वविद्यालयस्य स्वरूपनिर्धारिणी च योजना काचन तेषां पुरत उपस्थापिता। तदनुरूपमेव १९५८ ई० वर्षे वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालयः प्रतिष्ठामाप।

शास्त्रिवर्या वैदिकवाङ्मयस्य, भाषाविज्ञानस्य, भारतीयसंस्कृतेश्च निष्णाता विद्वांस आसन्, एषु विषयेषु नैके ग्रन्था अपि तैः संदृब्धाः। भारतीयसंस्कृतेः सप्त विकासक्रमा एभिर्निर्धारिता आसन्। तेषु वैदिकधाराया उपनिषद्धारायाश्च परिचायकौ द्वौ ग्रन्थौ मुद्रितौ वर्तेते। साम्प्रतं ते पौराणिकधारामवगाहन्त आसन्। एतद्विषयकास्तेषां निबन्धा हिन्दीभाषायाः सुप्रथितायां 'कल्पना'-पत्रिकायां धारावाहिकरूपेण प्रकाशिताः सन्ति। भारतीयसंविधानस्य संस्कृतानुवादसमितेरेतेऽन्यतमाः सदस्याः समभूवन्। एवं संस्कृतशिक्षायाः, संस्कृतभाषायाः, भारतीयसंस्कृतेश्च गौरववर्धनाय सततं प्रयतमानानां शास्त्रिवर्याणां कार्यकलापाश्चिरस्मरणीया भविष्यन्ति। भूतभावनो भगवान् भूतनाथस्तस्य गतात्मनश्चिरप्रतिष्ठायै प्रार्थ्यते ॥

बिहारराज्ये वैदिकशोधसंस्थान-स्थापना

बिहारराज्ये भागलपुर-मण्डलान्तर्गते बंसी-नामके स्थाने ४-११-७६ दिनाङ्केऽखिलभारतीयवैदिकसम्मेलनमुद्घाटयता मुख्यमन्त्रिणा डाक्टरजगन्नाथमिश्रेण वैदिकशोधसंस्थानस्य स्थापनायै प्रतिज्ञातम्। तैरुद्घोषितं यद् दरभङ्गा-स्थिते कामेश्वरसिंहसंस्कृतविश्वविद्यालये सर्वाङ्गपूर्णो वैदिकविभागः स्थापयिष्यते, अन्येषु च राज्यविश्वविद्यालयेषु संस्कृतस्नातकोत्तरकक्षासु वेदाध्ययनानुशीलनयोः प्रोत्साहनाय सविशेषमायोजनं करिष्यत इति। वैदिकपाठशालाभ्यस्तत्राध्ययनाध्यापननिरतेभ्यश्छात्रेभ्योऽध्यापकेभ्यश्च आर्थिकसाहाय्ययोजनाऽपि तैः प्रकटीकृता। अभिनन्दनार्ह एष बिहारराज्यस्य निर्णयः।

वेदा नाम विश्वस्य प्राचीनतमं वाङ्मयम्। भारतीयानां जीवातुभूता इमे साम्प्रतं विश्वस्य सर्वास्वपि प्राच्यशोधसंस्थासु सादरमधीयन्तेऽध्ययनानुशीलनयोरभिनवया पद्धत्या। इतो भिन्ना खलु भारतीया वेदाध्ययनपद्धतिः। अनुश्रव इति, श्रुतिरिति च उच्यते वेदः। गुरुपरम्परयैवाधीतो वेदः फलदो भवतीति श्रद्दधानैर्भारतीयैः पदक्रमजटाघनाद्यष्टाङ्गविकृतिपद्धत्या वर्णपदस्वराद्यभ्यासेन इयदवधि वेदानुपूर्वी रक्षिता सर्वथा विपरीतास्वपि परिस्थितिषु। महाराष्ट्रराज्ये आन्ध्रप्रदेशे च कियद्भ्यो वर्षेभ्यः प्रतिवर्षं ते इमे वैदिका विद्वांसः संमान्यन्ते। साम्प्रतमुत्तरप्रदेशप्रशासनमपि प्रतिवर्षं तदेतत् शुभकर्म समाचरति। एवमेव सर्वेष्वपि राज्येषु वैदिका विद्वांसः संमानिताः स्युरिति वर्ततेऽस्माकं मनोरथः। केन्द्रीयं प्रशासनमपि विशिष्टान् वैदिकविदुष आर्थिकसाहाय्य-सम्मान-पुरस्कारादिप्रदानेन प्रोत्साहयेच्चेद् जीविकाचिन्तावात्याचक्रतः सर्वथा विनिर्मुक्ता एतेऽस्मिन् पुण्यकर्मणि बाढं गाढं सलग्नाः स्युः।

विगतासु शताब्दीषु यूरोपीयैर्विशेषतः शर्मण्यदेशीयैर्विद्वद्भिर्वेदानां विशिष्टानुशीलनपद्धतिराविष्कृता, यया हि देवतावाद-भाषाविज्ञानसदृशीनां विविधानामाधुनिकीनां ज्ञानविज्ञानयोः शाखानामाविर्भावः समजायत। निरुक्तकारस्य महर्षेर्यास्कस्येयमुक्तिः सर्वथा प्रसङ्गेऽस्मिन् स्मरणार्हा—"स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्"। स एव आह—"पारोवर्यवित्सु च भूयोविद्यः प्रशस्यो भवति"। वैदिका विद्वांसो भूयोविद्याः सन्तः प्रशस्यतमा भवन्तु यथा, तथा करणाय प्राच्यानां पूर्वमीमांसाधर्मशास्त्रप्रभृतीनां विषयाणां प्रौढं ज्ञानं नितान्तमपेक्षितम्। वैदिकं कर्मकाण्डं लुप्तप्रायमिव दृश्यते। तदुद्धारायापि प्रयत्नोऽपेक्षितः॥

अखिलभारतीया प्राच्यविद्यापरिषद्

नवम्बरमासस्य १०-११-१२ दिनाङ्केष्वखिलभारतीयप्राच्यविद्यापरिषदः २८ तममधिवेशनं धारवाड़नगरे कर्नाटकविश्वविद्यालयपरिसरे पद्मश्री-सी० शिवराममूर्तिमहोदयानां भारतीयकलाशास्त्रमर्मज्ञानामध्यक्षतायां सम्पन्नम्। परिषदियं षोडशविभागेषु विभक्ता आसीत्। परिषदोऽस्या अधिवेशनान्येकान्तरितेन वर्षेण प्रायः सम्पद्यन्ते।

पाश्चात्यदेशीयैः प्राच्यविद्यापण्डितैः १८७३ ई० वर्षे पेरिसनगरे स्थापिताया अन्ताराष्ट्रियप्राच्यविद्यापरिषदः प्रतिच्छायेवेयं परिषद् १९१९ ई० वर्षे पुण्यपत्तनस्य-भाण्डारकरप्राच्यशोधसंस्थायाः सहयोगेन जनिमलभत। पूर्वमत्र आङ्गलभाषाया एव प्राबल्यमासीत्। अधुना तु पञ्चाशदधिकाः संस्कृतभाषामयास्तावन्त एव च हिन्दीभाषायां निबद्धाश्चापि निबन्धा अत्र समागताः पठिता विवेचिताश्च भवन्ति। प्रत्यधिवेशनं प्राच्यविद्यापरिषदि समवेता विद्वांसो बाहुल्येन संस्कृतभाषाभिज्ञा भवन्ति। प्रतिसम्मेलनं संस्कृतनिबन्धानां संख्या एधमाना स्यादिति युगानुरूपोऽयं स्वाभाविकः पन्थाः। तेन हि प्राच्यानां प्रतीच्यानां च संस्कृताध्ययनविधीनां परस्परं सामञ्जस्यं संपद्येत। यतो हि भारते ज्ञानविज्ञानयोर्विभिन्नशाखानां प्रातिनिध्यं कुर्वतां विदुषामेतादृशः समवायो न क्वाप्यन्यत्र दृश्यते।

अस्या परिषदः १९४१ ई० वर्षे दरभङ्गानगरे सम्पन्नेऽधिवेशने नवविभागवती पण्डितपरिषदपि समायोजिता। ततः प्रायः प्रत्यधिवेशनमेषा प्रवर्तते, यत्र निबन्धादिवाचनातिरिक्तं प्राचीनाध्ययनप्रणालीनिकषभूतस्य शास्त्रार्थस्य समायोजनं भवति। साम्प्रतं सम्पन्नायाः पण्डितपरिषदोऽध्यक्षाः श्रीमन्तो

वी० एस० रामचन्द्रशास्त्रिणो नाविदिता वाराणसेयानाम्। एतर्हि कति वर्षाणि यावत् काशीहिन्दूविश्वविद्यालयस्थितस्य संस्कृतमहाविद्यालस्याध्यक्षपदमलङ्कृतम्। पण्डितपरिषदि पठितमेषां भाषणमत्रैवाङ्केऽविकलं प्रकाश्यते। तत्र केचन सामयिकाः प्रश्नाः समुद्भाविताः पण्डितप्रवरैः, तेषां समाधानाय देववाणीसमुपासकाः प्रतिबोधिताश्च। दर्शनाध्ययनस्य प्राचीनप्रणाल्यां बौद्धादिसिद्धान्तग्रन्थानां केचिदावश्यका भागा घटनीया इति तेषां प्रस्तावः सविशेषमवधेयः। विगतासु शताब्दीषु ज्ञानविज्ञानयोर्नूतनासु शाखासु समुद्भावितानां भौतिकानां सिद्धान्तानां परिचायकः पाठ्यक्रमो महते उपकाराय स्यात् संस्कृताध्ययनस्य प्राचीनां प्रणालीमनुसरतां संस्कृताध्येतॄणाम्। अखिलभारतीयसंस्कृतसम्मेलनं साम्प्रतं न प्राणिति। संस्कृतविश्वपरिषदपि तथैव दृश्यते। साम्प्रतं प्राच्यविद्यापरिषदन्तर्गता पण्डितपरिषदेवाखिलभारतीयमेकमात्रं सङ्गमस्थलमवलोक्यते। अत्र प्राच्यदृष्टीनां प्रतीच्यदृष्टीनां च विदुषामेकत्र समवायो भारतराष्ट्रस्य विश्वस्य च कल्याणाय कल्पेत॥

शिवभावमापन्नाः कविराजमहाशयाः

स्वयं समागत्य मिताध्वना शिवः
प्रशास्य शिष्यान् कविराजसंज्ञया।
प्रदाय लोकेभ्य उदारमागमं
पुनर्निजं शुद्धपदं समाविशत्॥

महामहोपाध्याय-पद्मविभूषणादिविरुदप्रदानपुरस्सरं भारतीयशासनेन, डी० लिट्०-हेमपदकादिप्रदानेन च नानाविश्वविद्यालयैः, मुम्बापुरीस्थ-एशियाटिक-सोसाइटी-प्रभृतिसंस्थाभिश्च सबहुमानं सभाजिता जीवन्मुक्ताः परमयोगिनः श्रीमन्तः कविराजमहाशयाः शिवभावमापन्ना इति श्रद्धासमारोह आयोजितस्तत्प्रतिष्ठापितेन योगतन्त्रविभागेन सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्याङ्गभूतेन।

योगतन्त्रशब्दोऽयं पातञ्जलयोगसहितानां सर्वासां शाखाप्रशाखाभेदभिन्नानां यौगिकदृष्टीनाम्, आगमशास्त्रमिति तन्त्रशास्त्रमिति वा नाम्ना प्रथितस्य विशालस्य वाङ्मयस्य शैव-वैष्णव-शाक्त-बौद्धादिभेदभिन्नस्य च समाहारं सूचयतीति श्रीमद्भिः कविराजमहाशयैरेव विभागस्यास्य स्थापनावसरे निर्दिशितम्। योगशास्त्रस्य मनोवैज्ञानिकमाचरणप्रधानम्, तन्त्रशास्त्रस्य च दार्शनिकं सांस्कृतिकं चाध्ययनं कविराजमहाशयानामभिप्रेतमासीत्। तेषां

दृष्ट्या अद्वैतवादि तान्त्रिकं दर्शनं प्रत्यभिज्ञापदाभिलप्यं शून्यवादिनो बौद्ध-दर्शनस्य, मायावादिनः शाङ्करदर्शनस्य च परिष्कारकमासीत्, येन हि भारतीयं दर्शनं जगतोऽलीकतामपहाय सत्यतामङ्गीचकार। रामानुजाद्या-चार्याणां वेदान्तव्याख्यानानि सर्वाणि वैष्णवैः शैवैश्चागमैस्तन्त्रैश्च प्रभाविता-नीति सप्रमाणमेभिः प्रकाशितम्।

योगतन्त्रार्णवमथने मन्दरायमाणा मतिरेषामखण्डमहायोगामृतमावि-ष्कृतवती। परस्परसं श्लिष्टानां विक्षिप्तानां च भावानामेकत्र योजनमेव महा-योगपदाभिलप्यम्। अखण्डता चास्य अखण्डे महाकालेऽवस्थितिः। तत्र हि सर्वेषां भावानामभेदः प्रतिष्ठितो भवति, अथ च तेषां स्वकीयं स्वरूपं नावलुप्यते। स्वत्वस्य संकोचेन हि मानवः पीड्यते। स्वत्वसंकोचकरान् जगति प्रसृतान् विभ्रमानपहाय मानवो वैश्वात्म्यमात्मनः स्फुटं पश्यति। मानवमात्रे प्रादुर्भवतु विशालेयं दृष्टिरिति विश्वसमष्टेरभ्युदयाय विश्वसंस्कृतिम्, निःश्रेयसाय च विश्वा-हन्तां दिदर्शयिषतोऽस्य मनीषिणोऽधीतिबोधाचरणप्रचारणेष्वाचरणस्यातिशयितं महत्त्वमासीत्। "कलौ वेदान्तिनो भान्ति फाल्गुने बालका इव" इत्याभाणकलक्ष्या मा भूमेति परिहाय लोकैषणामेते एकान्तवासनिरता आचरणप्रधानां नूतनामिमां दृष्टिमाविष्कृतवन्तः। दृष्टिरेषा यथा यथार्थतां भजेत, तथा सम्भूयसमुत्थानाय क्रियमाणा प्रयत्नसन्ततिरेव तेषां कृते श्रद्धाप्रदर्शनस्य श्रेयान् पन्था इति को नाम सुप्रबुद्धो नाङ्गीकुर्यात्॥

आयुर्वेदचिकित्सापद्धतिः समुन्नेतव्या

वनौषधीनां पञ्चाङ्गप्रदर्शनीं समुद्घाटयता उत्तरप्रदेशस्य राज्यपालेन महामहिम-डॉ० मर्रि-चेन्नारेड्डीमहोदयेन आयुर्वेदस्य महत्त्वं ख्यापयता आधुनिक-चिकित्साविज्ञानेन सह भारतीयचिकित्सापद्धतेः समन्वयाय आधुनिकचिकित्सा-महाविद्यालयानां पाठ्यक्रमे परिवर्तनस्य प्रस्तावः कृतः, एतदर्थं केन्द्रीयप्रशासनेन एक आयोगः संघटनीय इति च तैः संस्तुतम्।

शरीरग्रन्थिषु, सन्धिस्थलेषु, मांसपेशीषु च भृशं प्रविष्टो वातव्याधि-रचिकित्स्य इति पाश्चात्यचिकित्साशास्त्रिणामभिमतम्। प्रायः पञ्चाशीतिप्रकारा व्याधयस्तैः सनामनिर्देशं विव्रियन्ते, किन्तु तेषां चिकित्सायां तैः साफल्यमद्या-वधि नाधिगतम्। आयुर्वेदचिकित्सापद्धतिस्तु औषधप्रयोगेण, पथ्यसेवनेन, योगासनादिना च सर्वविधा वातव्याधयः सुचिकित्स्या इति मनुते। तामिमामायु-र्वेदचिकित्सापद्धतिं पाश्चात्याश्चिकित्साशास्त्रविदः प्राचीनां कालातीता-मवैज्ञानिकीं रूढिवादिनीं च मन्यन्ते। तत्र न तेषां तावान् दोषो यावान् वर्ततेऽत्र-

त्यानामायुर्वेदचिकित्सकानाम्। ते हि तस्याश्चिकित्सापद्धतेर्वैज्ञानिकतां शाश्वतिकतां च साधयितुमक्षमा इव दृश्यन्ते। शल्यचिकित्सादृष्ट्या पाश्चात्यानामारोपाः कामं सत्या भवन्तु, किन्तु आयुर्वेदीयं चिकित्साविज्ञानं निदानपद्धतिश्च सर्वातिशायिनी शाश्वतिके चेत्यत्र न संशीतिलेशोऽपि। पाश्चात्या ओषधयो रोगान् दमयन्ति शीघ्रम्, किन्तु प्रकारान्तरेण ता नूतनान् दुश्चिकित्स्यान् व्याधीन् उत्पादयन्ति। आयुर्वेदीया चिकित्सापद्धतिस्तु शनैः शनैर्व्याधिं शमयति, न जनयति च रोगान्तरान्। आयुर्वेदीयचिकित्सापद्धतेर्वैशिष्ट्यमिदं ख्यापनीयं तज्ज्ञैः सप्रमाणम्। साम्प्रतं भारते आयुर्वेदशास्त्रं ज्योतिर्विज्ञानं च जीविकायै पठ्यते। ईदृशा जनाः शास्त्रयोरेतयोः कथं नाम उपकारं विदध्युराकण्ठं स्वार्थसाधनाय निमग्नाः, न तु शास्त्रसंरक्षणाय बद्धपरिकराः।

हर्षस्यायं विषयो यत् पाश्चात्यदेशेषु दुश्चिकित्स्यानां वातव्याधीनां शमनाय संयुक्तराष्ट्रसंघस्य स्वास्थ्यसंघटनं भारतीयचिकित्सापद्धतिं वित्तसाहाय्यप्रदानेन प्रेरयति। श्रीलङ्कानिवासिनो विश्वस्वास्थ्यसंघटनस्य निदेशका डाक्टरबी०टी०एच०गुणरत्नमहोदया एतदर्थं धन्यवादार्हाः। श्रीलङ्कायामायुर्वेदचिकित्सापद्धतिः सविशेषं मान्यते। भारतीयानां चिकित्सकानां समक्षं स्वीयायाश्चिकित्सापद्धतेर्वैशिष्ट्यख्यापनाय स्वर्णावसरोऽयमुपस्थितः। पाश्चात्यदेशेषु प्रसृतानां वातव्याधीनां चिकित्सायां यदि ते साफल्यं लभेरन्, तर्हि विश्वमानवतायाः कल्याणेन सह आयुर्वेदचिकित्सापद्धतेरपि महत्त्वं ख्यापयेयुः।

केरलराज्ये पूर्वतन-कोचीन-राज्यशिक्षाकेन्द्रे त्रिपुरुन्तुरा-नाम्नि स्थाने १३ दिसम्बरतोऽखिलभारतीयमायुर्वेदसंमेलनमायोजितं वर्तते, यत्र समस्तदेशस्य आयुर्वेदविदः समवेता भविष्यन्ति। आयुर्वेदचिकित्सापद्धतेः समुन्नयनाय विश्वप्रचाराय च तैरुपाया अन्वेषणीयाः, शास्त्रस्यास्य समुद्धाराय च तैराधुनिकी वैज्ञानिकी पद्धतिरङ्गीकरणीया, शास्त्रसमुन्नयनप्रवृत्तिश्च तदभिज्ञेषु प्रोत्साहनीया। शास्त्रानुरागेण क्षुद्रस्वार्थप्रहाणेन च शास्त्राणां समुन्नयनं कर्तुं शक्येत, नान्यथा॥

कुम्भविशेषाङ्कोपहारः

साप्ताहिकगाण्डीवस्य कुम्भविशेषाङ्कोऽयं समुपहारीक्रियते श्रीमतां सुरभारतीसमुपासकानां ग्राहकाणां वाचकानां च पुरतः। अत्र त्रिवेणीसंगमतीर्थराजप्रयाग-अक्षयवट-कुम्भपर्वसंबद्धा विविधाः शास्त्रीया ऐतिहासिका आध्यात्मिकाः सांस्कृतिकाश्च निबन्धास्तत्तद्विषयनिष्णातानां विदुषां कृपाभरेण समुपलब्धा यथाक्रमं निवेशिताः सन्ति। सहैव विभिन्नानां सम्प्रदायानाम्,

अखाडापदवाच्यानां साधुसंन्यासिसंघटनानां च परिचायका निबन्धा अपि महता परिश्रमेण संदृब्धा अत्र अवलोकिताः स्युः श्रीमद्भिः। एषां सारासारविवेचने गुणदोषपरीक्षणे च मरालायमाना विद्वांस एव प्रमाणम्। "आधुनिकसमाजे साधुवर्गस्याकर्षणम्" इत्यस्मिन् निबन्धे भारतीये समाजे साधुसंन्यासिन उद्दिश्य श्रद्धातिशयस्य व्याहारो यथार्थतां ख्यापयति। न केवलं भारतीयस्यैव समाजस्य, सम्पूर्णस्यापि मानवसमाजस्य समानेयं मानसी परिस्थितिः। चमत्कारं नमस्करोति साधारणोऽपि विशिष्टोऽपि च जनः। किमेषा प्रवृत्तिर्मानवसमाजस्य उत्कर्षाय भविष्यति ?

वस्तुतस्तु सामाजिक-धार्मिक-सांस्कृतिकप्रश्नानां समाधानायैव महापर्वणामीदृशानां यथार्थ उपयोगः। विगतायां सहस्राब्द्यां भारते वर्षे धार्मिक-सांस्कृतिक-राजनीतिक-क्षेत्रेषु अद्भुतानि अचिन्त्यानि परिवर्तनानि संजातानि। विज्ञानेन देशकालयोः संकोचः कृतः। साम्प्रतं सर्वत्र प्राचीनानामर्वाचीनानां च जीवनमूल्यानां विलक्षणः संमर्दोऽवलोक्यते। औचित्यानौचित्यविवेके विषीदन्ति विद्वांसोऽपि। अर्थस्य प्राबल्यं वर्धतेतराम्। धर्मप्राणोऽयं देशो विस्मरति स्वकीयमाध्यात्मिकं गौरवम्। सभासंमेलनादिषु जोघुष्यमाणमादर्शजीवनं यापयन्ति अङ्गुलिगण्या एव जनाः। विभिन्नानां धर्माणां दृष्टीनां च संमर्दः सुन्दोपसुन्दन्यायेन सर्वसंहारकरः प्रवर्तते नास्तिक्यानन्दवर्धनः। किमत्र विधेयम् ? प्रयागे त्रिवेणीतटं निकषा कल्पिते कुम्भनगरे धर्माचार्याणां महान् संमर्दो वर्तते। विचारयन्तु ते तादृशं व्यावहारिकं समाधानम्, येन हि भारतीयस्य धर्मस्य, संस्कृतेः, संस्कृतभाषायाश्च संरक्षणं समस्तस्य मानवसमाजस्य उत्कर्षाय निष्पद्येत।

अस्याङ्कस्य सम्पादने संस्कृतविश्वविद्यालयस्यागमाध्यापकेन श्रीमता रघुनाथमिश्रमहोदयेन, सरस्वतीभवनपुस्तकालयविदुषा श्रीजनार्दनपाण्डेयमहोदयेन च, सामग्रीसंकलने च प्रयागस्थगङ्गानाथझाविद्यापीठविदुषा मुरलीधरपाण्डेयमहोदयेन महानायासोऽङ्गीकृत इति वयं तेभ्यः कृतज्ञतां विज्ञाप्य विरमामः॥

शिवसायुज्यमापन्ना दर्शनकेशरिणः

अस्य साप्ताहिकपत्रस्य प्रधानसम्पादकाः काशीपण्डितसभाध्यक्षाः स्वतन्त्रतासेनान्यः पाणिनिपद्धतेः समुद्धारका भारतराष्ट्रपतिना पुरस्कृताः श्रीमन्तो गोपालशास्त्रिणो दर्शनकेशरिणो ज्येष्ठमासीयकृष्णपक्षैकादश्यां भौम-

वासरे (८-६-८३) रात्रौ सपादैकवादने एकनवतितमवर्षीये वयसि शिवसायुज्य-मापन्ना इति सूचयतामस्माकं नितान्तं चेखिद्यते चेतः। साम्प्रतं भौतिकेन देहेन न ते द्रष्टुं शक्यन्ते, शक्ष्यन्ते वा, तथापि यशःशरीरेण तु ते चिरकालं स्थास्यन्त्येव।

अयं महानुभावो बिहारराज्यस्य सीमानमण्डलान्तर्गते जगन्नाथपुरे ग्रामे १९४९ तमे वैक्रमे (१८९२ ई०) वत्सरे आश्विनमासीयकृष्णपक्षाष्टम्यां पूर्वाषाढानक्षत्रस्य चतुर्थे चरणे स्वजनुषा सरयूपारीणब्राह्मणेषु शाण्डिल्यगोत्रस्य पण्डितक्षेमधारित्रिपाठिनः कनिष्ठपुत्रत्वेन गृहमालोकयामास। १९१५ ख्रीष्टाब्दे हिन्दूविश्वविद्यालयतस्तेन स्वर्णपदकप्राप्तिपुरस्सरमाचार्यपदवी समुपलब्धा, बिहारराज्यतश्च काव्यन्यायतीर्थपरीक्षे ससम्मानं समुत्तीर्णे। प्रथममेव महानुभावो हरिश्चन्द्रविद्यालये काशीस्थे मुख्याध्यापकपदे नियुक्तः पाठितवान् संस्कृत-मनेकान् छात्रान्। ततः काशोविद्यापीठे स्वतन्त्रतासंग्रामकेन्द्रस्थलीभूते राष्ट्ररत्नेन शिवप्रसादगुप्तेन महात्मना गांधिना च संस्थापिते १९२१ ई० वर्षतः १९४७ ई० वर्षं यावत् संस्कृतं दर्शनशास्त्रं चाध्यापितवान्। तत्रानेन पाठितः श्रीलालबहादुरशास्त्री भारतस्य प्रधानमन्त्रिधुरां सगौरवमधारयदिति को नाम न जानीते। श्रीराजारामशास्त्री च प्रथितो दार्शनिको विचारकश्च काशी-विद्यापीठस्य कुलपतिपदमलङ्कृत्य साम्प्रतमप्यवकाशदिनानि सामाजिकेषु शैक्षणिककार्यक्रमेषु च यापयति। काशोविद्यापीठ एव दर्शनाध्यापनं कुर्वतोऽस्य कार्येण सन्तुष्टा भारतरत्न डॉ० भगवान्दास-आचार्यनरेन्द्रदेव-डॉ० सम्पूर्णानन्द-डॉ० मङ्गलदेवशास्त्रिसदृशाः सहयोगिनो विद्वांसो भृशमभ्यनन्दन्। १९३२ तमे ख्रीष्टाब्दे कांग्रेसान्दोलने जनपदाध्यक्षत्वेन यदा स कारागारे निक्षिप्तस्तदा काशोपण्डितसभाध्यक्षः पञ्चाननतीर्थचूडामणिस्तं वर्धापयति स्म। तदनु स एवास्याः संस्थाया आजीवनमध्यक्षपदवीमलङ्कृतवान्।

महामहिम्नः पण्डितमदनमोहनमालवीयस्य प्रेरणया शास्त्रिवर्यः पाणिनि-पद्धतेः प्रचाराय कृतसङ्कल्पो जातः। कार्येऽस्मिन् आर्यसमाजस्य प्रथितो मनीषी श्रीब्रह्मदत्तजिज्ञासुमहोदयोऽस्य प्रधानः सहयोगी आसीत्। पाणिनिपद्धत्यां वैशिष्ट्यमर्जयित्वाऽनेन महानुभावेन तद्विषयका बहवो ग्रन्था विनिर्मिताः, श्रीमतो गोविन्दवल्लभपन्तमहोदयस्य मुख्यमन्त्रित्वकालेऽनयैव पद्धत्या स विधानसभासदस्यान् लक्ष्मणपुरे (लखनऊ) संस्कृतं पाठयति स्म। पाणिनि-पद्धतेः प्रचारार्थमेव तेन डॉ० सम्पूर्णानन्दस्य मुख्यमन्त्रित्वकाले बदरीनाथन्यास-साहाय्येन जोशीमठस्थाने श्रीबदरीनाथवेदाङ्गमहाविद्यालयस्य स्थापना कृता,

बहवश्च छात्रा अनयैव पद्धत्याऽध्यापिताः। पाणिनिपद्धतिमनुसृत्य निर्मिता विंशत्यधिकास्तस्य ग्रन्थाः साम्प्रतमुपलभ्यन्ते।

इदमीयं विशिष्टं वैदुष्यमभिवीक्ष्यैव शारदापीठस्य शङ्कराचार्यैः, श्रीभारत-धर्ममहामण्डलसंस्थया काशीस्थया, वङ्गप्रदेशस्य प्रसिद्धेन महात्मना ताराचरण-देवेन, अन्याभिश्च बह्वीभिः संस्थाभिः दर्शनकेशरि-महामहाध्यापक-पण्डित-राजाद्युपाधिप्रदानेन सत्कृतः। भारतराष्ट्रपतिनाऽपि संस्कृतविद्वद्भ्यः प्रतिहायनं प्रदीयमानेन सत्कारेण सभाजिताः शास्त्रिवर्याः प्रायश्चत्वारिंशत्संख्याकान् विशिष्टान् ग्रन्थान् ग्रथितवन्त इति १९८३ ई० वर्षे प्रदत्तेन सर्वोच्चपुरस्कारेण सम्मानिता उत्तरप्रदेशप्रशासनस्य "संस्कृत-अकादमी" इत्याख्यया संस्थयाऽपि।

शास्त्रिवर्यो बहुकालं यावत् संस्कृतसुप्रभातस्य सम्पादनमकरोत्, अस्य साप्ताहिकस्य गाण्डीवस्य च विगताष्टवर्षेभ्यः प्रधानसम्पादक आसीत्। सम्पादकीयं वक्तव्यं स एव नियमितरूपेण लिखति स्म। तेन स्वकीये गृहे एव स्थापिते संस्कृतशिक्षामन्दिरे पाणिनिपद्धत्याऽनेके जिज्ञासवः संस्कृतभाषया शिक्षिताः, नूतना च काचन सरलसंस्कृतशिक्षणपद्धतिराविष्कृता। सोऽयं दर्शनकेशरी यथा संस्कृतप्रचाराय बद्धपरिकर आसीत्, तथैव स्वतन्त्रतासंग्रामे भागं गृहीत्वा काञ्चन नूतनां भारतीयां संस्कृतिमुन्मीलयितुमपि कृतनिश्चयोऽभूत्, यतो ह्यस्मिन् प्राचीनाभिनवविचारयोरद्भुतः समन्वयः परिलक्ष्यते स्म। राजर्षिपुरुषोत्तम-दासटण्डन-डॉ० मङ्गलदेवशास्त्रि–श्रीराजारामशास्त्रिसदृशानां विदुषां नेतॄणां च सहयोगेन तेन स्वतन्त्रताप्राप्त्यनन्तरमेव कार्यमेतत् प्रारब्धमासीत्। तन्निर्मितेषु नैकेषु ग्रन्थेषु तस्य संस्कृतविषया विचारा द्रष्टुं शक्यन्ते। शास्त्रि-वर्यः परमो गोभक्त आसीत्। प्रत्यहं स गोमूत्रेण स्वनेत्रे प्रक्षालयति स्म। गोमहिमाभिनयनाटकमस्यात्र निदर्शनभूतं राजते। गीता-कर्मयोगशास्त्रम्, वीराङ्गनावैभवम्, नारीजागरणशास्त्रम्, भारतीया संस्कृतिः, हरिजनस्मृतिः, संस्कृतसंस्कृतिशिक्षकम्, सर्वदर्शनसमन्वयः, भारतसावित्री—इत्याद्या-स्तद्विरचिता ग्रन्था नूनमाप्रलयं तस्य यशःपताकामुद्धूलयिष्यन्ति। धवलकूर्च-हिमानीसरणीतो निस्सरन्ती धवला हासगङ्गा तस्य पुनाति स्म परिषत्सु सर्वानिव पारिषद्यान्।

जोशीमठीयवेदवेदाङ्गमहाविद्यालयतोऽवकाशग्रहणानन्तरं काश्यामागत्य शास्त्रिवर्या विद्यातपोमूर्तीनां महामनीषिणां श्रीश्रीगोपीनाथकविराजमहोदयानां सकाशात् सविधि शैवागमशास्त्रमधीतवन्त इति वार्धक्येऽपि तेषां विद्याव्यस-

नितासरित् प्रवर्धमानेवासीत्, तया च पाविता नैकेऽन्तेवासिनः। चित्तनदी नाम भवति उभयतोवाहिनी। वहति पापाय श्रेयसे च। शास्त्रित्रर्याणां सा सर्वेषां श्रेयसे सर्वदा प्रवहति स्म। साम्प्रतं शिवसायुज्यमापन्नानां तेषां ग्रन्थाकारेण परिणता वाणी सर्वेषामस्माकं श्रेयसे पथप्रदर्शिका भवेत्, इत्येव भगवान् विश्वेश्वरः प्रार्थ्यते॥

प्रादेशिकतापिशाचीग्रस्ता प्राच्यवाणी

देवाः परत्र स्वबोधसंक्रान्तयेऽस्यामेव भाषन्त इति प्राच्यवाणी संस्कृत-भाषा देववाणीति निगद्यते। पितामहो विधाता ब्रह्मा अस्यामेव ब्राह्मीलिपि-लिखितायां देववाण्यां मानवानां ललाटे भाग्यलेखं लिखति। वैदिकी लौकिकी चेति द्विधा भिन्ना सेयं भाषा विश्वस्य प्राचीनतमासु भाषासु भण्यते। विश्वस्य प्राचीनतमं वैदिकं ज्ञानं विज्ञानं चास्यामेव भाषायामुपनिबद्धम्, यदाधारेण साम्प्रतं भाषाविज्ञान-नृवंशशास्त्र-देवतावादसदृश्यो ज्ञानस्य विज्ञानस्य च शाखाः साम्प्रतिकैः पाश्चात्त्यैः प्राच्यैश्च विद्वद्भिः साटोपं समुपबृंहिता। भूमण्डलस्य पूर्वोत्तरगोलार्धयोः स्थितेषु प्रायः सर्वेष्वपि देशेषु सानुरागं पठन्त्येनां केचन मनीषिणः, गवेषणादिकार्यं च निष्पादयन्ति यदा, तदा भारतस्य कथैव का! यत्र हि भाषेयं प्रादुर्भूता। सूत्रे मणिगणा इवास्यां भाषायां सम्पूर्णं भारतीयं जीवनमोतं च प्रोतं च विद्यते। जन्मतो मरणपर्यन्तं निष्पाद्यमानेषु संस्कारादिषु प्रतीकरूपेण गहनं प्रविष्टा सेयं बहुसंख्यकभारतीयजनमानसं परिष्करोति। संस्कृतं प्रायः सर्वासां भारतीयानां भाषाणां जननीति निगद्यते। साम्प्रतमपि सर्वा भारतीया भाषाः स्वीयां शब्दसम्पत्तिमित एव वर्धयन्ति।

"चिकित्सितज्यौतिषतन्त्रवादाः पदे पदे प्रत्ययमावहन्ति" इति सत्येयं भणितिः। प्रत्यक्षमेषां फलमनुभूयत इति सम्पूर्णेऽपि देशे विद्यानामासां प्रसारो विद्यते। कर्मकाण्डनिष्पादनाय, पुराणादिकथाप्रवचनप्रावीण्यलाभायाऽपि सा सर्वत्र पठ्यते। क्षेत्रेष्वेषु कथं नाम कदर्यां दशामानीयते संस्कृतमिति नास्माकं समालोचनाया विषयः। सम्पूर्णेऽपि देशे तत्र तत्र विशिष्टेषु प्रदेशेषु व्याकरण-न्याय-मीमांसा–वेदान्तादिशास्त्राणां प्रौढमध्ययनाध्यापनं प्रचलति। देशेऽस्मिन् विदेशीया आङ्ग्लभाषा आङ्ग्लभाषामाध्यमेनैव पाठ्यते। परं हन्त! प्रौढानेतान् विषयान् पाठयन्तो विद्वांसः प्रादेशिकीं भाषामेव प्रयुञ्जते। विरलतरा दृश्यन्ते तादृशा अध्यापकाः, ये हि संस्कृतभाषामाध्यमेन विषयान् उपदिशन्ति। अपि च, प्रायः सर्वेष्वपि प्रदेशेषु सन्ति राजकीया महाविद्यालयाः, साम्प्रतं च स्थापिताः केचन

संस्कृतविश्वविद्यालयाः, केन्द्रीया विद्यापीठाश्च, यत्र प्रौढा इमे विषयाः पाठ्यन्ते। पूर्वमेषु राजकीयेषु महाविद्यालयेषु निखिलेऽपि भारते स्वस्वविषये प्रथिततमा विद्वांसो नियोज्यन्ते स्म। तदद्यत्वे न तथा। वेतनमानादिषु वृद्धिगतेषु प्रान्तीयाः संस्कृताध्येतारस्त्वरिता वक्तारो भवन्ति प्रान्तीयं धनं किमर्थमन्य-प्रान्तादागतेभ्यो दीनेभ्यो दीयत इति। येन केन प्रकारेण सर्वत्र स्वीया एव नियोज्यन्त इति प्रादेशिकतापिशाचीग्रस्तेयं प्राच्यवाणी प्रतिष्ठितेषु पदेषु क्षुल्लकराजनीतिनिपुणान् नूतनान् छात्रांश्च नियुक्तान् दृष्ट्वा तिमिरोपहतं स्वीयमनागतमनुशोचति। भारतीयेन प्रशासनेन प्राच्यवाण्या रक्षायै केन्द्रीयं संस्कृतसंस्थानं स्थापितम्। तत्रत्या अधिकारिणो यदि सार्व-देशिकीं दृष्टिं धारयेयुस्तदा देववाण्या गले पतित आधिदैविकोऽयं व्याधिः पराकृतः स्यात्। तेषु तेषु राज्येषु स्थापिताः संस्कृतविश्वविद्यालया उद्देश्यमेतत् साधयिष्यन्तीति तु दुराशामात्रम्।

अखिलभारतीया विश्वप्रतिष्ठिताऽप्येषा भाषा भारतीयै राजनीतिज्ञैर्न तथा राष्ट्रभाषापदवीं प्रापिता, यथाहि इसराइल-देशवास्तव्यैर्यहूदीयैः प्राचीना हिब्रू-भाषा सबहुमानं राष्ट्रभाषात्वेन समुद्घोषिता। इतरशिक्षावत् संस्कृत-शिक्षापि राज्याधिकृतो विषय इति च तेषां निश्चयो गण्डस्योपरि स्फोट इव परिपीडयति संस्कृतानुरागिणः। भाषात्रयाध्ययननियमान्तर्गतं पूर्वं नैकेषु राज्येषु संस्कृतभाषाऽध्याप्यते स्म। दक्षिणभारतीया आङ्गलभाषां प्रादेशिकीं भाषां हिन्दीभाषां च पठन्तु, उत्तरभारतीयाश्च आङ्गलभाषां प्रादेशिकीं भाषां काञ्चन दक्षिणभारतीयां भाषां च पठन्तु इति त्रिभाषाध्ययननियमं परिशोध्य सामान्याध्ययनतो निष्कासिता सा साम्प्रतम्। एवमियमपरा प्रादेशिकता-पिशाची ग्रसन्तीव दृश्यते देववाणीम्। छात्राः प्रायो न पठन्ति गभीरान् विषया-निति त्वन्या कथा। आधुनिकानां नैकेषां विषयाणामध्ययनाय विदेशेषु गच्छन्ति भारतीयाश्छात्राः। संस्कृताध्ययनार्थं पूर्वं विदेशीयाश्छात्राः काश्यामागच्छन्ति स्म, साम्प्रतं ते पूना-नगरं गच्छन्तीति श्रूयते। किं सोऽपि समयः समागमिष्यति, यदा भारतीयाश्छात्राः संस्कृतभाषाविशेषाध्ययनार्थं विदेशेषु गमिष्यन्ति? महात्मना गान्धिना कथञ्चित् संरक्षिता भारतीया संस्कृतिः साम्प्रतं त्वरितया गत्या संस्कृतच्छात्रेष्वपि विनाशोन्मुखी दृश्यते। प्रादेशिकतापिशाचीग्रस्तो जनो न परिचिनोति स्वीयं भारतीयं स्वरूपम्। दोषोऽयं तदैव परिहृतो भवेत्, यदा प्रादेशिकीं दृष्टिमवधूय केन्द्रीयविषयेषु संस्कृतशिक्षायाः समावेशः स्यात्, सम्पूर्णेऽपि च देशे तस्या अध्ययनाध्यापनादीनां समानमानं स्वरूपं निर्धारितं भवेत्॥

परीक्षाणां पवित्रता

१९८४ वर्षीयपरोक्षारम्भात् पूर्वं सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालय-कुलपतिना श्रीमता डॉ० रामकरणशर्ममहोदयेन परीक्षार्थिनः, अध्यापकाः, प्रधानाचार्याः, केन्द्राध्यक्षाः, अभिभावकाः, अधिकारिणश्च परीक्षाणां पवित्रतायै विज्ञापिताः, तेषां सहयोगश्च प्राथितः। समयानुकूला साहसभरिता चेयं विज्ञप्तिः सर्वथा समभिनन्दनार्हा। स्वकीयदोषाणां स्वयमेव दर्शनं तत्प्रतीकारा-भिलाषश्च भवति प्रथम उत्तमश्च उपायो दोषापनुत्यै। दृढेन संकल्पेन, साहस-भरितेन प्रयासेन, सर्वेषां सहयोगेन च संस्कृतपरीक्षास्वपि प्रवृत्ता दोषाः परिहृताः स्युरिति को नाम संस्कृतप्रणयी किल साधारणीकरणाख्यां साहित्य-विधां स्वान्त उच्छूनां नानुभवेत्। पावनेऽस्मिन् कर्मणि आधुनिकाश्छात्रनेतारः परीक्षासंबद्धाः कर्मचारिणश्च किमिति न समाकारिताः कुलपतिनेति हेतुरत्र चिन्तनीयः।

काशिकराजकीयमहाविद्यालयपरीक्षाणां निखिलेऽपि भारते पूर्णा प्रतिष्ठा वर्तते स्म। अत्रत्य आचार्य एव प्राधान्येन प्रायः सर्वासु पाठशालासु संस्कृत-महाविद्यालयेषु च सादरं नियुज्यते स्म। परीक्षाणां पवित्रतैव तत्र प्रथमो हेतुरासीत्। साम्प्रतं सा पवित्रता शोचनीयां दशामापन्ना। वाराणस्यामेव एका परीक्षासंस्था आसीत्। यत्र कुत्रापि यथेच्छं तस्याः केन्द्राणि स्थाप्यन्ते स्म, तत्र च यः कोऽपि यस्य कस्यापि नाम्ना उत्तरपुस्तिकाः पूरयति स्म। साम्प्रतं प्रायः सैव दशा संजाता सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयपरीक्षाणाम्। किमत्र कारणमिति चिन्तनीयमस्माभिः।

राजनैतिकस्वतन्त्रताप्राप्त्यनन्तरमार्थिकस्वतन्त्रतालाभाय प्रवर्तते राष्ट्रम्। राजनैतिकस्वतन्त्रताप्राप्तये ये आदर्शाः स्थापिता महात्मना गांधिना, सर्वे ते परित्यक्ता आर्थिकस्वतन्त्रतालाभाय कृतप्रयत्नैराधुनिकै राजनीतिज्ञैः। परिणामतः प्रायः सम्पूर्णं राष्ट्रमार्थिकबुभुक्षया परिपीडितं दरीदृश्यते। नैतिकता-विहीनेयं प्रबलायिता आर्थिकी दृष्टिर्न परित्यजति संस्कृतज्ञानपि। संस्कृतज्ञोऽपि साम्प्रतं याज्ञवल्क्यवत् सुवर्णशृङ्गा गाः पश्यति। तेनैव "अमृतत्वस्य तु नाशाऽस्ति वित्तेन" इत्युक्ते "येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम्" इति मैत्रेयीवचस्तस्मै साम्प्रतं नैव रोचते। "त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः" इति हि समुद्घोषः श्रुतीनाम्। न केवलं वैयक्तिकी मुक्तिः, आर्थिकं स्वातन्त्र्यमपि त्याग-मुखेनैव समधिगन्तुं शक्यत इति सत्यं संस्कृतज्ञाः सत्वरं साक्षात्कुर्वन्तु। तदेतत्

सत्यपमश्यद्भिरर्थलोलुपैः साम्प्रतिकैः संस्कृतज्ञैरङ्गीकृता आधुनिकी आर्थिकी दृष्टिरेव भवति प्रथमं निदानं संस्कृतपरीक्षाणामपवित्रतायाः।

पुरा भूमिपतीनां यष्टिकुन्तादिधारिणो मल्लाः सहायका भवन्ति स्म। त एव साम्प्रतं नानारूपधरा राजनेतॄणां सहायकाः संजाताः। तेषु केचन विश्वविद्यालयेषु, अन्ये च यत्र तत्र सर्वत्र प्रचरन्ति, 'पञ्जाब'-सदृशीः समस्याश्च समुत्पादयन्ति। तेषां साहाय्येन परीक्षामुत्तीर्णा नैके तथाकथिता विद्वांसो विश्वविद्यालयेषु प्रचरन्तः सन्ति। एतादृशा जना एव प्राधान्येन परीक्षासु अव्यवस्थां समुत्पादयन्ति। पाठशालासु, महाविद्यालयेषु, विश्वविद्यालयेषु चाध्यापकत्वेन नियुक्ता अध्यापनसामर्थ्यहीनाः स्वनेतृभिः स्थापितां परम्परामेव प्रथयन्ति। अपि च, सद्वाऽसद्वा इति अन्यदेतत्। उत्कोचग्रहीतारोऽधिकारिणः सन्तीति प्रवादः प्रायस्तदनुवर्तिनोऽपि जनान् तदर्थं प्रोत्साहयति। एवमर्थपिशाची सेयं वक्त्रत्रयेणानेन परीक्षास्वपावित्र्यं जनयन्ती अट्टहासमामुञ्चति। एभिर्मुक्ता एव परीक्षार्थिनः, अध्यापकाः, प्रधानाचार्याः, केन्द्राध्यक्षाः, अधिकारिणश्च परीक्षाणां पवित्रतायै प्रयतेरन्। तत्र के नाम वराका अभिभावकाः! वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थिता एव मनीषिणः संस्कृतपरीक्षासु पावित्र्यमादध्युरिति तु सत्यम्। न चैतन्महनीयं कर्म विज्ञप्तिमात्रेण साधयितुं शक्यते॥

भारतीयानां विभाजनप्रक्रियाऽवरोद्धव्या

बृहत्तरमासीत् कदाचिद् भारतम्। पूर्वस्यां दिशि कोरियाजापानपर्यन्तं तदा तस्य प्रभाव आसीत्। अद्यावधि निवसन्ति तत्र बौद्धधर्मावलम्बिनो जनाः। इण्डोनेशिया-कम्पूचियाप्रभृतिदेशेषु दृश्यन्ते विशालानि वैष्णवानि, बौद्धानि, शैवानि च मन्दिराणि। उत्तरस्यां दिशि तिब्बत-चीन-मंगोलियापर्यन्तं बभूव तस्य विस्तारः। पश्चिमायां वर्तते ऋग्वेदसहोदरस्य जेन्दावेस्ताग्रन्थस्य प्रसवभूर् ईरानदेशः। प्राचीने मेसोपोटामियास्थले साम्प्रतम् ईराकनाम्ना प्रथिते समुपलब्धाः केचन इष्टकालेखा मित्रवरुणादिनामाङ्किताः। तत्रत्यस्यैव उरनामकस्थानस्य मोहेजोदड़ोस्थानस्य च संस्कृतिः समानाऽऽसीदिति साधयन्त्यैतिहासिका उत्खननशास्त्रनिष्णाताः। शालातुरीयो भगवान् पाणिनिर्गन्धारदेशीय आसीत्। दाविकाकूलाः शालयः, कापिशायनं मधु, पाण्डुकम्बलादयश्च तेष्वेव देशेषु भवन्ति स्म। शक्तिसंगमतन्त्रप्रदिष्टायां भारतीयायां षट्पञ्चाशद्देशव्यवस्थायां सर्वेषामेषां नामानि परिगण्यन्ते। प्रबलेन इस्लामाक्रमणेन सर्वमेतद् विच्छिन्नम्। चीनदेशीयाक्रमणसमये न कोऽप्यवर्तिष्ट भारतपक्षीयो देशोऽस्मिन् बृहत्तरे भारते। नेपालदेशोऽपि नास्मभ्यं स्निह्यति। तिब्बतदेशः साम्प्रतं

चीनदेशत्वेनैव संबोध्यते भारतीयेषु वृत्तपत्रेषु। किं बहुना, भारतस्य मुख्या भूमिरपि बहुधा विभक्ता दृश्यते साम्प्रतम्। नूतनं च खालिस्तानान्दोलनं प्रवर्धमानमास्ते। किमत्र कारणम्?

करुणामूर्तेर्भगवतो बुद्धस्य, अपरिग्रहादिव्रतप्रतिष्ठापकस्य भगवतो महावीरस्य चाविर्भावभूमिर्भारतमेव, किन्तु बौद्धा जैनाश्च "येषां च विरोधः शाश्वतिकः" इति पाणिनिसूत्रोदाहरणे 'श्रमणब्राह्मणम्' इत्येवं स्मर्यन्ते। इतिहासप्रसिद्धः सम्राडशोकः शिलालेखेषु देवतानाम्प्रिय इति विशेषणेन संमानितः, "देवानाम्प्रिय इति च मूर्खे" इति च वार्त्तिकं दृश्यते। भट्टकुमारिलो बुद्धोपदिष्टामहिंसां श्वदृतिधृतकल्पां मनुते। "हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम्" इति च वचनं जागर्तितराम्। विष्णोरवतारेषु भगवतो बुद्धस्य ऋषभदेवस्य च जैनधर्मप्रतिष्ठापकस्य नामनी वर्तेते, किन्तु मोहनावेतावतारावितिं तयोरुपदेशा नैव कदापि स्वीकार्या इति पुराणादिषु बहुशः प्रतिपाद्यते। भगवत्पादः शङ्कराचार्यो बादरायणीयानि सूत्राणि व्याचक्षाणो न केवलं बौद्धजैनयोः, प्रत्युत सांख्ययोग-वैशेषिक-पाशुपत-पाञ्चरात्राणामपि प्रामाण्यमपाकरोति। वैदिकधर्मप्रतिष्ठापके साम्प्रतिके हिन्दीभाषामये सत्यार्थ-प्रकाशाख्ये ग्रन्थेऽपि भगवत्पादसरणिरेवानुसृता।

इस्लामाक्रमणेन स्वदेशत उन्मूलिताः पारसीका भारते वसन्तोऽपि हिन्दूनामपेक्षया इस्लामधर्मावलम्बिभिः साकं कथं सात्म्यमावहन्ति? अत्रत्या-नामिस्लामधर्मावलम्बिनां पूर्वजा भारतीया एवासन्, कथं तैर्देशस्य विभाजनं कारितम्? भारतीयसैन्यसाहाय्येन प्रादुर्भूतो वंगदेशः कथं न कृतज्ञतां ज्ञापयति? भारतविभाजनसमये सिक्खबन्धवो यैर्नितरां नृशंसतया न्यक्कृताः, कथमद्य तेषामेव साहाय्यं परिगृह्णन्ति? कथं च भारते वर्षे धर्मान्तरणगतिः साम्प्रतमपि नावरुद्धा? इतीदृशां प्रश्नानामुत्तराणि पूर्ववर्णितायां दृष्टावन्वेषणीयानि। कथमेषा प्रवृत्तिः परिहृता भवेदिति भवति स्वाभाविकः प्रश्नः।

"त्रयो वेदस्य कर्तारः" इति भाषमाणो लोकायत(चार्वाक)दर्शन-प्रवक्ता बृहस्पतिर्देवगुरुत्वेन गण्यते। महाभारतकारो भगवान् वेदव्यासो न केवलं सांख्य-योग-पाञ्चरात्र पाशुपतमतानामप्रतिहतं प्रामाण्यमुररीकरोति, प्रत्युत "मनः पूर्वंगमा धर्माः" (पृ० ५९५५) इत्यादिषु, नारायणीयोपाख्यान-धृतोपरिचराख्यायिकायां च बौद्धान् जैनांश्चोपदेशान् संगृह्णातीव। "न चाहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्। कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥" इत्यादिषु वाक्येषु भगवतो बुद्धस्य करुणा प्रतिध्वनितेव दृश्यते। "पुराणमित्येव

न साधु सर्वं न चापि सर्वं नवमित्यवद्यम्" इत्याह कालिदासः। "वृद्धा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्। ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते" इति च वक्ति वराहमिहिरो ज्योतिषाचार्यः। वैष्णवागमेषु विभवावतारेषु "लोकनाथस्तु शान्तात्मा" इत्येवं भगवान् बुद्धो व्यावर्ण्यते। मायावामनिकायां संहितायां शिवबिष्णुबुद्धादिरूपेण एक एव भगवान् स्तूयते। काश्मीरीये नेत्रतन्त्रे मृत्युञ्जय-भट्टारकापराभिधेये दृश्यते सर्वेषामेषां पर्युपासनप्रकारः। पुराणतन्त्रागमवर्णितेषु षड्दर्शनेषु बौद्धानां जैनानां च परिगणनं विद्यते। "द्विजोऽपि मायी त्याज्यस्तु म्लेच्छो ग्राह्यो ह्यमायकः। स प्रियस्तु महेशस्य चतुर्वेदो न दाम्भिकः॥" इति च वर्तते मुकुटसंहिताया उद्घोषः। अत एव दाक्षिणात्येषु आलवारभक्तेषु शैवभक्तेषु च, औदीच्येषु सिद्धेषु च वर्णलिङ्गादिदृष्टिमवधूय वर्तते समेषां समान आदरः। कबीर-रविदास-दादूदयाल-प्रभृतीनामुपदेशा भारतीयजनमनस्सु महतीमुदारता-मुद्भावयन्ति। एनामेवोदारां दृष्टिमवलम्ब्य प्रावर्तिषत सिक्खगुरूणां सूफी-सन्तानां चोपदेशाः। उदाराया अस्या दृष्टेरवलम्बनमेव पूर्वोक्तायाः प्रवृत्तेः परिष्काराय क्षमं स्यादिति चिन्तनीयमेतत् तत्त्वचिन्तकैः।

दोषाणां गुणानां च संघट्टः सर्वत्र प्रायः प्रवर्तते। सन्ति वैदिक-बौद्ध-जैन-पुराण-आगमधारासु ते विशिष्टा गुणाः, यैरनुप्राणिता भारतीया संस्कृतिगङ्गा पावनी प्रवहत्यनारतम्, किन्तु साम्प्रतं प्रदूषितेव सा दृश्यते। तान्त्रिक्यां संस्कृतौ विधीयन्ते इन्द्रियप्रीणनानि द्रव्याणि पूजोपादानत्वेन। केषुचिद्धर्मक्षेत्रेषु राजनीतिक्षेत्रेषु च वर्तते तेषां मोहकानां शास्त्राणां बौद्धानां शैवानां शाक्तानां वैष्णवानां वाऽप्रतिहतः प्रसरः। एवं च वैदिक्यां तान्त्रिक्यां च धारायां समुद्भूतै-र्दोषैः सममेव ग्रस्तेयं साम्प्रतिकी भारतीया संस्कृतिसरित् तदैव निर्मला जायेत, यदा दोषपरिहारमुखेनैषा उपर्युक्तानां धाराणां गुणैरुपप्लुता भवेत्, तदैव च भारतीयानां विभाजनप्रक्रिया निरोद्धुं शक्येत॥

संस्कृतीनां धर्माणां च संघर्षः

संस्कृतिशब्दप्रयोगविषये केचन विचिकित्सन्ते विज्ञा विपश्चितः। लोकस्तु नात्र संदिहान इति निर्विचिकित्सं प्रयुज्यतेऽस्माभिः सोऽयं शब्दः साम्प्र-तिके संकेतितेऽर्थे। यातायातसंचारमाध्यमसौविध्येन आकाशवाणीदूरदर्शनादिना चाङ्गणवेदिसमा समपद्यत वसुधा। फलतो नूतनः प्रवर्तते संस्कृतीनां धर्माणां च संघर्षः। धर्मशब्दोऽत्र "यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः", "दशकं धर्मलक्षणम्" इत्यादिके स्मृतिसूत्रादिप्रदर्शितेऽर्थे न प्रयुज्यते, प्रत्युत विभिन्नेषु

देशेषु कालेषु च विविधा देवता उद्दिश्य प्रवृत्ता उपासनापद्धतीरभिलक्ष्य प्रवर्तते। तेन भारतीयं शासनं धर्मनिरपेक्षमित्यस्यायमेवार्थो यत्तन्न काञ्चन विशिष्टां पूजापद्धतिं पुष्णाति, किन्त्वत्रत्या सम्पूर्णा प्रजा स्वस्वपरम्परामनुरुद्ध्य परस्पराविरोधेन यथेच्छमाचरतु, न तत्र शासनेन हस्तक्षेपो विधास्यत इति।

भारतस्येदं वैशिष्टयं प्राचीनकालादेवावर्तत। प्राचीना यहूदीयाः, ख्रीष्टधर्मानुयायिनः, पारसीकाश्च जना अत्र स्वीयं प्राचीनं धर्ममनुपालयन्तो निवसन्ति स्म। अद्यापि तिब्बतदेशान्निष्कासिता बौद्धधर्मानुयायिनोऽत्र स्वीयं धर्ममनुपालयन्ति। एवं सत्यपि बाह्याः प्रातिवेशिकाश्च केचन भारतीयं शासनं हिन्दूशासनमित्येव भणन्ति। किमस्य कारणम् ?

सम्पूर्णा मानवी जातिर्धर्मस्य संकीर्णया व्याख्ययाऽऽक्रान्ता विद्यते। मनुप्रदर्शितां दशलक्षणीमनङ्गीकुर्वन्तो मानवा इदानीं स्वस्वसम्प्रदायान् बहु मन्वते। पवित्रतमः सम्प्रदायशब्दोऽपि साम्प्रतं स्वीयं प्राचीनं गौरवं हापयति। "सम्प्रदायो महाबोधरूपो गुरुमुखे स्थितः" (२।२६) इत्येवं योगिनीहृदयादिषु ग्रन्थेषु गुरुपरम्पराप्राप्तं भुक्तिमुक्तिप्रदं ज्ञानं सम्प्रदायशब्देनोच्यते स्म। साम्प्रतं तु परस्परं कलहप्रियेषु मानवसमुदायेषु स शब्दः प्रयुज्यते। पुरा राजनीतेर्नियामको धर्मोऽधुना राजनीतिमनुसरतीति राजनेतारस्तस्य यथेच्छमुपयोगं विदधति। स्वतन्त्रं राष्ट्रं भारतं प्रगत्युन्मुखं तृतीयशक्तिरूपेण स्थेमानमादधत् प्रवर्धत इति दृष्ट्वा ईर्ष्यासूयादिग्रस्तानां केषाञ्चन सुदूरस्थानां प्रातिवेशिकानां च देशानां राजनीतिरत्र परतन्त्रताकाले समुत्पन्नां धर्माणां संस्कृतीनां च संकुचितां दृष्टिं विरोधं च प्रवर्धयति। प्रकटतो धर्मनिरपेक्षाऽपि सैषा पारस्परिकस्नेहसम्बन्धविद्राविणी कुत्सिता राजनीतिर्धर्मं पुरस्कृत्यैव सीमान्तप्रदेशेषु, जनजातिषु, विभिन्नेषु वर्गेषु च प्रच्छन्नं प्रविष्टा दृश्यते। भारतस्य शिष्यतां सहर्षं स्वीकुर्वन्तो देशा अपि साम्प्रतं तर्जनाप्रवणा अवलोक्यन्ते। एवं च सम्पूर्णा छलछद्मपूर्णा साम्प्रतिकी राजनीतिः संस्कृतीनां धर्माणां च संघर्षं पुरस्कृत्यैव प्रवर्तते।

बहुधार्मिकमिदं राष्ट्रमद्य संमर्देऽस्मिन् लिप्तं भवेच्चेद् महतीयं विनष्टिरापतिता स्यात्। विरोधिनोऽवस्थाया अस्याः पुरस्कर्तारो भविष्यन्त्येव। परदूषणदर्शनमात्रेण न सा परिहृता भविष्यति। अस्माभिरन्तरात्माऽप्यवलोकनीयः, परतन्त्रताकाले समागता धर्मदर्शनसंस्कृतिपथा सुगूढं प्रविष्टा दोषाश्च परिहरणीयाः। तदा हिन्दूशासनमिति परकीयः प्रवादः स्वयमेव विलोपमेष्यति, नूतना च विश्वसंस्कृतिः प्रादुर्भावमवाप्स्यति। एतदर्थं

प्राचीनानां नूतनानां च धर्मदर्शनसंस्कृतीनां तुलनात्मकमन्वीक्षणमतीवापेक्षितम्। "सांस्कृतं कुराणम्" इत्येतादृशा ग्रन्था अत्र साहाय्यमाचरिष्यन्तीति वर्ततेऽस्माकं सुदृढो विश्वासः ॥

कण्टकावरणमेव केदारं कवलीकृतवान्

"तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थं जल्पवितण्डे बीजप्ररोहसंरक्षणार्थं कण्टकशाखावरणवत्" (४।२।५०) इति ह स्माह न्यायदर्शनवेधा महर्षिर्गौतमः। "रक्षको यत्र भक्षकः" इति संस्कृताभाणकं स्पष्टयन्ती गौतमभणितिं स्मारयन्तीव च "बाड़ ही खेत चर गई" इति हिन्दीभाषासूक्तिः प्रचरति। सूक्तिरियं महामहिमशालिन्या भारतराष्ट्रप्रधानमन्त्रिपदमलङ्कुर्वन्त्याः प्रियदर्शिन्या इन्दिरादेव्या नृशंसगुलिकाप्रहारैः प्राणानपहरद्भ्यां सिक्खसंरक्षकाभ्यां चरितार्थीकृता। दिव्यौघ-सिद्धौघ-मानवौघवती गुरुपङ्क्तिस्तन्त्रागमशास्त्रेषु श्रूयते। सिद्ध-नाथ-सन्तपरम्परासु प्रवृत्ता मानवौघमयी दशगुरूणां पङ्क्तिस्तमेव शास्त्रं सार्वात्म्येनोपजीवति। कल्याणचरितैः समतावादिभिर्गुरुभिरेभिर्भारतराष्ट्रस्य संरक्षणाय स्थापिता शिष्यपरम्परा तस्य राष्ट्रस्य कवलीकाराय प्रवर्ततेति विधिविडम्बनमेतत्। तस्यां शिष्यपरम्परायां केचन परबलप्रेरिता दरीदृश्यन्ते। भारतविभाजनसमये यैरिमे भृशं प्रताडितास्त एव तेषामधुना संरक्षकाः संजाताः। तादृशैरेव विवेकहीनैर्हिंसकैः पंजाबराज्ये त्रिचतुरेभ्यो वर्षेभ्य आतङ्कवादः प्रचाल्यते। नास्य विरोधस्तत्रत्या धर्माध्यक्षास्तदनुयायिनो बुद्धिजीविनो वाऽकुर्वन्। तथा कुर्वन्तश्च केचन गुलिकाप्रहारैराहताः। दशगुरुभिर्नियोजिता धर्माध्यक्षास्तेषां शिष्याश्च प्रायः सम्पूर्णेऽपि भारते निवसन्ति। आतङ्कमुक्तैरप्येभिर्गुरुशिक्षाविपरीतस्यास्य क्रूरस्य कर्मणो नैव विरोधः कृतः। यदि तैरिदं पावनं कर्म सति समये समाचरितं स्यात्, तर्हि किमर्थं सेनायाः स्वर्णमन्दिरे प्रवेशः स्यात् ? किमर्थं च रक्षका एव भक्षका भवेयुः ? कथं च सागरगभीरो भारतीयो जनसमुद्रो वेलामतिक्रामेत ? सात्त्विकं क्रोधमेनं पदलोलुपाः केचन नेतारोऽन्यथयन्तीति निर्वाचनका एव तान् शिक्षयन्तु। अयि मान्याः ! माननीयैर्गुरुभी राष्ट्ररक्षणाय नियुक्ता भवन्तो मा तत्कर्मणो विमुखा भवत। "गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः। उत्पथप्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम् ॥" इति भारतवचनमनुस्मृत्य तानुत्पथप्रतिपन्नान् ग्रन्थीन् शिक्षयत, ये हि प्राय आतङ्कवादिनामेव वर्त्म समनुसरन्ति। किमर्थं तेष्वेव मन्दिरपावित्र्यसंरक्षणात्मको गुरुतरो भारो निक्षिप्त इति साम्प्रतं विचारणीयताकोटिमाटीकते।

साम्प्रतं राजनीतिछद्मना धर्माणां संस्कृतीनां च संघर्षः प्रवर्तत इति न चिरादेव सूचिताः प्रियाः पाठका अस्माभिः। दशायामस्यां किं करणीयमिति विचार्यम्। भगवतो विष्णोरवतारत्वेन भगवान् बुद्धो ऋषभदेवश्च स्मर्येते, तथापि न वयं बौद्धेन जैनेन च धर्मेण सात्म्यमावहामः, तौ च न वैदिकेन धर्मेण। तान्त्रिको धर्मो मध्यमं मार्गमवलम्बते, तथापि परवर्तिनि काले सहैव बौद्धधर्मेण तेन कश्चन रहस्यवादोऽङ्गीकृतः। सिद्धा रहस्यवादिनः, नाथाः सन्तपदवाच्या भक्ता गुरवश्च तद्विमुखा आसन्निति वक्तुं शक्यते। हीनयान-महायान-वज्रयान-वादिनो बौद्धाः, दिगम्बराः श्वेताम्बराश्च जैना यथा न पूर्वतनीं भारतीयां परम्परामुपजीवन्ति, तथैव सिक्खधर्मावलम्बिनोऽपि संजाताः। तदा इस्लामधर्मावलम्बिनां तु कथैव का? तर्हि लब्धपरबलैर्भारतं राष्ट्रमेव खण्डितम्। तदा राष्ट्रं परतन्त्रमासीत्। साम्प्रतं वयं स्वतन्त्राः स्मः। तादृशी दुःस्थितिः पुनरपि नापतेत्, एतदर्थं सर्वैर्भारतीयैः संभूय प्रयत्नो विधेयः। धार्मिककर्मकाण्डबहुलां दृष्टिमधरीकृत्याखण्डभारतीयसंस्कृतिमाध्यमेन भ्रातृ-भावभरितं जीवनमूर्ध्वीकृत्य तदेतत् कर्तुं शक्यते। एतदर्थमेव दिवंगता प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरागांधी स्वजीवनमर्पितवती। तस्या रक्तस्य प्रतिकणं राष्ट्रस्य रक्षायै समृद्धये च कल्पेत, तथाऽस्माभिः सततं प्रयत्न-शीलैर्भाव्यम्।

आम्रेडितमुच्चरितमसत्यं सत्यं भवतीति नैषा सत्यस्य भारतीया परिभाषा। स्वजनपरिकरादीनां दोषाच्छादनेन सम्पूर्णं राष्ट्रमुत्कोचादि-नानाविधरोगग्रस्तं पतनोन्मुखं प्रवर्तते। नैतिकताविहीना आर्थिकी उन्नती राष्ट्रं नोन्नामयेत्। भौतिकदृष्टया निर्बलमपि राष्ट्रं कथं नाम आन्तरिकया शक्त्या चकासत इति श्रीमती गांधी तदत्र निदर्शनम्। इन्दिरागांधीनृशंसहत्यानु-कालममेरिकाराष्ट्रपतिः प्रबलतमेन बहुमतेन निर्वाचितः। भोट(तिब्बत)-देशमाक्रम्य चीनदेशो नूतनसोमानिर्धारणाय भारतं तर्जयति। वङ्गदेशे पराभूताः पाकिस्तानशासकाः प्रथमं सिखिस्तानमाध्यमेन भारतं विभक्तु-मिच्छन्ति, सन्ति च केचन देशाः प्रत्यक्षं परोक्षं वा तेषां पृष्ठपोषका आन्तरी-मशान्तिमुत्पाद्य भारतखण्डनायै प्रवृत्ताः। सर्वे एतादृशा देशाः सत्यामावश्य-कतायां दौत्यसम्बन्धविच्छेदेनाप्यनुशासनीयाः, नानाविधैः प्रवादैराविलीकृता देशस्था बहिस्थाश्च सिक्खबन्धवः सर्वतोभावेन समाश्वासनीयाः। अय-मेवोचितः श्रद्धाञ्जलिस्तस्यै हुतात्मने प्रदत्तः स्यात्, एष नो दृढः संकल्पस्तस्याः शान्त्यै कल्पेत। एभिरेव शब्दैर्वयं गाण्डीवस्य श्रद्धाञ्जल्यङ्कमेनं तत्रभवत्या इन्दिरागांधीमहोदयाया गुणानुकीर्तनाय समुपस्थापयामः॥

धर्माध्यक्षाणां राजनीतौ प्रवेशो वर्जनार्हः

अमृतसरस्वर्णमन्दिरस्थैर्ग्रन्थिभिः श्रीमत्या इन्दिरागांधीमहाभागाया नृशंसतमां हत्यामुद्दिश्य शोकप्रस्तावः पारित आसीत्। अपरस्मिन् दिने तेषु कश्चन वदति नास्माभिरिदं समाचरितमिति। शोकप्रस्तावो मानवीं नैतिकतां धर्मभावनां च पोषयति, तन्निषेधकश्च आतङ्कवादस्यैव समर्थको भवेत्। किमिदं धार्मिकं कृत्यमातङ्कवादस्य समर्थनं नाम? किं दशगुरूणां शिक्षानुरूपमेतत्? किञ्चैतन्नैतिकताया मानवतायाश्च नोल्लङ्घनमाचरति? किं वा नास्त्येतद् देशद्रोहपूर्णं कृत्यम्? प्रायः सम्पूर्णेऽपि भारते प्रसृताः सिक्खबन्धवः पश्यन्तु नाम पवित्रतमेऽस्मिन् मन्दिरे किमेतद् भवतीति। साम्प्रदायिकेषु कलहेषु समुत्पन्नेषु कलहोत्पादका धर्माध्यक्षा एव सान्त्वनाप्रदानच्छलेन सत्वरं तेषु स्थलेषु समापतन्तीति सर्वे वयं जानीमः। दिल्लीस्थः कश्चन धर्माध्यक्षोऽत्र निदर्शनभूतः। ईदृशान् धर्माध्यक्षान् मतसंग्राहका राजनीतिज्ञा बहु मानयन्तीति देशस्य दौर्भाग्यमेतत्।

केचन सर्वासामीदृशीनां समस्यानां समाधानाय इन्द्रजाललगुडसदृशं हिन्दूशब्दं समुपस्थापयन्ति। हिन्ददेशवासिनो हिन्दव इति तु सत्यम्, किन्तु शब्द एष साम्प्रतं रूढिमागतः समुदायविशेषमेव बोधयति, न सम्पूर्णां भारतीयां प्रजाम्। किमपराद्धं भारतीयशब्देन इति न वयं जानीमः। "शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः" इति हि महामुनिः पतञ्जलिराह। विकल्पप्रायैरीदृशैः प्रयत्नैर्न सांस्कृतिकमैक्यं स्थापितं स्यात्। चीनदेशो भोट(तिब्बत)-देशमाक्रम्य स्वशासनं तत्र स्थापितवान्। तन्नास्माभिरङ्गीक्रियते। सार्वभौम-स्वतन्त्रराष्ट्ररूपेण तिब्बतदेशस्य पुनः प्रतिष्ठा स्यादित्यस्माभिः काम्यते। एवमेव धार्मिकाक्रमणैर्ग्रस्तानि स्थलान्यपि स्वतन्त्राणि स्युरित्यत्र नास्ति विसंवादः। अविहाय सहिष्णुतां तदेतन्निष्पादनीयम्। सहिष्णुता समन्वयश्चेति द्वौ हि भारतीयसंस्कृतेर्महनीयौ गुणौ। परित्यज्य एतौ योऽन्यथा समाचरति, स नूनं बाह्यसंस्कृतिप्रभावाक्रान्तो भारतराष्ट्रस्य भावात्म्यैक्योत्पादनाय नैव समर्थो भवेत्। तदभावे चास्माकीनाः सर्वे प्रयत्ना बंगलादेशस्वातन्त्र्यान्दोलन-समर्थनसदृशा नूतनसमस्यासमुत्पादका एव सिद्धयेयुः।

अभारतीयो नागालैण्डशब्दः साम्प्रतं भारतस्य प्रातिनिध्यमाचरति। क्रिसमसपर्वप्रयुक्तावकाशदिनेषु निर्वाचनतिथिर्नैव निर्धारणीयेति तत्रत्यास्तत्प्रतिवेशिनश्च भणन्ति। खीष्टधर्मावलम्बिनः केरलराज्येऽपि बाहुल्येन वसन्ति, किन्तु ते नैवं भाषन्ते। अधीतिनो हि ते सन्ति। नूतनेन बंगलादेशशासनेन

असमप्रदेशोऽसमाधेयाभिः समस्याभिराविलीकृतः। प्रवर्धते च जातीयविद्वेषवाडवाग्निः श्रीलङ्कादेशेऽपि। सर्वत्र धर्माध्यक्षपुरस्कारेण प्रातिवेशिकानां सुदूरस्थानां च देशानां प्रच्छन्नं प्रविष्टा संकीर्णा धार्मिकी दृष्टिरेव नानारूपेण विप्रकीर्णा वर्तते। भगवतो बुद्धस्य महावीरस्य चाहिंसा सार्वात्म्येन साम्प्रतं वैष्णवा जैनाश्चानुपालयन्ति, न बौद्धदेशाः। वैष्णवा हि भगवन्तं बुद्धं विष्णोरवतारमङ्गीकुर्वन्ति। "वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीर पराई जाणे रे" इति गीतस्य गायको 'नरसी मेहता' वैष्णव आसीत्। इत एव समुद्भूता सुदामापुरीं (पोरबन्दर) स्वजनुषाऽलङ्कुर्वतो महात्मनो गांधिनोऽहिंसा। महात्मना गांधिना प्रवर्तितानां सत्याहिंसासत्याग्रहादीनां मन्वादिप्रदिष्टस्य दशलक्षणस्य धर्मस्य च वर्तते महत्साम्यम्। इस्लामखीष्टादिधर्मेष्वपि भ्रातृभावसेवाप्रभृतीनां वर्ण्यते महिमा। साम्प्रतिकानां तेषां तेषां धर्माध्यक्षाणां संकीर्णां विकल्पप्रायां धार्मिकीं दृष्टिमवधूय सार्वभौमान् सत्याहिंसादीन् धर्मांश्चाङ्गीकृत्य सर्वैर्भारतीयैः संभूय राष्ट्ररक्षायै सन्नद्धैर्भाव्यम्, येन हि सहिष्णुतायाः सार्वत्रिकः प्रसारो भवेत्। बहुधार्मिकेऽस्मिन् राष्ट्रे सहिष्णुतैव स महान् गुणः, यो हि सर्वासां समस्यानां समाधानाय कल्पेत॥

परिषत्प्रतिष्ठापकाः सिंहमहोदया दिवंगताः

लक्ष्मणपुरस्थ(लखनऊ)-अखिलभारतीयसंस्कृतपरिषत्प्रतिष्ठापकेष्वन्यतमा न्यायाधीशचराः श्रीमन्तो गोपालचन्द्रसिंहमहोदयाश्चतुरशीतिवर्षे वयसि वर्तमानाः १२-१०-८४ दिवसे कालातीतां दशां प्रविष्टा इति निवेदयतामस्माकं पर्याकुलीभवति चेतः। एतेषां महानुभावानां जन्म १९०१ तमे ख्रिष्टीयाब्दे जुलाईमासस्याष्टाविंशे दिनाङ्के सरयूसरित्पावितप्रान्ते फैजाबादनाम्नि नगरे समभूत्। १९२४ तमे वर्षे संस्कृतविषयमवलम्ब्य एम० ए० परीक्षामुत्तीर्णवन्त इमे श्रद्धेयचरणानां प्रथितयशसां स्व० को० अ० सुब्रह्मण्य-अय्यरमहोदयानां प्रथमे प्रियाः शिष्या आसन्। १९२७ तमे वर्षे उत्तरप्रदेशीयन्यायिकसेवायां प्रविष्टा इमे महानुभावाः १९५६ तमे वर्षे 'जिला जज'-पदान्निवृत्ता अभूवन्। तदनु 'जज साहब' इति नाम्नैव भूयसा इमे संबोधिता भवन्ति स्म।

काशीनागरीप्रचारिणीसभा-हिन्दीसाहित्यसंमेलन (प्रयाग)-हिन्दुस्तानी अकादमी (प्रयाग)-राष्ट्रभाषाप्रचारसमिति (वर्धा)-उत्तरप्रदेशसंस्कृत-अकादमी-अखिलभारतीयप्राच्यविद्यापरिषद् (पूना)-एशियाटिक सोसाइटी बंगाल (कलकत्ता)-एशियाटिक सोसाइटी (बम्बई)-रायल एशियाटिक

सोसायटी आफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैण्ड (लन्दन)–केन्द्रीय हिन्दी संस्थान (आगरा)-इण्टरनेशनल असोसियेशन फार संस्कृत स्टडीज इत्येतादृशीभिर्महनीयाभिः संस्थाभिः संबद्धा इमे डॉ० राजेन्द्रप्रसादमहोदयेन भारतीयसंविधानसभायास्तत्कालीनाध्यक्षेण भारते प्रयुज्यमानानां शब्दानां हिन्दीपर्यायनिर्धारणार्थमुच्चाधिकारप्राप्तसमितेः सदस्यत्वेनापि नियुक्ताः। सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयकार्यसमितेरपीमे सदस्या आसन्। एवं संस्कृतस्य हिन्दीभाषायाश्च सममेव सेवायां संरताः सिंहमहोदयाः श्रीपुरुषोत्तमदासटण्डन-आचार्यनरेन्द्रदेव-डॉ० सम्पूर्णानन्द-श्रीलालबहादुरशास्त्रि-श्रीकिशोरलालवाजपेयि-श्रीरामचन्द्रवर्म-श्रीश्रीप्रकाश-सेठगोविन्ददाससदृशैर्विद्वद्भी राजनेतृभिश्च सह बहुकालं यावत् सुमहत्कार्यं समपादयन्।

सर्वतो महनीयमेतेषां कार्यमासीद् अखिलभारतीसंस्कृतपरिषदः प्रतिष्ठापनं नाम। १९५१ तमे ई० वर्षे श्रद्धास्पदस्य स्वगुरोः प्राध्यापकवर्यस्य श्रीमतः को० अ० सुब्रह्मण्य-अय्यरमहोदयस्य निदेशमनुपालयद्भिराचार्यनरेन्द्रदेवस्य, डॉ० सम्पूर्णानन्दस्य च साहाय्येन लक्ष्मणपुर(लखनऊ)नगर्यां परिषदेषा प्रतिष्ठापिता। आजीवनं तेऽस्याः संस्थायाः कायेन वाचा मनसा च सेवायां निरता आसन्निति को नाम न जानीते सुरभारतीसमुपासकः। एतेषामेव सत्प्रयासेन परिश्रमेण दृढेन संकल्पेन चैतस्यां परिषदि विंशतिसहस्रतोऽप्यधिकानां हस्तलिखितानां प्रकाशितानां च ग्रन्थानां संग्रहः समजायत। देशस्था बहिस्थाश्च अनुसन्धातारो विशालेनानेन ग्रन्थालयेन प्रतिवर्षं लाभान्विता भवन्ति। हस्तलिखितग्रन्थसूचीनाम्, महत्त्वपूर्णानामप्रकाशितानां ग्रन्थानाम्, अभिनन्दनग्रन्थानाम्, 'ऋतम्' इत्याख्यायाः षाण्मासिक्या अनुसन्धानपत्रिकायाः, 'अजस्रा' नाम्न्याः संस्कृतत्रैमासिकपत्रिकायाश्च अनवरतं प्रकाशनमितो भवति। नैके विद्वांसश्च परिषदाऽनया संमानिता अभूवन्नद्यावधि। सर्वेष्वेषु कार्यकलापेषु श्रीमतां गोपालचन्द्रसिंहमहोदयानां क्रियाशक्तिरेव प्राधान्येन प्रसरति स्मेति निश्चप्रचम्। प्राचीने वयसि परिषत्समर्पितजीवनानां महानुभावानामेतेषां सिद्धयत्वेतदपश्चिमं जन्मेति पराम्बा संविद्भगवती समभ्यर्थ्यते॥

स्वागतं व्याहरामः

७-५-८५ दिनाङ्के दिल्लीनगर्याम् "उत्तरप्रदेशसंस्कृत-अकादमी"-संस्थया समायोजिते विश्वसंस्कृतभारतीयपुरस्कारसमर्पणसमारोहे १९८२ वर्षीयविश्वसंस्कृतभारतीनामकेन सर्वोच्चेन एकलक्षरूप्यकाणां पुरस्कारेण सभाजितास्तत्रभवन्तः पण्डितप्रवराः श्रीमन्तो रघुनाथशर्ममहोदया इति तेषां तस्याः संस्थायाश्च स्वागतं व्याहरामः।

सर्वतन्त्रस्वतन्त्राणां श्रीमतां रघुनाथशर्मणां जन्म १९०० तमे ई० वर्षीये जुलाईमासे उत्तरप्रदेशस्य बलियामण्डलस्थे छाताख्ये ग्रामेऽभवत्। इमे महानुभावाः प्रथितवैयाकरणानां श्रीरामटहलपण्डितानां पौत्राः, व्याकरणवेदान्त-नव्यन्यायादिविषयेषु लब्धशेमुषीकाणां श्रीसुदर्शनाचार्यतोऽधीतव्याकरणानामुदासीनसम्प्रदायप्रथितस्वामिब्रह्मानन्दमहोदयतो लब्धपारम्परिकवेदान्तरहस्यानां श्रीसीतारामशास्त्रिद्रविड़त उपात्तनव्यन्यायविद्यानां पञ्चदशीव्याख्या-अनुभूतिप्रकाशव्याख्येतिग्रन्थद्वयीनिर्मातॄणां गुरुकुलकांगड़ी-ज्वालापुरमहाविद्यालय-वाराणस्यादिषु पञ्चाशद्वर्षं यावत् कृतसरस्वतीसमाराधनानां श्रीमतां काशीनाथ-शास्त्रिणां कनिष्ठपुत्राः, पूज्यपितृचरणेभ्योऽधिगतसकलशास्त्ररहस्याः, स्वश्वसुर-महोदयेभ्यो हिन्दूविश्वविद्यालयस्य संस्कृतमहाविद्यालये वेदान्ताध्यापकेभ्यः श्रीमदच्युतशर्मनामधेयविद्वद्वरेभ्यो विशेषतो नव्यन्यायशास्त्रमप्यधीतवन्तः। वाराणसेयराजकीयसंस्कृतमहाविद्यालयतः १९२६ तमे ई० वर्षे व्याकरणाचार्यो-पाधिमवाप्तवतामेषां महानुभावानां व्याकरण-साहित्य-धर्मशास्त्र-वेदान्त-मीमांसा-सांख्ययोग-नव्यन्यायप्रभृतिषु सर्वेष्वेव शास्त्रेष्वप्रतिहतं ग्रन्थग्रन्थिविदलनपटीयो वैलक्षण्यं विराजते। द्वादशवर्षपर्यन्तं काशीस्थब्रह्मविद्यापाठशाला-मारवाड़ी-संस्कृतमहाविद्यालय-संन्यासिसंस्कृतमहाविद्यालयेषु वेदान्तव्याकरणसाहित्यादि-विषयानध्यापयन्त इमे महानुभावाः १९४० ई० वर्षे राजकीयसंस्कृतमहाविद्यालये व्याकरणप्राध्यापकपदम्, १९५८ तमे ई० वत्सरे च तस्य महाविद्यालयस्य विश्व-विद्यालयत्वेन परिणामे संजाते वेदान्तविभागाध्यक्षपदमलङ्कृतवन्तः। गृहीतावकाशाः साम्प्रतमेते स्वकीये जन्मस्थाने छाताख्ये ग्राम एव निवसन्तोऽनवरतं सुरभारतीं समाराधयन्ति, देशविदेशेभ्यः समागतानां जिज्ञासूनामनु-सन्धित्सूनां साहाय्यमाचरन्ति च। श्रीशर्मणां शताधिकाः शिष्या देशे विदेशेषु च विशिष्टेषु पदेषु राजन्ते।

आचार्यश्रीरघुनाथशर्मभिर्व्याकरणमहाभाष्यम् (प्रदोपोद्योतसहितम्), वाक्यपदीयमम्बाकर्त्रीसहितम् (पञ्चसु खण्डेषु) इत्यादयः पञ्चाशत्संख्यापरिमिता ग्रन्थाः संस्कृतवाङ्मयाय लिखित्वा शोधयित्वा च समर्पिताः। विचारगभीराणां विविधविषयान् क्रोडीकुर्वतां विशिष्टानां निबन्धानां संग्रहश्चित्रनिबन्धावली-नाम्ना प्रकाशितः। श्रीमन्तः १९७५ ई० वर्षे सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयेन, १९८१ ई० वर्षे च पञ्चमविश्वसंस्कृतसम्मेलनावसरे काशीहिन्दूविश्वविद्यालयेन स्वीयसर्वोच्चमानदोपाधिना वाचस्पति(डी० लिट्) इत्याख्येनालङ्कृताः। उत्तर-प्रदेशसंस्कृत-अकादमी-संस्थयाऽपि स्वकीयेन विशिष्टपुरस्कारेण कालिदासपुरस्कारेण च तत्रभवन्तः संमानिताः। १९८१ ई० वर्षे राष्ट्रपतिपुरस्कारेण सभाजिता

२०

एते महानुभावाः साम्प्रतमपि सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालये संमानिताध्यापकपदमलङ्कुर्वन्ति। विविधदेवतास्तुतिपराणां लक्षसंख्याकानां श्लोकानां स्वप्रातिभज्ञानप्रसूनायमानानामभिनवदर्शनसूत्राणां निर्माणं चावशिष्टस्य जीवनस्य लक्ष्यं वर्तते।

ईदृशान् विद्वद्धौरेयानाचार्यप्रवरान् सत्कृत्य उत्तरप्रदेशीया संस्कृत-अकादमी-नाम्नो संस्था किल स्वीयमेव गौरवं वर्धितवती। गाण्डीवस्य "प्रादेशिकतापिशाचीग्रस्ता प्राच्यवाणी" इति शीर्षकं सम्पादकीयं तत्रत्याधिकारिभिरधीतं स्यात्। माऽत्र प्रादेशिकता-पिशाची पदात् पदमपि प्रसरं लभतामित्येव वर्तत आस्माकीनोऽभिलाषः। अधीतिबोधाचरणप्रचारणैः सर्वात्मना सेवितसुरभारतीनां धन्यानां कृतकृत्यानां श्रीशर्मणां संस्थायाश्चास्या वयं पुनरपि स्वागतं व्याहरामः॥

विरमत विरमत आर्याः

प्रादेशिकतापिशाचीग्रस्ता प्राच्यवाणी इति शीर्षकं सम्पादकीयं पठितं स्याद् भवद्भिः। संसारस्य प्राचीनतमायाः, साम्प्रतमपि विश्वस्मिन् व्यापृतायाः, भारतस्य सांस्कृतिकभावात्मकैक्यस्य सम्पादिकाया अस्या देवगिरः समुपासकाः किमिति प्रादेशिक्या पिशाच्या ग्रस्ताः समभूवन्निति विचारणीयोऽयं विषयस्तावत्। अर्थगार्ध्यमेव वयं किलास्य मूलकारणमामनामः। स्वातन्त्रकालात् पूर्वं देववाणीसमुपासका नूनं वित्तैषणाविरहितास्तामुपासन्ते स्म। स्वातन्त्र्यमनु च भाषाया अस्याः संरक्षायै संवर्धनाय च संस्कृत-संस्कृत्यनुरागिभी राजपुरुषैर्बहुधनव्ययेन नैके संस्कृतविश्वविद्यालया विद्यापीठानि च स्थापितानि। "उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्" इत्युपदेशं विस्मृत्य, अयं निजः परो वेति लघुचेतसां भावनामेव पुरस्कृत्यास्माभिस्तत्राधिपत्याय सर्वात्मना प्रयत्यते। पामरो जनश्च स्वस्मै स्निह्यति परस्मै द्रुह्यतीति निर्विवादम्। अत एव तेषु तेषु संस्कृतविश्वविद्यालयेषु विद्यापीठेष्वपि च प्रादेशिकदृष्टिः परितः प्रसृमरा वर्तते।

स्वातन्त्र्यकालमनु संस्कृतशिक्षाऽर्थगृध्नूनां पण्डितानामाधिपत्ये पतिता। साम्प्रतिककालानुरूपं योगक्षेमाय संस्कृतज्ञानामर्थापेक्षा वर्तते, इत्यत्र को नाम विवदेत ? किन्तु येन केनाप्युपायेन वित्तराशिं समुपार्ज्य भवनानि च निर्माय वृद्धावस्थायामप्यसन्तोषमावहतः पण्डितान् प्रेक्ष्य तदुत्तराधिकारिणः किं कुर्वन्तीति यत्र तत्र सर्वत्र द्रष्टुं शक्यते।

वाराणसी भारतस्य सांस्कृतिकी राजधानीति वयं सगर्वं भणामः। अत्रत्येषु विश्वविद्यालयेषु किं वर्तते साम्प्रतमखिलभारतीया भावना ? किं तत्र सुपरीक्ष्य स्वेषु शास्त्रेषु कृतभूरिश्रमा निष्णाता मनीषिणो नियोज्यन्ते ? धनसमर्पका उद्दण्डतामाचरन्तो वाऽल्पज्ञाः स्वजातीयाः किं तेषु तेषु विशिष्टेषु पदेषु न नियोज्यन्ते ? किं न सन्ति सर्वेषु विश्वविद्यालयेषु छात्रानध्यापकांश्च प्रतारयन्तस्तथाकथिता नेतारो विभिन्नानां राजनीतिकसंघटनानां प्रच्छन्नं प्रकटं वा प्रातिनिध्यमाचरन्तस्तन्माध्यमेनैव प्रभाववृद्धिं कुर्वन्त उत्कोचादिकं ददन्तो गृह्णन्तश्च ?

त्वरितपरीक्षाफलघोषणाय केन्द्रीयमूल्याङ्कनविधिः कैश्चन विद्यासंस्थानैः प्रवर्त्यते। पद्धत्याऽनया यदि पञ्चमासेषु परीक्षाफलमुद्घोष्यते, तदा का नाम व्यवस्थाया अस्या उपयोगिता ? किन्तु पद्धत्याऽनया केचन महानुभावाः पञ्च-सहस्रं यावद् वैधरूपेणैव समुपार्जयन्ति। ये तैरस्मिन् कर्मणि नियोज्यन्ते तदुपार्जितधनस्य कथैवान्या। कासाञ्चन परीक्षाणामावेदनपत्रादीन्यवैधरूपेण विक्रीयन्ते, परीक्षाशुल्कादिकं च केचन तथैव संगृह्णन्तीत्यपि श्रूयते। परीक्षका अपि स्वीया एव नियोज्यन्ते। संस्कृतविद्यालयानामभावग्रस्ता अध्यापका विशिष्टयोग्यतासम्पन्ना एतदर्थं न परिपृच्छ्यन्ते। एवं च विशिष्टेषु विद्या-संस्थानेषु केन्द्रीभूतेन धनेन व्याकुलीकृतानां संस्कृतज्ञानामर्थलौल्यं तत्र संकीर्णां प्रादेशिकतादृष्टिं संवर्धयेत् चेत्, किं नाम तत्राश्चर्यम् ? वयं तु साम्प्रतमेतदेव निवेदयामः—विरमत विरमत आर्याः ! अन्यथा संस्कृतशिक्षाऽवश्यमेव दुर्गतिगर्ते पतिष्यतीति ॥

भ्रष्टाचारपादपप्ररोहाः

स्वच्छताभिमानी भारतस्य प्रधानामात्यः श्रीमान् राजीवगांधी भारते विततान् भ्रष्टाचारपादपप्ररोहान् तद्दुष्प्रभावांश्च सम्यग् जानाति, तान् प्रतीकर्तुमिच्छति च। प्राचीनेषु नाटकेषु उत्कोचग्राहिणो राजपुरुषा विहसिताः, राजनीतिग्रन्थेषु च तादृशानां राजपुरुषाणां चर्चा श्रूयते, दिविरप्रायेभ्यस्तेभ्यः प्रजाः संरक्षितुमुपायाश्च तत्र वर्णिताः सन्ति। तत्र निर्दिष्टा उत्कोचनिरोधो-पायाः साम्प्रतं सफला भविष्यन्ति न वेति विषयोऽयं विदुषामेव विचारणीयः, साम्प्रतिका राजनीतिज्ञास्तु तदनभिज्ञा आधुनिकदृष्ट्यैव तन्निराकरिष्यन्ति। किन्तु तैः, चिकित्सकै रोगाणां निदानमिव, सम्पूर्णस्य राष्ट्रस्यैव भक्षकस्य भयङ्करतमस्य भ्रष्टाचाररोगस्य अस्य पूर्वं निदानं चिन्तनीयम्। स्वल्पतमोऽ-प्युपेक्षाभावो महतो दोषान् नूनं प्रादुर्भावयति।

सम्राजा अशोकेन उत्कलविजयानन्तरमहिंसाधर्मोऽङ्गीकृत आसीत्। नूतनस्य भारतराष्ट्रस्य निर्मिमित्साप्रवृत्तेन पण्डितजवाहरलालनेहरुणा तु सम्पूर्णस्य कश्मीरराज्यस्य रक्षणमविधायैव स धर्मोऽङ्गीकृतः, "हिन्दी चीनी भाई भाई" इति व्यामोहकमुद्घोषमनुसृत्य च भ्रात्रे चीनदेशाय भोटदेश उपायनीकृतः। नाद्य स्वतन्त्रस्य तिब्बतदेशस्य चर्चां कोऽपि राजपुरुषः करोति। कैलाशमानसरोवरवृत्तान्तलेखकाः पत्रकाराश्च चीनदेशीयसीमामद्य प्रविष्टा इत्येव वर्णयन्ति। भोटदेशस्य नाम कुत्रापि न श्रूयते। भारतस्य प्रथमेन तेन प्रधानामात्येन नूतनानि भव्यानि मन्दिराणि निर्मापितानि, किन्तु मन्दिराणामेषामर्चका मनसा वाचा कर्मणा च पवित्राः सन्ति न वेत्यत्र नावहितम्। "स्वल्पो हि दोषो गुणसंनिपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः" इति कालिदासभणितिं को नाम नाङ्गीकुर्यात्, किन्तु स्वल्पतमापि विषकणिका सम्पूर्णमेव कटकं विनाशयेदित्यत्रापि नास्ति संशीतिलेशः। तेन प्रधानामात्येन नियुक्ता नूतनानां निकेतनानामर्चकाः केचन भ्रष्टाचारव्यापृता आसन्। प्रकाशितेष्वपि तच्चरितेषु तान् क्षमयैव जेष्यामीति तस्य निश्चय एव साम्प्रतिभ्रष्टाचारमहारोगस्य मूलमास्ते। इतिहासतुला वंशावलीगायकैरान्दोलिता सती कालहस्तमालम्ब्य स्थिरीभवत्येव। स्वच्छताभिमानिना साम्प्रतिकप्रधानामात्येन तदेतत् सत्यमङ्गीकृत्य वंशव्यामोहं विसर्ज्य च भ्रष्टाचारपादपप्ररोहान् उन्मूलयितुं प्रयतनीयम्।

कलिकातानिवासी वैद्यो गणनाथसेनः प्रैषकार्यालयाधिकृता अध्यापकाश्च उत्कोचं नैव लभन्त इति तेभ्यः शतमाने मूल्ये पञ्चविंशत्यंशं लाभं वितरति स्म। सा स्थितिः साम्प्रतं नास्ति। यत्र तत्र सर्वत्र उत्कोचग्राहिणो भ्रष्टाचारव्यापृताश्च जना अवलोकयितुं शक्यन्ते। भ्रष्टाचारपादपोऽयं द्विधा प्रसरति—भगवद्गीतोक्ताश्वत्थवृक्षसदृश ऊर्ध्वमूलोऽधःशाखः प्रथमो विशिष्टेषु जनेषु नेताजी-पद-वाच्येषु शासनाधिकारिषु च कृतपदः, द्वितीयश्च न्यायालय-आरक्षिविभाग-बाष्पशकटीकार्यालयादिषु सामान्यस्थलेषु दृढनिखातः। भ्रष्टाचारोऽयमुपरितो नीचैरागच्छतीति वदन्ति केचन विचारकाः, अन्ये च अधस्त उपरि गच्छतीति विवदन्ते। उपरितना अधिकारिणो यत्र सावधानाः स्वसमीपमागतेषु पत्रेषु अक्षिणी निमील्य हस्ताक्षराणि न कुर्वन्ति, तत्र भ्रष्टाचारस्तनिमानमापद्यत इति तु वर्तते वास्तविकी स्थितिः। वटवृक्षच्छायायां क्षुपपादपादीनां प्ररोहो न भवतीति तु सत्यम्, किन्तु आश्चर्यमिदमवलोकनार्हं यत् कस्याश्चन शिक्षासंस्थायाः कार्यालयसमक्षं कृतच्छायस्य वटवृक्षस्याधस्ताद् भ्रष्टाचारपादपोऽहर्निशं त्वरितया गत्या एधमान आस्ते। किं वर्तते

कश्चन चाणक्यः, यो हि भारते वर्षे प्रकटं च प्रच्छन्नं च प्ररूढमिमं भ्रष्टाचारपादपमूलं तक्रेण सिञ्चेत् ॥

भारतस्य अखण्डतायै सांस्कृतिकमैक्यमपेक्षितम्

त्यागः, तपस्या (कठोरः श्रमः), सहिष्णुता, समन्वयश्चेति चत्वार आधारभूताः स्तम्भाः सन्ति भारतीयायाः संस्कृतेः। "त्यागाय संभृतार्थानाम्" इत्याह महाकविः कालिदासः। अब्भक्षा वायुभक्षाश्च तपस्विनः श्रूयन्ते श्रुत्यागमपुराणेषु बौद्धजैनवाङ्मयेषु च। प्राचीने काले स्वेषु स्वेषु देशेषु पीडिता यहूदिनः ख्रीष्टीयाः पारसीकाश्च जना अत्रागताः स्वं स्वं धर्मं पालयन्तः ससुखमासते स्म, अधुना च भोटदेशीया जना निवसन्तः सन्ति। "स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः" इति हि उद्घोषो वर्तते भगवतः श्रीकृष्णस्य। भागवती गीतैव समन्वयस्य निदर्शनभूता। महाभारतं हि—"सांख्यं योगः पाञ्चरात्रं वेदाः पाशुपतं तथा" इति कृतान्तपञ्चकस्य समन्वयमुखेनैव प्रवर्तते। "सांख्ययोगौ पृथग् बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः" इत्यत्र समन्वयस्य बीजानि पिहितानि सन्ति। एतद्गुणचतुष्टयाधारेणैव भारतीयया संस्कृत्या कदाचन विश्वयात्रापथिकताऽङ्गीकृता, सहस्रवर्षावधिके पारतन्त्र्यकाले च स्वीयं वैशिष्ट्यं रक्षितम्।

इतः सहस्रवर्षेभ्यः पूर्वमेकस्मिन् हस्ते पवित्रं ग्रन्थमपरस्मिंश्च नृशंसं कृपाणमादाय विश्वविजयोन्मुखी कुसंस्कृतिर्भारते देशे कृतपदाऽभूत्, द्विशतवर्षेभ्यः पूर्वं च पाश्चात्त्या भौतिकी संस्कृतिः। कालस्य कुटिलया गत्या प्रथमायाः कुसंस्कृतेरसहिष्णुतया, द्वितीयायाश्च छलछद्मभरितया कूटनीत्या भारतं वर्षं खण्डितमभूत्। उभयोरनयोः कुसंस्कृत्योर्दुश्चक्राणि साम्प्रतमपि न विरमन्ति। भारते भाषाधृता राज्यकल्पना दुर्भाग्यपूर्णा आसीत्! साम्प्रतं भाषाधृतानि तानि राज्यानि स्वातन्त्र्यं कामयन्ते, सीमान्तप्रदेशेषु स्थितेषु राज्येषु च शान्तेः सुरक्षायाश्च शोचनीया दशा वर्तते। सर्वोच्चन्यायालयस्य निर्णयं विरुन्धानां साम्प्रतिकेऽपि काले स्त्रीषु पशुवद् व्यवहर्त्रीं त्रयोदशशतवर्षपूर्ववर्तिनीम् अरबीयां संस्कृतिं रिरक्षन्तः केचन सन्ति, साम्प्रतिकानि मतलिप्सूनि दलानि च तां पोषयन्ति दृश्यन्ते। अनेन दुष्कर्मणा पुनरपि खण्डितं भविष्यति भारतमिति ते न जानन्ति किम्?

सम्पूर्णेऽपि भारतेऽभावग्रस्तेषु दलितेषु वनजातिषु आदिवासिषु च जनेषु वैदेशिकार्थिकसाहाय्येन सेवाव्याजेन व्यापृता जलौकाप्राया धर्मप्रचारका अवलोकयितुं शक्यन्ते। आस्माकीनाः साधव आचार्या मठाधीशाः

संन्यासिनश्च प्रवचनादिभिरेव विश्वं वशयन्तः प्रचरन्ति। भगवतो रामभद्रस्य जन्मभूमिर्न्यायालयनिर्णयानुसारं मुक्तिं गमितेति नैवास्माभिः सन्तोष्टव्यम्। सर्वोच्चन्यायालयनिर्णयविरोधमाचरमाणा नूनं नूतनमेनं निर्णयं स्वीकरिष्यन्तीति दुराशामात्रम्। रामजन्मभूमिसदृशानि बहूनि स्थानानि सन्ति। तानि यथा स्वेच्छयैव परावर्त्येरन् तथा यतितव्यं भारतीयसंस्कृत्यनुरागिभिः। एतच्च सर्वत्र सहिष्णुतायाः प्रचारे सति संभवेत्। साम्प्रतिका भारतीया राजनीतिज्ञा भाषा-धर्मादिविषयकान् दुराग्रहान् सबलमस्वीकुर्वाणाः सर्वत्र साम्येन यदा व्यवहरेयुः, तदैव सम्पूर्णेऽपि भारते समन्वयदृष्टेः समुन्मेषो भवेत्, राष्ट्रस्य अखण्डता च सुरक्षिता स्यात्॥

प्रवादे समुत्पन्ने पदत्याग आवश्यकः

साम्प्रतं भारतीयं शासनं ब्रिटिशविधानानुकारं प्रवर्तते। ब्रिटिशविधानेऽलिखितोऽप्यंशः सार्वात्म्येन पाल्यते। तत्र वर्ततेऽभिनन्दनार्हा एका परम्परा कस्यचिन्मन्त्रिणो विरुद्धं प्रवादे प्रसृते स त्यागपत्रं ददातीति। गणतन्त्राख्ये जनतन्त्रे व्यक्तेर्नास्ति महत्त्वम्। संभूय तत्र निर्णया उद्घोष्यन्ते। अस्यां स्थितौ कस्यचनैकस्य मन्त्रिणो मुख्यमन्त्रिणः प्रधानमन्त्रिणो वा त्यागपत्रेण न कापि हानिः समुपजायेत, प्रत्युत गणशक्तेर्विकासस्तेन भवति। गणतन्त्रेऽपि यदि व्यक्ते-र्महत्त्वमङ्गीक्रियते, तदा तदधिनायकोन्मुखं जायते, दोषाश्च बहवस्तत्र प्रादुर्भवन्ति। भारतीयं जनतन्त्रमेवात्र निदर्शनभूतम्।

बहूनि राजनीतिकदलान्यत्र सन्ति। तानि सर्वाणि अधिनायककल्पेन केनचित् संचाल्यन्ते। गणतन्त्रस्य सम्यक्संचालनाय द्वित्राणामेव राजनीतिक-दलानामपेक्षा, नाधिकानाम्। स्वतन्त्रताया अष्टात्रिंशद्वर्षेषु व्यतीतेष्वपि तदिदं कार्यं नैव सम्पन्नम्, प्रत्युत दलानां विभाजनप्रक्रियया संख्या एषा एधमाना वर्तते। विविधानां दलानामधिनायकप्राया एते नेतारस्तस्मिन् पावने कर्मणि बाधका एव न भवन्ति, किन्तु नूतनानि दलान्यप्येते सर्जयन्तः सन्ति। एते यदा कदा पदत्यागाभिनयं कुर्वन्ति, तदनुयायिभिश्च ससंमानं पुनस्तत्रैव समारोप्यन्ते। "नेहरु के बाद कौन"? इति विदेशेषु प्रचारितेन प्रश्नेन सम्पूर्णेऽपि राष्ट्रे मौढ्यमिव प्रविष्टमभूत्। दलानां वार्षिकाणि निर्वाचनानि न भवन्ति, सत्स्वपि तेषु दलानामध्यक्षा न परिवर्तन्ते, स्वेच्छया पदं त्यक्तुं नेच्छन्ति केऽपि, प्रत्युत पदं संरक्षितुं पदयात्रासदृशानि नूतनानि कर्मकाण्डानि समायोजयन्तः स्ववर्चस्वं ख्यापयन्ति। सम्प्रदायवादं जुगुप्सन्तोऽपि स्वयं जातिग्रहग्रस्ता एते किं किं न कुर्वन्ति। जनतादलीयप्रशासनस्य पतनं जातिग्रहनिदानक-

मेवासीत् । सर्वेषामपि दलानां स्वाहन्तायाः परिपोषकेषु व्यक्तिवादिषु नेतृषु सत्सु गणतन्त्रभावनाया विकासः कथं नाम भवेदिति प्रश्नस्य एकमेवोत्तरं विद्यते प्रतिवर्षं नूतनानामध्यक्षाणां निर्वाचनम्, कस्मिश्चित् कारणे समुत्पन्ने, प्रवादे वा प्रसृते तेषां पदत्यागो नाम । एषैव सरणिः शासनेनाप्यनुसरणीया । निष्कलुषे सामूहिके नेतृत्वे जागरूके सत्येव गणतन्त्रस्य सुचारु संचालनं भवेत्, नान्यथा । वयं पवित्रान्तःकरणाः स्म इत्येतावदेव नालम्, परन्तु लोकोऽपि तदनुभवेदित्यप्यावश्यकम् ।

नेहरोरनन्तरं श्रीमता लालबहादुरशास्त्रिणा राष्ट्रधूः सम्यगूढा इत्यत्र कस्य नाम वैमत्यं स्यात् ? पदत्यागेन हि तस्य चरित्रे औज्ज्वल्यमाहितमासीत् । एवमत्र नैके लालबहादुरशास्त्रिणः प्रादुर्भवेयुः, यदि पदत्यागस्य अध्यक्षपरिवर्तनस्य च प्रथा प्रचलेत् । कर्णाटकराज्यमुख्यमन्त्रिणः श्रीमतो हेगड़ेमहोदयस्य चरित्रं पदत्यागेनैव समुज्ज्वलमासीत् । हन्त ! अधुना स्वयं तेनैव, अथवा पदलिप्सुभिरन्यैस्तस्य यशःशरीरं कलुषीकृतम् । घटनेयं व्यक्तिवादमेव पोषयति, न गणतन्त्रीयां प्रणालीम् । कर्णाटकराज्यजनतादलेऽन्यः कश्चन योग्यः पुरुषो नास्तीति न कोऽपि स्वीकुर्यात् । भारते बहूनि वर्षाणि यावत् कृताधिकारस्य राजतन्त्रस्यायं प्रभावो यदधुनातना जनतन्त्रपोषका अपि गणतन्त्रे नृपतिसदृशस्य कस्यचन नेतुः शरणमन्वेषयन्तीति ॥

आकाशवाणीदूरदर्शनयोर्विश्वसनीयता

रात्रौ वयम् आकाशवाणीतः प्रसारिता वार्ताः शृणुमः, दूरदर्शनतः प्रसारितानि कानिचन वृत्तचित्राण्यवलोकयामः, प्रत्यूषे च वृत्तपत्राणि वाचयामः । कासाञ्चन विशिष्टानां घटनानां समुपस्थापने किं वर्तते सर्वेषामैकमत्यम् ? इति प्रश्ने प्रस्ताविते नास्तीत्येवोत्तरं लभ्येत । श्रोतारो द्रष्टारो वाचकाश्च प्रत्यहं घटमाना वार्ता याथातथ्येन जानीयुरित्येव वर्तते सर्वेषामेषां सूचनासंचारसाधनानामुद्देश्यम् । कथं तानि यदा कदा विफलानि भवन्ति स्वीयेऽस्मिन् पावने कर्तव्ये ? घटितानां घटनानां नूनमेकमेव रूपं वास्तविकम् । कथं ता नानारूपेषु समुपस्थाप्यन्ते ? वार्ताप्रसारमाध्यमेषु अन्धगजन्याय एष कथं नाम पदं धत्ते । सूचनासंग्राहकाणां व्यक्तीनां दृष्टिकोणभेदेन भेदोऽयमिति वक्तुं शक्यते ? विश्वसनीयता तु तेन संदिग्धा जायते सूचनासाधनानाम् । आकाशवाणीदूरदर्शनयोरविश्वसनीयता एषा भारतीयान् जनान् 'बी० बी० सी०'-द्वारा प्रसारिता वार्ता श्रोतुं प्रेरयति ।

विशिष्टेषु तेषु तेषु घटनाचक्रेषु भारते वर्षे घटितेष्वपि 'बी० बी० सी०'-प्रसारितवार्ताश्रवणोत्कण्ठा, आकाशवाणीदूरदर्शनयोरेधमान आंग्लभाषाप्रभावश्च किं सूचयति ? ब्रिटिशदेशीया वार्ताप्रसारसंस्था स्वतन्त्रा राजकीयहस्तक्षेपशून्या सत्यपि राष्ट्रियहितान् सर्वोपरि स्थापयति, आकाशवाणी च शास्तारं राजनीतिकदलं तत्रत्यान् शीर्षस्थान् नेतॄंश्च बहु मानयति। 'बी० बी० सी०'-प्रसारणे हिन्दीभाषाकार्यक्रमेषु आंग्लभाषाशब्दानां समावेशो नैव दृश्यते, आकाशवाणीप्रसारणेषु च तद्विपरीतं भवति। केषाञ्चन राजनेतॄणां चारणतामाचरमाणे आकाशवाणीदूरदर्शने राष्ट्रभाषाविषयकाणि तेषां वचांसि नैव मानयतः। व्यक्तीनां कासाञ्चन प्रभावातिशय एष व्यक्तिवादं पोषयति, न जनतन्त्रीयां पद्धतिम्। एतद्दोषपरिहाराय सर्वेषु वार्ताप्रसारसाधनेषु संवादाय च तत्र राजकीयं नियन्त्रणं शिथिलीक्रियेत, बी० बी० सी०-वत् तदर्थं स्वातन्त्र्यं दीयेत, इत्येव वर्तते प्रशस्तः पन्थाः।

जनतादलशासनेन तदर्थं काचन समितिः संघटिता आसीत्। प्राचीनेषु गणतन्त्रेषु संभूय सर्वसंमत्या निर्णयाः क्रियन्ते स्म। प्रथमतो जनतादलशासनेऽपि तथैवाऽभवत्। किन्तु तत्र केचन जात्यादिग्रहग्रस्ताः, अपरे च व्यक्तिवादिनो नेतार आसन्। तत्र विदूषकप्रायाणां महत्त्वाकाङ्क्षाभरितानां च राजनेतॄणां प्रभावे वृद्धिं गते सर्वमेतत् शरदभ्रवद् विच्छिन्नमभवत्। तेन सहैव आकाशवाण्याः स्वातन्त्र्यमपि केषाञ्चन गणतन्त्रवादिनां दिवास्वप्नायितमभूत्। राष्ट्रियं हितं विरुद्ध्यापि दलतन्त्रीयं शासनं स्वीकुर्वाणा भारतीया राजनीतिज्ञा मताधिक्यार्जनाय यत्किमपि कर्तुं प्रवर्तन्ते, आकाशवाणीदूरदर्शनमाध्यमेन च तदेव वरमिति प्रचारयन्ति। इदमेव विद्यते तयोरविश्वसनीयताया मुख्यं कारणम्। तत्परिहाराय आकाशवाणी-दूरदर्शनयोर्गले पातितः प्रशासनपाशस्त्रोटयितव्यः, तदर्थं राजकीयहस्तक्षेपशून्यायाः संस्थायाश्च स्थापनमावश्यकम्। अन्यथा वयं सत्यानृतयोस्ताण्डवमिदमनारतं द्रक्ष्यामः। राजकीयमिदमसत्याचरणमेव प्रजासु प्रशासकीयेषु जनेषु च सुरसावदनवद् वर्धमानाया अनैतिकताया मूलमिति नूनं झटिति विभावनीयमस्माभिः॥

वृद्धानां संमाननमावश्यकम्

ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान् प्रतिपद्यते॥
अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥

इति किल आद्यः स्मृतिकारो मनुरभाषत, "यन्मनुरवदत् तद्भेषजम्" इति च तैत्तिरीयाणां श्रुतिः श्रावयत्यस्मान् तन्महिमानम्। हृद्गत्यवरोधान्मृत्यवो बाहुल्येन भवन्ति साम्प्रतम्। स्थविरागमनवेलायामूर्ध्वमुत्क्रामतां प्राणानां प्रत्युत्थानाभिवादनाभ्यां पुनः स्वस्थानाऽनापादनं तत्रान्यतमकारणं विद्यते किमिति परीक्षणीयं तावद् वैज्ञानिक्या पद्धत्या काश्चन घटनाः पुरस्कृत्य परीक्षकैः।

कृषकशक्तिः, कर्मकरशक्तिः, छात्रशक्तिः, युवशक्तिरिति शक्तेर्नूतनानि केन्द्राणि कल्पयन्त आधुनिका राजनीतिज्ञाः क्षुद्रस्वार्थसाधनाय तांस्तान् वर्गान् अजाविन्यायेन तत्र तत्र योजयन्ति। तत्र युवशक्तिरिति नूतनोऽयमुद्घोष आधुनिकेन केनचिद् राजकुमारेण स्वस्वार्थसाधनाय प्रवर्तितः। अकालकाल-कवलितोऽपि स यत् सर्वोच्चन्यालयादिपरिसरेष्वपि युवजनानकाण्डताण्डवाय प्रेरयति स्म, तेन युवकेषु उद्दण्डताया वृद्धिरेव समजायत। स्वभावतस्तरलो भवति तरुणिमा। विदुर-चाणक्य-कामन्दक-बाणसदृशैर्मनीषिभिर्विदुरनीति-चाणक्यनीति-नीतिसार-शुकनासोपदेशादिषु पञ्चतन्त्र-हितोपदेशादिनीतिशास्त्र-ग्रन्थेषु च सुदृढेन सदुपदेशतटबन्धेनावरोद्धयते स्म तच्चाञ्चल्यम्। तदभावे साम्प्रतं चत्वरेषु, आपणीषु, छविगृहेषु, बाष्पयानादिषु, किं बहुना, विश्व-विद्यालयेषु, क्षुद्रेषु ग्रामेषु, संस्कृतच्छात्रेषु च युवजनानामुन्मादोऽयं जरीजृम्भते। क्षुद्राधिकारशासनादिलम्पटा एते न संमानयन्ति वृद्धजनान्, न शृण्वन्ति तदुपदेशवचः, न च परिचिन्वन्ति भारतीयायाः संस्कृतेर्हार्दम्। साम्प्रतिकानां वृद्धजनानां भूमिकाऽपि चात्र चिन्तनीयैवास्ते।

चत्वारो वर्णा आश्रमाः पुरुषार्थाश्चतुःसोपानं शास्त्रं चेति वर्तन्ते भारतीयायाः संस्कृतेश्चत्वारः स्तम्भाः। सम्पूर्णाया मानवजातेः कल्याणमत्र निगूढं राजते, यदि वृद्धा भारतीयाः क्षुद्रान् स्वार्थान् परित्यज्य दोषपरित्याग-गुणाधानमुखेन स्तम्भानेतान् संरक्षयेयुश्चतुर्थे वयसि। "वार्धक्ये मुनिवृत्तीनाम्" इति खलु महाकविः कालिदासो भणति। चरणस्पर्शो नाम महदेतदाध्यात्मिकं वर्चः। तस्य सार्वजनिकं प्रदर्शनं कुर्वन्तः कारयन्तश्च महदेनोभाजो भवन्ति।

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं दया क्षमा।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः॥

तत्र पूर्वश्चतुर्वर्गो दम्भार्थमपि सेव्यते।
उत्तरस्तु चतुर्वर्गो महात्मन्येव तिष्ठति॥

(महा. उद्योग. ३५.५६-५७)

इति विदुरनीतिवचनं स्मरन्तो वृद्धा यद्युत्तरं वर्गमङ्गीकुर्वन्तो धर्मस्य तथाऽऽचरेयुस्तदा तेषां वर्चः सर्वोपकाराय कल्पेत। यथा तथा वा भवतु, अशीतिमतिक्रान्ताः सर्वेऽपि वृद्धाः संमाननार्हा इत्येव वर्तते भारतीयायाः संस्कृतेरुद्घोषः ॥

अखण्डमहायोगप्रवक्तारः श्रीश्रीकविराजमहोदयाः

साम्प्रतिकबंगलादेशस्थढाकाजनपदीये धामराई-ग्रामे भाद्रपद २२ सौरतिथौ बुधवासरे १९४४ वैक्रमे वत्सरे (७ सितम्बर, १८८७ ई०) लब्धतनुजनुषां नानासंस्थाभिर्भारतप्रशासनेन च महामहोपाध्याय-पद्मविभूषणादिनानाविरुदालङ्कारैः स्वर्णपदकादिपुरस्कारैश्च सत्कृतानां स्वनामधन्यानां धन्ययशसां श्रीश्रीगोपीनाथकविराजमहोदयानां शतवार्षिकजयन्तीसमारोहः साम्प्रतं प्रवर्तते। समुपासितसमस्तशास्त्राणां संदृब्धानेकग्रन्थानां समुपदिष्टसहस्राधिकशिष्याणां शोधार्थिकल्पतरूणां महानुभावानामेषां स्मरणमवसरप्राप्तमिति सम्पूर्णाया मानवजातेः कल्याणाय सुखशान्तये समुपकल्पितं तदीयमखण्डमहायोगमधुना कतिपयैः शब्दैर्मीमांसामहे।

महायोगो नाम अनन्तप्रकाराणामसंश्लिष्टानां विविधानां च भावानामेकत्र संयोजनम्, तेषां तादात्म्येन प्रतिष्ठापनम्। शिवेन सह शक्तेः, आत्मना सह परमात्मनः, एकेनात्मना सहापरस्य आत्मनः, महाशक्त्या सह आत्मनः, लोकेन सह लोकोत्तरस्य च योगो महायोग इति भण्यते। तात्त्विकदृष्ट्या कालो महाकाल इति खण्डकाल इति च द्विधा भिद्यते। तत्र अखण्डो महाकालो निरन्तरं प्रवर्तते। खण्डकालस्तु अतीत-वर्तमान-अनागतभेदेन त्रिधा भिद्यते। विशाला हि कालसरिन्निरन्तरमनागतकालात् प्रवहन्ती वर्तमानं स्पृशन्ती अतीताख्ये गहने गह्वरे निलीना भवति। अखण्डे महाकाले कालत्रयमेतन्न पदं धत्तुमीष्टे। तत्र केवलं नित्यमखण्डस्य वर्तमानस्य कालस्य सत्ता राजते। "कालोभयापरिच्छिन्ने वर्तमाने सुखी भवेत्" इति किल आगमोपदेशः। "वर्तमानेन कालेन वर्तयन्ति विचक्षणाः" इति च वर्तते सूक्तिः। एवं च तस्मिन्नित्ये वर्तमाने काले सर्वं तत्त्वजातं नित्यं चकासदस्ति। न कोऽपि तत्र परिणमते। अस्य अखण्डमहाकालस्य उपर्युक्तलक्षणे महायोगे स्थितिरेव अखण्डमहायोग इत्यभिधीयते। पुरुषकारस्य भगवतोऽनुग्रहस्य च तत्र वर्ततेऽपेक्षा। पुरुषकारेण भगवदनुग्रहसहकृतेन हि काले योगे च अखण्डता स्थापिता भवति। कर्मणः कृपायाश्च समन्वयेनैव हि योगी अखण्डमहायोगमार्गेऽग्रसरो भवति।

समग्राया मानवजातेः कल्याणाय हि योगी स्वकीयं निर्माणचित्तं विशुद्धेन प्रेम्णा परिष्करोति। बुद्धदेवोऽत्र निदर्शनम्। महाकरुणाभरितेन हि तेन महाबोधिमधिगत्यापि न निर्वाणमार्गो वृतः, किन्तु दुःखसंतापाभितप्तस्य सम्पूर्णस्य मानवलोकस्य समुद्धाराय सत्सङ्कल्पः कृतः। आह च कश्चित्— "न चाहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्। कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम् ॥" इति। सहिष्णुता समन्वयश्च नाम भारतीयेतिहासस्य वैशिष्ट्यम्। सेयं प्रवृत्तिर्निरन्तरं प्रवर्तमाना आस्ते। त्यागतपस्यानुप्राणितानां महापुरुषाणां परम्परा स्थूलभेदान् निराकृत्य एकात्मतोपदेशाय सततं सचेष्टा वरीवर्ति। योगिना अरविन्देन कविराजमहोदयेन च दिव्याया मानवताया अवतारः संकल्पितः। वर्तमानेषु धर्मेषु वादेषु च परस्परविरुद्धा दृष्टीः परिहृत्य सहिष्णुताया समन्वयस्य च प्रक्रिया यदि प्रारब्धा स्यात्, तदा कदाचिदखण्डाया विश्वसंस्कृतेराविर्भावः स्यात्। अखण्डमहायोगानुप्राणिता हि अखण्डा विश्वसंस्कृतिर्विविधासु व्यष्टिषु समष्टिषु च साम्प्रतिकीषु स्वत्वं विस्तारयति, सम्पूर्णायां मानवजातौ भ्रातृभावमुन्मीलयति। तदस्याः सामयिक्या अखण्डदृष्टेरुन्मीलयित्रेऽखण्डमहायोगवेधसे तस्मै नमोवाकं प्रशास्महे ॥

निर्वाणभावमापन्नाः प्रो० जगन्नाथ-उपाध्यायमहाभागाः

अस्य संस्कृतसाप्ताहिकपत्रस्य सम्पादकवर्याः प्रबन्धकाः प्रकाशकाश्च श्रीमन्तः पण्डितजगन्नाथ-उपाध्यायमहोदया भाद्रशुक्लद्वादश्यां सोमवासरे प्रदोषवेलायां (१५-९-८६) निर्वाणभावमापन्ना इति श्रुत्वा पठित्वा वा कस्य नाम सचेतसः सुरभारतीसमुपासकस्य भारतीयदर्शनसंस्कृतिप्रियस्य बौद्धधर्मदर्शनानुरागिणो मानवसमतावादिनो वा चेतः शोकावेगेन विह्वलम्, चक्षुषी च अश्रुपूरिते न स्याताम्। शासकीयपरिवारे समुत्पन्नेनाप्यनेन स्वातन्त्र्यान्दोलनमखे पवित्रा आहुतयः प्रदत्ताः, परिवारस्य आधुनिके परिवेशे जाग्रत्यपि प्राचीना 'सुरभारती' समुपासिता। शाङ्करवेदान्तप्रवीणेन सता बौद्धदर्शनमधीतम्, उच्चकुलप्रसूतेन सता दलितानामुपेक्षितानां जनानामुद्धारव्रतमङ्गीकृतम्, अन्धपरम्पराविरोधिनाऽप्यनेन प्राचीना भारतीया संस्कृतिः सुष्ठु संरक्षिता प्रचारितेति विरोधाभासानामयमेकान्तनिलय आसीत्। पण्डितप्रवररघुनाथशर्म–ढुण्ढिराजशास्त्रि-गोपीनाथकविराज–टी० आर० वी० मूर्तिसदृशा गुरवोऽस्य दर्शनक्षेत्रे, आचार्यनरेन्द्रदेव-जयप्रकाशनारायण-अच्युतपटवर्धन-राममनोहरलोहिया-सदृशाश्च नेतारः समाजवादसूत्रधारा अस्य पथप्रदर्शका आसन् राजनीतिकक्षेत्रे। अध्ययन-राजनीतितुलायां यदा कदाचिद् दोलायमानस्याप्य-

स्याध्ययनघटो भारनम्र आसीत् । प्रतिष्ठापराङ्मुखः, बोधिसत्त्वानुकारं करुणापूर-पूरितः, अभावग्रस्तानां रुग्णानां दलितानां च सहायक ईदृशः संस्कृतभाषा-मधीयानेषु विरल एव स्यात् ।

छात्रावस्थायां पण्डितप्रवरश्रीविभूतिभूषणभट्टाचार्यसदृशानां महानु-भावानां साहाय्येन सांस्कृतिककार्यक्रमान् संचालयताऽनेन प्राचीनाया अभिनय-कलायाः, संगीतशास्त्रस्य, नृत्यकलायाश्च समुद्धाराय महान् प्रयत्नः समाचरितः। हन्त ! स्वनामधन्यानां श्रीमतामादित्यनाथझामहोदयानां समये संस्थापिता नाट्यशाला पतिहीना कुलाङ्गनेव रोदिति साम्प्रतम् । संस्कृतविश्वविद्यालये बौद्धविद्यायाः श्रमणसंकायस्य च स्थापनायां रक्षायां च किं किमनेन नाचरितम् । संस्थाया अस्या गौरववर्धनाय विभिन्ना दर्शनगोष्ठ्योऽनेन समायोजिताः, यदनुकारम् अन्यास्वपि संस्थासु ज्ञानयज्ञ एष एधमान आस्ते । संमेलनेष्वेषु तन्त्रसम्मेलनम्, तदवसरे समायोजिता तन्त्रागमशास्त्रसम्बद्धानां दुर्लभानां पूजोपकरणादिसामग्रीणां प्रदर्शनी च चिरस्मरणीये सिद्धे ।

राजकीयसंस्कृतमहाविद्यालयीये सरस्वतीभवनपुस्तकालये सूचीकार-सम्पादक(सारस्वती सुषमा)–अध्यापक(वेदान्त)रूपेण समारब्धाऽस्य कर्मयात्रा संस्कृतविश्वविद्यालयस्थापनानन्तरं प्राध्यापक(बौद्धदर्शन)–आचार्याध्यक्ष(पालिबौद्धदर्शनविभाग)–श्रमणसंकायाध्यक्ष-नेहरु फेलोशिप–रूपेण प्रवहन्ती साम्प्रतं दुर्लभबौद्धग्रन्थशोधयोजनाया निदेशकपदे सुस्थिरा आसीत् । महाविदुषो महतो जनान् सेवित्वा, विश्वं परिभ्रम्य च तेन यो हि ज्ञानराशि-रर्जित आसीत्, सदुपयोगस्य तस्य यदावसरः सम्प्राप्तस्तदैव क्रूरेण कालेन कवलितः स महात्मा । हन्त ! किमेष एव ईश्वरीयो न्यायः । संस्कृतपत्रपत्रि-काणामायुस्तत्संस्थापकानामायुरतीत्य न प्रवर्धते । गाण्डीवपत्रस्य संस्थापकानां स्वनामधन्यानां त्यागतपस्यामूर्तीनां पण्डितरामबालकशास्त्रिणामवसानमनु सबलाभ्यामस्य बाहुभ्यां संरक्षितस्य अस्य संस्कृतसाप्ताहिकस्य रक्षायै भगवान् काशीपतिर्विश्वेश्वरः प्रार्थ्यते ।

दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम् ।
दिशं न काञ्चिद् विदिशं न काञ्चित् स्नेहक्षयात् केवलमेति शान्तिम् ॥

एवं कृतिर्निवृतिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम् ।
दिशं न काञ्चिद् विदिशं न काञ्चित् रागक्षयात् केवलमेति शान्तिम् ॥

॥ इति शम् ॥

अथ नूतनोऽयमध्यायः प्रारभते

गाण्डीवम्-पत्रस्य संस्कृतसाप्ताहिकस्य संस्थापकैः सम्पादकैश्च स्वनामधन्यैः स्वर्गीयैः श्रीमद्भी रामबालकशास्त्रिभिः स्वसन्ततिनिर्विशेषं लालितं पालितं च तत् सहधर्मिण्या आभरणान्यपि विक्रीयेति को नाम न जानीते तद्वृत्तान्ताभिज्ञः। तदवसानात् परं भारतीयसंस्कृतिसंस्कृतभाषयोः परमानुरागिभिः प्राचार्यवर्यैर्भारतीयदर्शनस्य विविधासु शाखासु लब्धप्रतिष्ठैः श्रीजगन्नाथ-उपाध्याय-महोदयैरूढा धूरस्मिन् म्रियमाणे पत्रे प्राणसंचालनाय। प्रायो द्वादशवर्षं यावत् स्वीयायां शोभनायां व्यवस्थायां नवनवोन्मेषशालिनि जागरूके सम्पादकत्वे पत्रस्यास्य प्रकाशनमनारतं निर्विघ्नं च सचालितं तैः, केचन विशिष्टा अङ्काश्च चिरस्मरणीयाः प्रकाशिताः। एवं कुर्वता च तेन सम्पादकावधि जीवितं संस्कृतपत्राणामिति दुर्दुरूढः प्रवादोऽपि वितथीकृतः। युगपरिवर्ते कालपर्ययः श्रूयते। द्वादशाब्दीयोऽपि युगो भवतीति लौकिकव्यवहारः। हन्त! करालेन कालेन स्वल्पतमेऽस्मिन् कालखण्डे विपर्ययोऽचिन्तितोऽनपेक्षित आपादितः। अकस्मान्निर्वाणभावमापन्नः स मनीषिमूर्धन्य इति जानन्त्येव पाठकवर्याः।

तदभावेऽपि पत्रस्यास्य प्रकाशनमनारतं प्रचलेदिति धिया पण्डितप्रवररामबालकशास्त्रिणां सहयोगिभिः, प्राचार्यवर्यश्रीजगन्नाथ-उपाध्याय-महोदयानामनुयायिभिश्च नूतना काचन व्यवस्था संघटिता व्यवस्थापक-सम्पादनविभागयोः पृथक्करणं नाम। अत्र अधुनावधि हि सर्वमेव प्रगुणितमासीदेतस्मिन् महानुभावे। एवं च नूतनोऽयं कश्चन अध्यायः समारब्धः पत्रस्यास्य संजीवनाय। गणतन्त्रपद्धत्या प्रचलतु सर्वमिति सर्वे कामयन्ते। तत्र च स्मरणीयोऽयं वर्तते कश्चन नीतिश्लोकः—

बहवो यत्र नेतारः सर्वे पण्डितमानिनः।
सर्वे महत्त्वमिच्छन्ति तद् व्यक्तमवसीदति॥

तानेतान् दोषान् परिभाव्य गणतन्त्रीयान् सम्पादकमण्डलेन व्यवस्था-विभागसदस्यैश्च नीतिशास्त्रोया सम्भूयसमुत्थानपद्धतिराश्रयणीया नूनम्। नो चेन्महती विनष्टिरापतेत्। "लोकैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च पुत्रैषणायाश्च व्युत्थाय अथ भिक्षाचर्यं चरन्ति" इति नु वदन्ति संन्यासाश्रमप्राशस्त्यविधायिन्यः श्रुतयः। पुत्रैषणातो वित्तैषणा, वित्तैषणातश्च प्रबला आस्ते लोकैषणा। तिसृभ्य आभ्य एषणाभ्यो मुक्ता विरला एव भवन्ति संन्यासिनोऽपि। किन्तु नात्र प्रस्तुता संन्यासाश्रमकथा। सामाजिका अपि नूनमाभ्यो विमुक्ता

भवन्त्विति हि वर्तते निष्कर्षोऽस्याः श्रुतेरिति किल वयं विभावयामः। एवमेव कृते साम्प्रतिकी सामाजिकी कुव्यवस्था दूरीभवेत्, सुव्यवस्थितश्च स्यात् सम्पूर्णोऽपि मानवीयः समाजः। विचार्यतां तावदधुना समजे समाजे च कियत्साम्यं वैषम्यं वा वर्तत इति। सार्वजनीनाः सार्वकालिकाश्च भवन्ति श्रुत्युपदेशास्तावत्। "ननु लक्ष्मीः फलमानुषङ्गिकम्" (२।१९) इति किल महाकविर्भारविरपि भाषते। यथा ननु लक्ष्मीरानुषङ्गिकं फलं लभ्यते, लोकप्रसिद्धिरप्यानुषङ्गिकी समवाप्यत एव सेवापरायणैः करुणाप्रज्ञासमन्वितैः सत्पथिपथिकैरित्यत्र नात्र संशीतिलवलेशोऽपीति विभावनीयं तावद् विपश्चिद्भिः। किञ्च, घटं भिन्द्यात् पटं छिन्द्यादिति पद्धत्या प्रसिद्धिशिखरमारूढस्यापि सतो जनस्य क्षीणशक्तेः शरस्येवावपतनं नूनं भवत्येव। "हतविधिलसितानां ही! विचित्रो विपाकः" इति खलु पेयाऽस्माभिर्माघस्य महाकवेः सूक्तिसुधा। व्यवस्थाविभागीयाः सदस्या वित्तपराङ्मुखाः, सम्पादकविभागीयाः सदस्याश्च जातिसम्प्रदायादिदुराग्रहाऽग्रस्ताः पूर्ववत् प्रवर्तन्तां नाम स्वेषु स्वेषु कार्येषु। जीयात् सदा संस्कृतम्। चिरायुश्च स्याद् गाण्डीवम्। इति हि ज्ञानगुरुः करुणावरुणालयो भगवान् भवानीजानिः, जगदम्बा च भवानी प्राथ्यते॥

श्रीमद्भगवद्गीताया विश्वजनीनं महत्त्वम्

मार्गशीर्षमासस्य शुक्लपक्षस्य एकादश्यां तिथौ गीताजयन्त्युत्सवः सर्वत्र प्रवर्तते भारते वर्षे। मासानां मार्गशीर्षोऽहमिति चात्र भगवानाह। "सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः। पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥" इति हि वर्ततेऽस्या माहात्म्योद्घोषकः श्लोकः। "सांख्यं योगः पाञ्चरात्रं वेदा पाशुपतं तथा" इति कृतान्तपञ्चकं महाभारते नारायणीयोपाख्याने स्मर्यते। एवं च न केवलमत्रोपनिषदाम्, अपि तु पाशुपतं मतं विहाय कृतान्तचतुष्टयस्य सारभूताः सिद्धान्ताः साकल्येन संगृहीता इति वक्तुं शक्यते।

कर्मज्ञानयोर्भक्तेश्चात्र अद्भुतः समन्वयो राजते। शैवेषु वैष्णवेषु पुराणेष्वागमेषु च न केवलं ज्ञानस्य, कर्मणामपि मोक्षे विनियोगो विधीयते। स चात्र निष्कामकर्मयोगेन साध्यते। तदर्थं च—"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन", "योगः कर्मसु कौशलम्" इत्यादीनि वचांसि प्रवर्तन्ते। "सांख्ययोगौ पृथग् बालाः प्रवदन्ति" इत्यत्र सांख्ययोगशब्दाभ्यां ज्ञानकर्मणोरेव ग्रहणं भवति। "एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्" इति च समन्वयोऽत्र क्रियतेऽनयोः।

अपि च, आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी चेति चतुर्विधेषु जनेषु सुकृतिषु ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यत इति प्रतिपादयन्ती भगवद्गीता एकान्तिनो भागवतान् भक्तशिरोमणीन् बहु मानयति। "भक्तिरेव परां काष्ठां प्राप्ता मोक्षोऽभिधीयते" इति च भणन्ति शैवागमानुयायिनः। एवं च कर्मज्ञानभक्तीनां समन्वयमुखेन सरलः सुगमः कश्चन मोक्षमार्गो व्याकृतो भगवद्गीतासु। "यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः" इति हि जीवनस्य लक्ष्यमत्र प्रतिपाद्यते।

स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरेति भगवान् कृष्णद्वैपायनो व्यासो महाभारतं जग्रन्थ। महाभारतस्याङ्गभूता भगवद्गीता स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिमिति सबलमुद्घोषयति। "विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥", "आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति", "समः सर्वेषु भूतेषु", "साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते", "इहैव तैर्जितः स्वर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः", "समः सिद्धावसिद्धौ च", "समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः" इत्येवं समता-दृष्टिं वर्धयन्ती, सर्वत्र भगवतोऽविनश्वरं स्वरूपं दर्शयन्ती, मानवान् रागद्वेष-विहीनान् सम्पादयन्ती राजते भागवती गीता। एतदर्थं च मानवेन "न प्रहृष्येत् प्रियं प्राप्य नोद्विजेत् प्राप्य चाप्रियम्" इति तत्रत्यो हृदयगत्यवरोधादिव्याधि-शामकः सिद्धान्तः स्वीकरणीयः। "शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक् शरीरविमोक्षणात्। कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः॥", "त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः। कामः क्रोधस्तथा लोभः" इत्यत्र कस्य नाम सचेतसो विमतिः स्यात्। अत्र वर्णितां दैवीमासुरीं च सम्पदुद्दिश्य दैवी सम्पद् विमोक्षाय निबन्धायासुरी मतेति यदुक्तं तस्यायमभिप्रायो यद् दैवीं सम्पदमनुसृत्य मानव-समाजे सुखस्य शान्तेश्च साम्राज्यं प्रतिष्ठाप्येत। एतदर्थं च मानवेन आसुरी सम्पन्नूनं दूराद् दूरतरं परित्याज्या। "नहि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति" इति हि वर्तते गीताया उद्घोषः। एतदर्थं च मानवेन यदृच्छालाभ-सन्तुष्टेन विमत्सरेण च भाव्यम्।

सन्ति भूयांसो गीतापदवाच्या ग्रन्थाः, येषां कियान् परिचयो लोकमान्य-तिलकरचिते गीतारहस्याख्ये ग्रन्थे विषयप्रवेशाख्ये प्रथमे प्रकरणे समुपलभ्यते। सर्वे एते गीताग्रन्था भगवद्गीतानुप्राणिता इति तत्रत्यो निष्कर्षो नैव याथार्थ्यं परिजहाति। सर्वाधिकासु भाषासु रूपान्तराणि संजातानि 'बाइबिल' इत्याख्यस्य ग्रन्थस्य, ततः परं च भगवद्गीतायाः। तत्र प्रथमस्यानुवादा धर्मप्रचाराय विहिताः, भगवद्गीतायास्तु तन्महत्त्वमङ्गीकृत्येति निभालनीयं

तावत्। सा हि—नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते, श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्, यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन इत्येतादृशान् सार्वभौमान् सिद्धान्तान् देशकालाद्यतीतान् सम्पूर्णाया मानवजातेः कल्याणाय समुपदिशति। "परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ" इति तदीयस्य वचनस्याभिप्राय उपनिषद्वाक्यकल्पेन "परस्परदेवो भव" इति वाक्येन व्यक्तीभवति। एवं च भगवद्गीताया विश्वजनीने महत्त्वे कस्य नाम वैमत्यं स्यात्॥

गणतन्त्रदिवसावमाननविडम्बना

भारतीयसंविधानं प्रज्वाल्यते पञ्जाबराज्ये तमिलनाडुप्रदेशे च। एकत्र धार्मिकराजनीतिककारणवशात्, अन्यत्र भाषाप्रश्नमुद्दिश्य। भाषानुवर्तिराज्य-निर्माणनिर्णयस्त्रुटिपूर्ण आसीदिति साम्प्रतमुद्घोषयति भारतस्य प्रधानामात्यः श्रीमान् राजीवगांधी। किमनेन जल्पितमात्रेण, यावद् राष्ट्रभाषाप्रश्नः सम्यङ् न समाधीयते, न च शाम्यन्ति कर्णाटक–गोवाप्रभृतिषु प्रवर्तमाना भाषासंघर्षाः, समेधयन्ते च दलगतलाभाय गोरखालैण्डसदृशा विवादाः। मुस्लिममहिला-विषयकं सर्वोच्चन्यायालयस्य निर्णयं निष्प्रभावीकर्तुं तेन त्वरितया गत्या यत् समाचरितम्, तत्किं नास्ति तादृशमेव कार्यम्? अथ च राष्ट्रगानविषयकः सर्वोच्चन्यायालयनिर्णयः किं पोषको वर्तते राष्ट्रियतायाः। अधुना च जनता-दलसदस्यः कश्चन गणतन्त्रदिवसस्यावमाननां कर्तुं कारयितुं च बद्धकच्छो दृश्यते। भारतीयः सर्वोच्चन्यायालयः, भारतप्रधानमन्त्री, तस्य दलम्, जनता-दलं च सर्वे एते किं कुर्वाणाः सन्तीति विचारयतामस्माकं स्तब्धीभवति चेतः।

श्रूयते शास्त्रेषु शब्दानां शक्तिः—"स भूरिति व्याहरद् भुवमसृजत्" इत्यादिका। तस्या निदर्शको वर्तते भारतीयैरस्माभिरङ्गीकृतो धर्मनिरपेक्षता-शब्दः साम्प्रतिकः। 'सेक्युलर' इत्याङ्ग्लपदस्यानुवादरूपेणायमस्माभिः प्रवर्तितः। अनुवादशक्तिरप्यस्माकं कुण्ठिता, किमुत मौलिकचिन्तनशक्तिः। पदस्यैकस्य एकेनैव पदेनानुवादः करणीय आसीत्। तस्य स्थाने पदद्वयमस्माभिः संयोजितम्, धर्मनिरपेक्षाश्च वयं सञ्जाताः। पुरातनैर्भारतीयैर्मनीषिभिर्धर्मार्थकाम-मोक्षाख्याश्चत्वारः पुरुषार्था आविष्कृताः सम्पूर्णाया मानवजातेः कल्याणाय क्षेमाय समृद्धये च। तामेतां भारतीयां सर्वोत्कृष्टां चिन्तनपद्धतिमवहेल्य साम्प्रतं वयं धर्मवैमुख्यं बिभर्मः। महाभारते विदुरनीतौ—

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं दया क्षमा।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः॥

इत्येवं व्याक्रियते धर्मस्य पन्थाः। पुनस्तत्रैव भणति विदुरः—

तत्र पूर्वश्चतुर्वर्गो दम्भार्थमपि सेव्यते।
उत्तरस्तु चतुर्वर्गो महात्मन्येव तिष्ठति ॥ इति।

साम्प्रतं वयं धर्मनिरपेक्षाः स्मः, दम्भार्थमेव वा धर्मं सेवेमः। उभयतो विनिष्टिरियमापतिता भारते वर्षे। अपरं चेदमाश्चर्यं वयमवलोकयामः—ख्रीष्ट-धर्मप्रचाराय यूरोपामेरिकादिदेशेभ्यः समागतस्य धनस्य चाकचिक्येन भारतीयः सर्वोच्चन्यायालयोऽपि चकितचकित इव दृश्यते। मृत्तैलसमृद्धेभ्योऽरबदेशेभ्य इस्लामधर्मप्रचाराय समागतस्य धनस्य स्वागतं च सर्वेऽपि भारतीया राजनीतिज्ञाः कुर्वन्ति। धर्मः केवलं वर्तते भारतीयो धर्मः, अस्माभिस्तद्धर्मनिरपेक्षैरेव भाव्यम्। इयमेव वर्तते साम्प्रतिकानां भारतीयराजनीतिकदलानां धर्म-निरपेक्षतावधारणा।

धर्मनिरपेक्षताव्यामूढैरस्माभिरखण्डैक्यस्य सुदृढस्य भारतराष्ट्रस्य निर्माणाय न किमपि समाचर्यते। स्वतन्त्रतापदव्याख्याने न्यायाधीशा अपि विमूढा इव सन्ति, न च सम्यग् व्याख्यायन्ते भारतीयताया उपादानानि। भाषाकलहे, धार्मिकविवादे, श्रेष्ठतास्थापने च संलग्ना वयं कथं नाम तत्कर्तुं प्रभवामः। न्यायपालिका-कार्यपालिकयोर्यदा कदा परिदृश्यमानः कलहः पञ्च-तन्त्रीयं मेषाणां सूपकाराणां च कलहं स्मारयति, यत्र देशस्य वानराणा-मिव स्थितिर्दुष्करा सञ्जायते। धर्मनिरपेक्षेऽस्मिन् भारते वर्षे प्रच्छन्नरूपेण धर्माणां प्रतियोगितैव प्रवर्तते नूनमिति सम्यग् विचारणीयमस्माभिः। जङ्घेव दुर्योधनस्य दुर्बलान्यङ्गान्याक्राम्यन्ते। धर्मार्थकाममोक्षान् यथायथं समाचरद्भि-रस्माभिर्न केवलं भारतराष्ट्रस्य क्षेमाय, सम्पूर्णाया मानवजातेः कल्याणाय च विशालाया भारतीयसंस्कृतेः प्रचाराय च प्रयतनीयम्, अन्यथा याश्च काश्च सङ्कीर्णाः कुदृष्टयः सर्वमाकुलयिष्यन्ति ॥

स्वर्णमन्दिरग्रन्थीनां स्वात्मविघातिनी घोषणा

अखण्डैक्यावबोधकानि भारतीयानि दर्शनानीति जानाति जगत्। ग्रामग्रामटिकाजातिव्यक्तिधर्मवेशभूषाभाषाराज्यादिषु खण्डेषु विभक्तोऽपि जनस्तीर्थयात्रादिप्रसङ्गेषु तदेतस्याखण्डैक्यस्यावबोधं स्वात्मनि सम्यक् प्रत्यभिजानाति। आर्यद्रविडादिविभागानुद्भाव्य पाश्चात्त्या कूटनीतिस्तु तान्येतानि तत्त्वानि खण्डयितुं प्रवृत्ता विहेठयति भारतीयां विशालां दृष्टिम्। तच्चाकचिक्यानुप्राणिता आधुनिको भारतीया राजनीतिर्धर्मजातिभाषादि-

माध्यमेन भारतं वर्षं खण्डयन्ती दृश्यते। भाषाधारिराज्यनिर्माणस्य कटुफलमस्माभिः पञ्जाबसमस्यारूपम्, नगा-मिजो-सदृशजात्याधारिराज्यनिर्माणस्य च गोरखासमस्यारूपमुपभुज्यते। यावन्न प्रादुर्भवेयुरन्या अपि तादृश्यः समस्याः, ततः प्रागेव सम्पूर्णं भारतं प्रशासनिकसौविध्यदृष्ट्या पञ्चषेषु भागेषु संघटनीयम्।

धार्मिकेष्ववसरेषु कथाप्रवचनादिषु मठमन्दिरादिषु च लक्षशः समवेताऽप्यधिसांख्यिकी भारतीया प्रजा राजनीतिकक्षेत्रे धर्माचार्याणां हस्तक्षेपं नैव सहते। सन्ति काश्चन धर्मभाषाद्यहिफेनग्रस्ता जातयः। तासां मोहापगमाय अखण्डाया भारतीयायाः संस्कृतेर्वर्ततेऽपेक्षा। किन्तु केचन राजनेतारो मोहमेनं वर्धयन्तो दरीदृश्यन्ते। बुद्धिजीविनो नाम पत्रकाराश्च नाम साम्प्रतमहो रूपमहो ध्वनिरित्याभाणकं चरितार्थयन्तः परस्परं भावयन्तः स्वात्मनो वैशिष्ट्यं ख्यापयन्ति। किन्तु स्वर्णमन्दिरशुद्धीकरणप्रसङ्गे सम्पूर्णा जातिर्व्रणितेति चीत्कारमाचरद्भिस्तैर्नैव शोभनमाचरितम्। "शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः" इति वर्णितं विकल्पस्य लक्षणं भगवता योगसूत्रकारेण पतञ्जलिना। विकल्पजालेनानेन भ्रान्ताः केचन उन्मत्ता जना अकाण्डताण्डवमाचरन्ति। इत्थं राजनेतृभिः पत्रकारैर्बुद्धिजीविभिश्च गर्ते पातितस्यास्य देशस्य विनाशायैव भवेत् किल स्वर्णमन्दिरपरिसरतो निरपराधानां दण्डनाय प्रसारिता सा नूतनाधिनायकवादप्रसारिणी घोषणा, या आबालवृद्धवनितानां घातुकान् न निन्दति।

अतः सति समयेऽस्माभिस्तेषां विकल्पविभावितानां व्रणानां समारोपणाय चिकित्सा विधेया। न केवलं सिक्खसमुदाय एव, सन्त्यन्येऽपि समुदाया वर्गविद्वेषवादिभिः प्रतार्यमाणाः। सर्व एते भारतीयया उदारया सहिष्णुताभरितया प्राचीनतमयाऽथ च चिरनवीनया संस्कृत्या परिचायनीयाः। सहिष्णुता समन्वयश्चेति उपायनद्वयं प्रत्तं खलु विश्वमानवतायै भारतराष्ट्रेण। तस्याः सुखेन शान्त्या च जिजीविषा एतदायत्ता। न केवलं नेतृपदमारूढ इति, बुद्धिजीवीति, पत्रकार इति समुपादेयवचनो भवति कश्चित्, आप्तत्वं तु तत्रापेक्षितम्। बुद्धदेवस्य वचनमिदमवधेयमस्मिन् प्रसङ्गे—

तापाच्छेदाच्च निकषात् सुवर्णमिव पण्डितैः।
परीक्ष्य मद्वचो ग्राह्यं भिक्षवो न तु गौरवात्॥ इति।

एषैव सरणिर्मानवतायाः कल्याणाय कल्पेत। एवं च ऋषिमुनीनाम्, रामकृष्णयोः, बुद्धमहावीरयोः, सिद्ध-नाथ-गुरु-सूफीभक्तानां भूमावस्यां स्वर्ण-

मन्दिरतः प्रसारिता नूतना घोषणा तेषामेवानुदारचरितानां विघातिनी भवतु नाम। तदर्थं प्रयत्नसन्ततिरपेक्षितेति बद्धपरिकरा भवतु भारतीया प्रबुद्धा प्रजेति तामाह्वयामो वयं पुण्यतमायास्मै कर्मणे ॥

गड्डरिकाप्रवाहे पतिताः संस्कृतज्ञाः

सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥ इति,
एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

इति च मनुस्मृतिकारो भणति। "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" इति श्रुतिरप्याह। श्रुतिवचनं प्रेरयत्यस्मान्, मनुश्च मानवानादिशति। किं स्मो वयं तादृक्-सामर्थ्यवन्तो येन विश्वस्मिन्नार्यत्वं प्रतिष्ठाप्येत, उत वा सर्वे मानवा अस्मत्सकाशाच्चारित्र्यशिक्षां गृह्णीरन्। कश्चन राजनेता वक्ति भारतस्य कृते नूतनेयं राजनैतिकी पद्धतिर्जनतन्त्रं नाम। न तं कोऽपि स्मारयति भारतस्य प्राचीनां गौरवमयीं गणतन्त्रपद्धतिम्, "बहवो यत्र नेतारः सर्वे पण्डितमानिनः। सर्वे महत्त्वमिच्छन्ति तद् व्यक्तमवसीदति ॥" इति च तस्य मुख्यं राद्धान्तम्। भारतीयं जनतन्त्रं तदेतादृशैरेव नेतृभिः परिचाल्यमानं दृश्यते। तादृशान् नेतॄंश्च प्रमाणीकृत्य साम्प्रतं संस्कृतज्ञा अपि गड्डरिकाप्रवाहे पतिता इव दृश्यन्ते।

संस्कृतशिक्षाक्षेत्रेऽद्यापि काश्या गौरवं सावशेषमास्ते। तन्नंक्ष्यत्यचिरादेव, यद्येष प्रवाहः सत्वरं नावरोध्यते। सम्पूर्णेऽप्युत्तरभारते काशिकराजकीय-संस्कृतमहाविद्यालयस्याचार्यपरीक्षोत्तीर्णा विद्वांसोऽध्यापनार्थं नियोज्यन्ते स्म, अस्मिन् महाविद्यालये च सम्पूर्णेऽपि देशे लब्धख्यातयो मनीषिणः। आधुनिक-विश्वविद्यालयानां प्रवाहमनुसरद्भिरस्माभिरधुना सद्यः स्नाताश्छात्रा गौरवास्पदे तस्मिन् पदे नियोज्यते। छात्रसंघनिर्वाचनमत्रापि प्रवर्तते। तत्र च राजनैतिक-दलमाध्यमेन धनं वर्षतीति को नाम न जानाति। सार्वजनिके निर्वाचने यादृशा जना निर्वाच्यन्ते, तादृशा एव विश्वविद्यालयनिर्वाचनेष्वपि विजयिनो भवन्ति, त एव च साम्प्रतमध्यापकपदे नियोज्यन्ते। अपरं च वर्ततेऽयं गण्डस्योपरि स्फोटः परीक्षाभ्रष्टाचारो नाम। तया पद्धत्या शिक्षावैतरणीं तीर्णानामध्यापकानां बाहुल्यं यत्र जायेत, तत्र किं भवतीति साम्प्रतं संस्कृतशिक्षासंस्थासु यत्र-तत्र सर्वत्रावलोकयितुं शक्यते। किञ्च, परीक्षाविभागेऽध्यापकानां प्रवेशः

किंप्रयोजनक इति को नाम जानीते ? न कोऽपि ! अथवा सर्वे जानन्ति । न केवलं छात्राणाम्, अध्यापकानामपि संघः साम्प्रतिकेषु विश्वविद्यालयेषु वित्तगार्ध्य-वर्धनाय प्रवर्तते । चर्चैव तस्य कष्टप्रदा । बुद्धिजीविनो रक्षन्तु सर्वानिति चीत्कारस्तदेतादृशैरेव प्रवर्त्यते । चारणाचरणमनुकुर्वन्तस्ते कथं नाम रक्षिष्यन्ति कदर्थनाभ्यो मानवं लोकम् ? सामान्यजनतैव तान् शिक्षयतीति तु भारतीयेषु निर्वाचनेषु दरीदृश्यते ।

अयि मान्याः ! भारतीयायाः संस्कृतेः संरक्षणं संस्कृतायत्तम् । तदुपास-कानां चरितमिदमालोक्य सीदति भारतीया प्रजा । सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग इति भारतीयशास्त्राणि ब्रुवते । अधीतिबोधाचरणप्रचारणैरिति च नैषधकारो महाकविः श्रीहर्षो भणति । तन्मा ज्ञानहीनाश्चरित्रहीनाश्च भवथ । काश्या गौरवं भवदायत्तम् । तान् गौरवतन्तून् मा मा विच्छेदयत । एतदर्थं च प्राणपणेनापि तामेतां निम्नगां गतिं स्थगयित्वा पूर्वैर्मनीषिभिः क्षुण्णं पन्थान-मनुसरध्वम्, प्रबोधवचांसि कानिचित् समुपस्थापयतामस्माकमपराधं च क्षमध्वमिति ॥

कविराजमहोदयानामेकादशी पुण्यतिथिः

मानवा जयन्त्युत्सवायोजनेन देवान्, क्षयाहःश्राद्धश्रद्धाञ्जल्यादिना च पितॄन् प्रीणयन्ति । विशिष्टानां महात्मनां गुरूणां च उभयमपि समायोज्यते । तेष्वन्यतमाः सन्ति परमश्रद्धास्पदाः श्रीमन्तो गोपीनाथकविराजमहोदयाः । वाराणसीस्थेन आनन्दमयीमातुराश्रमेण सह तेषां कश्चन विशिष्टः संबन्ध आसीत् । स्वजीवनस्य चान्तिमः कालस्तैस्तत्रैव हापितः । अत्र सितम्बर-मासस्याष्टमे दिनाङ्के तेषां जयन्त्युत्सवः, जूनमासस्य द्वादशे दिनाङ्के च पुण्यतिथिसमारोहः प्रतिहायनं समायोज्यते । ऐषमो जूनमासस्य द्वादशे दिनाङ्के तत्र तत्रभवतां कविराजमहोदयानाम् एकादशीं पुण्यतिथिमालक्ष्य विद्वद्गोष्ठी खल्वेका समायोजिता, यस्याः कार्यविवरणमत्रैव प्रकाशितं वर्तते ।

गाण्डीवस्य कविराजश्रद्धाञ्जल्यङ्के श्रीमता पण्डितराजराजेश्वरशास्त्रि-द्रविड़महाभागेन लिखितमासीद् यद् विद्वज्जनसमक्षं प्रत्यभिज्ञादर्शनस्य महत्त्वख्यापनं नाम तेषां चिरस्मरणीयं विशिष्टमवदानमास्ते । प्रत्यभिज्ञा-दर्शनवेधसा भट्टोत्पलेन "कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्" इति भणितिमनुसरता साधारणजनस्याप्युपकारमिच्छता प्रत्यभिज्ञाकारिका निर्मिता । मुक्तिरेकेन जन्मना, इहैकभविको मोक्षः, सिद्ध्यतीहैव जन्मनि—इत्यादीनि शैवानि बौद्धानि च तन्त्राणि मानयता तेन क्रियाज्ञानभक्तीनां दर्शनान्तराणां च

समन्वयमुखेन इहैव जन्मनि स्वं स्वरूपं प्रत्यभिजानीयादिति सुघट एव नवो मार्गः प्रकटितः। "योगो नान्यः क्रिया नान्या" इति वचनानुसारं च क्रियायामेव योगस्यापि समावेशस्तस्याभिमतः। एवं च लोककल्याणमाचरन् इहैव जन्मनि स्वात्मस्वरूपप्रवणो भवेज्जन इति वर्तते प्रत्यभिज्ञादर्शनस्य प्रथमा शिक्षा।

"स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्" इति भणति भगवद्गीता। महाभारते विदुरः प्राज्ञतमो वर्ण्यते। तुलाधार-धर्मव्याध-स्वर्णनकुलानामुपाख्यानानि तत्र दृश्यन्ते। स्वरूपप्रत्यभिज्ञायां च ब्राह्मणचाण्डालादिव्यवस्था अकिञ्चित्करीति ख्यापयन्ति प्रत्यभिज्ञादर्शनविदो मुकुटादिसंहिताप्रामाण्येन। सैषा सर्वत्र समताभावना वर्तते तस्य द्वितीया शिक्षा।

आगमेषु द्वैतव्याख्यानमपास्य, ब्रह्मवादेऽविद्यां मायाशक्तीकृत्य, विज्ञानाद्वयवादमात्मेश्वराभिप्रायेण निरूप्य आविष्कृत एष नूतनो मार्गस्तर्को योगाङ्गमुत्तममिति सिद्धान्तमवलम्ब्य सर्वत्र समन्वयमापादयति। तर्कश्चायं न वैतण्डिकानाम्, अपि तु शास्त्रानुमोदित इति सम्पूर्णस्यापि भारतीयवाङ्मयस्य सम्प्रदायनिरपेक्षं गहनमध्ययनं विधेयमिति वर्तते तस्य तृतीया शिक्षा।

देश-भाषा-जात्यादिदुराग्रहेषु पतितो मानवो न प्रत्यभिजानात्यखण्डं तत्त्वमिति प्रत्यभिज्ञादर्शनप्रतिपादितान् सिद्धान्तान् प्रगुणीकृत्य कविराजमहोदयैरखण्डमहायोगसिद्धान्त आविष्कृतः। साम्प्रतं भारते देशेऽपि खण्डदृष्टिरेधमाना आस्ते। खण्डदृष्टिपोषकाणि नूतनानि क्षुद्राणि राज्यानि निर्मीयन्ते। न च शिक्ष्यन्ते जना अखण्डैक्यावबोधाय। श्रद्धास्पदानां वन्दनीयानां गुरूणां स्मरणमावश्यकम्, किन्तु प्रत्यभिज्ञादर्शनस्य कविराजमहोदयानां वा प्रशंसामात्रेण न किमपि सेत्स्यति। कविराजमहोदयैः प्रकाशितानां प्रत्यभिज्ञासिद्धान्तानां प्रचारस्तु नितान्तमपेक्षितः। अयमेव तेभ्यः शोभनः श्रद्धाञ्जलिरिति तु वयं विभावयामः। अत्र प्रशासनसमक्षं श्रीमद्भिः कमलापतित्रिपाठिमहोदयैः समुपस्थापितौ प्रस्तावौ नितान्तं विचारार्हौ। शोधसंस्थानसंस्थापनेन हि तत्सिद्धान्तानां गहनमध्ययनम्, पत्रप्रतीक(डाक टिकट)प्रकाशनेन च जनतायां तत्सिद्धान्तानां प्रचारः स्यात्। तत्र पत्रप्रतीके 'अखण्ड महायोग' इति तेषां प्रियः सिद्धान्तोऽवश्यमेवोल्लिखितो भवेदिति स्मारयामः॥

भारतपाकिस्तानयोः संघबद्धता

रुग्णं चिकित्सार्थं भारतदेशे समागतं 'सीमान्त गांधी' इति नाम्ना प्रसिद्धं वयोवृद्धं नेतारं श्रीमन्तम् अब्दुलगफ्फारखाँ-महोदयं द्रष्टुमागतः पाकिस्तानीय-

सिन्धप्रान्तस्य वयोवृद्धो नेता श्रीमान् 'गुलाम मुर्तजा सैयद'-महोदयो भणति यत् पाकिस्ताने सैनिकशासनस्य समुपचार एकमात्रं भारतपाकिस्तानयोर्महासंघ-निर्माणमेव । धर्मस्य संकुचितां व्याख्यां स्वीकृत्य कृतो देशद्वयरूपेण साम्प्रतं च देशत्रयरूपेण संजातो विभागः सर्वथाऽनुचित एवासीदिति स सुदृढमुद्घोषति ।

भारतस्य प्राचीनां समृद्धां सांस्कृतिकपरम्परां प्रशंसयन् स अशोक-विक्रमादित्य-अकबरसदृशान् भारतीयशासकान् सादरं स्मरति, पाकिस्तानीय-सैनिकशासनस्य दूषणानुद्घाटयति, उभयोर्देशयोः प्रशासनिकपदेषु स्थितानामधि-कारिणां च संकुचितामखर्वगर्वभरितां दृष्टिं निन्दति । भारतपाकिस्तानयोः प्रबुद्धा वयोवृद्धा नेतारः संमिल्य कार्यमेतत् सम्पादयेयुरिति स पाकिस्तानपक्षतो बादशाहखाँतत्पुत्रवलीखाँनयोः स्वकीयं च नाम प्रस्तौति । स वदति यत् सर्वप्रथम-मुभयोर्देशयोर्जनतामु सुदूरं दुर्रूढः संशयो दूरीकरणीयः । तदैव तन्मनसि कृतपदस्य भयस्य तज्जाताया घृणायाश्चोपशमः स्यात् । महात्मना गांधिना प्रदर्शितेन पथा प्रेम्णा शान्त्या च हृदयपरिवर्तने संजाते सति संशयभरितस्य भयस्य घृणायाश्चापाकरणं भवेदिति स मनुते । हिंसया शक्तिप्रदर्शनेन च मानवमनसि विघटनकरी विचारधारा प्रादुर्भवति । सा चान्ततो मानवताया विनाशाय दानवताया विकासाय च कल्पेत । भारतपाकिस्तानयोर्महासंघे किं भवतो बंगलादेशस्य अफगानिस्तानस्य च समावेशोऽभिप्रेत इति प्रश्ने समुपस्थापिते स उदतरयद् यदहं सम्पूर्णाया मानवताया एकीकारे विश्वसिमि । उदात्तस्य धर्मस्यायमेव सन्देशः ।

श्रीमतो 'गुलाम मुर्तजा सैयद'-महोदयस्य सर्वनितान् विचारान् वयं सबहुमानं मानयामः । देश-भाषा-धर्म-जातिषु खण्डिता मानवता विद्वेषयति न परानेव, स्वानपि । धर्मान्धा स्वार्थान्धा वा दृष्टिर्मलिनयति मानसं मानवानाम्, मलीमसं च मनो भयेन आशङ्कया कदाचन घृणया च पूरितं भवति । एतदर्थ-मखण्डाया दृष्टेरुन्मेष आवश्यकः । विशाला हि दृष्टिश्चेतसि किमप्यौज्ज्वल्य-मादधाति । भारतस्य उदारया विश्वजनीनदृष्ट्या अनुप्राणिताः समुद्रपारीणा अपि देशाः संघबद्धा इव बभूवुः । श्रीलङ्काद्वीपस्य वर्माख्यदेशस्य च पूर्वं भारतवर्ष एव समावेश आसीत् । नेपालदेशश्च साम्प्रतमपि प्राचीनतमाया भारतीयसंस्कृतेः स्वरूपं संरक्षयतीति को नाम न जानीते । न केवलं भारतपाकिस्तानयोः, अफगानिस्तानस्य वा, सर्वेषामेतेषां श्रीलङ्का-बंगलादेश-नेपाल-वर्मा-सदृशानां प्रतिवेशिदेशानां संघबद्धता अखण्डाया दृष्टेरुन्मीलनाय प्रकामं प्रवीणा स्यात् ।

कलहान्तरितेन श्रीलङ्कादेशेन सह भारतेन कृतो नूतनः शान्तिसन्धिरत्र आशातन्तुं प्रतानयति। वितानितेनेदृशेन पटेन प्रावृताः सर्वे एते देशा एकच्छत्रे महासंघे शान्त्या समुपतिष्ठन्तु नाम, एतन्महासंघस्य साहाय्येन तिब्बतदेशोऽपि स्वातन्त्र्यसुखमनुभवतु नूनमिति च किल वर्ततेऽस्माकं शोभनोऽभिलाषः ॥

विश्वसंस्कृतपरिषदः सम्मेलनम्

विश्वसंस्कृतपरिषदः सप्तममधिवेशनं हालैण्डदेशस्य लीडेननाम्नि नगरे अगस्तमासस्य त्रयोविंशतितारिकात आरभ्य एकोनत्रिंशत्तारिकापर्यन्तं सम्पत्स्यते। इतः पूर्वमस्याः षडधिवेशनानि दिल्लीनगरे, इटलीदेशे, पौरस्त्य-जर्मनदेशे, भारते वाराणस्याम्, अमरिकादेशस्य फिलाडेल्फिया-नाम्नि नगरे च सम्पन्नानि, यत्र विश्वस्य सुप्रसिद्धविद्वद्भिः संस्कृतविषये बहु शोभनं कार्यं कृतम्। येन संस्कृतस्य अभ्युत्थानं संजातम्।

इतः पूर्वमपि संस्कृतविश्वपरिषन्नाम्न्येका संस्था सञ्चालिताऽऽसीत्। मुम्बईस्थाः स्वर्गीयाः श्रीकन्हैयालालमाणिकलालमुंशीमहोदयास्तस्याः संचालका आसन्। यदा ते उत्तरप्रदेशस्य राज्यपालपदमलमकुर्वन्, तदा परिषदो वार्षिक-मधिवेशनं सोल्लासमायोज्यमानमासीत्। एकमधिवेशनं वाराणस्यां राजकीय-संस्कृतविद्यालयस्य प्राङ्गणे सम्पन्नम्, यस्याध्यक्षता तदानीन्तनेन राष्ट्रपतिना देशरत्न-डॉ० राजेन्द्रप्रसादमहोदयेन कृता। तस्मिन् महनीयेऽधिवेशने राज्यपाल-श्रीमुंशीमहोदयाः, तदानीन्तनमुख्यमन्त्रिणः पण्डितगोविन्दवल्लभपन्तमहोदयाः, शिक्षामन्त्रिणः श्रीसम्पूर्णानन्दमहाभागाः, माननीयाः प० कमलापतित्रिपाठि-महोदया इत्यादयो नैके विशिष्टा महानुभावा उपस्थिता आसन्। भारतराष्ट्रस्य प्रदेशीयशासनप्रतिनिधयः, विश्वविद्यालयानां प्रतिनिधयश्चोपस्थिता आसन्। तस्मिन्नधिवेशने समस्तभारते संस्कृतशिक्षायाः किं स्वरूपं स्यादिति विषये विविधप्रदेशीयशासनप्रतिनिधिभिः स्वस्वराज्यसम्बन्धिन्यः सूचनाः प्रदत्ताः। मुंशीमहोदयानां स्वर्गगमनानन्तरं सा परिषद् अस्तङ्गता।

प्राच्यविद्यापरिषद् (ओरियण्टल कान्फरेन्स) नाम्नी संस्था चिरकालात् स्थापिता वर्तते, या प्राच्यपौरस्त्यदेशानां संस्कृत-अरबी-फारसी-ग्रीक-लैटिन-रोमनप्रभृतिभाषासु निहितज्ञानविज्ञानविषये प्रशंसनीयं कार्यं करोति। अस्या अधिवेशनं भारते बहिश्च समये समये भवति, यत्र समवेता विद्वांस उक्त-भाषाणां विकासायाध्ययनाय च गवेषणापूर्णान् लेखान् प्रस्तुवन्ति। विभिन्नासु विद्वद्गोष्ठीषु ये लेखाः पठ्यन्ते, तत्र विदुषां विवेचनात्मिकाः सन्मतयः प्राप्यन्ते,

परस्परमपेक्षितो विचारविमर्शोऽपि सम्पद्यते । प्रायोऽत्र आङ्ग्लभाषया क्रिया-कलापाः सम्पाद्यन्ते। संस्कृतविषये प्राचीनविदुषामपि गोष्ठ्य आयोज्यन्ते, यासु शास्त्रीया चर्चा क्रियते । यथासमयं शास्त्रार्थोऽपि यत्र तत्र आयोज्यते ।

हालैण्डदेशे यदधिवेशनमायोज्यमानं वर्तते, तत्र संस्कृतसाहित्यस्य विभिन्नेषु विषयेष्वष्टादशगोष्ठ्य आयोजिता भविष्यन्तीति श्रूयते । चत्वारो वेदा मीमांसान्यायधर्मशास्त्रसहिताः, साहित्यशास्त्रमलङ्कारशास्त्रसहितम्, दर्शन-शास्त्रस्य विविधा भागा जैनबौद्धदर्शनसहिताः, पुराणेतिहासम्, तन्त्रागमप्रभृतयो नैके विषया गोष्ठीषु स्थानं लप्स्यन्ते। अनुसन्धानात्मका लेखा विदुषां समक्षं पठिष्यन्ते, तत्र विचारविमर्शो भविष्यति। अन्ते च संस्कृतप्रचाराय प्रसाराय संरक्षणाय च विदुषां मार्गदर्शनं भविष्यति ।

इदमधिवेशनं सर्वथा सफलं भवेदित्यस्माकमभिलाषः। भूमण्डले संस्कृत-स्याध्ययनं यथा प्रसरेत्, लोके च संस्कृताध्ययनस्योपयोगिता यथा प्रमाणिता भवेदित्येतदर्थं वयमधिवेशनस्य साफल्यं कामयामहे ॥

संस्कृतसंस्कृत्योरवमानना नोचिता

पाश्चात्या कूटनीतिर्भारतं विभाजितवती। तत्र ब्रिटिशदेशीया भारते वर्षे निवसतां हिन्दूनां मुस्लिमानां च समप्राधान्यमकामयन्त । मार्जारमर्कट-न्यायमनुसरतां तेषां धटीयौ नामोन्मानौ स्वार्थसिद्धयनुसारं प्रवर्तेते स्म। अत एव तैर्विश्वस्य प्राचीनतमा संस्कृतभाषा नवीनतमा च उर्दूभाषा पण्डितानां मौल-वीनां च प्रातिनिध्यमाचरन्त्याविव ख्यापिते। प्रशासनेन यत् संस्कृतभाषायाः कृते क्रियते स्म, तदनुरूपमेव उर्दूभाषामधिकृत्यापि समाचर्यत। अधुना लब्धेऽपि स्वातन्त्र्ये दृष्टिरेषा न पारतन्त्र्यं गता, प्रत्युत हिन्दीभाषया सह उर्दूभाषाऽप्यादरा-तिशयं लब्धवती। संस्कृतभाषामधिकृत्य कृतः पाश्चात्यानां दुष्प्रचारोऽधुनापि न शाम्यति। सा धर्मेण पण्डितवर्गेण च संबद्धा भाषैवोद्घोष्यते। अमेरिका-देशीया कूटनीतिरधुना भारतमधिकृत्य यथा व्यवहरति, तथैव भारतीयप्रशासनं संस्कृतभाषया सह खेलतीति सीदामो वयम्। साम्प्रतं शिक्षाक्षेत्रे प्राथमिक-माध्यमिककक्षाभ्योऽपि बहिष्कृता सा उदरम्भरिणः संस्कृतज्ञान् निष्पन्दनयना प्रत्यवेक्षते।

ब्रिटिशशासनवेलायां त्रिविष्टपराजधान्यां ल्हासानगर्यां भारतीयः सैन्य-गुल्मो नियोजित आसीत्। पञ्चशीलसिद्धान्ताविष्कारकेण तत्कालीनेन भारत-

प्रधानमन्त्रिणा सैन्यगुल्म एष ततोऽपसारितः। ततश्च तत्स्थापितः पञ्चशीलसिद्धान्तस्तत्रैव त्रिविष्टपातिथिः समजायत। अधुना न कोऽपि पञ्चशीलसिद्धान्तं पुरातनं दुरितमिव स्मरति। ताटस्थ्यं वर्ततेऽस्माकमपरः सिद्धान्तः। सिद्धान्तमिमं नाङ्गीकुरुतेऽमेरिकादेशः। कियान् व्यावहारिक एष सिद्धान्त इत्यपि दृष्टमस्माभिश्चीनाक्रमणसमये, यदा प्रतिवेशिनोऽन्ये च देशा वस्तुतस्तटस्था आसन्। केषाञ्चन प्रतिगामिनां संकीर्णदृष्टीनां परितोषाय तेन देशेन सहास्माकं संबन्धो नास्ति, येन प्राचोना हिब्रूभाषा मृतप्राया राजभाषात्वेन प्रतिष्ठापिता। सर्वं विपरीतमाचरतामस्माकं देशे संस्कृतभाषाया दुर्गतिर्जायेतेति किं नामात्र किलाश्चर्यकरम्।

ताटस्थ्यं नाम दुर्बलानामस्त्रमिति विभावयति नूनममेरिकादेशः। नैतादृशा देशाः सबलाः स्युरिति तस्य सुनिश्चिता नीतिः। तदेतादृशेभ्योऽविश्वसनीयप्रायेभ्यो देशेभ्यः साहाय्यदानं नाम स्वचरणयोरेव कुठाराघात इति स मनुते, तद्विरोधिनो देशांश्च बहु मानयति। एतदर्थमेवाऽमेरिकातुलायां लब्धगौरवा पाकिस्तानघटानतिर्दृश्यते। यथा यथा पाकिस्तानायाऽमेरिकासाहाय्यं वर्धते, तथा तथा वयं फूत्कारं कुर्मः, अस्माकमग्रिमः पादनिक्षेपश्च रूसदेशदिशि प्रवर्धमानो भवति। एकपक्षीया वयं भवेम इत्येव वर्ततेऽमेरिकादेशस्याभिलाषः। अमेरिकादेशेन कृतमवमूल्यनमस्माकं खेदाय भवति, किन्तु विदेशीयेषु प्रायः सर्वेषु विश्वविद्यालयेषु सादरमध्ययनविषयीकृतायाः संस्कृतभाषाया भारते देशे संजायमाना उपेक्षा न कामपि प्रतिक्रियामुत्पादयति। स्वसाधनैरेव देशः सबलीभवति। भारतीयसंस्कृतेरुद्घोषो डिण्डिमनादेनास्माभिः क्रियते, किन्तु सा संस्कृतिर्यदधीना, अखण्डैक्यं च भारतस्य यत्र सुरक्षितं वर्तते, सा भाषा समुपेक्ष्यते सामाजिकपरिवेषेषु। सति समये सावधानैरस्माभिर्भाव्यम्। अन्यथा उन्नामितासु प्रान्तीयभाषासु, अवमानितायां च संस्कृतभाषायां भारतोया संस्कृतिरपि छिन्ना भिन्ना च भविष्यति॥

पुरस्कारविशेषवितरणविडम्बना

यमो राजा नचिकेतसे त्रीणि वराणि ददावित्युपनिषत्सु श्रूयते। ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् संतोष्य मानवदानवादिभिर्यथेष्टानि वराणि लब्धानीति इतिहासपुराणादिषु स्मर्यते। पुरस्कर्ता पुरस्क्रियमाणश्चेति विभागो मानवसमाजे कदा प्रसृतिं लेभे ? इत्यस्मिन् विषयेऽपि शोधप्रियेण केनापि विदुषा किमप्यन्वेषितमेव स्यात्। नैककाव्यशास्त्रव्याख्याता कोलाचलो मल्लिनाथः स्वात्मानं 'महामहोपाध्याय'

इति विरुदेन विशेषयति। विरुदेनानेन पूर्वं मोहम्मदीयाः शासका नैकान् संस्कृत-विदुषः पुरस्कृतवन्तः। पश्चाच्च उपाधिरयमाङ्ग्लशासकैरपि योग्यतमान् स्व-स्वविषयेषु निष्णातान् कृतभूरिपरिश्रमान् विदुषः पुरस्कर्तुमङ्गीकृतः। नात्र क्वचन वैगुण्यं कदाप्यदृश्यत। रायबहादुरसदृशा अप्युपाधयस्तैर्वितीर्यन्ते स्मेति तु किल नूनमन्या कथा।

अधुना भारतप्रशासनेनोपाधिचतुष्टयं वितीर्यते। तत्रान्यतमस्य कथाव्यथा रायबहादुरसदृशो किल दृश्यते। अन्याभिश्च बह्वीभिः संस्थाभी राजकीयाभिः स्वतन्त्राभिश्च उपाधयः पुरस्काराश्च वितीर्यन्ते। योग्यतमाया व्यक्तेश्चयनाय सर्वत्र समितयः समायोज्यन्ते। किमेताः समितयो योग्यतमानां चयनं कुर्वन्ति, उत स्वकीयान् सुहृदः कुटुम्बिनश्च परिपोषयन्ति। किं वर्तते धर्मजातिप्रदेशादि-निरपेक्षा अखिलभारतीया दृष्टिविकासमापन्ना निर्णायकेष्वेषु ? हिन्दीकथाकारेण प्रेमचन्द्रेण 'पंच परमेश्वर' इत्यस्यां नवलकथायां प्रख्यापितः शत्रुमित्रनिरपेक्षो न्यायः किं तत्र प्रवर्तते ? उत—"अयोग्या यत्र पूज्यन्ते योग्यानां च व्यतिक्रमः" इत्याभाणकश्चरितार्थीक्रियते। गवालियरनृपतिना कस्मैचिद् विदुषे ब्राह्मणाय शतं रूप्यकाणि देयानीत्यादिष्टा अधिकारिणस्तस्मै चतुराणकानि (पावली) दत्तवन्तः। लब्धावसरः स कदाचन नृपतये दूरात् "पावली पावली" (पावली पाई) इति वदन्नासीत्। किमेष वदतीति पृष्टास्ते प्रत्युदतरयन् यदेष पारितोषिकं लब्ध्वा स्वकीयं परितोषं प्रसन्नतां च प्रकटयतीति। किमेतादृशीं मानसिकतां धारयन्तो निर्णायकाः सदसद्विवेकं कर्तुं सन्ति क्षमाः ?

श्रूयन्ते केचन स्वयंभुवो महाकवयः सुहृद्धर्मपालनेन कृतार्थीकृताः। निर्णायकेभ्यो वर्षत्रयावधिकं पुरस्कारधनराशिमुपहारीकुर्वाणा अपि श्रूयन्ते। किन्तु निर्णायकैरेतादृशैरेतत्स्मरणीयं यन्मध्ये एव ते मृत्युदेवेन आहूताश्चेत् किं भविष्यति भविष्यतीति। संस्कृतायोगसंस्तुतीः पुरस्कृत्य केन्द्रीयप्रशासनेन संस्कृतभाषाया अभिवृद्ध्यै केचनोपाया विहिताः। टिट्टिभाचरणमनुकुर्वन्तः सर्व-मेतदस्माभिरेव कृतमिति केचन मण्डयन्ति स्वात्मानम्। अन्ये च तेषां सहचराः केचन अहो रूपमहो ध्वनिरिति न्यायमनुकुर्वाणा वायसवाशितं शिवारुतं वा कुर्वन्तीति जानन्तोऽपि तान् पुरस्कुर्वन्ति। "दरिद्रान् भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरे धनम्" इति भीष्मवचनं न तेषां श्रुतिसरणिमवतरति। "ननु लक्ष्मीः फलमानु-षङ्गिकम्" इति सुभाषितवचनं च धनलिप्सूनां कर्णकुहरे कथं प्रविशतु नाम। द्विविधा भवन्ति पुरस्कृताः—केचन पुरस्कारान् पुरस्कुर्वन्ति, अन्ये च तान् विद्रू-पयन्ति। नूनमयोग्या यत्र पूज्यन्ते पतनोन्मुखः स समाजो देशो वेत्यचिरादेवा-

स्माभिर्निभालनीयम् । अन्यथा पुरस्कारविशेषाणां वितरणं विडम्बनाप्रायमेव भविष्यति ॥

पुरस्कारभाजः साधुवादैः सभाज्यन्ते

"उत्तरप्रदेश-संस्कृत-अकादमी" इत्याख्यया संस्थया संस्कृतविदुषां संमानननार्थं समायोजितः पुरस्कारप्रदानसमारोहोऽधिकज्येष्ठकृष्णचतुर्थ्यां शनिवासरे (४-६-८८ ई०) पूर्वाह्णे नवदिल्ल्यां त्रिमूर्तिभवने जवाहरलाल-नेहरुसभागारे सुसम्पन्नः। अत्र महामहिमशालिनो भारतस्योपराष्ट्रपतयः श्रीमन्तो डॉ० शङ्करदयालशर्माणः पुरस्कारवितरणमकुर्वन्। समारोहेऽस्मिन् उत्तरप्रदेशमुख्यमन्त्री श्रीमान् वीरबहादुरसिंहः, स्वास्थ्यमन्त्री श्रीमान् लोकपति-त्रिपाठी च समुपस्थितावास्ताम्। समागतानां विदुषां स्वागतं व्याहरन्तोऽ-कादम्या अध्यक्षाः श्रीमन्तः करुणापतित्रिपाठिमहोदयाः संस्कृतभाषाया महत्त्वं प्रख्याप्य तस्या अभिवर्धनाय उत्तरप्रदेशशासनसमक्षं कांश्चन प्रस्तावानुपस्था-पितवन्तः, पुरस्कारवितरणार्थं च उपराष्ट्रपतिमहोदयान् प्रार्थितवन्तः। अत्र ये कृतभूरिपरिश्रमाः शास्त्रनिष्णाता मनीषिणः, सुहृद्धर्मपालनप्रतिवचनप्रदानादिना वा सत्कृताः, सर्वेभ्यस्तेभ्यः साधुवादान् व्याहरामः। सकलप्रबन्धहर्तारोऽपि केचनासन्। परीक्ष्यकोटिमानीतास्त इति ज्ञात्वा विमनायते मनः। विश्व-विद्यालयविभागाध्यक्षपदमलङ्कुर्वद्भिः पण्डितप्रकाण्डपदवीधारिभिश्च यदैतत् कर्म क्रियते, तदा धनलिप्सुना केनचित् तदेव समाचरितमिति वराकोऽसाववश्यमेव पुरस्कारार्ह आसीत्। अस्तु, उत्तरप्रदेश-संस्कृत-अकादमी उत्तरप्रदेशप्रशासनं चाप्यवश्यमेव प्रशंसास्पदे, याभ्यामतिरिच्य सर्वाणि संस्थानानि राज्यानि केन्द्रं च विश्वसंस्कृतभारतीसदृशा विशिष्टाः पुरस्कारा अखिलभारतीयेभ्यो विद्वद्भ्यः सादरं ससमारोहं वितीर्यन्ते।

संस्कृतभाषाया उर्दूभाषायाश्च प्रतिस्पर्धा लब्धस्वातन्त्र्ये भारते चत्वा-रिंशद्वर्षेषु व्यतीतेष्वपि नापसरति। विश्वस्य प्राचीनतमायाः संस्कृतभाषाया भारतस्य नूतनतमायाश्च उर्दूभाषायाः का नाम प्रतिस्पर्धेति विचारणीयमेतत्। उर्दूभाषायामपि किं सन्ति सकलप्रबन्धहर्तारः, उत वा कुपुत्रा इव पूर्वपुरुषै-रर्जितस्य धनस्य यशसो वा केवलमुपभोक्तारः ? पुरुषार्थचतुष्टयेष्वर्थस्यापि वर्तते स्वकीयं वैशिष्ट्यम्, किन्तु स्वातन्त्र्यप्राप्त्युत्तरं यथा यथा संस्कृतज्ञानां कृतेऽर्थ-सौविध्यमेधमानमास्ते, तथा तथा संस्कृतपाण्डित्यं ह्रासोन्मुखमिव दृश्यते। आधुनिका नेतारो यथाऽर्थलौल्याय सर्वमाचरन्ति, तथा समाचरन्तः संस्कृतज्ञा अद्य बाहुल्येन समवलोक्यन्ते। संस्कृतज्ञा अप्येवं कुर्युरिति नानुमन्यते

लोकस्तेषु श्रद्धातिशयं धारयन्। नानेन लौल्येन शास्त्रसमृद्धिः सम्पद्येतेति सुनिश्चितमवधारणीयमस्माभिः।

अखिलं भारतमेव न, निखिलं विश्वं संमानयति संस्कृतम्। विश्वस्य प्रमुखेषु विश्वविद्यालयेषु पाठ्यते सैषा भाषा। प्राचीनानामर्वाचीनानां च विषयाणां तौलनिकमध्ययनम्, सांस्कृतिकमूल्यानां निर्धारणं च नानया विना संभवि। अत एवास्या भाषाया अभिवृद्धये उत्तरप्रदेशप्रशासनमुख्यमन्त्रिणा नैके प्रस्तावा अङ्गीकृताः। उपराष्ट्रपतिमहोदयैश्च उक्तं यत् कस्यचन वर्गविशेषस्य भाषेयमिति कैश्चन प्रवर्तितः प्रवादोऽयमधुनाऽऽमूलचूलं निष्कासनीयः, प्रान्तीय-भाषामाध्यमेन च हितोपदेशपञ्चतन्त्रादिनीतिशास्त्रप्रतिपादिता विषयाः संग्राह्यश्लोकोद्धरणपुरस्सरं प्रारम्भिककक्षापाठ्यक्रमेषु सरलया पद्धत्या सन्निवेशनीयाः, येन कथाव्याजेन भारतीयसंस्कृतिमूल्यानि बाल्यादेव तत्र प्रतिष्ठापितानि स्युः। सम्पूर्णाया मानवतायाः समुन्नत्यै समर्थेयं भाषेति जनताया विश्वासो मा नाम तदधीतिभिरध्यापकैश्छात्रैश्च परिहासपदवीमानेतव्यः। एतादृशानां पुरस्काराणां तदैव सार्थक्यं स्यात्। केवलं धनलौल्येन मिथ्या-यशोऽर्जनाय वा येन केन प्रकारेण कृतं संस्कृतभाषाध्ययनं पुरस्कारावाप्तिश्च विडम्बनाप्रायमेव स्यात्॥

उपनिर्वाचनानि : भूतं भविष्यच्च

विगते १६-६-८८ दिनाङ्के लोकसभाया विधानसभानां च कासाञ्चन उपनिर्वाचनानि सम्पन्नानि। निर्वाचनानामिव उपनिर्वाचनानां यद्यपि नास्ति तादृशं महत्त्वं राजनैतिकम्, तथापि साधारणजनतायाः परिवर्तनशीला मनो-वृत्तिस्तत्र प्रतिबिम्बिता भवत्येव। अपि च, केषाञ्चन उपनिर्वाचनानामपि भवति किमपि वैशिष्ट्यम्, यथास्मिन्नुपनिर्वाचने संजातस्य प्रयागीयनिर्वाचनस्य। भुशुण्ड्यायुधानां जलान्तर्गामिनौकानां च क्रयविक्रयव्यवस्थायामन्तर्निगूढस्य रहस्यस्य प्रकाशनेन भारतीयसेनाया मनोबलह्रासस्य नास्ति कश्चन दूरतनोऽपि संबन्धः। तादृशमाचरतस्त्यागपत्रदानाय संनद्धस्यापि तदनङ्गीकृत्य तस्य निष्कासनाज्ञाप्रसारः प्रशासनस्योन्मत्ततामेव ख्यापयति। तद्विरुद्धं कल्पना-प्रायान् रवान् मुञ्चतां केषाञ्चन शोचनीयचरितानां प्रहाराः किल पतनोन्मुखी वर्तते भारतीया राजनीतिरित्यस्यैव सूचका आसन्। भारतीयेषु धर्मशास्त्रेषु काश्चन वृत्तयो गर्ह्यन्ते। अधुना तु तद्विपरीतं दृश्यते। चिकित्सालयेषु प्रविष्टान् रुग्णान् विदुषो न कोऽपि पृच्छति। आधुनिका नटाश्च तत्र प्रविष्टाः

प्राणपणेनापि रक्ष्यन्ते, कोलाहलश्च संजायते पत्रपत्रिका-आकाशवाणी-दूरदर्शनादिषु। ईदृशेनैव नटराजेन इलाहाबादीयश्चन्दनः कर्दमीकृतोऽद्यापि न चेतते। भारतस्य सर्वेषु क्षेत्रेष्वग्रगण्या काचन जातिर्मतदाने स्वीयानेव बहु मानयिष्यतीति निर्णयोऽपि महात्मनो राजेन्द्रप्रसादस्य, प्रेमचन्द्रस्य, लालबहादुर-शास्त्रिणश्च पृष्ठभूमौ विडम्बनाप्राय एव मन्तव्यः। नटानां मेलापकेऽस्मिन्ननु रामायणीयनटस्यापि भूमिका तदनुगुणा एवासीत्।

विपरीतायामस्यां परिस्थितौ भारतप्रशासनस्य भूतपूर्वो रक्षामन्त्री वित्तमन्त्री च उपनिर्वाचने जयमवाप्तवन्तावित्येतेन भारतीयप्रजासु परिवर्तन-मालक्ष्यते। सा सर्वदा लब्धेऽवसरे समुचितमेव निर्णयं करोतीति पुनरप्येतेन प्रति-भाति। किन्तु निर्वाचिताः प्रतिनिधयो वारं वारं तद्विहेठयन्ति। अमृतत्वप्राप्तये प्रयतमानेषु भारतीयेषु केचन प्रधानमन्त्रिपदमवाप्यैव परमसन्तुष्टा भवन्ति, अन्ये च पदयात्रादिच्छलेन तदुपार्जयितुमिच्छन्ति। जनतन्त्ररक्षायै दलद्वयं त्रयं वा पर्याप्तम्, किन्त्वेते महत्त्वाकाङ्क्षिणो राजनीतिज्ञाः प्रधानमन्त्रिपदमेवामृतपदवीं मन्यमानाः परस्परं कलहायन्ते। "बहवो यत्र नेतारः सर्वे पण्डितमानिनः। सर्वे महत्त्वमिच्छन्ति तद् व्यवतमवसीदति॥" इति गणतन्त्रीया व्यवस्था तेभ्यो न रोचते। भारतीयायां राजनीतौ यावत् स्थास्यति व्यक्तेर्द्रव्यस्य वा महत्त्वम्, तावद् वास्तविकस्य जनतन्त्रस्य प्रतिष्ठा दुराशामात्रम्।

सद्योज्योतिषा शिवाचार्येण दार्शनिकविवादप्रसङ्गे उपहासविधया "द्रव्यप्रिया भवन्तो वै ज्ञाता नैव गुणप्रियाः" इत्युक्तम्। अस्याचार्यस्य वचनानि नारदीये महापुराणे यथाप्रसङ्गं संगृहीतानि सन्ति। गुणप्रिये समाज एव जनतन्त्रं स्थापयितुं शक्यते, न द्रव्यप्रिये, न वा व्यक्तिप्रिये। संभूय निर्णया विधीयेर-न्नित्येष वर्तते प्रथमः संकल्पो जनतन्त्रस्य, आकाशवाणी-दूरदर्शनादीनां स्वातन्त्र्यं च। जनताशासनस्य प्रारम्भिकेषु दिनेषु तदनुरूपमेव सर्वे निर्णयाः समजायन्त। किन्तु हन्त! मिथ्यामहत्त्वाकाङ्क्षा सर्वं विनाशितवती। जनतन्त्रे पक्षविपक्षौ नैव कदाचन शत्रुमित्रभावमञ्चत इति तावद् विभावनीयं भविष्णुना भारतीयेन नेतृवर्गेण। पत्रकाराश्च विचारयन्तु नाम निर्वाचनावसरेषु मतदातॄणां विभिन्नेषु वर्गेषु विभाजनं किं जनतन्त्रस्योपकारकम्? जनताशासनवदन्यस्य विपक्षशासनस्य स्थापनं भवतु मा वा, वास्तविकस्य जनतन्त्रस्य स्थापनं तु नूनमपेक्षितम्। सर्वे भारतीया राजनीतिज्ञाः संमिल्योपनिर्वाचनेनानेन तदर्थं प्रेरिताः स्युस्तदैवास्य साफल्यं कल्पेत। अन्यथा रामायणीयरावणवद् वर्धितो व्यक्तिवादो वंशवादो वित्तवादो वा सर्वं नाशयिष्यति। रहस्यानां प्रकटनेन न

जनतायास्तत्सेवकानां सेनाया वा मनोबलस्य हानिः, किन्तु रहस्यरक्षणाय ये विकल्पानारचयन्ति, परिणामे शरदभ्रवत् सर्वमेतदेकदा विलयं गमिष्यतीति को नाम भारतीयो न विजानाति। हो! मधुशालाया भवति ईदृश एव परिणामः।

अखिलभारतीयमाध्यात्मिकजीवनदर्शनमहासम्मेलनम्

राजस्थानराज्येऽर्बुदाचलस्थितया "प्रजापिता ब्रह्मकुमारी ईश्वरी विश्वविद्यालय" इत्याख्यया संस्थया समायोजितेऽस्मिन् सम्मेलने समवेतैर्धर्माचार्यैविद्वद्भिश्च विश्वस्य विशेषतो भारतस्य समुत्थानाय एकादशानुच्छेदात्मकः प्रस्तावः स्वीकृतः। सम्मेलनमिदं नवम्बरमासस्य द्वितीयदिनाङ्कतः षष्ठदिनाङ्कं यावत् सप्तसु सत्रेषु प्रावर्तत। प्रायो द्विचत्वारिंशत्संख्याकैः प्रथितैर्महामेधाविभिर्धर्माचार्यैर्विशिष्टैर्दार्शनिकैर्विद्वद्भिश्चात्र स्वविचाराः प्रकाशिताः। उद्घाटनमस्य सम्मेलनस्य बदरिकाश्रमज्योतिष्पीठाधीश्वराः श्रीमन्तो जगद्गुरवः शङ्कराचार्यपादाः शान्तानन्दस्वामिनः समकुर्वन्। सम्मेलनेऽस्मिन्नभिव्यक्तानां विचाराणां सारभूतः प्रस्तावोऽयमन्यत्र प्रकाशित इति तत्रैवावलोकनीयः। अत्र धर्मान्तरणनिषेधकोऽप्यनुच्छेदः संयोजनीय आसीत्। अरबदेशेभ्यो यूरोपामेरिकादिदेशेभ्योऽनारतमागच्छद्धि धनं समाजेऽसमञ्जसतामुद्वेगं च जनयति।

प्रस्तावेऽस्मिन्नाधुनिकीनां समस्यानां समाधानाय शोभनः पन्थाः प्रदर्शित इत्येतदर्थमत्र सम्मिलिता धर्माचार्या विद्वांसः सम्मेलनसमायोजिका संस्था चेति सर्व एते धन्यवादार्हाः। आध्यात्मिकानि मूल्यानि च न केवलं व्यक्तेः, अपितु समाजस्यापि कल्याणाय कल्पन्त इति किल सत्यम्, किन्तु तदर्थं व्यक्तिप्रधाने भारतीये समाजे सामाजिक्या दृष्टेः परिष्काराय सर्वैः संभूय प्रयतितव्यम्। भारतीयदर्शनेषु धर्मेषु सम्प्रदायेषु च समानमूल्येषु विचारेषु व्यक्तीकृतेष्वपि सर्वेषु भारतीयेषु समन्वयभावना सर्वधर्मसमभावना वा नोद्भवतीति तत्कारणानि विचिन्त्यानि, विपरीताया दृष्टेः परिहाराय च समतादृष्टिरुद्भावनीया, येन हि परस्परमुद्भूतानामविश्वासघृणाविद्वेषादीनां तत्प्रयुक्ताया हिंसायाश्च समूलमुच्छेदः स्यात्।

प्रस्तावस्य दशमेऽनुच्छेदे महत्त्वपूर्णेयं घोषणा वर्तते यदस्पृश्यताया आदिसनातनधर्मे स्थानं नास्तीति घृणाविद्वेषादीनां जननी सेयमस्पृश्यता सर्वथा वर्ज्या। अस्पृश्यता ननु सनातनधर्मानुयायिषु चिरप्ररूढा वर्तते। धर्मान्तरणदेशविभाजनादीनां जननी सेयमद्यापि न विरमति दुर्व्यापारात् स्वकीयात्। अक्षिनिमीलकः कपोतो मार्जारेण कवलीक्रियते। सनातनधर्मे तस्याः स्थानं

नास्तीति कथनेन न सा दूरमपास्ता स्यात्। वर्णाश्रमव्यवस्था सती वा असती वेति तिष्ठतु तावत्, तत्राविर्भूताऽसमा दृष्टिर्हि जननी वर्तते नानाविधानां सम्प्रदायानां जातीनां च। वैदिकधर्मे ब्राह्मणानाम्, बौद्धे क्षत्रियाणाम्, जैने च धर्मे वैश्यानां श्रेष्ठता स्वीकृतेति को नाम न जानाति। शूद्राणां किं मानवमात्रस्य पक्षधरो वर्तते तान्त्रिको धर्मो नानासम्प्रदायेषु प्रविभक्तः। दीक्षयेत् श्वपचानपीति तत्र प्रतिपाद्यते। "द्विजोऽपि मायी त्याज्यस्तु म्लेच्छो ग्राह्यो ह्यमायकः" इति वर्तते तस्य उद्घोषः। "म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्। ऋषिवत् तेऽपि पूज्यन्ते" इति च ज्योतिर्वित्प्रवरो वराहमिहिरो भाषते। अस्पृश्यतायाः पोषका धर्माचार्यास्तान्त्रिकया दूतीयागसदृश्या अर्चाया उपासकाः सन्ति, किमर्थमेभिरस्पृश्यतायाः साम्प्रतिकलोकाचारविपरीतायाः परित्यागाय त इमे तान्त्रिका विचारा न स्वीक्रियन्ते। धर्मशास्त्रनिबन्धकारैः—"यद्यपि स्यात् स्वयं ब्रह्मा त्रैलोक्याकर्षणक्षमः। तथापि लौकिकाचारं मनसाऽपि न लङ्घयेत् ॥" इत्येतादृशानि वाक्यानि प्रमाणीक्रियन्ते। अत एव धर्मशास्त्रनिबन्धकाराः श्रुतिस्मृतिपुराणतन्त्रागमादिप्रामाण्येन देशकालानुगुणं धर्मं व्याख्यातवन्तः। स्मृत्यादीनां कलिवर्ज्यप्रकरणेषु श्रुतिस्मृत्यादीनां कालातीतानि विधानानि स्थगितानि सन्ति। अस्पृश्यतापिशाचिनी सेयमधुना कलिवर्ज्यप्रकरणेषु यथा स्थापिता स्यात्, तथा प्रयतनीयं धर्माचार्यैर्विद्वद्भिश्च। अन्यथा सनातनधर्मेऽस्पृश्यतायाः स्थानं नास्तीति विकल्पप्रायेण कथनेन न किमपि सेत्स्यति। अर्बुदमर्धपीठमित्याहाभिनवगुप्तः। शाक्तेऽस्मिन् पीठे धर्माचार्याणां विदुषां चास्पृश्यतानिवारकः सत्संकल्पः पराम्बाया जगज्जनन्याः कृपया फलेग्रहिः स्यादित्येवाधुना काम्यते ॥

तृतीयाऽन्ताराष्ट्रियशैवसिद्धान्तसंगोष्ठी

वाराणस्यां दिसम्बरमासस्य ८–१० दिनाङ्केषु तृतीया अन्ताराष्ट्रिया शैवसंगोष्ठी काश्यां केदारघट्टे कुमारस्वामिमठाधिष्ठातुः सन्तकुमारगुरुपररमहात्मनस्त्रिशताब्दीसमारोहावसरे समायोजिता, यस्यामुत्तरदक्षिणभारतस्य बहवो विद्वांसः, केचन विदेशीयाश्च संस्कृतप्रवक्तारो विपश्चितः समवेता आसन्। अस्याः संगोष्ठ्याः संयोजका आसन् शैवसिद्धान्तान्ताराष्ट्रियशोधसंस्थानस्य तमिलनाडुराज्यस्य धर्मपुरस्थानस्थितस्य संचालकाः श्री टी० एन० रामचन्द्रन्महोदयाः। अस्याः संगोष्ठ्या वैशिष्ट्यमिदमासीद् यत् प्रथमे दिने सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालये संस्कृतभाषामयाः, द्वितीये दिने काशीविद्यापीठविश्वविद्यालये हिन्दीभाषानिबद्धाः, द्वितीयदिनेऽपराह्णे तृतीये च

दिने काशीहिन्दूविश्वविद्यालये कुमारस्वामिमठपरिसरे च आङ्ग्लतमिलभाषाभरिता निबन्धाः पठिताः, तत्र तत्र समुपस्थितानां विदुषां च तत्तद्भाषामाध्यमेन विचारविमर्शः परस्परं समजायतेति ।

"प्रायश्च सिद्धान्तप्रियो लोकः" इति वदन् क्षेमराजः शैवसिद्धान्तस्य लोकप्रियत्वं प्रदर्शयति । सिद्धान्तशब्दश्च पङ्कजादिशब्दवद् योगरूढ्या शिवप्रणीतेषु कामिकादिषु दशाष्टादशसु तन्त्रेषु प्रसिद्ध इति वदन्नघोरशिवश्च सिद्धान्तशब्दस्य स्पष्टां व्याख्यामातनोति । "स्वतन्त्रो दशधा पूर्वं तथाऽष्टादशधा पुनः । कामिकादिसमाख्याभिः सिद्धः सिद्धान्तसंज्ञितः ॥" इति च वर्तते वायवीयसंहितावचनम् । सिद्धान्तपदस्य सोऽयं योगरूढोऽर्थः स्मृतिषु पुराणेषु च तत्र तत्र द्रष्टुं शक्यते । अस्यां स्पष्टायां व्याख्यायां सत्यामपि केचनात्र संशेरते । दक्षिणभारतीयमिदं दर्शनम्, अत्र च न केवलं द्वैतवादः, अपि त्वद्वैतवादोऽपि व्याख्यायत इत्येतादृशेषु विषयेषु सर्वासु गोष्ठीषु बहुधा विचारविनिमयः समजायत । खेटपालादिनारायणकण्ठसुतरामकण्ठपर्यन्तैः काश्मीरकैराचार्यैर्द्वैतवादिभिः, वैरोचनशिवेशानशिवब्रह्मशम्भुसोमशम्भुप्रभृतिभिः शिवशम्भुनामान्तैर्मध्यदेशीयैराचार्यैरपि च व्याख्यातत्वात्, "निःशेषशास्त्रसदनं किल मध्यदेशः" इति, "त्र्यम्बकामर्दकाभिख्यश्रीनाथा अद्वये द्वये । द्वयाद्वये च निपुणाः क्रमेण शिवशासने ॥" इत्यभिनवगुप्तोक्तेश्च तावदामर्दकपीठे द्वैतवादाचार्या इदम्प्रथमतया बभूवुरिति ज्ञायते । कुत्र वर्तते आमर्दकपीठम्, कथं च ततो दक्षिणभारते शैवसिद्धान्तस्य प्रचारोऽभूदित्येतादृशेषु विषयेषु यावानपेक्षितो विचारो न प्रावर्तत ।

केचन सिद्धान्तशैवदर्शनमप्यद्वैतवादिनमूरीकुर्वते । अनालोचितरमणीयेष्वघोरशिवादिभिः प्रत्याख्यातेष्वपि तादृशेषु विचारेषु दुराग्रहः सिद्धान्तशैवागमापरिचयमेव तेषां ख्यापयति । अद्वैतवासनाविष्टैस्तत्त्वप्रकाशोऽन्यथा व्याख्यातः, रत्नत्रयस्य च कैश्चिद् वेददृशा, अपरैः कुलधिया, न्यायानुवृत्त्येतरैर्व्याख्यानं विहितमिति न तेन सिद्धान्तागमानां द्वैतवादपरत्वं व्याहतं भवति । प्रस्थानचतुष्टयपदाभिलप्यानामुपनिषद्-ब्रह्मसूत्र-भगवद्गीता - भागवतपुराणानामाधारेण विभिन्नैराचार्यैर्द्वैतादयः सिद्धान्ताः प्रतिष्ठापिताः । न तादृशी स्थितिर्वर्तते सिद्धान्तागमानाम् । "आगमेषु द्वैतवादमपास्य, ब्रह्मवादेऽविद्यां मायाशक्तीकृत्य, विज्ञानाद्वयवादमात्मेश्वराभिप्रायेण निरूप्य सिद्ध्येदेष जनः" (भा० ३, पृ० ४०५) इति विवृतिविमर्शिन्यामभिनवगुप्तोक्त्यनुसारं व्याख्याभेदे सत्यपि सिद्धान्तशैवागमानां द्वैतवादित्वं सुतरां सिद्ध्यति । शैवागमेषु शिवसमतारूपायां

मोक्षदशायामुत्पत्ति-संक्रान्ति-आवेश-अभिव्यक्तिपक्षाः स्वीक्रियन्ते। तत्राभिव्यक्तिपक्षः सिद्धान्तशैवानामित्यत्र न कोऽपि विवादः। अत एवोक्तं तत्त्वप्रकाशकारेण भोजदेवेन—

मुक्तात्मानोऽपि शिवाः किन्त्वेते यत्प्रसादतो मुक्ताः।
सोऽनादिमुक्त एको विज्ञेयः पञ्चमन्त्रतनुः ॥ इति।

एवं च सिद्धान्तशैवा द्वैतवादिन इति मतं स्मृतिपुराणागमादिसमर्थितमिति न कश्चन द्वापरस्य लवलेशोऽप्यत्र मन्तव्यः। सर्वदर्शनसंग्रहे सायणमाधवाभ्यामप्ययमेव सिद्धान्तः शैवदर्शनव्याख्यानावसरे प्रदर्शितः। प्रवर्तन्तां नाम तादृशा विचाराः, व्याधूयेरंश्च शङ्काकलङ्का इत्येव किलोपलब्धिर्भवति गोष्ठीनामेतादृशीनामिति संयोजकाः समवेता विद्वांसश्च साधुवादशतैः सभाज्यन्ते ॥

किमर्थमयं महान् कोलाहलः प्रवर्तते ?

सलमान-रुश्दीलिखितं 'सैटेनिक वर्सेज' इत्याख्यमुपन्यासमुपलक्ष्य महान् कोलाहलः कलहश्च समुपलक्ष्यते यत्र तत्र। लेखकेन धर्मविरुद्धमाचरितमिति वदन्तः केचन संकीर्णमतयो मृत्युदण्डेन मारणीयः स इति तदर्थं महान्तं धनराशिं पारितोषिकत्वेन कल्पयन्ति। वक्तृस्वतन्त्रताया लेखनस्वातन्त्र्यस्य च पोषकाः प्रबुद्धमतयश्च दौत्यसम्बन्धविच्छेदपणेनापि तादृशं विश्वमानसत्रासकरं निर्णयं विरुन्धन्ति। इतश्चतुर्दशशतवर्षपूर्वमरबक्षेत्रे नूतनस्य कस्यचन धर्मस्य प्रादुर्भावः समजायत, भारते देशे च तदानीमेव भगवतः शङ्कराचार्यस्य। एकस्मिन्नेकमात्रधर्मग्रन्थमपरस्मिन् करे च करालं करवालमादाय विश्वविजयाय निर्गतेनानेन धर्मेण नैकाः संस्कृतयो नामशेषीकृताः, संस्कृतिप्राणभूता विशालतमा ग्रन्थालया देवालयाश्च भस्मीकृता भग्नीकृताः। अद्यापि तदीया रौद्री बीभत्सा चेयं मानसिकता नावसितेति धर्मान्धानां तेषां तेन तेन घृणार्हेण कृत्येन प्रकटीभवति।

"त्रयो वेदस्य कर्तारो भण्डधूर्तनिशाचराः" इति वदन् चार्वाकमतस्य संस्थापको वर्तते देवगुरुरिति तन्मतमद्यापि भारतीयदर्शनग्रन्थेषु समुपलभ्यते। वैदिकानां बौद्धानां जैनानां चार्वाकादीनां चैषां प्रावर्तत वाग्युद्धं सहस्राधिकवर्षव्यापि। स्वस्वमतस्थापकानामाचार्याणां महापुरुषाणामेव न, भगवतां

रामकृष्णबुद्धमहावीरादीनामपि समालोचनायां न कोऽपि पश्चात्पद आसीत्। महाकविना भवभूतिना वैदिकी हिंसा भगवतो रामभद्रस्य च बालिवधरूपः पराक्रमो लवकुशमुखेनैव समालोच्यतामानीनः। एतादृश्याः सहिष्णुताया जनकोऽयं भारतो देशः पूर्वोक्तस्य ग्रन्थस्य स्वदेशे प्रसारप्रतिबन्धकेषु प्रथम आसीत्। शिवारुतमाचरतां संकीर्णमतीनां पुरतो जानुनिपातनस्य नेयं प्रथमा घटना। मुस्लिममहिलाधिकारं वर्धयतः सर्वोच्चन्यायालयस्य निर्णयमभिलक्ष्यापि भारतशासनेन तदेव समाचरितम्। ही! भीषणोऽयं सांस्कृतिको निपातो भारते देशे एधमान आस्ते। सहिष्णुताया जनकोऽयं देशः स्वयमेवाधुनाऽसहिष्णताकूपे निपतन्नास्ते। सहस्रवर्षेभ्यः सहैव निवसद्भिरस्माभिः स्वकीया विशिष्टा गुणास्तत्र न संक्रामिता इत्येव न, हन्त! तद्विपरीतं तेषां दोषा अस्माभिः स्वयमेव गृहीताः। तेषां शिवारुतेन मर्कटाक्रमणमुद्रया च भीता भारतीया राजनीतिज्ञा गुणदोषविवेकमपि कर्तुमक्षमा इव साम्प्रतमवलोक्यन्ते।

धर्माणां संस्कृतीनां च संघर्षः साम्प्रतं सर्वत्र प्रवर्तते। संघर्षादस्माद् विश्वं परित्रातुं भारतीया सहिष्णुतैव एकमात्रं शरणम्। सा खलु सहिष्णुता सुदृढमैकमत्येन प्रदर्शिता यूरोपीयै राजनीतिज्ञैः, येन हि खुमानीसदृशानां क्रूरमतीनां प्रस्तावो नाङ्गीकृतो विश्वमुस्लिमसभयापि। भारतशासनेन नु किलासहिष्णुताग्नौ स्वदुर्विचारितेन निर्णयेन घृताहुतिरेव दत्ता। असहिष्णुतापिशाचीग्रस्ताः केचन रामजन्मभूमिविवादमभिलक्ष्य वदन्ति यद् भारते वर्षे स्वतन्त्रताप्राप्तिकालीना स्थितिः सर्वत्र स्यादिति। किं तादृशैर्वावदूकैः पाकिस्ताने बंगदेशे च सा स्थितिः स्थापयितुं शक्यते, ये हि विरुद्धभाषिणः स्वसम्प्रदायानुवर्तिनोऽपि जनान् मृत्युदण्डेन यमसदनं प्रेषयन्ति। वस्तुतो भारते सा स्थितिरानेतव्या, या हि सहस्रवर्षेभ्यः पूर्वमासीत्। भारतस्य प्रथमगृहमन्त्रिणा दृढेच्छाशक्तिसम्पन्नेन यथा हि सोमनाथमन्दिरस्य पुनरुद्धारः समाचरितः, तथैव सर्वेषां तेषां विरुद्धमतावम्बिभिः समाक्रान्तानां स्थानानामुद्धारः परमावश्यकः। इच्छयाऽनिच्छया वा यदैतत्कार्यं सम्पत्स्यते, तदैव भारतीयेषु इस्लामधर्मानुयायिषु सहिष्णुतायाः संचारो भविष्यति, तदैव च ते बुखारी-शहाबुद्दीनसदृशानां भ्रान्तमतीनां सम्पूर्गं समाजं गड्डरिकाप्रवाहन्यायेन संचालयतां क्रूराग्रहकरैर्मुक्ताः सुखेन विहरिष्यन्ति। इदं चावदधतु मुहम्मदीया यन्महात्मनां चरितानि न भवन्ति छुईमुईलतासदृशानि, यानि समालोचनाकरस्पर्शमात्रेण संकुचितानि स्युः। इदं चावधेयमस्माभिर्यद् भविष्यति विश्वमसहिष्णुताद्वयेन इस्लामधर्मतश्चीनदेशतश्च समागतेन पीडितं भविष्यतीति ताभ्यां तस्य परित्राणाय सततं जागरूकैरस्माभिर्भवितव्यम्, न चासहिष्णुतापिशाच्यै मनागपि प्रसरो देयः॥

जनतन्त्रे सामूहिकं नेतृत्वमपेक्षितम्

प्रधानामात्यः श्रीमान् राजीवगांधी यदा भणति मयैतत्कृतं पुनश्च करिष्यते, अथवा जनतादलनेता श्रीमान् विश्वनाथप्रतापसिंहो यदा वक्ति यदहं प्रधानामात्यो भवेयं चेत् सैनिकानां कृते किमपि करिष्यामीत्युभयविधैषा वावदूकता जनतन्त्रविरुद्धा। वस्तुतो हि प्रधानमन्त्री स्वदलीयनीतीनां कार्यान्वयनमाचरति, न तु कदाचन स्वेच्छाचारितां समाश्रयति। जनतन्त्रे च मन्त्रिमण्डलस्य सामूहिकं नेतृत्वमपेक्ष्यते। यदि तत्र कश्चन स्वत्वं स्थापयति, निदानं भवति तदधिनायकवादस्य। जनतादलशासने श्रीमतो मुरारजीभाईदेसाईमहोदयस्य मन्त्रिमण्डले तादृशं तारतम्यं कियत्कालपर्यन्तमासीत्। तदा आकाशवाण्याः स्वातन्त्र्यविषयेऽपि तैर्विचारितम्, किन्तु महत्त्वाकाङ्क्षिभिः प्रधानामात्यपदलोलुपैः सर्वं तद्विनाशितम्। अधुनाऽऽकाशवाणीदूरदर्शनयोर्नियतिं दृष्ट्वा शिरोवेदनामनुभवन्तीति कोऽत्रापराध्यति ?

"यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥" इति भाषते भागवती गीता। अर्थशुद्धिविहीनः कश्चन सहयोगी श्रीमता नेहरुणा जवाहरलालेन प्रधानामात्येन पूर्वतनेन रक्षित इति तदा प्ररूढो भ्रष्टाचारपादपः साम्प्रतं कीदृशं विकरालं स्वरूपं धारयतीति जानीमो वयम्। बोफोर्सभुशुण्डीप्रसङ्गस्तादृश एव साम्प्रतं प्रवर्तते। वारं वारमावर्तनेनासत्यं सत्यं प्रतीयत इति पाश्चात्त्याधिनायकवादप्रवर्तकानां सिद्धान्तमनुसरद् भारतीयं दूरदर्शनम्, तामेव सरणिं शरणीकुर्वाणाऽऽकाशवाणी च प्रत्यहं यत्प्रसारयतः, किं विद्यते तद्भारतीयसंस्कृत्यनुगुणम् ? किमीदृशैः कृत्यैः पतनोन्मुखे प्रबुद्धे भारतीये समाजे क्वचन अर्गलास्थानं निर्मातुं शक्यते ? किमीदृशान्यस्माकं कृत्यानि न वपन्ति प्रतिवेशिदेशेषु भारतं प्रत्यवमाननाबीजानि ?

वस्तुतो हि भारते देशे राजनेतृत्वमपि वयोवृद्धैर्विद्वद्भिस्तपस्विभिर्मनीषिभिश्च नियन्त्रितमासीत्। साम्प्रतं तद्विपरीतं विपरीतगामिन्या अपि युवजनशक्तेर्माहात्म्यं गीयते। वृद्धाश्च स्वार्थभाण्डे निमग्ना रामजन्मभूमिसदृशेषु विवादेषु न यथार्थां दृष्टिं धारयन्ति। प्राचीनानि मन्दिराणि विध्वंस्य निर्मितानि पूजास्थानानि हि वस्तुतः सन्ति बर्बरतायाः, असभ्यताभरितस्य उद्दामस्याहङ्कारस्य, असहिष्णुतायाः, हठवादितायाश्च प्रतीकानि। अनपसार्यैनां विकृतिं नात्र सहिष्णुतायाः, समन्वयस्य, सहयोगभावनायाश्च विकासः कर्तुं शक्येत। बहुमतापेक्षिणो राजनीतिज्ञा मतमाहात्म्यं गायन्तः सर्वं तत् समाचरन्ति, येन

भारतीया संस्कृतिः समूलं विनष्टा स्यात्। जात्युन्मूलने संलग्ना एते नूतनान् वर्गान् द्वेषमयोद्विग्नताऽऽशङ्काभरितान् सर्जयन्ति। अयोग्या यत्र पूज्यन्ते योग्याश्च तिरस्क्रियन्ते चेत्, तद् व्यक्तमवसीदति शासनमिति विभाव्य दलतन्त्रवादिभी राजनीतिज्ञैस्तथा समाचरणीयम्, येन योग्याः समादृताः, दुर्दुरूढा दमिताः, वृद्धाश्च संमानिताः स्युः, राजनीतौ सामूहिकं नेतृत्वं च स्थापितं स्यात्। प्रत्येकम् अहम्मन्यताभरिता नेतारो द्वित्रदलीयराजनीति-संचालने बाधका भवन्तीति सत्वरमेव विभावनीयं तावदस्माभिः॥

सम्भूय समुत्थानमपेक्षितम्

बहवो यत्र नेतारः सर्वे पण्डितमानिनः।
सर्वे महत्त्वमिच्छन्ति तद् व्यक्तमवसीदति॥

भारतीयजनतन्त्रमुद्दिश्य कथितमिवेदं वचनं प्राचीनेषु ग्रन्थेषु समुप-लभ्यते। १९७७ ई० वर्षीयं जनतादलशासनमीदृशानामेव महत्त्वाकाङ्क्षिणां पण्डितमानिनां नेतृणां पारस्परिकेण कलहेन विनाशितमभूत्। साम्प्रतमपि पदयात्रादिपद्धत्या जयप्रकाशनारायणस्योत्तराधिकारिणं महात्मानं स्वात्मानं घोषयन्तो भारतीयसंस्कारशून्या ईर्ष्याकलुषितचेतसो युवातुर्कपदवीमुपलभ्य मोदमाना गर्वभरिताः शहाबुद्दीनसदृशान् संकीर्णमतीन् वर्धयन्तस्तादृशा राजनीतिज्ञाः प्रचरन्ति। राजनीतावसामाजिकतत्त्वानामिदम्प्रथमतया प्रवेश-काश्च साम्प्रतं तद्विरुद्धं चीत्कारमाचरन्ति। एतादृशानां धूमकेतूनामुदयः पुनरपि भारतीयराजनीतौ मा भूदिति जनताजनार्दनेन सावहितमवलोक-नीयम्।

अभिनवे निर्वाचने भारतीयजनतयाऽत्यद्भुतोऽयं निर्णयः कृतः, येन हि परस्परं कलहायमानौ द्वौ दलौ सम्भूय जनताप्रशासनस्य सहायतायै सज्जीभूतौ। साम्प्रदायिकशक्तीनां वृद्धिरस्मिन् निर्वाचने संजातेति केचन वावदूका वदन्ति। तत्र प्रथममिदं विचारणीयं केयं साम्प्रदायिकता नाम। स्वस्वसम्प्रदायानुसारं सर्वोऽपि भारतीयो जनः स्वेष्टदेवतां समाराधयेदित्यत्र कस्य किल विमतिः स्यात्। किन्त्वेते यदा परस्परं कलहायन्ते तदा सा प्रवृत्तिरधुना साम्प्रदायिकता-नाम्ना परिचीयते। सैषा साम्प्रदायिकता सम्प्रदायानां प्रकृतिरथवा केचनात्र सूत्रसंचालकाः सन्तीति विचार्यमाणे तत्पृष्ठभूमौ राजनीतिज्ञा अवलोक्यन्ते।

तत्र विभिन्नेषु वर्गेषु विभक्ता द्वन्द्वात्मकभौतिकवादमनुसरन्तः साम्य-वादिनः सर्वत्र परस्परं विद्वेषं प्रचारयन्तोऽवलोक्यन्ते। एतेषां सूत्रसंचालका

विभिन्नेषु परराष्ट्रेषु निवसन्ती ति तत्प्रयुक्तस्तत्रावान्तरभेदः। सम्प्रदायशब्दस्य तात्पर्यमजानाना एते नैकान् राजनीतिकदलान् सम्प्रदायवादिन उद्घोषयन्ति। अन्यान्यपि बहूनि राजनीतिकदलानि राष्ट्रहितमविगणय्य केवलं दलशक्ति-वर्धनाय विभिन्नान् बुखारीसदृशान् साम्प्रदायिकान् परसम्प्रदायदूषकान् समाश्रयन्ति। एकमात्रं भारतीयजनतादलं दलहितं दूरीकृत्य सम्पूर्णस्य राष्ट्रस्य कल्याणाय बद्धपरिकरम्। किन्त्वन्यानि सर्वाणि दलानि सम्भूय तद्विरुद्धं शिवारुतमाचरन्ति। शिवारुतेनानेनाप्रभाविता भारतीया जनता तस्मै राष्ट्र-हितकारिणे दलाय संमानितं स्थानं दत्तवतीति धन्यवादार्हा सा। तेन परिस्थिति-रेतादृशी समायाता, यया तस्य सहयोगमनवाप्य दलीयं शासनं स्थायितया स्थापयितुं न शक्यते। अयमेव स समयः, यदा साम्यवादीये दक्षवामशब्दे परित्यज्य साम्प्रतिकी जनतन्त्रव्यवस्था दलद्वयाधारिता परिष्क्रियेत, सर्वे च राजनीतिज्ञा मध्यवर्तिनो धर्मगुरून् वर्गाधीशांश्च अविगणय्य सम्प्रदायनिरपेक्षं साक्षात् सम्पूर्णया भारतीयया जनतया संबद्धाः स्युः। सम्भूय समुत्थानमङ्गी-कृत्य वर्तमानं भारतीयं प्रशासनं पञ्चवर्षं यावन्निर्विघ्नं निष्कलहं च जनतायाः कल्याणाय प्रवर्तेत—इत्येव साम्प्रतमाशास्यते॥

इन्द्रासनं दोलायमानम् आस्ते

आडवानीमहोदयेन संचालितया रामरथयात्रया जनतादलस्य शासनं दोलायमानमास्ते। साम्प्रतिकपाश्चात्यराजनीतिकपरिभाषानुसारं दक्षिणवादिनो भारतीयजनतादलस्य वामवादिनां रूसचीनादिबाह्यदेशचरणानुवर्तिनां साम्य-वादिदलानां च बाहुभ्यां लब्धबलस्य जनतादलस्य साम्प्रतं दक्षिणो बाहुश्छिन्न इत्यत्र शक्रासनमात्सर्यमेव पुरोभागितां वहति। आचार्यनरेन्द्रदेव-सम्पूर्णानन्द-पुरुषोत्तमदासटण्डनसदृशानां भारतीयसंस्कृत्यनुरागिणां मनीषिणां विरोधिना-वास्तां पं० जवाहरलालनेहरू राममनोहरलोहिया च। पं० नेहरुणा कल्याणमित्र-स्याचार्यनरेन्द्रदेवस्य विरोधमुद्भाव्य राजनीतौ भद्रपुरुषाणां प्रवेशो वारितः, लोहियामहोदयेन च तस्यान्तिमं जीवनमेवाशान्तिभरितमकारि। विरोधिनां पराभवायैकेन मुस्लिमतुष्टीकरणमपरेण च दलितदलानां ब्रह्मत्वमङ्गीकृतम्। सर्वत्र सांमनस्यापादनमित्येषा दृष्टिरासीन्महात्मनो गांधिनो भारतसंस्कृत्यनु-प्राणिता। पाश्चात्यद्वन्द्वात्मकभौतिकवादानुप्राणिताभ्यां च ताभ्यां सर्वत्र वर्गविद्वेष एव प्रसारितः। तस्यैव दोषद्वयस्य सम्भूय समुत्थानं साम्प्रतिके जनतादल-शासनेऽवलोक्यते। याः काश्चन प्रवृत्तयोऽस्य दलस्य साम्प्रतं दृश्यन्ते, सर्वत्र प्रतिबिम्बितं भवति राष्ट्रविघटकं दोषद्वयमेतत्। इन्द्रासने दोलायमाने सतीन्द्रो

नाना मायाः सृजति स्म। आडवानीरामरथेन भयग्रस्ताः सर्वे एतादृशा नेतारः साम्प्रतं मायावलम्बनमेव कुर्वन्तो दृश्यन्ते।

बुद्धमहावीराविव रामकृष्णौ वर्तेते ऐतिहासिकौ पुरुषौ। भारतीयजनमनस्सु दृढतया निखातमेनं विश्वासं न कापि शक्तिरुत्खातयितुं शक्नोति। यथा पूर्ववर्तिनां दर्शनानां तर्का अस्वीकृता भारतीयजनतया, तथाऽधुनातनास्तर्का अपि न सक्षमास्तस्य विश्वासस्यापहृत्यै। रामकृष्णयोर्जन्मभूमिविषयकस्य विवादस्य समाधानाय प्रयत्यते साम्प्रतं भारतीयजनतादलेन, धार्मिकमुन्मादं दलमेतत् प्रसारयतीति च तदितराणि सर्वाणि दलान्याक्रन्दन्ति। वस्तुतस्तु प्रश्नोऽयं न धार्मिकः। सांस्कृतिकदृष्ट्याऽस्य समाधानमपेक्षितम्। यथा भारतराष्ट्रास्मिताविरोधोन्याङ्ग्लप्रशासनस्य चिह्नान्यस्माभिरपसारितानि, तथैव मध्यकालीनाया बर्बरतायाः सर्वाण्यपि चिह्नानि नूनं नूनं दूरीकरणीयानि। योऽत्र द्वयोस्त्रयाणां वा स्थानानां नामानि गृह्णाति, राजनीतिं स समाचरति। सांस्कृतिकस्यैक्यस्य सिद्धये, मध्यकालीनाया बर्बरतायाः परिहाराय, तत्र सांमनस्यापादनाय, साम्प्रदायिकसौहार्दसमृद्धये च समेषामेषां चिह्नानामपसारणमावश्यकम्। अन्यथा भारते राष्ट्रे भावनात्मकस्यैक्यस्य वार्ता शशविषाणायितैव भविष्यति।

उपर्युक्तानि दलानि नैवेच्छन्ति भावात्मकमैक्यम्। कलहायमानेषु वर्गेषु मर्कटतुलां धारयन्त एते दृश्यन्ते। भारते राष्ट्रे भावात्मकस्यैक्यस्य स्थापनाय महात्मनो गांधिनः, आधुनिकस्य मनोर्दलितोद्धारकस्य बाबासाहब-अम्बेडकरमहोदयस्य च विचाराणाम्, आचार्यनरेन्द्रदेवकृताया भारतीयसंस्कृतेर्व्याख्यायाश्चानुसरणं नितान्तमपेक्षितम्। "कलौ तु तान्त्रिकी श्रुतिः" इति वचनानुसारं च सर्वेषु वर्गेषु समतादृष्टिरागमतन्त्रशास्त्रपरिदृष्टा, भक्तैः सन्तैर्गुरुभिश्च पर्याप्तं पोषिता, महात्मना गांधिना च चूडान्तमुत्कर्षमापादिता, परिहायोच्चावचदृष्टिं नूनमङ्गीकरणीया। एतद्विरुद्धमाचरन्तो न केऽपि समर्था भारते राष्ट्रे भावात्मकस्यैक्यस्य स्थापनाय, रामजन्मभूमेरुद्धाराय वा। "प्रायो हि सिद्धान्तप्रियो लोकः" इति वदन् काश्मीरकः क्षेमराजो वाममार्गमपहाय दक्षिणमार्गप्रियत्वं लोकस्य प्रदर्शयति। साम्प्रतमपि लोकस्य सैव स्थितिः। किन्तु मायाविनां दुष्प्रचारेण च्छन्ना सा सिद्धान्तप्रियता सत्कृत्यैरुद्बोधनीया, न तु तेषां माया वर्गविद्वेषप्रवर्तकैरुद्वेजकैरुद्घोषैर्घनीकरणीया। तदैव बुखारीसदृशानामधन्यानां दंष्ट्रासु पतितस्य भारतीयलघुसमाजस्य समुद्धारो भवेत्, तत्र नकवीसदृशाश्च भारतीयसंस्कृत्यनुरागिणो बाहुल्येन प्रादुर्भवेयुः। भारते निवसन्तः सर्वे समुदायाः समरसाः सौहार्दभरिता विद्वेषपराङ्मुखाः सममेव अखण्डायां भारतीयसंस्कृतौ रममाणा यदि स्युर्नूनं तदैव नूतनस्य भारतस्योत्कर्षोऽखण्डाया

विश्वसंस्कृतेश्च प्रादुर्भावः स्यात् । तदैव मायाविनां मायाः शरदभ्रवद् विच्छिद्येरन् ॥

इमे वराकाश्चारणचरिता बुद्धिजीविनः

अधुना यः कोऽपि किमपि लिखति भाषते वा, तदनु बुद्धिजीविभिरेवं कर्तव्यमेवं वक्तव्यमिति वदता तेनैतदेव व्यक्तीक्रियते यदधुना सर्वेषां सत्कर्मणां निधानम्, सम्पूर्णस्य समाजस्य च संवाहका इमे बुद्धिजीविन एवेति। किमेनं विश्वासं सफलयन्ति नाम बुद्धिजीविनः, उत ते स्वविचाराणामेव समर्थनाय तथैव तान् नियोजयितुमिच्छन्ति, यथा साम्प्रतिका राजनेतारस्तान् नाना-प्रलोभनप्रदानेन चारणवदुपयुञ्जन्ति, अथवा सर्वे सम्भूय ब्राह्मणस्थानापन्नं नूतनं वर्गमेव रचयितुमिच्छन्ति। "स वै ब्राह्मण उच्यते", "एतद् ब्राह्मण-लक्षणम्" इत्यन्तैः परश्शतैः श्लोकैर्महाभारते, पालिबौद्धवाङ्मये च वर्णितं ब्राह्मणलक्षणं धनसंमानादिप्रलोभनाऽनाक्रान्तं किमेते बुद्धिजीविनो धारयन्ति, किमुत तान् प्रति साम्प्रतं व्यक्तीक्रियमाणं विश्वासं ते सफलयन्ति ? विचारयाम-स्तावत् ।

'इंटेलेक्चुअल' इत्याङ्ग्लशब्दस्य पर्यायतया परिकल्पित एष 'बुद्धिजीवी' इति शब्दो नाम। 'बुद्धिजीवी' इत्यभिधानवानेष नूतनो जीवो द्रव्येण संमानेन च स्वबुद्धिं पणीकृत्य जीवति। यदद्य प्रतिपादितं तद्विपरीतमपि सत्यवसरे सोऽपरस्मिन् दिने वक्तुं न मनागपि संकोचं विदधाति। अपि च—"यत्नेनानुमितोऽप्यर्थः कुशलैरनुमातृभिः। अभियुक्ततरैरन्यैरन्यथैवोपपाद्यते ॥" इति वाक्यपदीयकारो भर्तृहरिराह। अद्यापि यदेको बुद्धिजीवी वक्ति, तद्विपरीत-मन्यो भाषते। जनतन्त्रस्य स्तम्भायमानो बुद्धिजीविनां वरिष्ठः पत्रकारोऽपि "रामाय स्वस्ति, रावणाय स्वस्ति" इत्याभाणकमनुसरन् नीरक्षीरविवेकं कर्तुं न प्रभवति। वृत्तपत्राणि पठित्वा कस्मिंश्चिदपि दुर्वृत्ते कोऽत्रापराध्यतीति निश्चेतुं न पार्यते। अपि च, वृत्तपत्रसंचालकानां दृष्टिपरिधावेवारहट्टन्यायेन स चङ्क्रमते। तद्विपरीतान् सामान्यजनताया विचारानपि प्रकाशयितुं न सक्षमो भवति सः। एतादृशानां बुद्धिजीविनां परस्परविरुद्धान् विचारान् पठित्वा सामान्यो जनो दिग्भ्रान्त इव जायते।

पूर्वं प्रायः सर्वेष्वपि राज्येषु भाषाविद्वत्सु संस्कृतज्ञा भारतीयसंस्कृत्यनु-रागिणो वा सत्क्रियन्ते स्म। अधुना तु संस्कृतभाषाया भारतीयसंस्कृतेश्च दूषकाः पाश्चात्यसंस्कृत्यनुरागिणः साम्यवादमनुसरन्तो वा बुद्धिजीविनः प्रगतिवादिन उच्यन्ते, संस्कृतज्ञा भारतीयसंस्कृत्यनुरागिणश्च प्रतिगामिनः। साम्प्रतिकानां

समेषां राजनीतिकदलानां तत्सिद्धान्तानां च प्रचारकाश्चारणचरिताः प्रायो वैदेशिकवाददासा बुद्धिजीविनो यत्र तत्र सर्वत्र दरीदृश्यन्ते, तेषां गुणदोषविवेचकास्तु विरला एव। येन केनापि राजनीतिकदलेन यदा तदा बुद्धिजीविन आकार्यन्ते, तत्र स्वमतसमर्थकानामेव समवायो भवति, नैकस्यापि स्वच्छन्दविचारप्रचारकस्य। किमेतादृशाश्चारणचरिता बुद्धिजीविनो देशस्य, समाजस्य, अखण्डाया भारतीयसंस्कृतेः, भावात्मकस्यैक्यस्य वा स्थापनाय किमपि कर्तुं प्रभविष्यन्ति ?

अखण्डा भारतीया संस्कृतिरपेक्षिता

साम्प्रतं भारते वर्षे धर्माणां सम्प्रदायानां धर्मनिरपेक्षतायाश्च चर्चा सर्वत्र प्रवर्तते, अखण्डां भारतीयां संस्कृतिं न कोऽपि स्मरति। अखण्डाया भारतीयसंस्कृतेरुद्धाराय प्रवृत्तस्य रामजन्मभूम्यान्दोलनस्य संचालकाः 'बी०बी०सी०' इत्याख्यया आङ्ग्लप्रचारसंस्थया 'हिन्दू-आतङ्कवादिनः' इत्युद्घोष्यन्ते। एतादृशीं भर्त्सनीयां तद्वाणीं सर्वे सश्रद्धं शृण्वन्ति, न कोऽपि तद्विरोधं समाचरति, प्रत्युत आङ्ग्लानां मानसपुत्रैः संचालितान्याङ्ग्लभाषाया वृत्तपत्राणि "सुर में सुर मिलाओ" इति गर्दभगीतमनुसरन्तो जघन्यतमययोध्याहत्याकाण्डं प्रति गजनिमीलिकामाचरन्ति, रूसक्रान्ति बहु मानयन्तश्च भारतीयसंस्कारशून्याः साम्यवादिनस्तत्रैव स्वतनुपुष्टिमन्वेषयन्ति, बाहुल्येन प्रादुर्भूतानि वर्षाकालीनभेकसदृशानि राजनीतिकदलान्याङ्ग्लविद्वद्भिः ख्रीष्टधर्मप्रचारकैश्च निर्धारितं भारतीयसंस्कृतिस्वरूपं ब्रह्मवाक्यमिव मन्वते, भारतीयसंस्कृतेर्विश्वजनीनानि तत्त्वान्यवहेठयन्ति च, धर्मेष्वदीक्षिता अपि तत्तद्धर्मदर्शनग्रन्थान् पाठयन्तोऽध्यापका याज्ञवल्क्यादीनां वैदिकर्षीणां नामानि श्रुत्वा नासिकां चालयन्ति, साम्प्रतिको भारतप्रधानमन्त्री च साम्यवादीयभाषां वदन् स्वगुरोराचार्यनरेन्द्रदेवस्य भारतीयसंस्कृतिव्याख्यामवहेठयन् भूतकालतः स्वसम्बन्धं विच्छेदयति, अपरतश्च संदिग्धचरितानां तान्त्रिकाणां मन्त्रमनुसरति।

वैदिक-औपनिषद-जैन-बौद्ध-पौराणिक-सन्त-इस्लाम-ख्रीष्टधाराणां पावनं सद्विचारजलमादाय प्रवर्तते नाम भारतीया संस्कृतिरिति विचारका मन्वते। वैदिकी तान्त्रिकी चेति द्विविधा श्रुतिः समाम्नायते। निगमागमाख्ये मूलभूते इमे भारतीयसंस्कृतिधारे सनातनधर्मनाम्ना प्रथिते स्तः। धर्मेऽस्मिन् सर्वासामुपर्युक्तानां संस्कृतिधाराणां पावना विचाराः स्वीकृता इति को नाम न जानीते। बुद्धमहावीराविव ईशामसीह-मुहम्मदौ ईश्वरावतारावति वक्तुं न संकुचति सः, रामकृष्णयोः समालोचनां श्रुत्वा च नोद्वेलयति विश्वम्। अखण्डा भारतीया

संस्कृतिरत्र प्रतिबिम्बितेव भवति। धर्मनाम्ना वर्गविद्वेषप्रचारकाः साम्प्रतिका नैके सम्प्रदायवादिनस्तमिमं धर्मं दूषयन्तः सन्ति। पर्वतप्रायान् स्वदोषानपश्यन्त एते सर्षपमात्रा अत्रत्या विकृतीर्महताऽऽडम्बरेण प्रचारयन्ति। एता विकृतयस्तेषामेवावदानमिति किल ते न विभावयन्ति।

वैष्णवालवारेषु, जैनशलाकापुरुषेषु, शैवनायनारेषु, बौद्धसिद्धेषु च नूनं धर्मवर्णजातिलिङ्गसम्प्रदायनिरपेक्षमासीच्चारित्र्यस्य वैशिष्ट्यम्। इस्लामाक्रमणात् पूर्वमपि प्रवर्धमानम्, ततः परमपि च तत्र सूफीसम्प्रदायप्रवर्तकं तदिदमखण्डाया भारतीयसंस्कृतेः स्वरूपं रविदास-कबीर-दादू-गांधी-सदृशान् सन्तजनान् प्रादुर्भावयामास। दौर्भाग्यादिस्लामाक्रमणानन्तरं प्रवृत्ते धर्मपरिवर्तने तान्त्रिकाणां बौद्धानां च संख्या आश्चर्यकरी आसीत्। तदा वैदिक्या वर्णाश्रमव्यवस्थायाः पुनरुत्थानं समजायत भारतीयायाः संस्कृतेः रक्षणाय। जानीमो वयं रक्षिता सा संस्कृतिः साम्प्रतमपि जीवति, विश्वस्य सर्वासु संस्कृतिषु च प्राधान्यं बिभर्ति। विश्वस्य नैके धर्माः संस्कृतयस्तदनुयायिनस्तच्चरणसेवकाः केचन भारतीया राजनेतारश्च सम्भूय तस्योन्मूलनाय बद्धपरिकरा अवलोक्यन्ते। तत्प्रतीकारायाऽत्र समायाता विकृतीः परिमार्जनीयाः। एतदर्थं च सहस्रवर्षेभ्यः पूर्वमेधमाना भारतीया दृष्टिरालम्बनीया, तन्मध्ये समागता विकारा मध्यकालीनाया बर्बरतायाश्चिह्नानि च नूनमपसारणीयानि। येऽत्र १९४७ ई० वर्षीयायाः स्थितेः स्थापनाय वितण्डावादाः प्रवर्तन्ते, नूनं ते भारतराष्ट्रविघटनकारिण इति सत्यस्य दर्शनं सत्वरमेव विधेयं भारतीयै राजनीतिज्ञैरपि। अन्यथाऽखण्डाया भारतीयसंस्कृतेः, राष्ट्रे भावात्मकस्यैक्यस्य स्थापना च दुःस्वप्नायितेव भविष्यति। एतदर्थं पिपीयतां तावदिदं सुभाषितामृतम्—

"गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः" इति।

वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च मुक्ता गुणिनो जातिसम्प्रदायभाषाद्याग्रहनिरपेक्षास्तदेतत् पावनं कर्म कर्तुं शक्नुवन्ति, न वित्तगार्ध्यग्रहगृहीता बुद्धिजीविन इति सत्वरमेव निभालनीयमस्माभिः॥

२३

सुभाषितामृतम्

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्तु ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः ।
उत्पत्स्यते हि मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः ।

चन्दनकर्दमकलहे भेको मध्यस्थतापन्नः ।
ब्रूते पङ्कनिमग्नः कर्दमसाम्यं न चन्दनं लभते ॥

यद्यपि का नो हानिः परकीयां चरति रासभो द्राक्षाम् ।
असमञ्जसमिति मत्वा तथापि परितप्यते चेतः ॥

अद्यापि दुर्निवारं स्तुतिकन्या वहति कौमारम् ।
सद्भ्यो न रोचते साऽसन्तस्तस्यै न रोचन्ते ॥

बहवो यत्र नेतारः सर्वे पण्डितमानिनः ।
सर्वे महत्त्वमिच्छन्ति तद् व्यक्तमवसीदति ॥

यद्यपि स्यात् स्वयं ब्रह्मा त्रैलोक्याकर्षणक्षमः ।
तथापि लौकिकाचारं मनसाऽपि न लङ्घयेत् ॥

जुगुप्सितं धर्मकृतेऽनुशासतः
स्वभावरक्तस्य महान् व्यतिक्रमः ।
यद्वाक्यतो धर्म इतीतरः स्थितो
न मन्यते तस्य निवारणं जनः ॥

प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम् ।
अमृतत्वस्य तु नाशाऽस्ति वित्तेन ।
नहि वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः ।

परिवर्धनानि संशोधनानि च

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	
९	७-८	अस्य विषयस्य विस्तरोऽस्मदीये "आगम और तन्त्रशास्त्र" इति नामधेये ग्रन्थे (पृ० ६१–६४) द्रष्टव्यः। बौद्धतन्त्रेषु सेकयोगो हठयोगश्चेति द्विविधो योगः प्रतिपाद्यते। तत्र मत्स्येन्द्रनाथः सेकयोगस्य, गोरक्षनाथश्च हठयोगस्य प्रातिनिध्यमाचरत इति भिन्नैवानयोः सिद्धान्तसरणिः।
९	१४	गाथाग्रन्थानां सप्ततिसंख्याविषयकः प्रश्नो डॉ० नवजीवनरस्तोगिना स्वकीये "क्रम तान्त्रिसिज्म०" इत्याख्ये ग्रन्थे (पृ० २१८) प्रो० ए. एन. उपाध्येमहोदयस्य निबन्धमुद्धरता समाहितः।
९	२४	लुप्तागमसंग्रहस्य सोपोद्घातो द्वितीयो भागः साम्प्रतं मुद्रित उपलभ्यते।
९	३१	अर्चनात्रिंशिकेयं श्रीनगर(कश्मीर)प्रकाशितायां शारदापीठपत्रिकायां (व. १, भा. ३, सन् १९६०) चित्तसन्तोषत्रिंशिकया सह परमार्चनत्रिंशिकानाम्ना (पृ. ३१–३५) मुद्रितोपलभ्यते।
११	१७	"नमः प्रमातृवपुषे" इत्यादिकः श्लोकः प्रत्यभिज्ञावेधसो भट्टोत्पलस्य मुद्रिते कस्मिन्नपि ग्रन्थे नोपलब्धः।
११	२१	यत्रेन्धनमिति श्लोको वीरवामनककृतौ संवित्प्रकाशे मुद्रिते नोपलभ्यते।
१२	२७	अष्टप्रकरणस्य वाराणसीसंस्करणे वचनमेतत् १४९ तमे पृष्ठे द्रष्टव्यम्।
१४	१८-१९	डॉ० नवजीवनरस्तोगिना स्वकीये ग्रन्थे (क्रम तान्त्रिसिज्म०) देवभट्ट एव देवपाणिः स्यादिति प्रस्तूयते।
१४	३०	अस्य ग्रन्थस्य प्रथमो भागः "मोतीलाल बनारसीदास" इति प्रकाशनसंस्थया १९७९ ई० वर्षे प्रकाशितः।
१४	३२	सारस्वत्यां सुषमायां प्रकाशितपूर्वो निबन्धोऽयं वाराणसीतो मुद्रितायां तन्त्रयात्रायाम् (पृ. ६४–७८) अपि द्रष्टुं शक्यते।
१६	४-११	सिद्धान्तस्यास्य यथार्थताऽस्माभिर्नेपालयात्रायामनुभूता। तत्र हि पलाण्डुलशुनविवर्जितं शाकं दीयतामित्युक्ते नास्माभिः पापं कर्तुं शक्यत इति प्रत्युत्तरितम्। अनेन स्पष्टीभवति यद् यस्य भक्षणमेकस्य कृते निषिद्धम्, अपरस्य कृते तद् विधिरूपेण समाम्नायते।
१६	१३-१४	मुद्रिते संवित्प्रकाशे नोपलभ्यते वचनमेतत्।
१८	१२	प्रज्ञालङ्कारकर्तुः शङ्करनन्दनस्य परिचयो लुप्ता. उपो. भा. २, पृ. ४९-५० इत्यत्र द्रष्टव्यः।
२९	२-३	सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयतः १९८२ ई० वर्षे सभाष्यो ग्रन्थोऽयं प्रकाशितः।

३० २२-२३ अस्याः संहितायाः शोभनं नूतनं संस्करणं डा० पी. पो. आपटेमहोदयेन कृतम्। प्रथमो भागस्तिरुपतिसंस्कृतविद्यापीठत ई० १९९१ वर्षे प्रकाशितः।

३५ २९-३० वैखानस-पाञ्चरात्रमतयोः साम्यवैषम्यविचारो डॉ० राघवप्रसादचौधुरी-निबद्धे निबन्धे द्रष्टव्यः। निबन्धोऽयं शीघ्रमेव "उत्तरप्रदेश संस्कृत अकादमी" इति संस्थया प्रकाश्यमाने "संस्कृत साहित्य का बृहत् इतिहास" इत्यस्य ग्रन्थस्य तन्त्रागमखण्डे शीघ्रमेव प्राकाश्यमेष्यति।

३७ ६-७ अस्य चतुर्थो भागश्छिन्नमस्ताखण्डाख्यः १९७८ ई० वर्षे प्रकाशितः।

३७ १२ अन्यत्रेति तन्त्रयात्रायां १०६-१११ पृष्ठेषु प्रकाशितः "संमोहनतन्त्रं शक्तिसंगमतन्त्रादभिन्नम्" इति शीर्षको निबन्धो द्रष्टव्यः।

३८ ७-२० अत्रत्यं निष्कर्ष नाङ्गीकरोति हालैण्डदेशीयो विद्वान् डॉ० तूनगान्द्रियान-महोदयः। अथापि स वदति यत् शङ्करस्य समयः शतवर्षपूर्वं नेतुं शक्यते। अत्रत्ये १८७-१८८ पृष्ठे द्रष्टव्ये।

४० ४ "रौद्रा रुद्रैः समाविष्टैरुद्गीर्णा न स्वबुद्धितः" इति वचनं च श्रीमतो डॉ० चिन्ताहरणचक्रवर्तिनो मतं पोषयति।

४१ ५-७ वज्रयानपदं विहाय सहजयान-कालचक्रयानपदे प्राचीनबौद्धतन्त्रग्रन्थेषु नोपलभ्येते इति साम्प्रतिकैर्विद्वद्भिर्विषयविभागार्थं निर्मिते। सहजयोगस्य कालचक्रस्य च प्राणोदयचक्रोदयादिप्रक्रिया सर्वास्वेव तन्त्रशाखासु वर्णिता।

४२-४३ भास्कररायरचितस्य त्रिपुरसुन्दरीबाह्यवरिवस्याविधेरुपोद्घातमात्रं सरस्वतीभवनपुस्तकालये, सम्पूर्णश्च ग्रन्थो बड़ोदाप्राच्यसंशोधनालये वर्तते।

४६ २६-२८ निबन्धोऽयं तन्त्रयात्रायाम् (पृ० १४–३४) अपि द्रष्टुं शक्यते।

४७ २४ "अकारः सर्ववर्णाग्र्यः" इति वचनमयमेव सिद्धान्तश्च वसन्ततिलकाख्ये बौद्धतन्त्रेऽपि (९।८) समुपवर्ण्यते।

५२-५३ ग्रन्थेऽस्मिन् नैकत्रोद्धृतः संवित्प्रकाशः साम्प्रतं वाराणसीत एव मुद्रितः।

५४ ३१ शाक्तपरिभाषाणामासां मुद्रणं नाद्यावधि संजातम्।

६१ २२-२३ "यदूर्ध्वचक्षुः" इति शोभनः पाठः स्यात्।

६६ २६-२७ उपरिस्था (९.३१) टिप्पणी द्रष्टव्या।

६८ १४ कर्ममुद्रेत्यादिचतुर्विधमुद्रासु महामुद्रा बौद्धतन्त्रेषु विशेषतो व्याख्याता द्रष्टव्या।

६८ २१-२२ उपायचतुष्टयमेतदस्माभिर्विज्ञानभैरवस्य हिन्दीभाषामये उपोद्घाते (पृ० १५-२०) सम्यग् व्याख्यातम्।

७०	१८-१९	ज्ञानदीपविमर्शिनी साम्प्रतं सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयतो मुद्रयमाणाऽऽस्ते ।
७२	२३-२४	सिद्धक्रमनियुक्तस्य—इत्यत्र यत् प्रतिपादितम्, तद् बौद्धतन्त्रग्रन्थेष्वपि "दिनमेकं परीक्षयेत्" (परमादिबुद्धे), "दिनेनैकेन सिद्धिः स्यात्" (कृष्णयमारितन्त्रे) इत्यादिना प्रतिपाद्यते ।
७७	१९	योगाचाराणां विज्ञानमेवात्र प्रकाशपदेन प्रतिपाद्यते ।
८२	४	चतुर्थः खण्डोऽयं १९७९ ई. प्राकाश्यमापत् ।
१११	१९-२०	अष्टप्रकरणाख्ये ग्रन्थे सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयतः पुनः प्रकाशिते भोगकारिका द्रष्टव्या । सोमानन्देन शिवदृष्टौ खेट-पालनाम्ना सद्योज्योतिःशिवाचार्यस्य स्मरणात् ततः प्राचीनोऽय-माचार्यः ।
१२६	२९-३०	निबन्धोऽयमस्मदीये "निगमागम संस्कृति" इत्याख्ये हिन्दीभाषामये ग्रन्थे द्रष्टव्यः (पृ० ४९-५४) ।
१३१	२८	प्राचीनसंस्करणस्य पृष्ठसंख्येयम् । नूतने संस्करणे १४९ तमे पृष्ठे वचनमेतदवलोकनीयम् ।
१५७	५-६	अत्र ६६ पृष्ठस्था टिप्पणी समवलोकनीया ।
१६१	२१	अत्र ७० पृष्ठस्था टिप्पणी समवलोकनीया ।
१७५		अत्रत्या नादकारिकाश्लोका नूतनेऽष्टप्रकरणसंस्करणे द्रष्टव्याः ।
२०२	१२	तत्त्वप्रकाशव्याख्यात्रा कुमारदेवेन सांख्यसूत्रं स्मर्यते (पृ० ८०) । तेन सांख्यसूत्राणि ततः प्राचीनानीति निश्चप्रचम् ।
२१३	५८	श्लोकाविमौ विदुरनीतौ महाभारते (उद्योग० ३३-४० अ.) (३५।५६-५७) दृश्येते इति हितोपदेशे तत एव संगृहीते इति मन्तव्यम् ।
२२९	२१	गोकर्णशिथिल इति पाठो गीताप्रेससंस्करणे न दृश्यते ।
२३८	१५-१६	"मदीया द्वितीयाऽध्ययनयात्रा" इति शीर्षको निबन्धस्तन्त्रयात्रायां (पृ० ३२५-३५२) मुद्रितः । तत्र (३४६-३४८) गोकर्णयात्रा-विवरणं द्रष्टव्यम् ।
२५५	१२-१३	निबन्धोऽयमस्मिन् ग्रन्थेऽपि (पृ० ८६-१०६) संगृहीतः ।
२५६	१०-११	विश्वरूपस्य विशिष्टं विवरणं "निगमागम संस्कृति" इत्याख्येऽ-स्मदीये ग्रन्थे नेपालयात्राप्रसङ्गे (पृ० २९०) द्रष्टव्यम् ।
२६०	२-३	एतदनुकारः श्लोकः पारमेश्वरागमेऽपि काशी-जंगमवाड़ी-मठतः प्रकाशिते द्रष्टव्यः (पृ० १२९) ।

२६० २-३ सूर्योदयः सागरिका चेति काशीतः प्रकाश्यमाने पत्रिके साम्प्रतमवरुद्धप्रकाशने स्तः।

२६१ २-३ साम्प्रतं पं.जगन्नाथ-उपाध्याया निर्वाणभावमुपपन्नाः, तथापि तच्छिष्येण श्रीमता प्रो.राधेश्यामधरद्विवेदिना सैषा साप्ताहिकी पत्रिका साम्प्रतमनारतं प्रकाश्यमानाऽऽस्ते इति हर्षस्यायं विषयः।

२६५ १ पङ्क्तीनामासां लेखकेन ईदृशा विवरणात्मका नैके निबन्धाः, ग्रन्थसमालोचनाः, शोधपत्रिकाप्रकाशितनिबन्धसूची—इत्यादयो निबद्धाः, ते च प्राधान्येन सारस्वत्यां सुषमायामन्यासु च पत्रिकासु प्रकाशिताः। ते नात्र संगृहीता इति विभावनीयम्।

२६७ ९ 'सुधर्मा' साम्प्रतं दैनिकपत्रिकारूपेण न प्रकाश्यते।

२८७ ४ 'गाण्डीवम्' साप्ताहिकस्य १३ वर्षीये षष्ठेऽङ्के, २२ नवम्बर १९७६ ई. वर्षे मुद्रिते भाषणमिदमवलोकनीयम्।

२८७ २६ योगतन्त्रपदयोर्व्याख्यानमत्रैव (पृ० ५-६) द्रष्टव्यम्।

२९८ २६ संस्कृतिशब्दः शुक्लयजुर्वेदस्य माध्यन्दिनसंहितायां "संस्कृतिर्विश्ववारा" इत्येवं प्रयुक्तो द्रष्टव्यः।

३१७ १८-१९ व्यवस्थाविभागः सम्पादकीयो विभागश्च पुनरप्येकीभूत इति सर्वविधं शिवं कामयते लेखकः।

३३४ २५ कार्यविवरणमेतत् २३ वर्षीये ३७ तमेऽङ्के प्रकाशितम्।

३२४ २६ कविराजश्रद्धाञ्जल्यङ्कोऽयं व० १३, अ० ७, ३० नवम्बर, १९७६ ई. वर्षे प्रकाशितः।

३२७ २६ संस्थाद्वयविवरणमेकत्रीभूतमत्र। प्राच्यविद्यापरिषदः, अन्ताराष्ट्रियप्राच्यविद्यापरिषदश्च परिचयस्तन्त्रयात्रायां (पृ० २१८–२२०) द्रष्टव्यः।

३३४ १४ संमेलनस्य विवरणं व० २५, अ० ४-५, ३१ अक्टूबर, सन् १९८८ इत्यत्र द्रष्टव्यम्।

३३६ २२ दक्षिणभारते मेयकण्डदेवकृतशिवज्ञानबोधाख्यग्रन्थसाहाय्येन विकसितं सिद्धान्तशैवदर्शनं शनैः शनैरद्वैतवादमङ्गीचकारेति तत्रत्यानां विदुषामभिमतम्। पौष्करागमव्याख्याता उमापतिशिवाचार्यस्तु शतरत्नसंग्रहोल्लेखिन्यां द्वैतवादमेव व्याचख्यौ।

●

विषयानुक्रमणी

सम्पादिता अनूदिता रचिताश्च ग्रन्थाः

१. प्राचीनं निर्णयपत्रम्—लक्ष्मणपुरराजधानीस्थ-रेजीडेण्टप्रेषितस्य वादपत्रस्य वाराणस्यधिकरणकश्रीमत्कम्पनीसंस्थापितसंस्कृतपाठशालास्थविद्वद्भिः कृतं समाधानम् । तन्त्रयात्रायां पुनर्मुद्रितम् ।

२. पथिकजनपातकचिन्तनस्मृतिः (यात्रावर्णनपरा)—महेशभट्टविरचिता । नादिरशाहकृतनरसंहारस्य स्वयं दृष्टं विवरणम् । तन्त्रयात्रायां पुनर्मुद्रितम् ।

३-४. प्रत्यङ्गिरासूक्तम्—पिप्पलादशाखीयम्, वासुदेवद्विवेदविरचितव्याख्यानसहितम् । सारस्वत्यां सुषमायां सप्तमाष्टमवर्षयोरङ्केषु मुद्रितम् ।

५. काण्वसंहिताभाष्यसंग्रहः—आनन्दबोधभट्टोपाध्यायविरचितः, ३१–४० अध्यायात्मकः । सारस्वत्यां सुषमायां सप्तमाष्टमनवमवर्षाङ्केषु मुद्रितः ।

६. भारोत्थापनयन्त्रनिर्माणविधिः (शिल्पशास्त्रम्)—देवीसिंहमहीपतिविरचितः । डॉ० वासुदेवशरण-अग्रवाललिखितेन प्राक्कथनेन संवलितः । तन्त्रयात्रायां पुनर्मुद्रितः ।

७-८. गैरिकसूत्राणि (कला)—गङ्गारामजड़ीविरचितानि, पं० रघुनाथशर्मविरचितविवरणसंवलितानि । तन्त्रयात्रायां पुनर्मुद्रितानि ।

९-११. नित्याषोडशिकार्णवः (त्रैपुरं तन्त्रम्)—शिवानन्द-विद्यानन्दविरचिताभ्याम् ऋजुविमर्शिनी-अर्थरत्नावलीटीकाभ्यां संवलितः । अत्र परिशिष्टभागे—

१२. दीपकनाथसिद्धकृतं त्रिपुरसुन्दरीदण्डकम्,

१३-१५. शिवानन्दमुनिकृतानि सुभगोदय-सुभगोदयवासना–सौभाग्यहृदयस्तोत्राणि,

१६-१७. अमृतानन्दयोगिकृते सौभाग्यसुधोदय-चिद्विलासस्तोत्रे—इत्येते लघुग्रन्था अपि मुद्रिताः सन्ति । १२० पृष्ठात्मकेन संस्कृतभाषामयेनोपोद्घातेन टिप्पणी-परिशिष्टादिभिश्च सहितोऽयं ग्रन्थः सम्पूर्णानन्द-संस्कृतविश्वविद्यालययोग-तन्त्रग्रन्थमालायां मुद्रितः, उत्तरप्रदेशप्रशासनेन कालिदासपुरस्कारेण च सत्कृतः । प्रथमं संस्करणम् १९६७ ई०, द्वितीयं संस्करणम्, सन् १९८४.

१८. महार्थमञ्जरी (शाक्तं तन्त्रम्)—महेश्वरानन्दविरचितस्वोपज्ञपरिमलाख्यया व्याख्यया संवलिता, २३ पृष्ठात्मकेन संस्कृतभाषोपोद्घातेन विविधपरिशिष्टादिभिश्च शोभिता । सम्पूर्णानन्द-संस्कृतविद्यालययोगतन्त्रग्रन्थमालायां मुद्रिता। प्रथमं संस्करणम् १९७२ ई०, द्वितीयं संस्करणम्, सन् १९९२ ई० ।

१९. शक्तिसङ्गमतन्त्रम् (छिन्नमस्ताख्यश्चतुर्थः खण्डः)—९१ पृष्ठात्मकेन संस्कृतभाषोपोद्घातेन विविधपरिशिष्टादिभिश्च संवलितम् । वटोदर-(बड़ोदा) गायकवाड़शोधग्रन्थमालायां मुद्रितम् । सन् १९७८.

२०. विज्ञानभैरवः (काश्मीरं योगशास्त्रम्)—अन्वयार्थाख्यसंस्कृतटीका-रहस्यार्थाख्यहिन्दीभाषानुवादसंवलितः, ४९ पृष्ठात्मकेन हिन्दीभाषोपोद्घातेन टिप्पणीपरिशिष्टादिभिश्च संवलितः । मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी—इत्यतः प्रकाशितः, उत्तरप्रदेश-संस्कृत-अकादमी द्वारा पुरस्कृतश्च । प्रथमं संस्करणम् १९७८, द्वितीयं संस्करणम् १९८४ ई० ।

२१. शाक्त दर्शन की परिभाषाएँ—दो सौ पारिभाषिक शब्दों का विस्तृत विवरण, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली को सन् १९७८ में प्रदत्त ।

२२. वेदार्थपारिजातः—(भागद्वयात्मकः) अनन्तश्रीस्वामिकरपात्रमहाराजविरचिताभिनववेदभाष्यभूमिकास्वरूपः, २३०० पृष्ठात्मकः, हिन्दीभाषानुवादेन संयोजितः । सन् १९७९–८० ई० ।

२३-२९. तन्त्रसंग्रह (चतुर्थो भागः) सर्वविजयितन्त्र-गुप्तसाधनतन्त्र-मायातन्त्र-षडाम्नायतन्त्र-गायत्रीतन्त्र-चीनाचारतन्त्र-भूतशुद्धितन्त्रात्मकः । सम्पूर्णानन्द-संस्कृतविश्वविद्यालययोगतन्त्रग्रन्थमालायां मुद्रितः । सन् १९८१ ई० ।

३०-३१. सात्वतसंहिता (पाञ्चरात्रवैष्णवागमः)—अलशिङ्गभट्टविरचितभाष्योपेता । ६८ पृष्ठात्मकेन संस्कृतभाषोपोद्घातेन टिप्पणीविविधपरिशिष्टादिभिश्च संवलिता । सम्पूर्णानन्द-संस्कृतविश्वविद्यालयग्रन्थमालायां मुद्रिता । सन् १९८२ ई० ।

३२. तन्त्रयात्रा—तन्त्रागमदर्शन-संस्कृतिसाहित्य-विचारविप्रुष्-यात्रावर्णनपराणां ७६ संस्कृतनिबन्धानां टिप्पणीनां च संग्राहिका, उत्तरप्रदेशसंस्कृत-अकादमी-प्रदत्तेनार्थिकसाहाय्येन मुद्रिता । सन् १९८२ ई० ।

३३. आगममीमांसा—वैष्णव-शैव-शाक्तागमानामैतिहासिक-दार्शनिक - सांस्कृतिक-स्वरूपविवेचिका, दिल्लीस्थितलालबहादुरशास्त्रिसंस्कृतविद्यापीठतः प्रकाशिता। सन् १९८२ ई०।

३४. लुप्तागमसंग्रहः (द्वितीयो भागः)—विविधग्रन्थेषु समुद्धृतानां लुप्तमूलागम-वचनानां संग्रहः। ४०० परिमितानां ग्रन्थग्रन्थकाराणामैतिहासिक-दार्शनिक-सांस्कृतिकदृष्टिसमुन्मीलकेन २२० पृष्ठात्मकेन संस्कृतभाषोपोद्घातेन संवलितः। सम्पूर्णानन्द-संस्कृतविश्वविद्यालययोगतन्त्रग्रन्थमालायां मुद्रितः, उत्तरप्रदेशसंस्कृत-अकादमीद्वारा पुरस्कृतश्च। सन् १९८३ ई०।

३५. आगम और तन्त्रशास्त्र—तन्त्रागमदर्शन और संस्कृति संबन्धी २६ हिन्दी निबन्धों का संग्रह, परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली, सन् १९८४.

३६-३७ नेत्रतन्त्रम् (मृत्युञ्जयभट्टारकः)—क्षेमराजकृत - उद्योतव्याख्यासहितम्, ५० पृष्ठात्मकेन हिन्दीभाषोपोद्घातेन संवलितम्। परिमल पब्लिकेशंस, सन् १९८५ ई०।

३८-३९. स्वच्छन्दतन्त्रम् (भागद्वयात्मकम्)—क्षेमराजकृत-उद्योतव्याख्यासहितम्। परिमल पब्लिकेशंस, सन् १९८५ ई०।

४०-४१. वेदान्तसूत्रश्रीकण्ठभाष्यम् अप्पयदीक्षितकृतशिवार्कमणिदीपिकाव्याख्यासहितम् (चतुःसूत्रीभागः)—शिवधर्म ग्रन्थमाला, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् १९८६.

४२-४९. गुह्यादि-अष्टसिद्धिसंग्रहः—दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोधयोजना, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, सन् १९८७. अत्र पद्मवज्रस्य गुह्यसिद्धिः, अनङ्गवज्रस्य प्रज्ञोपायविनिश्चयसिद्धिः, इन्द्रभूतेर्ज्ञानसिद्धिः, लक्ष्मीङ्कराया अद्वयसिद्धिः, योगिनीचिन्ताया व्यक्तभावानुगतसिद्धिः, डोम्बी-हेरुकस्य सहजसिद्धिः, कुद्दालपादस्य अचिन्त्याद्वयक्रमोपदेशः, पद्मवज्रस्य अद्वयविवरणप्रज्ञोपायविनिश्चयसिद्धिश्चेत्यष्टौ सिद्धयः सन्ति।

५०-५१. लिङ्गधारणचन्द्रिका—नन्दिकेश्वरशिवाचार्यविरचिता,शरन्नामिकया संस्कृत-व्याख्यया भाषानुवादेन च सहिता, शिवधर्म ग्रन्थमाला, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् १९८८.

५२-५४. योगिनीहृदयम्—अमृतानन्दयोगिविरचितदीपिकाव्याख्याभाषानुवादसंवलितम्, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सन् १९८८. अत्र परिशिष्टभागे—

आदिनाथविरचिता परापञ्चाशिका च ।

५५, ज्ञानोदयतन्त्रम्, दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना, सारनाथ, सन् १९८८.

५६-६३. अष्टप्रकरणम्—सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, सन् १९८८.
तत्त्वप्रकाशः, भोजदेवकृतः, टीकाद्वयसहितः ।
तत्त्वत्रयनिर्णयः, सद्योज्योतिःशिवाचार्यकृतः सटीकः ।
तत्त्वसंग्रहः, सद्योज्योतिःशिवाचार्यकृतः सटीकः ।
रत्नत्रयम्, श्रीकण्ठसूरिकृतम्, सटीकम् ।
भोगकारिका, सद्योज्योतिःशिवाचार्यकृता सटीका ।
मोक्षकारिका, सद्योज्योतिःशिवाचार्यकृता सटीका ।
नादकारिका, भट्टरामकण्ठकृता सटीका
परमोक्षनिरासकारिका, सद्योज्योतिःशिवाचार्यकृता सटीका ।

६४. बौद्ध तन्त्र कोश—दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना, सारनाथ, सन् १९९०

६५. लुप्त बौद्ध वचन संग्रह—दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना, सारनाथ सन् १९९०.

६६-६७. वसन्ततिलका कृष्णपादविरचिता—रहस्यदीपिकाख्यव्याख्यया सहिता, दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना, सारनाथ, सन् १९९०.

६८. डाकिनीजालसंवररहस्यम् अनङ्गयोगिप्रणीतम्—दु० बौ० ग्र० शोध योजना, सारनाथ, वाराणसी, सन् १९९०.

६९. सम्पादन के सिद्धान्त और उपादान (कार्यशाला विवरण) दु० बौ० ग्र० शोध योजना, सारनाथ, वाराणसी, सन् १९९०.

७०-७१. कृष्णयमारितन्त्रम्—कुमारचन्द्रप्रणीतया रत्नावलीपञ्जिकया सहितम्, दु० बौ० ग्र० शोध योजना, सारनाथ, सन् १९९२.

७२-७३. महामायातन्त्रम्, रत्नाकरशान्तिकृतगुणवतीटीकासहितम् । दु० बौ० ग्र० शोध योजना, सारनाथ, सन् १९९२.

७४. अभिसमयमञ्जरी—शुभाकरगुप्तविरचिता, दु० बौ० ग्र० शोध योजना, सारनाथ, वाराणसी, सन् १९९३.

७५. कालचक्रतन्त्रम्—पुण्डरीकविरचितविमलप्रभाटीकासहितम्। द्वितीय भाग, दु० बौ० ग्र० शोध योजना, सारनाथ, सन् १९९४.

७६. कालचक्रतन्त्रम्—पुण्डरीकविरचितविमलप्रभाटीकासहितम्। तृतीय भाग, दु० बौ० ग्र० शोध योजना, सारनाथ, सन् १९९५.

७७. शुक्लयजुर्वेदमाध्यन्दिनसंहिता—वेदार्थपारिजातभाष्यसमन्विता, भाष्यप्रणेतारः स्वामिकरपात्रमहाराजा अनन्तश्रीविभूषिताः। द्वितीय-तृतीयाध्यायात्मको भागः, श्रीराधाकृष्णधानुका-प्रकाशन-संस्थानम्, वृन्दावन, संवत् २०४६.

७८. चतुर्थपञ्चमषष्ठाध्यायात्मको भागः, संवत् २०४९.

७९. सप्तमादिदशमाध्यायपर्यन्तो भागः, संवत् २०४९.

८०. एकादशादिपञ्चदशाध्यायपर्यन्तो भागः, संवत् २०४८.

८१. षोडशादिविंशत्यध्यायपर्यन्तो भागः, संवत् २०४८.

८२. एकविंशत्यादि-ऊनचत्वारिंशदध्यायपर्यन्तो भागः, सर्वेषु भागेषु हिन्दीभाषानिबद्धो भाष्यनिष्कर्षः समायोजितः, संवत् २०४८.

८३. निगमागम संस्कृति—निगमागमदर्शन, साहित्येतिहास और यात्राविषयक ३७ हिन्दी निबन्ध संगृहीत हैं। शिवधर्म ग्रन्थमाला, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् १९९२.

८४. चन्द्रज्ञानागमः (क्रियाचर्यापादौ)—भाषानुवादटिप्पणीप्रस्तावनासहितः, शोध प्रकाशन ग्रन्थमाला, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् १९९४.

८५. सूक्ष्मागमः (क्रियापादः)—भाषानुवादटिप्पणीप्रस्तावनासहितः, शोध प्रकाशन ग्रन्थमाला, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् १९९४.

८६. मकुटागमः (क्रियाचर्यापादौ) भाषानुवादटिप्पणीप्रस्तावनासहितः, शोध प्रकाशन ग्रन्थमाला, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् १९९४

८७. पारमेश्वरागमः—भाषानुवादटिप्पणीप्रस्तावनासहितः, शोध प्रकाशन ग्रन्थमाला, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् १९९५.

८८-८९. उत्तरषट्कम् (त्रैपुरं तन्त्रम्)—कुलदीपिकाव्याख्यासहितम्। सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी, सन् १९९५.

९०. निगमागमीयं संस्कृतिदर्शनम्—निगमागमदर्शन-संस्कृतिसाहित्य-विचारवि-प्रुष्पराणां ७७ संख्याकानां संस्कृतनिबन्धानां टिप्पणीनां च संग्राहकम्। शोध प्रकाशन ग्रन्थमाला, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् १९९५.

९१. ज्ञानदीपविमर्शिनी (त्रिपुरापद्धतिः)—विद्यानन्दविरचिता, परिशिष्टादिभिः संयोजिता। सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः, वाराणसी। ~~प्रकाशनाधीना।~~ सन् १९९६

९२. भारतीय तन्त्रशास्त्र (कार्यशाला का विवरण) दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना, केन्द्रीय तिब्बती उच्च शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी। ~~प्रकाशनाधीन।~~ सन् १९९५

९३. संस्कृत वाङ्मय का बृहत् इतिहास (आगम-तन्त्रशास्त्र खण्ड) उत्तरप्रदेश संस्कृत अकादमी, लखनऊ। ~~प्रकाशनाधीन।~~ सन् १९९७

९४. सिद्धान्तप्रकाशिका — सर्वात्मशम्भुना विरचिता, शैव भारती शोधप्रतिष्ठानम्, वाराणसी, सन् १९९६

९५. भारतीय संस्कृति के नये आयाम — (स्वकीय ग्रन्थ) लालबहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली, सन् १९९७

९६. सिद्धान्तसारावलि — त्रिलोचनशिवाचार्य हिन्दी अनुवाद, सन् १९९८

९७. शैवागमविमर्शः — (स्वकीय ग्रन्थ) सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी सन् १९९७

९८. गुरुगीता — हिन्दी अनुवाद एवं भाष्य (स्वकीय)

विदुषां सम्मतयः

(सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के) योगतन्त्र विभाग में कार्य कर रहे या इसको छोड़कर गये हुए सभी व्यक्तियों में ये (प० व्रजवल्लभ द्विवेदी) ही एकमात्र व्यक्ति हैं, जिनमें कि मेरे अनुसंधान सम्बन्धी दृष्टिकोण को सही रूप में समझने और उसको उचित पद्धति से कार्यान्वित करने की पूर्ण क्षमता है। इतना ही नहीं, मेरी दृष्टि में योगतन्त्र और आगम विषय पर कार्य कर रहे नई पीढ़ी के विद्वानों में ये योग्यतम व्यक्ति हैं।

महामहोपाध्याय प० गोपीनाथ कविराज

वाराणसी, २७-९-१९७०

मैंने ग्रन्थ (नित्याषोडशिकार्णव) आद्योपान्त पढ़ लिया है और आपके परिश्रम से बड़ा प्रभावित हुआ। ऐसी सामग्री और ऐसी भूमिका किसी पुस्तक में कभी नहीं देखी थी।

लेफ्टिनेन्ट गवर्नर डा० आदित्यनाथ झा

दिल्ली, १ अप्रैल १९७०

ग्रन्थ (विज्ञानभैरव) के उपोद्घात में व्रजवल्लभ द्विवेदी ने आधुनिकता से ओत-प्रोत एक महत्त्वपूर्ण बात यह कही है कि किसी समय तान्त्रिक धर्म ने भारतीय संस्कृति को बुलन्दी पर पहुँचाया था।...लेखक का आग्रह है कि गांधीवादी अथवा समाजवादी दर्शन में किसी योगविधि को नहीं अपनाया गया है, इसीलिये आज वे दिग्भ्रान्त हैं, रुग्ण हैं। भारतीय जनता तन और मन से बीमार है। आवश्यकता है योगशास्त्र के उपचार की। योगवासिष्ठ और विज्ञानभैरव जैसे ग्रन्थ इस अभाव को पूरी ईमानदारी से पूरा कर सकते हैं।

आकाशवाणी, रायपुर

.. The introduction (to *Nityāṣoḍaśikārṇava*) is highly interesting piece of original research work (by Professor Vraj Vallabha Dwivedi) in a field hardly accessible to modern academic scholarship ...

Mahāmahopādhyāya Pt. Gopīnātha Kavirāja

Varanasi, 7 September, 1968

... Recent instances of a correct procedure in dealing with the written sources of Hindu Tantrism of the Śākta denomination are Carlstedt's studies on the KT—regrettably written in Swedish—and in another way, Dwivedi's edition of, and Sanskrit introduction into, the NST (Nityāṣoḍaśikārṇava Tantra) very useful.

Hindu Tantrism, p. 4

Leiden : E. J. Brill, 1979

.. Prof. Dwivedi, a well-known scholar and adept in the field of Tantraśāstra, has very successfully done well justice to this Tantra (*Śaktisaṅgama Tantra*) in his learned introduction ..

A. N. Jani

Director, Oriental Institute, Baroda

21 February, 1978

... In editing such rare text (*Vijñāna-Bhairava*) painstakingly Pt. Dwivedi deserves special mention. His wide range of knowledge in the fields of Yoga and Tantra has made such a comparative estimate of the Śaiva-āgama text possible. .. the editor has shown his open-mindedness .. Undoubtedly, the present edition of the *Vijñā-bhairava* has been a search light for an inquisitive mind.

N. K. Bose Memorial Foundation Newsletter

2 June, 1979

... Many of the important works on Yoga-Tantra produced by Sri Dwivedi are testimony to his sound grasp of the system. The present work (*Vijñāna-Bhairava*) only adds on more feather to his cap.

Ṛtam

Lucknow

...This excellent edition (of Nityāṣoḍasikārṇava, ed. by Vrajvallabha Dwivedi) is preceded by masterful introduction in Sanskrit which offers a succinct survey of the whole Tantric tradition.

Hindu Tantric Literature in Sanskrit (P. 60),

by T. Goudriaan (Holland).

.. It (Sātvata-saṁhitā) is a contribution to scholarship of which you (Vrajavallabha Dwivedi) may be justly proud, and for which you will be remembered.

H. Daniel Smith

Professor of Religion

Syracuse University, New York

What is at present required from scholars of Tantrism is, in my opinion, the close study of single schools, on the basis of the published texts (where they exist) and, above all, the difficult work of editing what is preserved in manuscript form. Exemplary in this respect is the valuable work of Prof. Varjvallabha Dwivedi, ex-Head of the Department of Yogatantra at the Sanskrit University of Varanasi, author of many editions of Tantric texts often accompanied by important introduction, capable as few others of moving with equal authority among the most diverse schools.

East and West, Roma

Vol. 33, 1983

...One should add that his numerous papers, and still more the. excellent critical editions, he has made of such important texts as the Nityāṣoḍaśikārṇava, the Śaktisaṅgamatantra, part 4, the Sātvata-saṁhitā, and, most recently, the second volume of Luptāgamasaṅgraha (to mention only these four), together with the very learned and informative introductions in Sanskrit he wrote for these editions, are outstanding contributions to the domain of tantric studies.

Shree Vraj Vallabha Dwivedi is thus very well known, and very highly appreciated as a scholar in French indological circles (as

well as, I happen to know, in corresponding circles in Great Britain, Germany and Holland.

(Dr.) Andre Padoux
Director of Research in the
French Sentonal Centre for Scientific Research—
10.2.84

...Both Prof. Gnoli (formerly my teacher and now my collegue in the University of Rome) and I hold you in high esteem, as the best authority in the field of Tantric studies.

Dr. Raffable Torella
Universita' Degli Studi Di Roma La Sapienza,
Dipartimento Di Studi Orientali,
Facolta' Di Littere E Filosofia.
12-3-84

●

अधिगताः पुरस्काराः

पुरस्कार योजना समिति, उत्तरप्रदेश, लखनऊ

प्रमाणित किया जाता है कि श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी को वर्ष १९६९-७० में उनकी रचना 'नित्याषोडशिकार्णवः' पर १५०० रुपये का कालीदास पुरस्कार प्रदान किया जाता है।

लखनऊ
दिनांक जुलाई २८-१९७०

राजाराम शास्त्री
अध्यक्ष

• • •

उत्तरप्रदेश-संस्कृत-अकादमी, लखनऊ

संस्कृत-साहित्य-पुरस्कारः

१९७८ ईसवीये वर्षे प्रकाशिता 'विज्ञानभैरवम्' कृतिः अधिकारिविद्वद्भिः पुरस्कारयोग्या घोषिता इति तल्लेखकं 'श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी' इति विद्वांसं त्रिसहस्ररूप्यकाणां पुरस्कारेण सहर्षं सभाजयति।

विनोदचन्द्रपाण्डेयः
निदेशकः

करुणापति त्रिपाठी
अध्यक्षः

• • •

१९८२ ईसवीये वर्षे प्रकाशिता 'तन्त्रयात्रा' कृतिः अधिकारिविद्वद्भिः पुरस्कारयोग्या घोषिता इति तल्लेखकं श्री व्रजवल्लभद्विवेदिनं विद्वांसम् एकसहस्त्ररूप्यकाणां पुरस्कारेण अकादमी सहर्षं सभाजयति।

धर्मनारायणः (त्रिपाठी)
निदेशकः

करुणापति त्रिपाठी
अध्यक्षः

• • •

१९८३ ईसवीये वर्षे प्रकाशिता 'लुप्तागमसंग्रहः' (द्वितीयो भागः) इति कृतिः अधिकारिविद्वद्भिः पुरस्कारयोग्या घोषिता इति तल्लेखकं श्रीव्रज-वल्लभद्विवेदिमहोदयं विद्वांसं द्विसहस्ररूप्यकाणां पुरस्कारेण सहर्षं सभाजयति।

धर्मनारायणः (त्रिपाठी)
निदेशकः

करुणापति त्रिपाठी
अध्यक्षः

• • •

विशिष्टसंस्कृतसाहित्यपुरस्कारः

वै० २०४३ (१९८६ ई०) वर्षीयः

आचार्यश्रीव्रजवल्लभद्विवेदिनाम्ने विदुषे संस्कृतभाषासाहित्ययोस्तदीयाऽऽजीवनमहनीयसेवायाः सम्माने पञ्चविंशतिसहस्ररूप्यकाणां विशिष्टं पुरस्कारं सादरमुपहरति ।

मधुकर द्विवेदी **करुणापति त्रिपाठी**
निदेशकः वैक्रमाब्दे २०४५ (१९८८ ई०) अध्यक्षः

• • •

राजस्थानशासनम्, शिक्षाविभागः

इदं राज्यस्तरीयपुरस्कारप्रशस्तिपत्रं श्रीमते व्रजवल्लभद्विवेदिमहोदयाय संस्कृतशिक्षाक्षेत्रे प्रशंसनीयलोकसेवायै सम्मानार्थं शासनेन प्रदीयते ।

संस्कृतदिवसः, १९८७ **शासनसचिवः**
जयपुरम् राजस्थानशासकीयः

• • •

सत्यमेव जयते

अहं भारतस्य राष्ट्रपतिः डॉ० शंकरदयालशर्मा श्री व्रजवल्लभद्विवेदिमहोदयाय संस्कृतवाङ्मये पाण्डित्याय शास्त्रे च वैशारद्याय प्रमाणपत्रमेतत् प्रददामि ।

शंकरदयाल शर्मा
नई दिल्ली, ११ मई, १९९३ राष्ट्रपतिः

• • •

महाराणा मेवाड़ फाउण्डेशन, उदयपुर

प्रशस्तिका

श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी भारतीय परिवेश में योग एवं तन्त्र के क्षेत्र में जनचेतनार्थ उनकी स्थायी मूल्य की सेवाओं के उपलक्ष्य में महाराणा मेवाड़ फाउण्डेशन हारीत राशि संमान से सम्मानित ।

अरविन्दसिंह मेवाड़
उदयपुर चेयरमैन
दि० १६ अप्रैल, १९९५

•

विदुरनीति, महाभारत, उद्योगपर्व, प्रजागरपर्व
अध्याय ३३-४० गीताप्रेस सं.

लोपामुद्रा वृषणं नी रिणाति धीरमधीरा धयति श्वसन्तम् (ऋग्वेद, १.१७९.४)। लोपामुद्रा-अगस्त्य

जंगमवाडी मठ में उपलब्ध ग्रन्थ

(१) लिङ्गधारणचन्द्रिका (हिन्दी भावानुवाद सहित)
(२) सिद्धान्तशिखामणिः, तत्त्वप्रदीपिकाख्यसंस्कृतव्याख्यासहितः, मराठी भावानुवादसहितश्च । सं० ज० डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी, विशेष आवृत्ति
(३) श्रीकण्ठभाष्यम् (चतुःसूत्री) अप्पयदीक्षितकृत शिवार्कमणिदीपिका-संस्कृत-टीकासहितम्
(४) वीरशैव अष्टावरण विज्ञान (मराठी और हिंदी) डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी
(५) जन्म हा अखेरचा (मराठी) (भाग १-१३) ज० डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी
(६) सिद्धान्तशिखामणि-समीक्षा (संस्कृत-शोधप्रबन्ध) डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी
(७) संक्षिप्त शिवपूजाविधिः (मराठी)
(८) महानारायणोपनिषद् (वीरशैवभाष्य)
(९) शक्तिविशिष्टाद्वैत सिद्धांत (मराठी)
(१०) सिद्धान्तशिखामणिः (मूलमात्र)
(११) निगमागम संस्कृति (हिन्दी) पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी
(१२) वीरशैव पंचपीठ परंपरा (मराठी) अनुवादक डॉ० चन्द्रशेखर कपाळे
(१३) ईशावास्योपनिषद् (शाङ्करी व्याख्योपेता)
(१४) केनोपनिषद् (शाङ्करी व्याख्योपेता)
(१५) मुण्डकोपनिषद् (शाङ्करी व्याख्योपेता)
(१६) सिद्धान्तशिखोपनिषद् (शाङ्करी व्याख्योपेता)
(१७) सूक्ष्मागमः, हिन्दी भावानुवादसहितः, सं० पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी
(१८) चन्द्रज्ञानागमः, (हिन्दी भावानुवादसहितः, सं० पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी
(१९) मकुटागमः, हिन्दी भावानुवादतहितः, सं० पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी
(२०) कारणागमः, हिन्दी भावानुवादसहितः, सं० प्रो० रामचन्द्र पाण्डेय
(२१) पारमेश्वरागमः, हिन्दी भावानुवादसहितः, सं० पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी
(२२) निगमागमीयं संस्कृतिदर्शनम् (संस्कृत) पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी
(२३) चन्द्रज्ञानागम (अंग्रेजी) अनुवादक डॉ० रमा घोष